साम्प्रदायिक समस्या

ठा० रघुनाथ सिंह
बी० ए०, एल-एल० बी०

प्रकाशक—
ओंकार प्रेस
प्रयाग।

प्रथम संस्करण
सम्वत् २००४
मूल्य ५)

मुद्रक—
पं० विश्वम्भर नाथ वाजपेयी
ओंकार प्रेस
प्रयाग।

समर्पण

मा
न
नी
य
श्री
स
म्पू
र्णा
न
न्द
जी
को

"अंग्रेजी राज्य के पहले हिन्दू और मुसलमान"

हिन्दुस्तान की एक निराली शान थी। हरा-भरा देश धन-धान्य से पूर्ण और समृद्धिशाली था। जीवनोपयोगी सामग्रियाँ सरलता से उपलब्ध थीं। जीवन की उच्चतर प्रवृत्तियों तथा उद्देश्यों के अनुसरण के लिये वातावरण शान्त तथा प्रशस्त था। बन, नदियाँ, समुद्र, पहाड़ और विस्तृत मैदान के कारण देश अनुपम प्राकृतिक सौन्दर्य्य के लिये विख्यात था। मध्य एशिया के विभिन्न प्रदेशों के निवासी प्रकृति के इस विलक्षण तथा सम्पन्न भूखण्ड में युगों तक आकर्षित होते रहे। हिमालय के उत्तर और पश्चिम से झुण्ड की झुण्ड अनेक जातियाँ आकर इस देश के गर्त में अबाध रूप से समा गई और यहाँ के समाज तथा सभ्यता में हिल-मिल कर इस प्रकार एक हो गई कि उनकी पृथक सत्ता का चिन्ह भी शेष न रहा। जो लोग आये अपने साथ अपनी संस्कृति और सभ्यता भी लाये। हिन्दुस्तान की उच्च संस्कृति के साथ इसका जो संयोग हुआ और इस सम्मिश्रण से जिस नवीन संस्कृति और जीवन का विकास हुआ वह न केवल तब किन्तु आज भी हमारे लिये अभिमान की वस्तु है। और यदि स्वार्थी क्रूर हाथों ने उस जीवन-स्रोत

के स्वच्छन्द निर्मल प्रवाह को रोक कर दूषित न कर दिया होता तो न केवल हिन्दुस्तान बल्कि संसार के अन्य देश भी उसमें स्नान करने के लिये लालायित होते।

बाहर से जो जातियाँ इस देश में आईं, वे प्रवासी, व्यापारी, या आक्रमणकारी के रूप में आईं। मुसलमान यहाँ व्यापारी और आक्रमणकारी दोनों ही रूप में आये, किन्तु आक्रमणकारी से बहुत पहले हिन्दुस्तान से उनका सम्पर्क व्यापारी के रूप में था। अरब के साथ हिन्दुस्तान का बहुत ही पुराना व्यापारिक और व्यावसायिक सम्बन्ध प्रसिद्ध है। अरब से दक्षिण के मालाबार प्रदेश में प्रति वर्ष दस हजार घोड़ों की आयात थी जिनका मूल्य बाईस लाख..............दीनार होता था। ईरान और मिश्र के साथ हिन्दुस्तान का काफी बड़ा व्यापार था। स्टैनली लेन पूल ने लिखा है, "अरब सागर के तट पर जो समुद्री व्यापारी थे, वे हिन्दुस्तान के पश्चिमी बन्दरगाहों से युगों से परिचित थे"।* व्यापार के सम्बन्ध में इस देश के साथ मुसलिम देशों का सम्बन्ध इतना बढ़ गया था कि बहुत से मुसलिम व्यापारी इस देश में स्थायी रूप से आकर बस गये। दक्षिण मालाबार में, विशेषतया समुद्र-तट पर इनकी अच्छी-सी बस्ती हो गई। मलिक काफूर की सेना के दक्षिण में प्रवेश करने के पहले मुसलमान प्रमुख व्यापारी नगरों में बस चुके थे और उनके जत्थे समस्त मालाबार तट पर फैल चुके थे। वहाँ के लोगों के साथ उनका घनिष्ट सम्बन्ध स्थापित हो चुका था

* मेडिवल इंडिया।

और वहाँ के सामाजिक तथा राजनीतिक जीवन में वे भली भाँति प्रवेश कर चुके थे। उनके रीति-रिवाज और मजहब का काफी आदर था और मसजिदें बनाने तथा मजहब के प्रचार की भी पूरी स्वतंत्रता थी। हिन्दू राजाओं ने विशेषतया मान्य खेत के राष्ट्रकूट राजा ने मुसलमान व्यापारियों की रक्षा की पूरी व्यवस्था की थी। अलमसूदी ने लिखा है कि, "वल्हार के राज्य में इस्लाम की रक्षा और इज्जत की जाती है"। उनके साथ यह कोई नई या विशेष बात न थी, बल्कि हिन्दुस्तान के रीति रिवाज और सहिष्णुता की यही परम्परा रही है। इस देश के निवासियों ने ईसाइयों को भी यह सुविधा देने में किसी समय कोई आना-कानी नहीं की। इस घनिष्ट सम्बन्ध के परिणाम स्वरूप अरब और तामीलों के सम्पर्क से रैवुत्तार, लाव इत्यादि कई वर्ण संकर जातियाँ उत्पन्न हुईं। लेनपूल ने मेडिवल इन्डिया" में लिखा है, "वे हिन्दू स्त्रियों से शादी किये और इस से जो मिश्रित सन्तान हुई, उसने फिर अन्तर्विवाह किया, और इस प्रकार प्रत्येक पीढ़ी अधिक से अधिक हिन्दुस्तानी होती गई"।

सन् ७११ ई० से १२०६ ई० तक का समय हिन्दुस्तान के इतिहास में महान् सांस्कृतिक और राजनीतिक परिवर्तन तथा निर्माण का युग था। आठवीं सदी के आरम्भ में अरब के मुसल-मानों नें सर्व प्रथम हिन्दुस्तान पर आक्रमण किया। इस हमले के फल स्वरूप अरब के मुसलमानों का हिन्दुओं के साथ जो सम्पर्क हुआ, वह मजहबी सहिष्णुता और उदारता से भरा हुआ था। अलबिलादुरी के अनुसार सिंध के अरब शासक

जिनमें मुहम्मद इब्राहीम का नाम विशेष उल्लेखनीय है, हिन्दुओं के मन्दिरों को अत्यन्त पवित्र समझते थे और उनका सम्मान करते थे। उनके सम्बन्ध में लेनपूल ने "मेडिव्हल इन्डिया" में लिखा है, "ब्राह्मणों की रक्षा की जाती थी और उन्हें उच्च पद दिये जाते थे"।

बाहर से जो आक्रमण कारी बनकर आये, वे इस देश में बस कर यहाँ के निवासी हो गये और इस देश के अन्य निवासियों के साथ मिल कर दूसरे आक्रमण कारियों का सामना किया। पानीपत के प्रसिद्ध रणक्षेत्र में मुगल आक्रमण कारी बाबर का सामना एक मुसलमान बादशाह सुलतान इब्राहीम लोदी ने किया था। हुमायूँ को पराजित करने वाला शेर शाह एक मुसलमान ही था। नादिर शाह का हिन्दुस्तान पर जब आक्रमण हुआ तो हिन्दू और मुसलमान दोनों ही ने पेशवा बाजीराव के नेतृत्त्व में उसका सामना करने का प्रयत्न किया। इस्लाम मजहब और साम्प्रदायिकता के नाम पर न तो ये लड़ायियाँ लड़ी गई थीं और न जीति गई थीं। इतिहास के पन्ने केवल ऐसे ही घटनाओं से भरे हैं, उनमें न तो मजहब की गंध छू गई है और न साम्प्रदायिकता की। के० कानूनगो ने अपनी पुस्तक "शेर-शाह" में लिखा है "शेरशाह (१५४१-४५) का उद्देश यह था कि सल्तनत का सारा कारबार मजहब को बिल्कुल अलग रख-कर चलाया जावे, शासन का मजहब से कोई भी सम्बन्ध न रहे। वह समझता था कि मजहब का लोगों के सामाजिक या

सार्वजनिक जीवन से कोई सम्बन्ध नहीं है, मजहब प्रत्येक मनुष्य की अपनी चीज़ है, जिसका सम्बन्ध केवल उसके निजी जीवन से है" । एल्फिन्स्टन ने लिखा है, अलाउद्दीन खिलजी (१२९५-१३१४) कहा करता था कि मजहब का देश के हुकूमत के साथ कोई ताल्लुक नहीं, मजहब सिर्फ आदमी के घरेलू जिन्दगी की चीज है, बल्कि सच पूछिये तो घर में बैठकर मन बहलाव की चीज है" ।* (विश्ववाणि मई १९४४ से उद्धृत)।

दक्षिण के बहमनी सुल्तान और मुगल सम्राटों के बीच चलने वाले लम्बे संघर्ष से भी केवल एक बात यही प्रमाणित होती के कि इन लड़ाइयों और संघर्षों में मजहब का दखल लेश मात्र भी नहीं था । मलिक काफूर के साथ राजा वीरबल की मुठभेड़ हुई, राजा बीरबल की सेना में २०००० बीस हजार मुसलमान थे । मुगलों के विरूद्ध शिवा जी की सहायता दक्षिण के आदिल शाहियों ने अनेक बार की ।

मजहब या साम्प्रदायिकता के एक-दम प्रतिकूल ही अन्य प्रमाण भी हैं। एल्फिन्स्टन ने हिस्ट्री आव् इंडिया' में लिखा है, "शेरशाह की सेना में हिन्दुओं को बड़े-बड़े पद दिये जाते थे और उसकी यह नीति आरम्भ से चली आती थी। ब्रह्म जीत गौड़ उसके अच्छे-से-अच्छे सेनापतियों में था। चौसा और बेलग्राम की लड़ाई के बाद ब्रह्म जीत गौड़ को हुमायूँ का पीछा करने के लिये भेजा गया था। इतिहास से पता चलता है कि

* हिस्ट्री आफ़ इंडिया।

इससे वहुत पहले हिन्दू महमूद गजनवी के जमाने में भी मुसलिम सेना के अफ़सर नियुक्त किये जाते थे" मैल्कम ने अपनी पुस्तक "क्लाइव" के प्रथम भाग में लिखा है कि जिस समय मीर जाफर अपनी वहुत बड़ी सेना के साथ सुराजुद्दौला को छोड़कर हट जाने के लिये राजी हो गया तो उस आपत्ति के समय एक वंगाली हिन्दू मोहन लाल और एक वंगाली मुसलमान मीर मदन ने अन्त तक सुराजुद्दौला का साथ दिया और दोनों अपनी अपनी सेनाओं के साथ अंत तक लड़ते रहे। सुल्तान मुहम्मद गजनवी ने सोमनाथ के प्रसिद्ध मंदिर को लूटा जरूर लेकिन इसमें मजहव या सम्प्रदाय का आवेश नहीं था। उसी सुल्लतान् गजनवी ने जब मुसमलानों पर चढ़ाई की तो अपनी सेना में अबाध गति से हिन्दू सैनिकों की भर्त्ती की और एक हिन्दू को सेनापति वनाया। उसकी सेना का एक जनरल नियाल्तगिन जव सुल्तान गजनवी के विरूद्ध विद्रोह कर बैठा तो सुल्तान के एक दूसरे हिन्दू जनरल तिलक ने उसका दमन किया। सुल्तान के लड़के मसूद ने तो तिलक को अपनी पूरी सेना का सेना पति नियुक्त कर दिया।

इससे केवल एक ही बात स्पष्ट है कि उस समय की लूट-पाट या लड़ाइयों का कोई सम्बन्ध मजहब या सम्प्रदाय से कुछ भी न था। महत्त्वाकांक्षी राजा या सुल्तान और सैनिक दूसरे देश पर आक्रमण करते या धन इकट्ठा करते। न तो मजहब या सम्प्रदाय के नाम पर कुछ करने की उनमें कोई प्रवृत्ति थी और न इसका उपयोग किसी रूप में उन्होंने किया। वास्तव में उनकी

क्रियायें सभी जाति या सम्प्रदाय के पक्ष या विपक्ष में एक-सी होती थीं। साधारण जनता ने भी उसे इसी रूप में ग्रहण किया।

अकबर के सेनाध्यक्ष साधारणतया हिन्दू हुआ करते थे, यह सभी जानते हैं। साथ ही यह भी साधारण जानकारी की बात है कि महाराज शिवा जी ने अपनी सेना में अनेक मुसलिम अफसरों को नियुक्त किया था। जनरल सिद्दीहुल्लाल और नूर खाँ महत्त्व पूर्ण पदों पर नियुक्त थे। सिद्दीसम्बल, सिद्दीमिश्री और दौलत खाँ शिवा जी के जहाजी बेड़े में ऐडमिरल थे; उनके मुंशी का नाम हैदर काजी था। शिवा जी का कुरान, मसजिदों और स्त्रियों की इज्जत करना इतिहास प्रसिद्ध है। खाँ बहादुर सैयद ए० एफ० एम० अब्दुल अली सी० आई० ई० ने लिखा है, "शिवा जी में मजहबी तरफदारी बिल्कुल नहीं थी, और अगर उसे साम्राज्य कायम करने में कामयाबी हासिल होती तो उसका साम्राज्य ऐसा होता जो शुद्ध भारतीय साम्राज्य कहलाता, जिसमें हिन्दू और मुसलमान दोनों को एक से अधिकार होते। उसका साम्राज्य मरहठा साम्राज्य होता जिसके संरक्षण में सब धर्म वाले अमन और मुहब्बत से रहते, और जिसमें हिन्दू, मुसलमानों का कोई फर्क न किया जाता।"* (विश्ववाणी जून १९४४)।

मजहबी कट्टरता के लिये औरंगजेब (१६५९-१७०७) की सब से अधिक शिकायत की जाती है, लेकिन यह शायद किसी

* दीवान रघुनाथ "राम-ए-रामा" कहा जाता था।

से छिपा नहीं है कि महाराज यशवंत सिंह और राजा जय सिंह औरंगजेब के मनसब दारों में प्रमुख माने जाते थे, और इससे भी अधिक बात तो यह है कि वे प्रांतों के शासक नियुक्त हुये थे। बंगाल में मुर्शिद कुली खाँ औरंगजेब का वायसराय था, उसके मातहत माल के सभी बड़े पदों पर हिन्दू अफसर थे। हिन्दुओं का माल विभाग पर एकाधिपत्य था। औरंगजेब के दिल्ली दरबार में भी माल विभाग एक हिंदू के ही हाथ में था। यदुनाथ सरकार ने अपनी पुस्तक "औरंगजेब" में लिखा है, "जब तक गद्दी के लिये संघर्ष चलता रहा...........माल विभाग बूढ़े और अनुभवी नायब दीवान रघुनाथ खत्री के हाथ में था।* गद्दी पर बैठने के बाद औरंगजेब ने इस प्रबंध को ज्यों का त्यों रखा और १५ जून सन् १६५९ को दीवान रघुनाथ को राजा की उपाधि देकर दरबार के अमीरों में शामिल कर लिया"। शिवा जी के विरुद्ध औरंगजेब ने यशवंत सिंह और जयसिंह की अध्यक्षता में सेना भेजी थी।

मारकोपोलो ने लिखा है कि राजा सुन्दर पांड्या का मंत्री और सलाहकार ताकिउद्दीन था, और उसी पद पर बाद को उसक लड़का सिराजुद्दीन, और लड़के का लड़का निजामुद्दीन नियुक्त हुआ। सुन्दर पांड्या का कुबले खाँ (१२८६) के पास जो दूत था वह एक मुसलमान फ़ख़रुद्दीन अहमद था।

सुल्तान मुहम्मद तुगलक ने (१३२५) अपने राज्य के अनेक विभागों में हिंदुओं को नियुक्त किया था। उसके खजाने के मुहकमें के सबसे ऊँचे अफसर रतन एक हिन्दू थे। तारा-

चन्द ने अपनी पुस्तक "इन्फ्लुएन्स आव् इस्लाम आन इंडियन कल्चर" में लिखा है, "बीजापुर के आदिलशाही और अहमद नगर के निजाम शाही सुल्तानों ने महाराष्ट्र सरदारों को बराबर प्रोत्साहित किया। वे अपने राज्य में हिन्दू अफ़सर नियुक्त करते थे, और सेना में हिन्दू सैनिक भर्त्ती करते थे। अहमद नगर के निजाम शाहियों ने मराठी को सरकारी कारबार की भाषा बनाकर बहुत प्रोत्साहन दिया। विजय नगरम् के हिन्दू राजा ने भी ऐसी ही सहिष्णुता और सद्भावना का परिचय दिया। उन्होंने मुसलमानों को सेना में भर्त्ती किया, मुसलिम व्यापारियों को उत्साहित किया और उनके लिये मसजिदें बनवाईं।" एलफिन्स्टन ने लिखा है, "मुहम्मद आदिल शाह ने (१५५२) हेमू नाम के एक हिन्दू के हाथों में अपने शासन का सारा भार सौंप दिया था।"*

अकबर महान का शासन तो आदर्श था। राजा टोडर मल उसके अर्थ मंत्री और मालमंत्री थे। राज्य में अनेक महत्वपूर्ण परिवर्तन करने का श्रेय उन्हें प्राप्त था। बादशाह के साथ राजा बीरबल की मित्रता, उनकी सूझ, वीरता, और राज्य में उनके महत्त्वपूर्ण स्थान की कहानियाँ आज भी हिन्दुस्तान के गावों में आदर से कही और सुनी जाती हैं। हिन्दुस्तान के इतिहास में अकबर का चरित्र एक उज्ज्वल पृष्ठ है। मजहब में केवल सहिष्णुता और उदारता ही उसके लिये काफी न थी। वह पंडितों और मुल्लाओं से सब मजहबों की बातें सुनता, उन पर तर्क

---

* हिस्ट्री आफ़ इंडिया।

करता और सबके लिये समान रूप से एक ही मजहब भी चाहता था। दीनइलाही स्थापित कर उसने समान मजहब के लिये एक प्रिय प्रयत्न भी किया। किन्तु हिन्दुस्तान के इतिहास में यह व्यापक और उदार मना व्यवहार केवल पहला नहीं था, इसके लिये पहले ही से वातावरण तैयार हो चला था, और घटनाओं की शृंखला में यह केवल एक कड़ी मात्र थी। काश्मीर के सुल्तान जैनडलूअबीदिन् (१४२०-१४७०) अपनी सहानुभूति और उदारता के लिये प्रसिद्ध थे। अलाउद्दीन खिलजी और शेरशाह के सम्बन्ध में हम पहले ही चर्चा कर चुके हैं। एलफिन्स्टन ने अपनी पुस्तक "हिस्ट्री आव् इंडिया" में लिखा है, "शेरशाह पहला आदमी था। जिसने एक ऐसा हिन्दुस्तानी साम्राज्य कायम करने का प्रयत्न किया जो हिन्दुस्तान की जनता की सहानुभूति पर स्थापित हो। इतिहास लेखक कीन लिखता है कि इस पठान के शासन से जितनी बुद्धिमत्ता प्रकट होती है उतनी किसी भी दूसरी हुकूमत में नहीं देख पड़ती"।

लोगों को साधारणतया यही मालूम है, कि केवल अकबर मजहबी मामलों में उदार और सहिष्णु था, किन्तु इतिहास के पृष्ठों में केवल यही एक सत्य मिलेगा कि कभी भी किसी हिन्दू को मजहब के कारण न तो कोई हानि उठानी पड़ी और न नागरिक अधिकार से वंचित होना पड़ा। औरंगजेब के संबन्ध में एलूफिन्स्टन ने "हिस्ट्री आव इंडिया" में लिखा है "यह पता नहीं चलता कि किसी एक हिन्दू को भी अपने मजहब के कारण मृत्यु-दंड, कैद की सजा या सम्पत्ति सम्बन्धी दंड सहना पड़ा हो,

या किसी एक व्यक्ति से भी कभी अपने पूर्वजों के मजहब पर आचरण करने के कारण कैफियत माँगी गई हो।"

मुहम्मद अकबर अपने पिता औरंगजेब के विरुद्ध राजपूतों की सहायता पाकर विद्रोह कर बैठा, किन्तु विद्रोह असफल रहा। औरंगजेब मुहम्मद-अकबर के पुत्र और पुत्री को जो हिन्दू राजाओं की शरण में थे, चाहता था। इस संबन्ध की चर्चा करते हुये यदुनाथ सरकार ने अपनी "पुस्तक औरंगजेब" के पाचवें भाग में लिखा है, "मुहम्मद अकवर का दुध मुहाँ बेटा बुलन्द अखतर और उसकी वेटी सफीयतुन्निसा दोनों मारवाड़ में अकबर के राठौर मित्रोंके पास रह गये थे। ये दोनों बच्चे इतने कम उमर के थे कि भाग-दौड़ के कष्टों को सहन नहीं कर सकते थे, इसलिये दुर्गादास ने सन् १६८१ ई० में उन्हें एक ऐसे अज्ञात स्थान में जहाँ, किसी का भी पहुँचना कठिन था, गिरिधर जोशी नामक एक ब्राह्मण के हवाले कर दिया। सन् १६८१ से सन् १६९६ तक ये दोनों बालक वहीं रहते थे, और न केवल उनके स्वास्थ तथा सदाचार का ही पूरा पूरा ध्यान रक्खा गया, बल्कि इस्लाम मजहव की भी उन्हें पूरी शिक्षा दी गई।" मजहब के सम्बन्ध में संकीर्ण और क्रूर विचार के नहीं, बल्कि विस्तृत और उदार विचार के ये स्पष्ट उदाहरण हैं। औरंगजेब का इस्लाम मजहब में अविभाज्य विश्वास था। उसका ईमानदारी से आचरण करना उसने अपने जीवन का अत्यन्त पवित्र कर्त्तव्य समझा था, इसलिये उसका मजहबी विचार चाहे जो कुछ भी रहा हो, कम से कम उसमें साम्प्रदायिकता नहीं थी।

जातिगत नहीं, वल्कि व्यक्ति गत रूप में मजहब को जैसा उसने समझा, उसी के अनुसार आचरण करने का स्वयं प्रयत्न किया और अपनी प्रजा से भी वैसा ही करने की उत्कंठा और आवेश प्रदर्शित किया। जजिया कर को अनायास अत्यधिक महत्व देकर उसे कलुषित बनाने का प्रयत्न किया गया है। वह एक साधारण कर था जो उन लोगों पर लगाया जाता था जो इस्लाम में विश्वास नहीं करते थे। यह भी एक अत्यन्त निर्दोष व्यक्ति गत विश्वास की बात थी। वह समय एक मजहबी युग था, जिसमें मजहब व्यक्ति गत और सामाजिक जीवन को प्रभावित करने में अत्यधिक प्रभाव रखता था। इसकी तुलना यदि बौद्ध काल या ब्राह्मण काल के उदाहरणों से की जाय तो जजिया कर साधारण और महत्व हीन दीख पड़ेगा।

हिन्दुस्तान और चीन में ईसाई मजहब के प्रचार अंग्रेजों और अमेरिकनों ने जो कुछ दिया है, उसकी तुलना में औरंगज़ेब के कार्य एक दम नगण्य हैं। ईसाई मजहब के प्रचार और प्रसार में हिन्दुस्तान की आमदनी का एक हिस्सा खर्च किया जाता है और इसमें तो सन्देह ही नहीं कि आज ईसाई सम्प्रदाय कोजो सुविधा और सम्मान प्राप्त है वह कल्पनातीत है। और यह सब हो रहा है २० वीं शताब्दी के युग में। आज जो सिद्धान्तों और आदर्शों का स्थान है, वह पहले मजहबों का था। आज भी किसी विशेष सिद्धान्त और आदर्श के मानने वाले उनके प्रचार और प्रसार के लिये अपने अनुयायियों में अधिक सुविधाओं का आयोजन करते हैं। औरंगज़ेब

का विश्वास था मानव का उद्धार और कल्याण इस्लाम के द्वारा ही हो सकता है। जजिया कर के द्वारा उसने इस्लाम के अनुयायियों को कुछ सुविधा देनेका प्रयत्न किया। औरंगजेब का जीवन निर्दोष, सरल और पवित्र था। वह अपने जीवन का दृष्टि कोण उच्च कोटि की आध्यात्मिकता की कसौटी पर कसता था, और सभी प्रकार के व्यर्थ तथा बनावटी व्यवहारों से घृणा कर ठोस सरलता पूर्ण जीवन का समर्थक था। इसी लिये किसी दूसरे क्षेत्र में उसके कार्य में हिन्दू और मुसलमान के बीच भेद-भाव का वर्ताव नहीं मिलेगा। मुगल बादशाह आलमगीर अत्याचारी और क्रूर कहा जाता है, किन्तु उसने भी मजहब में कोई छेड़-छाड़ नहीं की। रायबहादुर श्री ज्ञान शंकर कृपाशंकर पण्ड्या एम० ए० ने लिखा है "बनारस के अपने सूबेदार को बादशाह आलमगीर ने आदेश दिया था कि, "अपने हिन्दू रियाया के साथ जुल्म न करना। उसके साथ धार्मिक उदारता का वर्ताव करना, और उनकी धार्मिक भावनाओं का लिहाज करना।" (विश्व वाणी जून, ४४)

जिस समय हिन्दुस्तान में मजहबी क्रूरता या साम्प्रदायिकता की लेश मात्र भी गंध न थी बल्कि, अकबर का विस्तृत और व्यापक दृष्टि-कोण अपना शानी नहीं रखता था उस समय की योरप और इंगलैंड की दशा की विवेचना अनुपयुक्त न होगी। श्री राम शर्मा ने, दिनी रिलिजस पालिसीज आवूदि मुगल इम्पायर' में लिखा है"—

"यह याद रखने योग्य है कि जब योरप अपनी लड़ाकू

जातियों के झगड़ों में डूबा हुआ था, जब रोमन कैथोलिक प्रोटेस्टेन्ट लोगों को जीते जी आग में जला रहे थे, और प्रोटेस्टेन्ट रोमन कैथोलिकों का आम कत्ल कर रहे थे, उस समय अकबर ने न केवल युद्ध रत जातियों को बल्कि विरोधी मजहबों को शांति दी। यदि उस समय की परिस्थितियों और जातियों को दृष्टि में रखकर विचार किया जाय तो इस युग में वह मजहबी सहिष्णुता, में सबसे आगे था और सबसे बड़ा मार्ग प्रदर्शक था!" (कम्यूनल ट्रैंगिल में उद्धृत) प्रोफेसर शर्मा ने इस सम्बन्ध में फिर उसी पुस्तक में लिखा है:—

"योरप का यह वह समय था जब राजनीतिक अधिकारी लोग, शासक या पार्लियामेन्ट के बादशाह, चाहे जो भी हों अपनी प्रजा को यह आदेश देने में व्यस्त थे कि उनको वही मजहब मानना पड़ेगा जो शासक का मजहब था। उदाहरणतः छठें एडवर्ड के नाम पर जो लोग शासन करते थे उनका आदेश हुआ कि इंगलैंड का मजहब प्रोटेस्टेन्ट होगा, और उसके अनुसार इंगलैंड का मजहब प्रोटेस्टेन्ट हो गया। इसके बाद इंगलैंड की हुकूमत मैरी के हाथ में गई और जादू की भाँति समस्त इंगलैंड कैथोलिक मजहब का शिष्य बन गया। एलिजाबेथ जब गद्दी पर बैठी तो फिर मजहब बदला और भीषण संघर्ष के बाद एंग्लिकन मजहब सफल हुआ। सोलहवीं और सत्रहवीं सदी के शासकों को अपनी प्रजा का मजहब एक बहुत बड़ी परेशानी का प्रश्न था। मुगल बादशाहों ने अपनी प्रजा को मजहब की पूरी स्वतंत्रता देकर प्रशंसनीय अपवाद उपस्थित किया है।

उन्होंने 'सुप्रीमेसी एक्ट' नहीं बनाया, और न तो ३९ आर्टि-किल काम में आया" (क० ट्रै० में उद्धृत)

इंगलैडके इतिहास के पन्ने मजहबी खींचतान की छीछा-लेदर और भयानक अत्याचारों से भरे पड़े हैं। यहाँ न तो वे सब उद्धृत किये जा सकते हैं, और न इसकी आवश्यकता है। आज के मुँह विराने वाले जिस-समय नारकीय जीवन की यातना भोग रहे थे, हिन्दुस्तान के हिन्दू और मुसलमान शालीनता और गौरव के साथ सहिष्णुता और उदारता के उस व्यापक और विस्तृत क्षेत्र में साथ साथ चल रहे थे जहाँ किसी भेद के अभाव में देश और समाज उत्थान की ओर अग्रसर होता है। कराची में होने वाले मुसलिम लीग के ३१ वें अधि-वेशन में दिसम्बर १९४३ में स्वागताध्यक्ष के पद से बोलते हुये श्री सईद ने कहा था :—

"सिन्ध अनेक शताब्दियों तक जातियों सभ्यताओं मज-हबों के मिलने का स्थान था। दर्शनों और मजहबों की जितनी बाहुल्यता और प्रगाढ़ता में यहाँ सम्मिश्रण हुआ है उतना संसार के किसी भी अन्य भाग में नहीं हुआ। यहाँ ही पर वेदान्त की शिक्षा, बुद्ध के उपदेश और गुरुनानक तथा सूफियों के प्रव-चनों का एकीकरण हुआ था। मजहबी एकता की ओर उन्होंने कदम उठाया था। अस्पृश्यता यहाँ से अधिक कम और कहीं भी नहीं है।"

यदि किसी को सन्देह हो कि सूफियों का दर्शन वेदान्त के दर्शन से भिन्न है तो वे सूफी कवियों सनाई इत्यादि की

फारसी में लिखी कवितायें पढ़ें । हिन्दू और मुसलमान दोनों ही का मेल और सामीप्य इतना घनिष्ट था कि प्रत्येक एक दूसरे को पूरे तौर पर अपना लेने के लिये लालायित था। हिन्दुओं ने फारसी और अरबी में पांडित्य प्राप्त किया और मुसलमानों ने संस्कृत का खूब अध्ययन किया। हिन्दू राजाओं और मुसलमान बादशाहों के दरबार में दोनों ही मजहब के पंडितों का समान आदर था। केवल अकबर के ही नवरत्नों में हिन्दू पंडित और मुसलमान उलेमा नहीं शामिल थे, बल्कि यही बात अन्य बादशाहों के दरबारों की भी थी। युवराज दाराशिकोह हिंदू दर्शन शास्त्र और संस्कृत के विशेष जानकार थे। उन्होंने उपनिषदों का अनुवाद फारसी में कराया। आज भी फारसी में किये गये ये अनुवाद सर्वत्र आदर से पढ़े जाते हैं। भगवद् गीता और योग वाशिष्ट का फारसी अनुवाद दाराशिकोह के ही प्रयत्न का परिणाम है। अन्य अनेक संस्कृत ग्रंथों का भी उन्होंने अनुवाद कराया, और स्वयं भी कई ग्रंथ लिखे। युवराज दारा बादशाह औरंगजेब के बड़े भाई थे। इनके पर दादा अकबर महान यद्यपि स्वयं बहुत पढ़े नहीं थे, लेकिन हिंदू पंडितों से धर्म और दर्शन के ग्रंथों को पढ़वा कर सुना करते थे, और उन्होंने रामायण, महाभारत इत्यादि का फारसी अनुवाद करवाया था। हिंदुओं ने तो फारसी भाषा का खूब आदर किया। शेख सादी साहब की गुलिस्ताँ बोस्ताँ" हिंदुओं के घर की चीज-सी हो गई।

जीवन के उच्च स्तर पर अध्यात्मवाद के क्षेत्रमें दोनों एक

ही रूप में मिलते थे। यह देखकर आश्चर्य्य होता है कि मध्य एशिया और हिंदुस्तान के लोगों में जीवन-श्रोत के मूलमें इतनी एकता कहाँ से जीवन स्रोत और कैसे आ गई। सूफी दर्शन और वेदन्त की शिक्षा में जो समानता है, वह अबाध गति से बराबर बहती मिलेगी। हिंदू संतों और मुसलमान फकीरों के बाहरी और भीतरी आचरणमें कहीं भी कोई अंतर दिखाई नहीं पड़ता। संतों और फकीरों की सूक्तियों से दोनों धर्मों के मानने वालों को इस बात का स्पष्ट विश्वास हो गया कि वास्तव में हम सब एक ही जगदीश की उपासना करते हैं।* कबीर, नानक चैतन्य, दादू, तुकाराम इत्यादि का नाम इस सम्बंध में सदा आदर से लिया जायगा। राम और रहीम में कोई भेद नहीं, यह सर्वमान्य बात हो गई। कृष्ण के उपासकों में अनेक मुसलमान थे, इनमें रसखान का नाम तो बहुत ही प्रसिद्ध है। "ये कभी तो भारतीय ब्रह्म वाद की ओर झुकते थे, कभी पैगम्बरी एकेश्वर की ओर........इन दोनों प्रकार के निर्गुणवादियों के विषय में हम कह सकते हैं कि इनको यह प्रेरणा बहुत कुछ मुसलमान धर्म से प्राप्त हुई थी।

जीवन श्रोत की अजस्र धारा बहती गई। स्वार्थों का इतना सम्मिश्रण था। हिलमिल कर रहना इतना साधारण नियम बन गया था, और पारस्परिक घनिष्ठता की सृजन और क्रियात्मक शक्ति उस स्थान पर पहुँच चुकी थी. जहाँ से मानव, मानव के सहयोग

* 'आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास' लेखक पं० कृष्ण शंकर शुक्ल, एम० ए०।

से समाज और संसार को विभूति प्रदान करता है। हिंदू और मुसलमान जन्म के इस हेल मेल ने बोल चाल की उस एक दम नई भाषा का जन्म दिया, जिसे आज हम हिंदुस्तानी भाषा कहते हैं। संसार के इतिहास में यह निराला उदाहरण है। दूसरे देशों में यदि दो भाषाओं का सामना हुआ, तो एक दूसरे पर हावी हो गई, कमजोरों को अपने से अधिक शक्ति-शालियों की भाषा स्वीकार करनी पड़ी, या दोनों अलग अलग अपने स्थान पर रुक कर रह गईं; किंतु इस संयोग से उत्पन हुई भाषा का आज एक धनी साहित्य है। सबसे बड़ी बात यह है कि अनेक मुसलमान कवियों ने हिंदी भाषा में कविता लिखी। मलिक मुहम्मद जायसीका 'पद्मावत' नामक काव्य ग्रंथ अत्यंत प्रसिद्ध है। कुतवन ने 'मृगावती' नामक काव्य की रचना की। जहाँगीर के शासन काल में उसमान कविने 'चित्रावली' नामक पुस्तक लिखी। शेख नवी ने अवधी भाषा में लिखा। रहीम, खान-खाना रसखान, आलम और खुसरू के नाम हिंदी के साथ अमर हो चुके हैं। "भाषा का जैसा सुन्दर सुधार सूफी कवियों ने किया वैसा हिंदी में पहले कभी नहीं हुआ था। सूफियों की भाषा अवधकी थी, जिसकी उत्पति अर्द्ध मागधी से मानी जाती है। जायसी आदिने उसे परिमार्जित कर अत्यन्त शुद्ध बना दिया"* ब्रजभाषा पर फारसी का बहुत प्रभाव पड़ा। यदि आप जगत विख्यात उपंयास लेखक शरत बाबू की किताबों को पढ़ें तो बंगला भाषा में उर्दू और फारसी शब्दों की भरमार पायेंगे।

* हिन्दी भाषा और साहित्य ले० श्याम सुन्दर दास।

मल्लिक, मजूमदार, बंगाली हिंदुओं के पारिवारिक उपाधियाँ फारसी के शब्द हैं' फारसी पर भी उसी प्रकार हिंदी और संस्कृत भाषा का प्रभाव पड़ा है। हुमायूँ की बहन गुलवदन बेगम ने सम्राट अकबर के कहने पर हुमायूँ की जीवनी लिखी। यह फारसी में लिखी गई और इसका नाम 'हुमायूँ नामा' है। इसमें बहुत से हिंदी शब्द और मुहावरे प्रयोग किये गये हैं, और ये सभी उन दिनों शाही महल में बोले जाते थे।

भाव की एकता भाषा से पीछे न रह सकी। भवन-निर्माणकला तथा चित्र-कला केवल मानव के भावों को व्यक्त करती है। जैसे एक नई भाषा की सृष्टि हुई वैसे ही हिंदू और मुसलिम चित्र-कला के सम्मिश्रण से कला की एक नई हिंदुस्तानी पद्धति का विकास हुआ। सैकड़ों हिंदू कारीगर मध्य एशिया के विभिन्न देशों में गये और वहाँ के सैकड़ों कारीगर हिंदुस्तान आये। दिल्ली की प्रसिद्ध मुसलिम इमारतों में हिंदू कला की छाप स्पष्ट दीख पड़ती है। जौनपुर और दक्षिण की मुसलिम इमारतों में हिंदू शैली का विशेष प्रभाव पड़ा है। बंगाल की मसजिदों की सजावट और शृङ्गार बंगाली है। काशमीर की भवन निर्माण कला में दोनो शैलियों का मिश्रण स्पष्ट है। गुजरात की शैली जो दोनों का ही अत्यंत सुन्दर मेल है, इतिहास प्रसिद्ध हो चुका है। द्वितीय शाह आलम ने अहमदाबाद में जो इमारतें बनवाई हैं उनमें जैन-मंदिर-निर्माण-विधि का अनुकरण किया गया है।

मुसलमानों में मुगल शासन काल कला की दृष्टि से सबसे

श्रेष्ठ है। इस समय दोनों पद्धतियों का पूर्ण एकीकरण हो चुका था। हुमायूं का मकबरा बौद्ध समाधि या देवालय की भाँति है। सम्राट अकबर के समय इसका और अधिक विकास हुआ। अकबर की बनाई हुई फतहपुर सीकरी की इमारतें हिन्दू इमारतों सी दीख पड़ती हैं, और वहीं की जामा मसजिद भी दोनों के मिश्रण का सुन्दर उदाहरण है "मानों वह सब प्रधान धर्मों के उपासकों का सम्मिलित उपासना-गृह हो।"* अकबर के दरबार में हिन्दू और मुसलमान दोनों ही कलाकार थे' जिनमें बसावन, दासबन्धु और सुदास के नाम हिन्दू कलाकारों में प्रसिद्ध हैं, और फारूख, अब्दुल समद और मीर सैयद अली विख्यात मुसलिम कलाकार थे। शाहजहाँ के संसार प्रसिद्ध ताजमहल में दोनों शैलियों का सम्मिश्रण स्पष्ट है; उसमें जो अलंकार और भव्यता है, वह हिन्दू प्रभाव की द्योतक है। भवन निर्माण कला में मेहराब मुसलमानों की नई देन है। 'इन्डियन-आर्किटेक्चर' का एक उद्धरण जानने योग्य है :—

दिल्ली, अजमेर, आगरा, गौड़, मरुवा, गुजरात, जौनपुर और बीजापुर सभी स्थानों में वहाँ के शासक अरब, पठान, तुर्क, फारसी; मुगल या हिन्दुस्तानी चाहे जो भी हों तमाम हिन्दुस्तानी मुसलिम-निर्माण-पद्धतियों में मसजिदों, महलों और मकबरों गुम्बदों की बनावट और रूप में हिन्दू छाप ने जो ताज पहनाया है, और मेहराब जिसने हिन्दू मंदिरों को भव्य और आकर्षित बना दिया है, और जो हिन्दू शैली में ढाल दिये

* 'हिन्दी भाषा और साहित्य' ले० श्याम सुन्दरदास।

गये हैं, अलंकृत और सुसज्जित बनावटों में जो भाव भरे हैं, वे सभी हमें स्पष्ट बतलाते हैं कि हिन्दुस्तानी कारीगरों के लिये-मक्का के पैगम्बर का सम्प्रदाय केवल उन अनेक में से एक था, जिनका समन्वय होकर हिन्दुत्व का पूर्ण रूप बना है। वे अच्छे मुसलमान हो सकते थे किन्तु फिर भी हिन्दू थे।

संगीत में भी वही एकता, वही सम्मिश्रण स्पष्ट है मानव-मानव के हृदयों के मिलने की इससे बढ़कर न तो कोई दूसरी परिस्थिति हो सकती थी, और न मिल जाने का इससे सबल कोई अन्य प्रभाव। तानसेन वर्तमान हिन्दुस्तानी संगीत के मूल पुरुष हैं। सम्राट अकबर के दरबार में ये विशेष सम्मानित व्यक्ति थे, स्वामी हरिदास इनके गुरू थे। विना किसी भेद-भाव के ग्वालियर में तानसेन की कब्र पर सभी सम्प्रदायों के संगीताचार्य आज भी सर नवाते हैं। श्री श्याम सुन्दरदास जी ने अपनी पुस्तक हिन्दी भाषा और साहित्य में लिखा है :—

"सारंग देव के उपरांत इस देश में विदेशीय रागों के सम्मिश्रण से उस संगीत का जन्म हुआ जिसे हम हिन्दुस्तानी संगीत कहते हैं। लोकोत्तर प्रतिभा शाली, अद्भुत मर्मज्ञ और सहृदय अमीर खुसरों को इस नवीन परम्परा के सृजन का श्रेय प्राप्त है। उसने अपनी विलक्षण बुद्धि द्वारा भारतीय रागों को मिलाकर पन्द्रह-बीस नये रागों की कल्पना की, जिनमें से ५-६ आज भी हिन्दुस्तानी संगीत में प्रचलित हैं। यमन और शहाना आदि ऐसे ही राग हैं। ख्याल परिपाटी का गाना उन्हीं ने निकाला था।"

जौनपुर के हुसैन शाह शर्की बहुत बड़े संगीतज्ञ थे, उन्होंने भी कई राग निकाले थे। अलाउद्दीन खिलजी के दरबार में गोपाल नायक नाम के व्यक्ति संगीत के बहुत बड़े आचार्य थे। सम्राट अकबर का नाम इस सम्बन्ध में भी आदर से याद किया जायगा वे नंक्कारा बजाते थे और इनकी निकाली हुई नंकारे की 'अकबरी-गत' अभी तक चलती है। अकबर के दरबार में रुबाब और सारंगी विदेशी बाजों को हिन्दुस्तानी संगीत के अनुकूल बना लिया गया। पंजाब के मियाँ शोरी ने 'टप्पा' राग को निकाला। लखनऊ के प्रसिद्ध वाजिद अली शाह ने ठुमरी की परिपाटी चलाई। मुसलिम शासन काल में हिन्दुस्तान की संगीत उत्थान की पराकाष्ठा पर पहुँच चुका था और आज भी यह क्षेत्र अपनी उच्च संस्कृतिक भव्यता को अक्षुण्ण बनाये रखने में समर्थ है।

हिंदू-मुसलिम काल का सम्पूर्ण इतिहास देना यहाँ न तो सम्भव है, और न वाँछनीय है। किंतु जो कुछ संकेत मात्र लिखा गया है वह इसके लिये पर्याप्त और स्पष्ट है कि दोनों ही जातियों का सम्बन्ध गौरव पूर्ण, व्यापक विस्तृत और उदार था। उच्च संस्कृतिक शालीनता उस स्थान पर थी, जहाँ सर टामसरो जैसे व्यक्ति अदब से सर झुका जाते थे। हिंदू और मुसलमान दोनों ही उच्च कोटि की संस्कृति थीं। इस देश की उदार और उपजाऊ भूमि पर दोनों की भेंट हुई और दोनों ने मिलकर एक तीसरी नई संस्कृति की सृष्टि की, जिसमें जीवन का शक्ति शाली ओज और पूर्ण प्रगतिशीलता उपस्थित थी।

मध्य एशिया और भारत की अनेक विभिन्नतायें अपने को मोड़कर संसार के आकाश में इंद्र-धनुष का सौंदर्य्य उपस्थित कर रही थीं।

मुसलमानों के साथ लड़ाइयाँ भी हुईं, कभी-कभी ये लड़ाइयाँ लम्बी और गहरी भी हुईं, किंतु इन लड़ाइयों के तुरंत पश्चात् विरोध शांत होकर सृजन का क्रियात्मक रूप धारण कर लेता था। युद्ध के समय भी साधारण जनता शांत और गति शील रहती थी। मुसलमान आये और यहाँ आकर बस गये, वे हिंदुस्तान के निवासी और नागरिक बन गये, यह देश सर्वदा के लिये उनका अपना देश हो गया, और जहाँ से आये थे, वही स्थान उनके लिये विदेश बन गया। हिंदुस्तान के नगरों, कस्बों और गावों में हिंदू और मुसलमान एक दूसरे के पड़ोस में रहने लगे और ऐसी परिस्थिति में, जैसा कि स्वाभाविक था, जीवन की अनेक समस्याओं को सुलझाने में दोनों ही साथ-साथ जुट पड़े। इस वस्तुस्थिति का मूल्य ठीक-ठीक आँक सकना तो उस समय सम्भव है, जब इसकी तुलना अँग्रेज जाति से होती है। आज से तीन सौ बरस पहले अँग्रेज हिन्दुस्तान में आये, लेकिन आने के समय इस देश के लिये वे जितने विदेशी थे, आज उनका वह विदेशीपन उससे कहीं अधिक बढ़कर है। उनके सोचने विचारने का अलग क्षेत्र है, बोलने की अलग भाषा है, रहने का अलग ढंग है और बसने की अलग बस्ती है यह बस्ती भी अस्थायी है, इसमें किसी अँग्रेज परिवार का निवास एक या दो पीढ़ी से अधिक नहीं ठहरता है।

हिन्दुस्तान उनका एक उपनिवेश है, और यहाँ के निवासी उनकी कच्ची रिआया हैं।

आज के दूषित मस्तिष्क से मुसलिम काल के इतिहास की विवेचना करने पर हिन्दू मुसलिम सम्बन्ध, महजबी क्रूरता और साम्प्रदायिकता का विक्रित रूप दीख पड़ता है। आज की अस्वस्थ्य आँखें प्रत्येक साधारण घटना पर साम्प्रदायिकता का रंग चढ़ा हुआ देखती हैं। इस देश में ऐसे सपूतों की कमी नहीं है जो यत्न पूर्वक प्रत्येक ऐतिहासिक घटना को तोड़ मोड़ कर और उसे अतिरंजित कर साम्प्रायिकता का चित्र चित्रण करने के अवसर से नहीं चूकते। किन्तु अँग्रेजी राज्य के पूर्व हिंदू-मुसलिम सम्बन्ध के विषय में यदि सप्रमाण कोई बात निश्चय और दृढ़ता के साथ कही जा सकती है, तो वह एक यही कि ऐसे आरोप न केवल निराधार और प्रमाण शून्य हैं, बल्कि कल्पित और असत्य हैं। अँग्रेजों के हिन्दुस्तान में काफी दिनों तक रहने के बाद तक हिन्दू-मुसलिम सम्बन्ध घनिष्ट और निर्दोष था। संन् १८३६ ई० में मेजर जनरल सर जान मैलकम ने अपनी पुस्तक 'दि लाइफ आफ रावर्ट क्लाइव' में लिखा था :—

"धार्मिक मामलों में सबको पूरी स्वतंत्रता थी। हिन्दुओं के पुराने रीति-रिवाजों के साथ, जिनकी इज्जत और कद्र थी, वहुत कम हस्तक्षेप किया जाता था, बल्कि बिल्कुल हस्तक्षेप नहीं किया जाता था।"

टेलर ने १८४० ई० में 'टोपोग्राफी आफ ढाका' में लिखा है:— "मजहबी झगड़े हिन्दू और मुसलमानो में शायद ही कभी देखने

में आते हों। दोनों धर्मों के लोग पूरे प्रेम और मेल जोल के साथ रहते हैं। अधिकांश हिन्दू और मुसलमान भेद-भाव से इतना ऊपर उठ गये हैं कि वे एक ही हुक्के पीते हैं।"

यह उन दिनो की बात है जब अंग्रेज इस देश की राजनीति में प्रवेश कर चुके थे, और निश्चय ही हमारे दुर्दिन का समय आरम्भ हो चुका था। ईस्ट-इंडिया कम्पनी के एक अफसर ने अपनी पुस्तक 'ओरिजिन आव् दि पिन्डारीज एक्स्ट्रा' में सन् १८१८ में लिखा था:—

"मराहठा और मुसलमानों में कभी भी कोई बड़ा मजहबी अन्तर नहीं दीख पड़ा। दोनों की एक ही भाषा है, उनके अनेक रिवाज भी एक ही हैं और मराहठों ने मुसलमानों की बहुत सी उपाधियाँ भी धारण कर रक्खी हैं। सिन्धिया और दूसरे मराहठा सामंतो के जनरल प्रायः मुसलमान होते हैं और मुसलमान बादशाहों के दरबारों में ब्राह्मणों का प्रभुत्व है।"

लार्ड विलियम बैंटिंग ने स्वयं स्वीकार किया था :—

"कई दृष्टि-कोण से मुसलमानों का शासन हमारे शासन से बहुत उत्तम था, जिस देश को वे जीते, उसमें बस गये, वहाँ के निवासियों के साथ हिल-मिल कर एक हो गये। और वहाँ के लोगों के साथ शादी, विवाह का सम्बन्ध स्थापित कर लिया। मुसलमान विजेताओं ने जीते हुये लोगों को अपनी सभी सुविधायें समान रूप से प्रदान कीं, और इस प्रकार विजयी और पराजित का अंतर मिटकर दोनों के स्वार्थ एक हो गये। इसके

विपरीत हमारी नीति इससे एक दम विरुद्ध अनुदार, स्वार्थपूर्ण तथा सहानुभूति रहित हैं।

हिन्दू और मुसलमानों के सम्बन्ध का सैकड़ों वर्षों का गत इतिहास क्रूरता और लड़ाई-झगड़े का इतिहास नहीं है, बल्कि सद्भावना और सद्व्यवहार का अत्यंत उत्कृष्ट तथा किसी भी जाति के लिये गर्व करने योग्य इतिहास है। भाषा, साहित्य, काव्य, कला और संगीत का निर्माण, विकास और उत्थान साम्प्रदायिकता के दल-दल में फँसी हुई जातियों का काम नहीं था, बल्कि सम्मिलित और स्वच्छंद प्रगतिशील जीवन का परिणाम था। यह देशकी गरीबी, व्यवसाय और व्यापार की शून्यता नहीं थी, जो कई समुद्रों के पार हजारों कोस की दूरी से पश्चिम की गोरी जातियों को यहाँ आकर्षित कर लायी, बल्कि इसके ठीक विपरीत इसकी सम्पन्नता और व्यावसायिकता थी, जो उनके यहाँ आने के लिये उत्तर दायी थी। सबसे बढ़कर हिंदू मुसलिम सभ्यता, संस्कृत और आध्यात्मिकता; अव्यवस्थित और अशांत नहीं, बल्कि सुव्यवस्थित और शांत जीवन की उपज थी।

१८५७ का विद्रोह और उसकी प्रतिक्रिया

अपनी परम्परा के अनुसार हिन्दुस्तान ने इस भूमि पर अंग्रेज, फ्रान्सीसी डच इत्यादि योरप के गोरे व्यापारियों का भी स्वागत सरलता और सौजन्य के साथ किया। इन योरोपीय व्यापारियों का न केवल स्वागत हुआ, बल्कि उन्हें उपयुक्त सुविधायें भी प्रदान की गईं। व्यापार की रक्षा के लिये कोठियाँ बनवाने और सेना रखने की आज्ञा तो उन्हें मिली ही, अपने मजहब के आचरण और प्रचार की स्वतंत्रा भी प्राप्त हुई। यह सरलता और सौजन्य केवल हिन्दुस्तान की ही नहीं बल्कि समस्त एशिया की प्राचीन मर्यादा थी। केवल जापान इसका अपवादक १६ वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध और सत्रहवीं शताब्दी के पूवार्द्ध में जापान के बन्दरगाह योरप के जहाजों का जी खोल-कर स्वागत करते रहे। पोर्चुगीज, स्पेनिश, डच और अंग्रेज वहाँ भी स्वागत और सम्मान पाने लगे। मजहव के प्रचार की सुविधा वहाँ भी उन्हें मिली, और मिशनरी ने एक शताब्दी में दस लाख जापानियों को इसाई बना डाला। उनके मजहब प्रचार के ऐसे आवेश से जापानी सशंक हो उठे, और उन्हें अपनी स्वाधीनता ही पर आघात होता दिखाई देने लगा। जापान सतर्क

हो गया, और उसने अपना द्वार प्रत्येक विदेशी के लिये बंद कर दिया। १८५० तक कोई विदेशी जापान की भूमि पर पैर नहीं रख सकता था, इस नियम के तोड़ने का परिणाम मृत्यु-दंड था। किन्तु हिंदुस्तान का वातावरण भिन्न था, उच्च नैतिक क्रियायें और उदार आचरण मनुष्य मात्र के आदर्श लक्ष हैं। मनुष्य, समाज, देश और राज्य प्रत्येक इस आदर्श और मर्य्यादा को प्राप्त तथा स्थापित करने के लिये सर्वदा प्रयत्नशील रहे हैं। नैतिकता नागरिकता का माप है और उदारता तथा समानता राज्य की नीति का निदर्शक इस शिष्ट मर्य्यादा का पालन कर हिंदुस्तान ने अत्यंत उत्कृष्ट और अनुकरणीय चरित्र का परिचय दिया, लेकिन किस्मत का मजाक, ये ही गुण उसके सर्वनाश के कारण बन गये।

१६ वीं और १७ वीं शताब्दी योरोपीय जागरण का समय था। समस्त योरप घने अंधकार से प्रकाश में प्रवेश कर रहा था, जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में विकास और विस्तार की क्रियात्मक शक्तियाँ विशेष रूप से सचेस्ट हो गई थीं। प्रत्येक योरोपीय देश अपने उत्थान और समृद्धि के प्रयत्न में क्रिया शील हो गया। योरप के निवासी संसार के कोने-कोने में पहुँचने लगे, और जहाँ पहुँचते वहाँ अपने व्यापार और ईसाई मजहब के प्रचार का सिक्का जमाने में लग जाते। इस कार्य में सबसे आगे बढ़ जाने के लिये योरोपीय देशों में एक दूसरे के साथ गहरी होड़ लग गयी। अंग्रेज, फ्रांसीसी, स्पेनिश, डच और पोर्चुगीज लगभग दो शताब्दियों तक इस प्रति योगिता में संसार के विभिन्न

भागों में अपनी शक्ति और बुद्धि कौशल का भर पूर उपयोग करते रहे। हिंदुस्तान भी इन देशों का कार्य क्षेत्र बना और एक लम्बे तथा अत्यंत भीषण पारस्परिक संघर्ष के बाद दूसरे योरोपीय देशों को यहाँ से निकाल कर अंग्रेज अपने व्यापार का एकतंत्र प्रभुत्व स्थापित किये। इंगलैंड की सरकार की संरक्षता में ईस्ट-इंडिया कम्पनी स्थापित हुई, जो हिंदुस्तान के अतिरिक्त संसार के अन्य भूभागों में भी व्यापार करती थी, लेकिन इसकी क्रिया-शीलता की पराकाष्ठा तो हिंदुस्तान की उपजाऊ भूमि को ही नसीब हो सकी।

इंगलैंड की सरकार के आधीन, इंगलैंड में स्थापित इस ईस्ट इंडिया कम्पनी के कर्मचारी कम्पनी के वेतन भोगी गुमास्ता थे और केवल कुछ समय के लिये वे हिंदुस्तान में कम्पनी के नौकर होकर आते थे। ईस्ट-इंडिया कम्पनी के अतिरिक्त इंगलैंड के किसी दूसरे व्यक्ति को स्वतंत्र रूप से हिंदुस्तान में व्यापार करने का अधिकार इंगलैंड की सरकार से प्राप्त नहीं था। संसार के इतिहास में व्यापार का यह एकदम नया ढंग था। योरप के राष्ट्रीय-राज्य संसार के विभिन्न देशों में बाजार ढूढ़ने के प्रयत्न में व्यस्त थे, और उन बाजारों पर अपना एकाधिपत्य स्थापित कर एक मात्र अपने देश की समृद्धि और सम्पन्नता को न केवल सर्वदा के लिये निश्चित कर लेने के लिये प्रयत्न शील थे, बल्कि संसार के अधिक से अधिक वैभव पर अपना प्रभुत्व स्थापित करने के लिये प्रत्येक-अनुचित साधन का उपयोग करने के लिये उद्यत थे। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिये यह अनिवार्य था कि

संसार के बाजारों में प्रत्येक व्यक्ति और प्रत्येक देश को बिना किसी प्रतिबंध और विरोध के जिसमें प्रत्येक व्यक्ति और देश को समान रूप से हानि और लाभ का अवसर था, व्यापार करने की स्वतंत्रता का अंत कर केवल अपने राष्ट्रीय राज्य के लिये पूर्ण और निश्चित परिस्थिति निर्माण कर ली जाय। इसी लक्ष्य को दृष्टि-कोण में रख कर योरप के प्रत्येक राष्ट्रीय राज्य ने ईस्ट-इंडिया कम्पनी की भाँति राज्य की संरक्षता में संचालित संस्थाओं द्वारा व्यापार की नयी शैली का अनुसरण किया। अन्य अनेक विशेषताओं के साथ इस व्यापार शैली की उल्लेखनीय विशेषता यह थी कि संसार के बाजारों से अधिक से अधिक लाभ निचोड़ते रहने के लिये राज्य की समस्त शक्ति और कौशल का पूर्ण उपयोग इसकी सेवा में समर्पित था। विश्व के विभिन्न क्षेत्रों में योरप के राष्ट्रीय राज्यों की यह प्रतियोगिता ही संसार का सदियों का इतिहास है।

योरोपीय राज्यों के साथ व्यापार की इस प्रतियोगिता में इंगलैंड हिंदुस्तान में विजयी हुआ। ईस्ट-इंडिया कम्पनी के गुमास्ते दो तीव्र आवेशों के साथ हिंदुस्तान में आते थे, अपने कार्य काल में कम्पनी को अधिक से अधिक लाभ दिखलाना और उस्से भी अधिक लाभ की व्यवस्था कर जाना। एक और दूसरा उस अल्प काल में अपने लिये अधिक से अधिक धन इकट्ठा कर इंगलैंड में पीयर्स और लार्ड्स की शानदार और सम्मानित जीवन की निश्चित व्यवस्था कर लेना था। केवल इतना ही संकेत कर देना पर्याप्त होगा कि कम्पनी के गुमास्तों
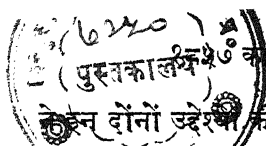
ने इन दोनों उद्देश्यों की पूर्ति के लिये कोई प्रयत्न शेष न छोड़ा। हिंदुस्तान की परिस्थिति ने उन्हें यहाँ के राजनीतिक जीवन में प्रवेश करने का अवसर दिया। इस अवसर का उपयोग करना अंग्रेज गुमास्ते तो खूब जानते ही थे, वृटेन की राज्य-शक्ति का असीम बल उसके पीछे लगा था। व्यापार और व्यवसाय का मन माना उपयोग करने के लिये यहाँ की राजनीति पर प्रभुता प्राप्त करना आवश्यक था, और यह कार्य कम्पनी ने एक निश्चित नीति के अनुसार पूरा किया। स्पष्ट है कि इस शैली ने वर्तमान व्यक्ति गत पूँजीवाद और साम्राज्य वाद की सृष्टि की।

हिंदुस्तान में इन अंग्रेज गुमास्तों के ढंग की चर्चा करते हुये लार्ड मेकाले ने लिखा है :—

"अपने कार्य-काल में कम्पनी के कर्मचारी का काम केवल यह था कि जितना शीघ्र सम्भव हो सके यहाँ के निवासियों से अधिक से अधिक धन ऐंठ लें, ताकि यहाँ की गर्मी का अपने स्वास्थ्य पर प्रभाव पड़ने के पहले इंगलैंड लौट कर वहाँ किसी पीयर की लड़की से वह शादी कर सके, क्रामवेल हल्के में इलाके खरीद सके, और सेन्टजेम्स स्कायर में बाल-डान्स (नृत्य) का आयोजन कर सके।"*

एक प्रसिद्ध अंग्रेज बोल्ट्स ने अपनी पुस्तक 'कनसिडरेशन् आन इंडियन अफेयरस' में लिखा है :—

"देश के गरीब कारीगरों और मजदूरों के साथ कल्पना तीत अत्याचार किया गया है, और उन्हें ऐसा तंग किया गया

---

* 'वारेन हेस्टिंग्ज' ले० चतुर्वेदी द्वारका प्रसाद शर्मा में उद्धृत।

है, जैसे वे कम्पनी के आधीन गुलाम हों। दीन जुलाहों को सताने और तंग करने के असंख्य भिन्न-भिन्न ढंग हैं, जो इस देश में कम्पनी के गुमास्तों द्वारा नित्य काम में लाये जाते हैं। उदाहरणतः जुर्माना, कैद, कोड़े लगाना, अपने मन मुताबिक एकरारनामा लिखने के लिये उन्हें विवश करना इत्यादि। इसका परिणाम यह हुआ है कि देश में जुलाहों की संख्या बहुत कम हो गयी है।...........सुराजुद्दौला के समय में जंगल वारी के आस-पास के जिलों के सात सौ से अधिक जुलाहा परिवारों ने इस प्रकार के अत्याचार से ऊब कर अपना देश और पेशा छोड़ा दिया। लार्ड क्लाइव की सरकार ने बंगाल में कम्पनी के कच्ची रेशम की आमदनी बढ़ाने के आवेश में रेशम के लपेटने वालों को इस कड़ाई से सताया कि समाज के अत्यन्त पवित्र नियमों का निर्दय—उल्लंघन किया गया।"

बृटेन हिन्दुस्तान और संसार के दूसरे क्षेत्रों में भीषण संघर्ष में फँसा था; संसार के बाजारों पर एक मात्र आधिपत्य स्थापित करने के प्रयत्न में वह अनवरत युद्धों की शृंखला में उलझा हुआ था। हिन्दुस्तान की रियासतों के साथ लगातार लड़ाइयाँ हो रही थीं। इनमें अपार धन खर्च हो रहा था। अकेले हिन्दुस्तान की ही लड़ाइयाँ जो हिन्दुस्तान के ही खर्च से लड़ी जा रहीं थीं, इस देश को तवाह कर देने के लिये काफी थीं, किन्तु यहाँ जो कुछ हो रहा था वह उन युद्धों की तुलना में कम ही था, जिनमें बृटेन दूसरे स्थानों पर लगा हुआ था। अमेरिका बृटेन से स्वतंत्र होने के लिये लड़ रहा था, स्पेन इंगलैंड के साथ साम्राज्य विस्तार

की प्रतियोगिता में व्यस्त था। १७९८ से १८१५ तक नैपोलियन-युद्धों का तांता लगा हुआ था, और उसके तुरंत पश्चात् योरप का मैटरनिक काल भी युद्धों का ही समय था। अनेक युद्ध हो रहे थे और साम्राज्य विस्तार के कार्य में लगा हुआ इंगलैंड सभी युद्धों में प्रमुख पात्र था। इसके लिये अपार धन की आवश्यकता थी। इंगलैंड की आर्थिक दशा शोचनीय थी। अट्ठारहवीं सदी के इंगलैंड का अनुमान उसमें निरन्तर होने वाले, 'रोटी के लिये बलवे' से किया जा सकता है। भूख और गरीबी अट्ठारहवीं सदी के इंगलैंड का साधारण नियम था। ऐसी स्थिति में केवल हिन्दुस्तान इस असहनीय भार को वहन करने के लिये विवश किया गया। वास्तव में हिन्दुस्तान के अतिरिक्त कोई दूसरा देश था ही नहीं जहाँ से अंग्रेज अपनी व्यक्तिगत लालसा और साम्राज्य की आकांक्षा को पूरा करने की आशा करते। अट्ठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध और उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में कम्पनी की लूट की चर्चा करते हुये हरबर्ट स्पेन्सर ने अपनी पुस्तक 'सोशल स्टैटिक्स' प्रथम भाग में लिखा है:—

"कल्पना कीजिये उनकी करतूतें कितनी काली हुई होंगी जब कि कम्पनी के संचालकों ने स्वयं इसे स्वीकार किया है कि हिन्दुस्तान के भीतरी व्यापार से जो अतुल सम्पत्ति पैदा की गई, वह ऐसे अत्याचार पूर्ण और कष्टपूर्ण योजनाओं के द्वारा प्राप्त की गई जो किसी भी देश या युग में अज्ञात थीं।"

इस देश की गिरती हुई दशा की जाँच हेस्टिंग्ज की कौंसिल के तीन सदस्य क्लेवरिंग, मानसन और फ्रान्सिस ने की थी।

रुहेल खंड के सम्बन्ध में उनका एक हृदय विदारक, वर्णन है:—

"इस देश की वास्तविक दशा बहुत दूर तक छिपाकर नहीं रक्खी जा सकती है। कारण बताने के पहले ही परिणाम प्रकट हो जायगा। इस परिस्थिति के उत्पन्न होने पर यह निश्चय करने में कोई कठिनाई नहीं होगी कि किन साधनो द्वारा और किस व्यक्ति के अनैतिक आचरण से एक सम्पन्न और उन्नतिशील राज्य भिख मंगी और विनाश की स्थिति में पहुँचा दिया गया है"।*

कौंसिल के सदस्यों ने वारेन हेस्टिंग्ज पर भीषण अभियोग लगाये थे, और हिन्दुस्तान की गिरती हुई दशा का उसे मुख्य कारण घोषित किया था।

इंगलैंड में मशीन युग का विकास हो चुका था, भाप से चलने वाले इंजिनों द्वारा चीजें कम-से-कम समय में अधिक-से-अधिक उत्पन्न होने लगी थीं। इन मशीनों के पूर्ण विकास के लिये धन की आवश्यकता थी और उनके द्वारा उत्पन्न की गई वस्तुओं को अधिक-से-अधिक लाभ के साथ बेचने के लिये बाजार की। हिन्दुस्तान ही युपयुक्त और सरलता से सुलभ था। इंगलैंड के उद्योग को अतुलनीय सफलता मिलने का श्रेय हिन्दुस्तान की अंग्रेजी लूट को है श्री वाट ने भाप की शक्ति का आविष्कार सन् १७६८ ई० में किया था। ब्रूक्स एडम्स ने 'दि ला आफ सिविलिजेशन ऐन्ड डिके' में लिखा है:—

---

* "वारेन हेस्टिंग्ज में उद्धृत"।

" यदि श्री वाट पचास वर्ष पहले हुये होते तो वे और उनके आविष्कार साथ ही समाप्त हो गये होते। सम्भवत: जबसे संसार आरम्भ हुआ किसी पूँजी से इतना अधिक लाभ नहीं मिला जितना हिन्दुस्तान की लूट से हुआ, क्योंकि लगभग पचास वर्षों तक ग्रेट बृटेन का मुकाबला करने वाला कोई नहीं था। ....१७०७ से १८१५ तक के बीच इंगलैंड के कारोबार अत्यधिक और तीव्र उन्नीत हुई।"

यह आवश्यक था कि इंगलैंड की बनी चीजों की लाभप्रद खपत के लिये हिन्दुस्तान का कारो बार नष्ट कर दिया जाय, जिससे बाजारों में केवल अंग्रेजी वस्तुयें ही मिल सकें। इस उद्देश्य को पूरा करने के लिये इंगलैंड और हिन्दुस्तान दोनों ही देशों में व्यापारिक व्यवस्था की गई। इंगलैंड में हिन्दुस्तान की बनी चीजों को एक दम रोक देने के लिये कानून भी बनाये गये और उन पर बेहद टैक्स भी लगाया गया। कई वस्तुओं पर सौ प्रतिशत, कई पर ६०० प्रतिशत और किसी किसी पर ३००० प्रतिशत तक कर लगाया गया। लेकी ने 'हिस्ट्री आव इंगलैंड इन दि एटीन्थ सेन्चुरी' में लिखा है कि यदि कोई अंग्रेज महिला हिन्दुस्तानी कपड़ों की पोशाक पहनती थी तो उसे राज-दंड दिया जाता था। हिन्दुस्तान में भी इसी प्रकार के नियम काम में लाये गये। मिल्स ने 'हिस्ट्री आव बृटिश इंडिया' भाग सात में लिखा है:—

"हिन्दुस्तान के साथ सूती कपड़े के व्यापार का इतिहास उस देश के अन्याय का मनहूस उदाहरण है जिसका हिन्दुस्तान

आश्रित हो गया है। ......१८१३ तक हिन्दुस्तान के सूती और रेशमी वस्त्र इंगलैंड के बाजारों में इंगलैंड की बनी हुई इन्हीं चीजों से पचास से साठ प्रतिशत तक सस्ते विकते थे। इसलिये यह आवश्य हो गया कि हिंदुस्तान की बनी चीजों पर सत्तर से अस्सी फीसदी तक चुंगी लगा कर उनका यहाँ आना एक दम वन्द कर इंगलैंड की बनी चीजों की रक्षा की जाय। यदि ऐसा न हुआ होता, निषेधकारी टैक्स और कानून न वने होते तो पेजली और मैन् चेस्टर की मिलें आरम्भ में ही वन्द हो जातीं और भाप की शक्ति भी उन्हें फिर संचालित कर सकने में शायद ही समर्थ हो सकती। हिन्दुस्तान के उद्योग का वलिदान कर उनका निर्माण हुआ।"

हिंदुस्तान का वाजार भी हिंदुस्तान की बनी वस्तुओं के लिये वंद कर दिया गया। इंगलैंड से इस देश में आने वाली चीजों के लिये जितनी सम्भव सुविधा की जा सकती थी की गई। अट्ठारह सौ तेरह के चार्टर ऐक्ट के द्वारा यहाँ की चुंगी प्रथा का नये ढंग से आयोजन हुआ। चुंगी की इस नई प्रथा से हिंदुस्तानी व्यापारियों को अपने ही देश के वाजारों में सामान पहुँचाने की जिन दिक्कतों का सामना करना पड़ता था, और जो अपमान सहने पड़ते थे उनका ठीक वर्णन होना कठिन है। इसके अतिरिक्त चुंगी की दर इतनी अधिक थी कि व्यापारी का जीवन निर्वाह हो सकना असम्भव-सा हो गया। माननीय फ्रेडरिक शोर ने 'नोट्स आन इन्डियन अफेयर्स' में लिखा है:—

"हम लोग इस देश की जनता की गरीवी, भीतरी व्यापार

के पतन और कारीगरी की उन्नति के अतिरिक्त उसकी अवनति की लम्बी शिकायतें सुनते हैं। क्या इसमें आश्चर्य्य करने की कोई बात है ? सभी व्यापारी हमारी जिस चुंगी प्रथा की असहनीय यातनाओं में पीसे जा रहे हैं, उससे क्या किसी अन्य परिणाम की आशा की जा सकती थी।"

इसी प्रसिद्ध लेखक ने इस देश के भविष्य की कल्पना अत्यन्त मार्मिक शब्दों में उसी पुस्तक में एक दूसरे स्थान पर की है:—

"यदि यही दशा अधिक दिनों तक रही तो हिन्दुस्तान थोड़े ही समय में इस देश निवासियों को किसी प्रकार खाने भर को अन्न, भोजन बनाने के लिये कुछ मिट्टी के भद्दे बर्तन और मोटे रूखे कपड़ों के अतिरिक्त और कुछ पैदा नहीं करेगा। केवल इस भार (चुंगी) को हटा दीजिये और तख्ता फिर शीघ्र ही उलट जायगा।"

भीतरी चुंगी की सभी कठिनाइयों से अँग्रेजी माल तो बरी होते ही थे, जो चीजें इंगलैंड से आती थीं उनमें अनेक पर कोई बाहरी टैक्स-नहीं लगता था, और जिन पर लगता था वह ढाई प्रतिशत से कम ही होता था। क्या आश्चर्य्य! यदि हिन्दुस्तान के वस्त्र, जहाज, शिल्प, दस्तकारी, काग़ज़, चीनी, लोहा इत्यादि के व्यापार का वर्णन केवल इतिहास के पत्रों में ही शेष है।

हिन्दुस्तान की राज्य-शक्ति में किसी अन्य प्रति द्वन्दी का रहना अँग्रेजी स्वार्थों के लिये बाधक था, इसलिये हिन्दुस्तान के

राजाओं और नवाबों के हाथों से राज्य-शक्ति छीनना आवश्यक था। युद्ध से लेकर रोमांचकारी षड्यंत्रों तक का उपयोग इस कार्य्य को पूरा करने के लिये किया गया। हेस्टिंग्ज, वेलेजली' एमहर्स्ट, डलहौजी, कार्नवालिस, कर्जन इत्यादि, सबसिडियरी संधि, (सहायक संधि) और डाक्ट्रिन आफ लैप्स (गोद का कानून) उन असंख्य विभत्स गाथाओं में कुछ इने गिने हैं, जिन्हें हिन्दुस्तान के शासकों की सत्ता का अन्त कर देने का श्रेय प्राप्त है। जिनके हाथ से अभी यह सत्ता नहीं छीनी गई वे अपमान और विवशता की आग में जलते रहने के लिये शेष रह गये।

किन्तु पूर्ण शोषण के लिये इतना ही पर्य्याप्त नहीं था। शोषण क्रिया अवाध गति से चले इसके लिये यह आवश्यक है कि धनी और शक्ति-शाली वर्ग का विनाश कर केवल कच्ची रियाया की सृष्टि की जाय जिससे कहीं से किसी में विरोध की आवाज़ उठाने की क्षमता न रह सके। लार्ड कार्नवालिस का इस्तेमुरारी वन्दोवस्त इसी उद्देश्य को दृष्टि-कोण में रखकर किया गया था। बंगाल के जमींदरों पर इस प्रथा का भयंकर प्रभाव पड़ा और वास्तव में वे इतने बे दम कर दिये गये कि निश्चेष्ट बैठकर केवल अपने दिन बिताने भर को ही समर्थ थे। १८ वीं सदी के अन्त से अनेक ऐसे क़ानूनों की सृष्टि की जाने लगी, जिनके कारण जमींदार और रियाया दोनों की दुर्दशा और पारस्परिक कटुता बढ़ती गई। १७९३ ई० का क़ानून, १८२२ का ११ वाँ रेग्यूलेशन, और १८४१ का ११ वां रेग्यूलेशन एक

के वाद दूसरे बंगाल के किसानों की स्थिति नष्ट करते गये, और जमींदारों को परवश तथा अपने आदमियों से अलग करते गये। मद्रास में रैयत वारी-प्रथा के जारी करने का उद्देश्य भी यही था। मद्रास कौंसिल के सदस्य श्री विलियम थैकरे ने लिखा है:—

"अवकाश, स्वतंत्रता और उच्च विचारों ने जो असीमियत आमदनी की विभूतियाँ हैं, उन्हें (अँग्रेज कर्मचारियों) इंगलैंड को गौरव के उच्चतम शिखर पर पहुँचाने के योग्य वनाया है। लम्बे समय तक इस आनन्द को वे भोगते रहे,—किन्तु हिन्दुस्तानियों में उस शोख स्वभाव, स्वतन्त्रता और उच्च विचार को जो प्राय: अधिक सम्पत्ति के मालिक होने के कारण उत्पन्न होते हैं, निश्चय ही दवा देना चाहिये।"

डब्ल्यू० डब्ल्यू हन्टर ने अपनी पुस्तक 'इंडियन मुसलमान्स' में इस्तेमुरारी बन्दोवस्त में निहित नीति की विशद विवेचना करते हुये लिखा है:—

"यह एक महान सम्प्रदाय को निर्वल करने तथा एक स्वाभिमानी जाति के साहस को कुचल देने के लिये अच्छी तरह से सोची हुई नीति का अंग था।"

वंगाल में मुसलमान वड़ी-वड़ी जमींदारियों के मालिक थे, इस नीति का प्राय: कुल भार वंगाल के मुसलमानों को सहना पड़ा।

इन अनेक कारणों से हिन्दुस्तान एक भयंकर स्थिति में पहुँच गया, जो लोग अँग्रेजों का हिन्दुस्तान में सरलता और

सौजन्य के साथ इन आशा से स्वागत किये थे कि वे न केवल हिन्दुस्तान के व्यापार का वांछनीय विस्तार करेंगे बल्कि अन्य आगंतुकों की भाँति हिन्दुस्तान का एक अंग बन कर उसके सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन में उचित योग प्रदान करेंगे, वे अपने ही कार्यों के परिणाम से स्तब्ध हो गये। जो लोग ईस्ट-इंडिया कम्पनी के शासकों को भी हिन्दुस्तान की अन्य अनेक शक्तियों में से एक मानकर उनके साथ वैसे ही लड़ाई और सुलह किये थे जैसे वे आपस में करते चले आये थे, और जिन्होंने यह कल्पना कर ली थी कि अंग्रेजी शासन भी उन्हीं में से होकर यहाँ की एक हिन्दुस्तानी शक्ति बन जायगा, वे अपने ही बुने जालों में बुरी तरह फँस गये। योरप और हिन्दुस्तान दोनों ही स्थानों में उस समय लड़ाइयाँ खूब हो रही थीं, लेकिन योरप के राष्ट्रीय राज्य की साम्राज्य-विस्तार-शैली हिन्दुस्तान के लिये अज्ञात थी।

किन्तु जब उन्हें ज्ञात हुआ तो परिस्थिति उनके वश के बाहर थी। उनकी अगाध निराशा, असीम बेबसी और भीषण क्षोभ सन् १८५७ ई० के विद्रोह में प्रकट हुआ। बृटिश साम्राज्य, उसके द्वारा शोषण और हजारों कोस की दूरी से शासन करने की प्रथा का सर्वदा के लिये अंत कर देने के उद्देश्य से मराहठा और मुगल, हिन्दू और मुसलमान, जनता और शासक, सैनिक और नागरिक देश की स्वतंत्रता की भावना से उत्प्रेरित होकर एक हो गये थे। इंगलैंड के विरुद्ध हिन्दुस्तान का यह एक संगठित मोर्चा था। कर्नल कैसनी ने 'इंडियन पालिन्टी' में लिखा है:—

"अँग्रेजी प्रभुशक्ति के विरुद्ध हिंदू और मुसलमान में समान रूप से कटु भावना और अवहेलना थी, और दोनों ही उस प्रभुत्व का अंतकर "कर देने में बिना किसी अन्तर के अपनी शक्ति में विश्वास करते थे।"

हिन्दुस्तान के इतिहास में स्वतंत्रता के लिये यह प्रथम सम्मिलित प्रयत्न था, इसीलिये इसका विशेष महत्व है। अनेक शोषणों की दुःखद पीड़ा से मुक्ति पाने की जो बेचैनी इस विद्रोह ने प्रकट की उसने अँग्रेजों के कान खड़े कर दिये। इस विद्रोह की पृष्ठ-भूमि तैय्यार करने में जिस आंदोलन का एक प्रमुख भाग था उसे हम साधारण तया कम अंश में जानते हैं। वह था मुसलमानों के नेतृत्तव में संचालित हिन्दुस्तान का वहावी आंदोलन। अरब के बहावी आंदोलन से प्रभावित हो हाजी शरियत अल्लाह ने हिन्दुस्तान को जागरण और सतर्कता का सन्देश दिया। उनके अनुसार अँग्रेजों के आने के कारण हिन्दुस्तान एक पवित्र देश न रह कर नापाक हो गया, इसलिये इसकी पवित्रता के पुनरुद्धार के उत्तरदायित्व का स्मरण उन्होंने प्रत्येक हिन्दुस्तानी को दिलाया और अपनी निर्भीकता तथा स्पष्टता से देश में आशा और उत्साह की लहर उत्पन्न कर दी। उनके लड़के दाघू मियाँ ने मनुष्य मात्र के समानता की घोषणा कर इस जाग्रिति और चैतन्यता को विशेष वल प्रदान किया। युक्त, प्रान्त के सैयद अहमद ब्रेलवी ने इसे क्रियात्मक आंदोलन का रूप दिया। आंदोलन के प्रमुख व्यक्तिओं में मिर्जागुलाम अहमद कादियानी (१८३९-१९०८) का महत्व-पूर्ण स्थान था।

युक्त प्रांत और वंगाल की भूमि इस आंदोलन के विकास और प्रसार के लिये सबसे अधिक उपयुक्त सिद्ध हुई। शोषण के अनेक अँग्रेजी ढंग से यहाँ के लोगों को जो आघात पहुँचे थे, किसानों की जो दुर्दशा हो रही थी और जनता जिस असहाय और निराश दशा की प्रति-क्षण शिकार हो रही थी, उनको इस आंदोलन में मानसिक सन्तोष मिला और सबसे बढ़कर इसमें उन्हें क्रिया शीलता का अवसर प्राप्त हुआ।

वहावी आंदोलन मजहवी और राजनीतिक दोनों ही क्षेत्रों में उग्रवादी आंदोलन था। किन्तु यह उसकी राजनीतिक उग्र-वादिता थी, जिसने हिन्दुस्तान की जनता में बलिदान, विनाश और निर्माण की शक्ति उत्पन्न की। डब्ल्यू-डब्ल्यू हंटर ने लिखा है कि वहावी लोग राजनीति में उग्रवादी और प्रजातंत्रवादी थे। श्री अच्युत पटवर्द्धन् और श्री अशोक मेहता ने 'कम्यूनल ट्रैंगिल' में लिखा है:—

"टीटूमियाँ ने फरीदपुर, नदिया और चौबीस परगना में किसान आंदोलन का नेतृत्व किया था। उनकी सेना, मुसलमान और हिन्दू जमींदारों के घरों में विना किसी भेद भाव के घुस पड़ती थी। वहावी का एक प्रमाणिक वर्णन इतने दिनों के पश्चात् भी स्पष्ट वतलाता है कि अस्सी हजार आदमियों का संघ जिनमें पूर्ण समानता का व्यवहार था, और जिनमें साधारण श्रेणी के लो सम्मिलित थे, किस प्रकार सर्व प्रिय और उग्र था।"

उन्नीसवीं शताब्दी के आरम्भ में वहावी अन्दोलन की प्रगति

देश में फैली, जो विकसित होकर और शक्ति संचित कर १८५७ के विद्रोह में विलीन हो गई। १८५७ का विद्रोह विदेशी शासन और शोषण से मुक्ति पाने की आकांक्षाओं का पूँजीभूत होकर प्रकट हुआ था, जितने स्पष्ट बतला दिया कि हिंदुस्तान के राजनीतिक और सामाजिक जीवन में कितना भीषण क्षोभ उत्पन्न हो गया था, और जो अवसर तथा नेतृत्व मिलने पर क्या कर सकता था। इस बिद्रोह के दमन करने में जो भीषण प्रहार किये गये, उन्होंने हिंदुस्तान के जीवन को क्षत-विक्षत अवश्य कर दिया, किन्तु स्वतंत्रता और मुक्ति की जो महती आकांक्षायें एक तार ठोस रूप धारण कर स्पष्ट और व्यक्त हो गईं, उनकी जलन और तड़पना का प्रवाह अटूट बनी रही। उदाहरणतः १८५७ के पश्चात् ही सन् १८५९-६० ई० में नील वालों ने अपने अंग्रेज मालिकों के विरुद्ध बलवा कर दिया। अंग्रेजों ने नील का बहुत बड़ा रोजगार हिंदुस्तान में कायम कर लिया था, जिसके द्वारा नील का काश्त करने वालों का कल्पनातीत शोषण होता था। उसकी प्रतिक्रिया में नील वालों के बलवे ने भीषण उथल-पुथल उत्पन्न कर दी, और यह बलवा इतना शक्ति शाली था कि रायल इन्स्टिटट्यूट आव नेशनल अफेयर्स ने इसे हिंदुस्तानी राष्ट्रीयता के इतिहास में महत्वपूर्ण घटना कहा है।

अट्ठारह १८५७ के विद्रोह का दमन अंग्रेजों ने पूरी शक्ति और कड़ाई के साथ किया। निर्भीकता और बेअदबी जिसने लोगों को इस हद तक जाने के लिये प्रोत्साहित किया था, उसके स्थान पर भयंकर आतंकपूर्ण वातावरण उत्पन्न किया

गया। किन्तु दमन और आतंक इस विद्रोह की कहानी नहीं हैं जो हिंदुस्तान को अपनी गम्भीरता का स्मरण दिलाती रहती है, बल्कि वे अनेक नीतियाँ और सिद्धान्त जो हिंदुस्तान में अंग्रेजी साम्राज्य को स्थायी और दृढ़ बनाने के उद्देश्य से इस विद्रोह को दृष्टि कोण में रखकर निश्चित किये गये, विद्रोह के इतिहास के महत्व पूर्ण परिणाम हैं। विद्रोह के परिणाम स्वरूप हिंदुस्तान में जो अंग्रेजी नीति निश्चित हुई वह इस देश के इतिहास की धारा को प्रत्येक गति पर और प्रत्येक मोड़ पर प्रभावित करती रहती है। साम्राज्य पर पहली बार नये ढंग का यह सार्वजनिक खतरा उत्पन्न हुआ था, सर्वदा के लिये इससे सजग हो जाना अंग्रेज राजनीतिज्ञों को अत्यंत आवश्यक प्रतीत हुआ। हिंदुस्तान का अटूट शोषण इंगलैंडका प्राण था, उसका कहीं अन्त न हो जाय वृटेन के लिये यह अत्यंत चिंतनीय विषय था। जान मेर ने 'लार्ड डफरिन्स स्पीचेज इन इंडिया' में लिखा है:—

"निश्चय ही यह कहना अत्युक्त न होगा कि यदि हमारे हिंदुस्तानी साम्राज्य पर कोई गहरी आफत आई या यदि हिंदुस्तान के साथ हमारे राजनीतिक सम्बन्ध में कुछ भी अंतर पड़ा तो वृटेन भर में और उसके व्यावसायिक भागों में तो अवश्य ही चक भी ऐसा झोपड़ा न होगा, जो इस कल्पनातीत विपत्ति के विनाश कारी परिणामों से अछूता रह सके"।

अंग्रेज शोषकों की यह बेचैनी, यह आशंका इतना उग्र रूप धारण कर चुकी थी कि १८५७ का विद्रोह अंग्रेजों के हिंदुस्तान

सम्राज्य के लिये कल्पनातीत विपत्ति था। एक दूसरे अंग्रेज लेखक डब्ल्यू सेज विक मेजर ने इस विपत्ति को अधिक स्पष्ट शब्दों में व्यक्त किया है :—

"मालूम होता है इस बात को अच्छी तरह हम अनुभव नहीं करते कि यदि हिंदुस्तान हमारे हाथ से निकल गया तो इसका परिणाम निश्चित रूप से यह होगा कि हमारे एशिया के व्यापार का अन्त हो जायगा। किन्तु यही बात बड़ी आसानी से हमारी समझ में आ जानी चाहिये। इसके अतिरिक्त हिंदुस्तान को खोदने से केवल "इतना ही नहीं होगा कि हिंदुस्तान के बाजार हमारे लिये एक दम उसी प्रकार बन्द हो जाँयगे, जैसे इस समय मध्य एशिया के बाजार हमारे लिये एक दम बन्द हैं, बल्कि अपने कच्चे माल और प्रचीन काल से दस्त कारी में कुशल कारीगरों की सहायता से हिंदुस्तान शीघ्र ही एक महान व्यावसायिक राष्ट्र बन जायगा और राष्ट्र अपनी सस्ती मजदूरी तथा कच्चे माल के बहुतायत के कारण समस्त एशिया के बाजारों पर शीघ्र अधिकार स्थापित कर हमें वहाँ से तुरंत निकाल बाहर करेगा।*

यह चिन्ता प्रत्येक अंग्रेज को परेशान कर रही थी, क्योंकि उनके व्यक्ति गत पूँजी के अत्यन्त उपजाऊ क्षेत्र के निकल जाने की आशंका थी। इंगलैंड की सरकार हिन्दुस्तान के साम्राज्य पर 'गहरी आफत' की 'कल्पनातीत विपत्ति के विनाशकारी परिणामों' की आशंका से बेचैन हो रही थी। एक विशाल राज्य

* 'इन्डिया फार सेल काशमीर सोल्ड'।

के गौरव, मान और विस्तार का केवल प्रश्न होता तो शायद हिन्दुस्तान के प्रति अंग्रेजों के आवेश में इतनी तेजी न होती, हिन्दुस्तानी साम्राज्य का प्रश्न अंग्रेजों के प्रति दिन की खुराक का प्रश्न था। अनेक हेस्टिंग्ज और अनेक वेलेजली के इतिहास प्रसिद्ध प्रयत्नों के परिणाम स्वरूप हिन्दुस्तान के राजाओं और नवाबों का अन्त हुआ था, और अँग्रेज जाति के गुणों के अनुकूल ही असंख्य षड़यंत्रों के द्वारा हिन्दुस्तान में बृटिश साम्राज्य स्थापित किया जा सका था। अभी कुछ अधिक दिन नहीं वीते थे जब अमेरिका सम्मिलित मोर्चा कायम कर अंग्रेजी साम्राज्य के चंगुल से बाहर निकल गया था, आयरलैंड भी समय-असमय विद्रोह कर ऐसी ही मनोवृत्ति का परिचय दे रहा था। इसलिये १८५७ के विद्रोह ने राजा नवाबों, जनता और सैनिकों का सम्मिलित मोर्चा एक 'कल्पनातीतविपत्त' का द्योतक था। समय रहते इस प्रकार के सम्मिलित मोर्चे को भविष्य में असम्भव बना देना बृटिश साम्राज्य की रक्षा के लिये आवश्यक था।

इस विद्रोह के पश्चात् ईस्ट-इंडिया कम्पनी तोड़ दी गई। वास्तव में अपना अभिनय यह पूरा भी कर चुकी थी, और अब इसकी आवश्यकता शेष भी न थी। हिन्दुस्तान की हुकूमत सीधे इंगलैंड की सरकार ने अपने हाथ में ले ली, और बृटिश पार्लियामेंट तथा इंडिया आफिस की छत्र-छाया में अधिक सभ्य दीख पड़ने वाले परदे के भीतर से हिन्दुस्तान का वैधानिक शासन आरम्भ हुआ। १८५७ के विद्रोह ने यह स्पष्ट कर दिया था कि 'फूट डालो और शासन करो' की एक मात्र नीति का

अनुसरण कर साम्राज्य की रक्षा की जा सकती है। वृटिश राजनीतिज्ञों ने दृढ़ता के साथ इस नीति का आश्रय पकड़ा। सर जान सिली ने 'दिइक्स्पैन्शन आव इंगलैंड' में बहुत ही स्पष्ट शब्दों में इस नीति की आवश्यकता पर जोर दिया था:—

"आप देखिये, १८५७ का विद्रोह एक जाति को दूसरी से लड़ा देने की नीति के द्वारा दबाया जा सका। जब तक ऐसा किया जा सकेगा, जब तक सम्पूर्ण जन वर्ग सरकार का समालोचक नहीं बन जाता, तब तक चाहे जैसा भी आन्दोलन होता रहे हिन्दुस्तान का शासन इंगलैंड से होना सम्भव बना रहेगा, और इसमें कोई आश्चर्य या कौतूहल नहीं है। किन्तु जैसा कि मैंने कहा है यदि परिस्थितियों में परिवर्तन हो जाता है, यदि संयोग से जनता एक राष्ट्र में गुथ जाती है, और राष्ट्रीय भावना से प्रभावित हो जाती है, तो मैं केवल इतना ही नहीं कहता हूँ कि हमें अपने प्रभुत्व के सम्बन्ध में भयभीत होना आरम्भ करना चाहिये, बल्कि उसकी आशा ही त्याग देनी चाहिये।"

सर जान सिली ने अब तक की अस्पष्ट और अव्यक्त नीति को शासन नीति का मूल आधार बनाने का निर्देश किया। 'फूट डाल कर शासन करो' का प्रथम अधकचरा प्रयोग रोमन साम्राज्य ने किया था, किन्तु दक्ष वृटिश राजनीतिज्ञों ने इस नीति को एक सफल शासन कला का रूप दिया। अब तक वृटिश राजनीतिज्ञ अज्ञात रूप से इस प्रकार की नीति का जब-तब और जहाँ-तहा प्रयोग करते थे, किन्तु इस समय से वृटिश

साम्राज्य की शासन-शैली का 'फूट डालो और शासन करो' नीति निश्चिन् और सुव्यवस्थित आधार स्तम्भ बनी। और यद्यपि साम्राज्य के अन्य भागों में इस नीति का पालन शासन-शैली के अनिवार्य अंग के रूप में किया गया, किन्तु हिन्दुस्तान का क्षेत्र इसकी सफलता के लिये अत्यन्त उपजाऊ सिद्ध हुआ है। हिन्दुस्तान के जीवन की प्रत्येक गति में इस शासन नीति की निश्चित और सुव्यवस्थित क्रिया भली भाँति देखी जा सकती है। इस देश की प्रत्येक ऐतिहासिक घटना, प्रत्येक सामाजिक विशृंखलता और उत्थान-पतन के प्रत्येक मोड़ की क्रिया की व्याख्या इस नीति के अन्तर्गत की जा सकती है।

१८५७ के विद्रोह की असफलता का तात्कालिक भीषण परिणाम मुसलमानो को भुगतना पड़ा। इस विद्रोह में मुसलमानों का प्रमुख भाग था; अभी कुछ ही दिन पूर्व मुसलमान हिंदुस्तान की शासक-जाति थे। उनकी अपने पुराने गौरव की आकांक्षाओं और पूर्व पद प्राप्त करने की आशा का नाश नहीं हुआ था। बंगाल और युक्त प्रांत में मुसलमानों का ही सबसे अधिक शोषण ईस्ट-इंडिया कम्पनी द्वारा हुआ था। वहावी आन्दोलन, जो १८५७ के विद्रोह में समाप्त हो गया, विशुद्ध मुस्लिस जाति और मुस्लिम नेताओं द्वारा संयोजित और संचालित था। वह दुर्दमनीय आवेश जिसके लिये मुसलमान जाति इतिहास में प्रसिद्ध थी अभी विचलित नहीं हुआ था। इस विद्रोह का नेतृत्व और संचालन मुसलिम शासक के झंडे के नीचे संगठित हुआ था। स्टैनली लेन पूल ने 'मेडिव्हल इंडिया' में लिखा है:—

"छः शताब्दियों तक हिंदू स्वेच्छा से मुस्लिम शासन को स्वीकार करतेरहे और १८५७ ई० में बृटिश शासन को निर्मूल कर देने के महान प्रयत्न के अवसर पर विद्रोही दिल्ली के मुसलमान सम्राट के छाया मात्र किन्तु प्रसिद्ध नाम पर इकट्ठे हुये और क्रिया शील हुये।"

एच० सी० वावेन ने 'मुहम्मडनिज्म इनइंडिया' (१८७३) में लिखा है:—

"सिपाहियों के अतिरिक्त हमारे पूर्वी साम्राज्य की आन्तरिक शांति को भंग करने वाले सुन्नी सम्प्रदाय के लोग थे।"

इन अनेक कारणों से मुसलिम सम्प्रदाय अंग्रेजों की आँखों में खटकने लगा और इस महान तथा अभिमानी सम्प्रदाय को सर्वदा के लिये शक्ति हीन और आश्रित वना देने के लिये तरह तरह के उपाय काम में लाये गये। मुसलमानो से राज्य छीना जा चुका था, इस्ते मुरारी वन्दोवस्त द्वारा जमींदारी भी उनसे निकल चुकी थी। सेना और अन्य नौकरियों के द्वार अभी तक उनके लिये खुले थे, लेकिन इस विद्रोह के वाद उनके निर्वाह के ये मार्ग भी कठोरता के साथ वन्द करदिये गये। सेना से तो मुसलमान इतनी अधिक संख्या में निकाल दिये गये कि किसी प्रकार के विद्रोह के लिये भविष्य में उनकी ठोस शक्ति वहाँ शेष न रहे। वंगाल की सेना का द्वार उनके लिये सवसे पहले बंद किया गया, शेष हिन्दुस्तान में भी इस उदाहरण का अनुसरण अविलम्ब किया गया। यह उल्लेखनीय है कि मुसलमान हिन्दुस्तान में बस जाने के बाद राजकीय कार्य्यों के अतिरिक्त

सैनिक का ही पेशा अपनाये थे, वास्तव में सैनिक पेशा उनका जाति गत व्यवसाय हो गया था। इस द्वार को बंद कर उनकी आर्थिक हत्या की गई।

लेकिन सेना से बढ़कर उनकी दुर्दशा की कहानी दूसरे विभागों में दीख पड़ती है। सेना से निकलने के बाद उन्हें कहीं शरण नहीं थी। राज्य की सभी नौकरियों का द्वार उनके लिये बंद हो गया। जो अंग्रेज जाति उन्हें सेना में नहीं रहने देना चाहती थी, वह उन्हें और नौकरियाँ क्यों देगी! डाक्टर हंटर ने 'इंडियन मुसलमान्स' में उनकी स्थिति का बड़ा ही मार्मिक वर्णन किया है। उनका एक वाक्य यहाँ उद्धृत कर देना अनुययुक्त न होगा:—

"वास्तव में कलकत्ता में शायद ही कोई ऐसा सरकारी दफ़्र है जिसमें कोई मुसलमान बोझा ढोने, चिट्ठियाँ के जाने, दावात में रोशनाई डालने या पेन्सिल बनाने की श्रेणी से ऊपर कोई काम पाने की आशा कर सकता है।"

इनमें खाना पकाने, गाड़ी हाँकने, बच्चों को हवा खिलाने और कपड़ा तहाने के काम भी जोड़े जा सकते हैं। एक समय की शासक जाति अंग्रेजी राज्य के आरम्भ होते ही शायद इसी के योग्य रह गयी थी। मुसलमानों का किस प्रकार बहिष्कार किया जाता था एक दूसरे उद्धरण से स्पष्ट होगा:—

"शीघ्र ही जब सुन्दर वन के कमिश्नर के आफिस में कई जगहें खाली हुईं तो उस अफसर ने सरकारी गजट में विज्ञापन

देते हुये लिखा कि जगहें हिन्दुओं के अतिरिक्त और किसी को न दी जायगी।"*

वकालत पेशे में भी मुसलमानों की संख्या एक दम नगण्य थी। एच० सी० बावेन के अनुसार १८५२ से १८६८ के बीच इस पेशे में केवल एक मुसलमान था। सन् १८७१ के बंगाल के गजटेड अफसरों की संख्या की जाँच करने पर ज्ञात होगा कि किस प्रकार सरकारी नौकरियों में मुसलमानों की अवहेलना की गई थी, और किस सीमा तक साम्प्रदायिक अनुपात में अंतर उत्पन्न किया गया। बंगाल के सभी सरकारी विभागों के कुल २१४१ स्थानों में १३३८ योरोपियन, ७११ हिन्दू और केवल ९२ मुसलमान थे। इससे मुसलमानों की दयनीय स्थिति का अनुमान आसानी से लगाया जा सकता है। डाक्टर हंटर ने मुसलमानों के क्रमशः और निश्चित पतन की विवेचना करते हुये वेदना पूर्ण शब्दों में लिखा था कि, '१२०वर्ष पूर्व बंगाल के एक सम्पन्न परिवार में उत्पन्न किसी मुसलमान के लिये दरिद्र होना असम्भव था, लेकिन आज अब उसे धनी रह सकना असम्भव है।' मुसलमान जाति का इस प्रकार रोमांच कारी दमन इतने लम्बे समय तक होता रहा कि सचमुच यह जाति एक दम बरबाद होने की स्थिति में पहुँच गई। अपने पूर्व गौरव और पद से च्युत, बे रोजगार, निराश्रित और सरकारी कोप के भाजन मुसलमानों को दर--दर मारे-मारे फिरते रहने के अतिरिक्त कोई और चारा शेष न रह गया था। उड़ीसा के मुसलमानों ने

* 'कम्यूनल ट्रैंगिल' में उद्धृत।

तात्कालिक साम्राज्ञी विक्टोरिया के पास एक आवेदन पत्र भेज कर अपनी दशा की ओर उनका ध्यान आकर्षित किया था। इस आवेदन पत्र में उस समय के मुसलमानों की दशा का विशद चित्र उपस्थित किया गया है:—

"सभ्य कुल में उत्पन्न, पेशा हीन, सरकारी कृपा से शून्य और पुनरुद्धार की आशा से वंचित हम उड़ीसा के मुसलमानों को सर्वदा अधः पतन की ओर ही ले जाया गया है। हम लोग एक टुकड़े के लिये मुहताज बना दिये गये हैं, और सरकारी नौकरियों के निकल जाने से सर्वदा के लिये निराश तथा हतोत्साहित कर दिये गये हैं। हम लोग अपने हृदय के अन्तस्तल से कहते हैं कि हम पृथ्वी के सुदूर देश की यात्रा कर सकते हैं, हिमालय के हिमआच्छादित शिखरों पर चढ़ सकते हैं, साइवेरिया के शून्य प्रदेशों में भ्रमण कर सकते हैं, यदि हमें यह विश्वास दिलाया जाय कि इतनी यात्रा करने पर हमें दस शिलिंग प्रति सप्ताह का सरकारी पद मिल सकेगा।"*

यह उल्लेखनीय हैं कि बंगाल के मुसलमानों की दशा इससे भी गिरी हुई थी और कहीं भी इससे अच्छी नहीं थी। सबसे अधिक आघात मुस्लिम सम्प्रदाय की शिक्षा पर किया गया। शिक्षा के विनाश का ठीक-ठीक वर्णन कर सकना बिल्कुल असम्भव है। मुसलमान जाति की वर्तमान अशिक्षा और उनकी पिछड़ी हुई परिस्थिति का उत्तर दायित्व उस भीषण दमन को है, जो बिना किसी संकोच के मुस्लिम जाति के प्रति युगों तक

* कम्यूनल ट्रेंगिल' में उद्धृत।

होता रहा। अंग्रेजों ने हिन्दुस्तान में शिक्षा क्रम बिल्कुल नये ढंग पर तय्यार किया, जिसमें मुसलमान जाति की दिलचस्पी, परम्परा, मनोवृत्ति, दृष्टिकोण तथा लक्ष्यका कोई ध्यान नहीं रक्खा गया, वल्कि इसके विपरीत शिक्षा क्रम और पाठ्यविषय इस प्रकार मुसलमानों की भावनाओं और उनकी सामाजिक रीतियों के प्रतिकूल निर्धारित हुये कि आकर्षण के स्थान पर उनमें इसके प्रति घृणा उत्पन्न हुई। शिक्षा की नई व्यवस्था में परिवर्तन से उत्पन्न होने वाली अनिवार्य परिस्थिति के लिये कोई गुंजाइश नहीं रक्खीं गई। नये स्कूलों में अरवी और फारसी के लिये कोई स्थान नहीं था। और न उनमें मजहव के वे आचरण बरतने की कोई परवाह की गई जो मुसलमान जाति के जीवव के साथ लगे हुये थे। स्वभावत: राज्य-व्यवस्था में संचालित शिक्षा पद्धति से मुसलमानों ने मुख मोड़ लिया और वे उससे दूर रहने का प्रयत्न करने लगे।

इस प्रकार सार्वजनिक शिक्षा से वहिष्कृत किये जाने बाद उनके अपने जातीय शिक्षा के केवल कुछ निजी साधन शेष रह गये, लेकिन इससे भी वे निर्दयता पूर्वक कुछ दिनों के भीतर ही वंचित कर दिये गये। हिन्दुस्तान की परम्पराओं के अनुसार शिक्षा संस्थाओं के खर्च के लिये राजा और नवाब भूमि दान करते थे; इस भूमि पर कोई कर नहीं लगाया जाता था और इसकी आमदनी से शिक्षा संस्थायें चलाई जाती थीं। इस प्रकार का एक वड़ा भूभाग और उससे उत्पन्न होने वाली सम्पत्ति शिक्षा संस्थाओं के प्रबन्ध में होती थी। श्री जेम्स ग्रान्ट

के हिसाब के अनुसार जिस समय बंगाल का शासन अँग्रेजों के हाथ में आया, प्रान्त का चौथाई भाग शिक्षा संस्थाओं, मसजिदों और मंदिरों के खर्च के लिये दान था। किन्तु अँग्रेजी राज्य ने न केवल इस नियम को तोड़ डाला, वल्कि इस प्रकार की सम्पूर्ण सम्पत्ति पर अपना अधिकार स्थापित कर लिया। वारेन हेस्टिंग्ज के शासन काल से इस उद्देश्य के लिये दान की हुई भूमि पर अधिकार करने का प्रयत्न आरम्भ हुआ। सन् १८२८ ई० में विशेष अदालतें नियुक्त हुईं जिनका उद्देश्य दान की हुई भूमि को वृटिश शासन के अधिकार में न्याय के नाम पर लाना था। इन अदालतों में आठ लाख पौंड खर्च हुआ, किन्तु इसके परिणाम स्वरूप सरकार को तीन लाख पौंड की वार्षिक आमदनी हुई। यह धन देशी शिक्षा संख्याओं का धन था। इसके निकल जाने से देशी शिक्षा पर जो घातक प्रभाव पड़ा, उसने शिक्षा की नींव ही हिला दी। अभी कुछ धन देशी शिक्षा संस्थाओं में शेष रह गया था, लेकिन उसके दुरुपयोग की एक अत्यन्त दुःखद कहानी है, और 'हुगली ट्रस्ट' इसका स्पष्ट उदाहरण है। हाजी मुहम्मद मुहसिन एक अत्यन्त, सम्पन्न उदार और प्रतिभा शाली व्यक्ति थे, उन्होंने अपनी और अपनी सौतेली वहन मानूजाँ खाँनूम की बहुत बड़ी सम्पत्ति को ट्रस्ट कर दिया था, जिसकी कुल आमदनी शिक्षा के सम्बन्ध में खर्च किये जाने के लिये थी। सन् १८१७ ई० में सरकार ने इस ट्रस्ट को अपने अधिकार में ले लिया, और इसे 'हुगली कालेज' के खर्च में लगा दिया। एच० सी० वावेन ने १८७२ ई० में लिखा

था कि कालेज के ३०० विद्यार्थियों में केवल तीन विद्यार्थी मुसलमान थे। इस कालेज का प्रिंस्पल एक अँग्रेज था, जिसे अरबी, और फारसी की न तो कोई जानकारी थी और न वह मुसलिम, सभ्यता, संस्कृति तथा परम्परा का प्रसंशक था किन्तु उसे इस 'ट्रस्ट' की सम्पत्ति में से ही १५०० पौंड वेतन वार्षिक मिलता था। इस 'ट्रस्ट' में से १०५७०० पौंड कालेज की इमारत बनाने में खर्च किया गया; और ५००० पौंड इसके वार्षिक खर्च में लगाया गया। इस 'ट्रस्ट' का केवल नगण्य अंश एक छोटे से मुसलिम स्कूल पर खर्च किया गया—सम्भवतः न्याय प्रिय अँग्रेज जाति के दृष्टि-कोण में हाजी मोहम्मद मोहसिन के 'ट्रस्ट' के उद्देश्य की पूर्ति के लिये इतना ही काफी समझा गया। 'ट्रस्ट' की अतुल सम्पत्ति की दुर्दशा कर डाली गई, और उसके उद्देश्य के साथ भीषण अन्याय किया गया। जो धन शिक्षा के प्रसार और विकास में खर्च होता वह अँग्रेज प्रिंस्पल के शानदार जीवन का साधन बनाने तथा अँग्रेजी हुकूमत का रूप बढ़ाने के काम में खर्च किया गया। मुसलिम जाति प्रत्येक भाँति विवश कर मकतबों में इस प्रकार सीमित रहने के लिये बाध्य कर दी गई जो तब से आज तक विकसित होने या पनपने का अवसर नहीं पा सकी। सार्वजनिक शिक्षा से बहिष्कृत और जातीय शिक्षा के साधन से वंचित मुसलिम जाति के ऊपर यदि अज्ञान का पहाड़ टूट पड़ा तो इसमें आश्चर्य्य की कोई गुंजाइश नहीं है।

जिन दिनों में मुसलमानों का निर्दयतापूर्ण दमन होता रहा

था हिन्दुओं के साथ अच्छा बर्ताव करना उपयुक्त समझा गया। सुन्दर वन के कमिश्नर के आफिस में किसी स्थान के लिये विज्ञापन से हिन्दुओं पर कृपा दिखलाने की प्रवृत्ति का परिचय हमें मिल चुका है। १८७१ के बंगाल के गजटेड अफसरों में भी हिन्दुओं की संख्या असंन्तोष प्रद नहीं थी। दूसरी नौकरियों व्यवसाय तथा व्यापार में हिन्दुओं को उस समय अँग्रेजी कृपा का आश्रय प्राप्त था। इस्तेमुरारी बन्दोबस्द से जो परिस्थिति उत्पन्न हुई, उससे हिन्दू बहुत बड़े लाभ में रहे। इस प्रथा के कारण साधारण हिन्दू कलक्टर जमीन के मालिक-से बन गये, और मुसलमान जमींदारों का धन धीरे-धीरे खिसक कर इनके पास आने लगा। जिस समय मुसलमान प्रतिक्षण और प्रत्येक परिस्थिति में असंख्य असुविधाओं के शिकार हो रहे थे, हिन्दुओं को उनके रोजगार और व्यवसाय को न केवल करने ही दिया गया बल्कि उन्हें प्रोत्साहन भी दिया गया। अँग्रेज व्यवपारियों ने हिन्दू रोजगारियों से ही अधिक सम्बन्ध रक्खा।

कहना न होगा एक वर्ग के प्रति यह विशेष उदारता मानवीय भावना के कारण उत्पन्न नहीं हुई थी, बल्कि साम्राज्य की रक्षा के लिये अनुसरण की जाने वाली अँग्रेजी नीति का एक महत्वपूर्ण अंग थी। हिन्दू और मुसलमान, दो सम्प्रदायों में आज जो आर्थिक, व्यायसायिक और सामाजिक अन्तर दीख पड़ता है वह स्पष्टतया इस सौतेली नीति का प्रत्यक्ष परिणाम है। लगभग एक सदी तक मुसलिम सम्प्रदाय का दमन होता रहा, यह सौ बरस का लम्बा समय एक सम्प्रदाय

को किसी अंश तक सम्पन्न, अग्रशील और जाग्रत बनाने में सहायक हुआ और दूसरे को एक दम विपन्न, गति हीन और कुन्द बनाने का कारण हुआ। हिन्दुस्तान के दो सम्प्रदायों की इन दो परिस्थितियों की प्रति क्रिया स्वभावतः भिन्न-भिन्न हुई। और कहना न होगा, हमारे गोरे महाप्रभुओं ने इस पर अत्यन्त तीक्ष्ण दृष्टि रख कर प्रत्येक सम्भव अवसर का उपयोग अपने लाभ के लिये किया। और उनकी इस क्रिया के परिणाम स्वरूप 'फूट डालो और शासन करो' कि विभिन्न और अनेक शाखायें-प्रशाखायें फैलकर हिन्दुस्तान के सम्पूर्ण जीवन में इस प्रकार व्याप्त हो गई हैं कि उनकी विवेचना कर सकना भी कठिन है।

सेना का सगठन वृटिश सरकार के लिये एक जटिल प्रश्न था। १८५७ के विद्रोह में हिन्दुस्तानी सैनिक सबसे अधिक खतरनाक सिद्ध हुये थे। कुछ इतिहास लेखकों ने तो इसे सैनिक विद्रोह का नाम ही दे डाला है। उस समय तक सभी सम्प्रदाय के हिन्दुस्तानी अँग्रेजी सेना में एक साथ समान रूप से रहते थे। उन्हें विचारों के आदान-प्रदान का पूर्ण अवसर प्राप्त था, और किसी भी प्रश्न पर सम्मिलित विचार और निर्णय करने की प्रवृत्ति और सुविधा थी। वे एक भावना से उत्प्रेरित होते थे, और अलग-अलग सम्प्रदाय के रूप में सोचना उन्हें उस समय तक मालूम भी न था। सेना का ऐसा संगठन वृटिश शासन के लिये 'कल्पनातीत-विपत्ति' था। इस प्रकार की सेना से १८५७ विद्रोह की पुनरावृत्ति की आशंका प्रतिक्षण उपस्थित थी। इस 'कल्पनातीत विपत्ति' और उसके 'विनाशकारी परिणामों

को भविष्य असम्भव बनाने के लिये सेना संगठन के विशेषज्ञों ने हिन्दुस्तानी सेना के निर्माण में एक नयी और निराली नीति का अनुसन्धान किया। सर जान सिली के शब्दों में विद्रोह का दमन हिन्दुस्तान की एक जाति को दूसरे के विरुद्ध खड़ा कर किया गया था। सेना निर्माण के लिये भी यही सिद्धांत स्थिर कर लिया गया। लार्ड लारेंस ने जो एक समय हिन्दुस्तान के वाइसराय थे, कहा था:—

"विद्रोह से पूर्व सेना संगठन के दोषों में सबसे बड़ा दोष, और जिसने सबसे घातक प्रहार हम लोगों पर किया वह बंगाल सेना के सैनिकों की मातृ-भावना और पारस्परिक समानता का व्यवहार था। इसका उपाय यह है कि सेना का संगठन अबसे जाति तथा सम्प्रदाय के आधार पर किया जाय, जिससे "उनमें आपस में ईर्ष्या और प्रतिस्पर्द्धा की आग प्रति ज्वलित होती रहे। इस आधार पर सबसे बड़ा संगठन अँग्रेजी सेना का होना चाहिये और दूसरा देशी जातियों की सेनाओं का।"*

इस नीति का अनुसरण कर हिन्दुस्तान की सेना का संगठन किया गया। सेना का विभाजन बटालियन, कम्पनी, पलाटून इत्यादि में किया गया और राजपूत रेजीमेन्ट, सिख रेजीमन्ट, जाट रजीमेन्ट, पठान रेजीमेन्ट नामों से सेना के विभिन्न भागों का परिचय हमें प्राप्त होता है। लार्ड लारेन्स के निर्देश के अनुसार अँग्रेजी सेना का संगठन हिन्दुस्तानी सेनाओं से बिल्कुल पृथक हुआ—और उसका सम्बन्ध, तथा सम्पर्क इस

---

* मार्डन रिव्यू १९३० ।

प्रकार अलग रक्खा गया कि हिन्दुस्तानी सेना की मति स्पद्‌र्धा बराबर बनी रहे। यह सब विभाजन और श्रेणी क्रम इतनी बुद्धिमत्ता से किया गया कि प्रत्येक अपनी जाति या सम्प्रदाय के गर्व में चूर रहे और एक दूसरे में ईर्ष्या की आग जलती रहे। साथ ही साथ उनका अनुपात भी इस प्रकार निश्चित किया गया कि संख्या की अधिकता के कारण एक सम्प्रदाय दूसरे पर हावी न हो सके। 'शक्तिसंतुलन की यह नीति, उनकी भावी एकता को रोकने के लिये काम में लायी गई। अँग्रेज योरप के विभिन्न राष्ट्रों में 'शक्ति संतुलन' की नीति युगों से सफलता के साथ बरतते आते थे, और इस कला में वे पूर्ण दक्ष थे। एक जाति के विरुद्ध दूसरी जाति एक सम्प्रदाय के विरुद्ध दूसरा सम्प्रदाय, और एक मजहब के विरुद्ध दूसरा मजहब खड़ा कर हिन्दुस्तानी सेना में पारस्परिक ईर्ष्या, द्वेष, प्रति स्पर्द्धा और फूट की भावना उत्पन्न की गयी। विभिन्न प्रकार के टोर्नामेंट प्रचलित कर इस भावना को खूब प्रोत्साहित किया गया। कहने की आवश्यकता नहीं कि इस नीति को आशा से कहीं अधिक सफलता मिली। १८५७ की विद्रोही सेना इस संगठन के बाद अँग्रेजी साम्राज्य और हिन्दुस्तान की गुलामी को दृढ़ बनाये रखने में अत्यन्त शक्ति-शाली साधन बन गई।

वृटिश साम्राज्य का विस्तार प्रायः पूरा हो चुका था। हिन्दुस्तान इस साम्राज्य का एक विशाल और महत्व पूर्ण अंग ही नहीं, बल्कि उसका एक मात्र आधार बन गया। जिन

साधनों से सम्भव था, इस अधार को अनन्त समय तक के लिये दृढ़ता के साथ सुरक्षित रखना अनिवार्य था। हिन्दुस्तान का व्यवसाय और व्यापार नष्ट कर वृटिश पूँजीवाद और साम्राज्य वाद उच्चतम शिखर तक पहुँच चुका था और इसमें लेश मात्र भी कम होने देने की इच्छा अँग्रेजों के मन में न थी। इसके विपरीत शोषण की गति को अक्षुण्ण बनाये रखने, बल्कि उसे तीव्रतर करने के लिये इंगलैंड की सरकार दृढ़ निश्चय थी। शोषण की ज्वाला एक बार प्रज्ज्वलित होकर शांत होना नहीं जानती। वृटिश साम्राज्य इसका सबसे बड़ा प्रमाण और उदाहरण है। वृटिश साम्राज्य के दूसरे भागों में साधारणतः किन्तु हिन्दुस्तान के जीवन में विशेष रूप से जितना व्यतिक्रम उत्पन्न किया गया है, वह केवल आर्थिक शोषण को निश्चित बनाने के लिये। सर जानसिली के अनुसार एक जाति को दूसरी से लड़ाकर और इस देश की सम्पूर्ण जनता को एक राष्ट्र में गुँथे जाने से रोक कर हिन्दुस्तान में वृटिश साम्राज्य की रक्षा की जा सकती थी। इस गुत्थी को सुलझाने के लिये यहाँ के राजनीतिक और जातीय जीवन में अनेक विशृंखलतायें उत्पन्न की गई। यहाँ के सामाजिक जीवन में उन समस्याओं और प्रश्नों का समावेश किया गया, वे दिलचस्पियाँ और स्वार्थ उत्पन्न किये गये जो राष्ट्रीयता और सम्मिलित प्रयत्न के मार्ग में रुकावट पैदा करने की क्षमता रखते हों। साम्राज्य वाद के प्रकरण में ही हम साम्प्रदायिक या दूसरी हिन्दुस्तानी समस्याओं को समझने में समर्थ हो सकते हैं।

विभिन्न सम्प्रदायों, स्वार्थों तथा वर्गों का निर्माण

विजय और पराजय अपने साथ परिणामों का समूह लेकर आती हैं। विद्रोह की असफलता ने हिन्दुस्तान की रही सही शक्ति का अन्त कर दिया। विजयी और पराजितों में आकाश-पाताल का अन्तर उपस्थित हो गया। विजयी अंग्रेज जाति शक्ति-केन्द्र की स्वामिनी थी, दूसरी ओर निराश्रित और किं कर्त्तव्य विमूढ़ हिन्दुस्तान के लोग छिन्न-भिन्न थे। मुग़ल सम्राट् तथा पेशवा के बाद कोई ऐसा नेतृत्त्व शेष नहीं रह गया जो उन्हें संगठित रख सकता और उन्हें यहाँ के सामाजिक सूत्र को परम्परा में गुँथे रखने का प्रयत्न करता, इसलिये वृटिश साम्राज्य-वाद के संचालकों को इस देश के सामाजिक जीवन को अपने ढंग से बनाने-बिगाड़ने का स्वच्छन्द अवसर मिला। सामाजिक जीवन के विघटन और संघटन में स्वेच्छाचारिता उनका सिद्धान्त था, और इस सम्बन्ध की नीति स्थिर करने का केवल माप दंड शोषण क्रिया को बहुमुखी और स्थायी बनाना था, ईस्ट-इंडिया कम्पनी तोड़ दी गई, और हिन्दुस्तान में केन्द्रीय शासन स्थापित हुआ, जिसका संचालन यहाँ से हजारों कोस की दूरी पर स्थित वृटिश पार्लियामेन्ट द्वारा आरम्भ हुआ। बड़ी

ही उदारता से मानवता के उच्च सिद्धान्तों की घोषणा महारानी विक्टोरिया से कराकर हिन्दुस्तान की जनता पर दया की वृष्टि की गई, और उन्हें जाति, धर्म, सम्प्रदाय या वर्ग' के विना किसी भेद-भाव के वृटिश शासन के अन्तर्गत फलने-फूलने का आश्वासन दिया गया। वृटिश कूटनीति की यह प्रसिद्ध विशेषता है कि जिस काम को वह करना चाहती है, उसके न करने की पहले ही घोषणा करती है, और जो बात उपस्थित नहीं रहती, उसके उपस्थित होने का ढिंढोरा पीटती है। इसमें सन्देह नहीं कि मनोविज्ञान के इस अप्रत्यक्ष मार्ग का अनुसरण कर अँग्रेज अपने उद्देश्य में पूर्ण सफल हुये हैं। महारानी विक्टोरिया के उपर्युक्त आश्वासन की घोषणा के साथ ही अँग्रेज शासक हिन्दुस्तान में सभी प्रकार के साम्प्रदायिक और सामाजिक भेद भाव तथा अन्तर उत्पन्न करने के कार्य्य में पूर्ण मनोयोग के साथ लग गये।

सन् १८५८ के पश्चात् हिन्दुस्तान में विश्वविद्यालय और हाईकोर्ट खोले गये। हिन्दुस्तान की जनता की शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी भाषा निश्चित की गई। इस शिक्षा का उद्देश्य वृटिश शासन के लिये कर्मचारी और समर्थक उत्पन्न करना था। अंग्रेजी शिक्षा अत्यन्त मँहगी हो गई। साधारण जनता इस महँगी और दुरूह शिक्षा के पास फटक सकने में असमर्थ थी। केवल कुछ सम्पत्तिशाली और विशेष लोग ही अपनी संतानों को शिक्षा दे सके। अंग्रेजी संस्थाओं की तड़क-भड़क, लम्बी शान-शौकत, शेक्सपियर, मिल्टन और टेनिसन, अंग्रेजी साहित्य,

इतिहास, और राजनीति के अध्ययन ने हिन्दुस्तानी शिक्षितों का एक पृथक वर्ग उत्पन्न कर दिया। इस शिक्षित वर्ग का एक अलग संसार बन गया और यह वर्ग अंग्रेजों के रीति-रिवाज तथा सभ्यता में अभिमान और हिन्दुस्तानी परम्पराओं से घृणा करने लगा। शिक्षित लोगों ने अंग्रेज़ जाति के रहन-सहन की मर्यादा के साथ होड़ लगा दी और इस बात की चिंता में व्यस्त हो गये कि अंग्रेजी शासन को कार्यान्वित करने में और रोब-दाब में अंग्रेज अफ़सरों से कम न रहें। परिणाम स्वरूप इनमें और साधारण जनता के बीच चीन की दीवाल खड़ी हो गई। साधारण जनता की विशाल संख्या अशिक्षा और अज्ञान के अंधकार में पड़ी रह गई। अंग्रेजी शिक्षा योजना लार्ड मैकाले की कृति थी, और वृटिश साम्राज्यवाद की आवश्यकताओं के अनुकूल शिक्षितों का एक पृथक वर्ग उत्पन्न करने का कुल श्रेय उन्हें प्राप्त है।

हिन्दुस्तान का प्रत्येक गाँव एक औद्योगिक केन्द्र था। ग्राम व्यवस्था हिन्दुस्तान के विस्तृत व्यवसाय का मूल मंत्र थी। यहाँ के सामाजिक जीवन का केन्द्र बिन्दु भी ग्राम-व्यवस्था थी। वास्तविक हिन्दुस्तान का राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक जीवन यहाँ के गाँवों में पिरोया हुआ था।* किन्तु वृटिश साम्राज्य की शोषण-प्रणाली में यह ग्राम व्यवस्था सहायक नहीं थी। रेल, तार, अंग्रेजी व्यापार, बेहद खर्चीली अंग्रेजी अदालतें, अनैतिक और अत्याचारी पुलिस, मालगुजारी की

* ग्राम संघ एक जन तंत्र व्यवस्था था।

कठिन प्रथा और हृदय हीन नौकरशाही ने ग्राम व्यवस्था का अन्त कर दिया। ग्राम पंचायतों और व्यवसायों को इस शक्ति के सम्मुख टिक सकना असम्भव था। ग्राम व्यवस्था एक दम नष्ट कर दी गई। पं० जवाहरलाल नेहरू ने अव्यवस्थित जीवन से उत्पन्न हुई परिस्थिति का एक हृदय-स्पर्शी चित्र खींचा है :—

"उन लाखों शिल्पियों का क्या हुआ जो बेकार बना दिये गये? असंख्य जुलाहे और दूसरे पेशेवर जो बेकार हो गये, उनका क्या हुआ? इंगलैण्ड में भी जब बड़े कारखाने खुले तो शिल्पी बेकार हो गये और इससे उन्हें बड़ा कष्ट हुआ; किन्तु उन्हें नये कारखानों में काम मिल गया और इस प्रकार वे अपने को नयी परिस्थिति के अनुकूल बना सके। हिन्दुस्तान में ऐसा कोई दूसरा सहारा नहीं था। यहाँ कल, कारखाने नहीं थे, अंग्रेज हिन्दुस्तान का उद्योगी करण नहीं चाहते थे इसलिये निर्धन, गृह-हीन, व्यवसाय हीन, क्षुधार्त, शिल्पी, किसानी करने पर विवश हुये। लेकिन यहाँ भी उनका स्वागत नहीं हुआ। किसानों की संख्या तो पहले ही अधिक थी और फिर जमीन ही कहाँ उनके लिये अधिक थी। केवल थोड़े से शिल्पी किसान बन सके, शेष को जमीन नहीं मिली, और वे जब तब कुली का काम कर जीवन निर्वाह करने लगे, और उनकी एक बहुत बड़ी संख्या भूख की ज्वाला से तड़प तड़प कर अवश्य मर गई होगी।"*

यह उल्लेखनीय है कि 'गृह हीन, व्यवसाय हीन, और क्षुधार्त लोगों की संख्या हिन्दुस्तान में बराबर बढ़ती ही गई।

* वर्ल्ड हिस्ट्री।

अकाल, महामारी, विपन्नता और असहाय दशा के अनेक परिणाम देश के किसी न किसी भाग पर नृत्य किया करते हैं, हिन्दुस्तान की आर्थिक नीति के साथ मन-माना व्यवहार करने से अकाल यहाँ का साधारण नियम बन गया है।

"टैक्स और अवव्याय की अनवरत वृद्धि से जो परिस्थिति उत्पन्न हुई वह हाल के स्थायी और लगातार पड़ने वाले अकालों के मूल कारणों में एक थी।"*

हिन्दुस्तान पशुधन और जंगलों की अधिकता से सम्पन्न था। वास्तव में एक दूसरे का घनिष्ट संबन्ध है; किन्तु "जंगल कानून" द्वारा इस धन पर भी वह भीषण प्रहार हुआ कि यह देश आज पशु धन में भी संसार में गिरा हुआ है।

"आपकी भूमि पहाड़ियों पर है, लेकिन उन पर उगे हुये जंगलों का उपयोग आप नहीं कर सकते; उनमें उगी हुई झाड़ियाँ और आप ही द्वारा लगाये गये वृक्षों की पत्तियाँ तक आपकी नहीं है।"†

पशुधन का कितनी तेजी से विनाश हुआ, इसकी केवल कल्पना ही की जा सकती है। उस कल्पना के लिये यहाँ एक आधार दे देना अनुपयुक्त न होगा :—

"आर काट के जिले में सन् १८९१ ई० में केवल ९ महीने के भीतर तीन लाख पशुओं का नाश हो गया।.................

* हिस्ट्री आफ़ दि काँग्रेस।

† दि हिस्ट्री आफ़ दी काँग्रेस।

जैसा कि श्री पाल पिटर पिलाई ने सन् १८९१ ई० में नागपुर में कहा था कि गवर्नमेंन्ट ने एक ही कलम में रैयतों के आदि काल के जाति गत अधिकारों का अन्त कर दिया और इस प्रकार गाँवों का सामाजिक जीवन एक-दम छिन्न-भिन्न कर डाला।"*

अंग्रेजों ने हिन्दुस्तान पर सेना द्वारा विजय प्राप्त की और फिर एक स्थायी सेना यहाँ रखकर दृढ़ता पूर्वक, उसे अपने अधिकार में रक्खा। बड़ी सतर्कता से इस विशाल देश की विभिन्न परिस्थितियों में उन्होंने अपने को इस भाँति स्थापित किया जहाँ से वे इस देश के भाग्य चक्र को, समय समय पर अपनी आवश्यकता के अनुकूल, घुमाते रहें। गाँवों का सामाजिक, राज-नीतिक, और आर्थिक जीवन टूट जाने पर एक नये सामाजिक जीवन के निर्माण की सम्भावना थी, जो उन्नति शील संसार की विभिन्न परिस्थितियों के सम्पर्कों से प्रभावित हो अपनी प्राकृतिक और स्वाभाविक गति से विकसित होती। विनाश के पश्चात् निर्माण प्रकृति का नियम है, और वह निर्माण यदि स्वाभाविक होने दिया जाय तो उसमें अपने काल की सभी प्रगति शील बातें उपस्थित होती हैं। किन्तु अंग्रेजों को ऐसा निर्माण अभीष्ट नहीं था। 'आदि काल के जातिगत अधिकारों का अन्त, कर दिया गया; किन्तु चालाकी से अधिकार और सत्वहीन जातियाँ स्थायी बना दी गईं। व्यावसायिक संघों के अतिरिक्त इन जातियों का कोई दूसरा अर्थ नहीं था और व्यव-

* उपर्युक्त पुस्तक।

साय से वंचित रह कर इन जातियों के अस्तित्व का कोई महत्व न था। पट्टाभि सीतारमैया ने जातियों के आर्थिक ढाँचे की विवेचना करते हुये लिखा है :—

"यह कहना कि भारतीय सभ्यता अपने दृष्टिकोण में केवल धार्मिक और दार्शनिक है, समाज की आर्थिक उन्नति पर हम लोगों के पूर्वजों द्वारा दिये गये जोर पर दृष्टि न डालना है। यथार्थतः अर्थ शास्त्र ने समाज को रचित किया और समाज धर्म द्वारा स्थिर बनाया गया। यही कारण था कि ग्राम संगठन, और ग्राम संघों की उत्पत्ति आर्थिक-सामाजिक ढाँचे का अविभाज्य भाग बना, जिसकी पृष्ठि भूमि धर्म रखा गया है।"*

आर्थिक-सामाजिक ढाँचा नष्ट हो जाने के बाद जातियों की स्थिति अंग्रेजी राज्य के राजनीतिक जीवन में उदारता पूर्वक स्वीकार की गई और विभिन्न संरक्षणों की घोषणा कर उनकी रक्षा का आश्वासन दिया गया। और इस उत्तरदायित्व की गुरुता को ही अनुभव कर हमारे न्यायी और कर्त्तव्य निष्ठ गोरे महाप्रभु हिन्दुस्तान को छोड़ कर चले जाने में असमर्थ हैं; क्योंकि जब तक विभिन्न जातियों के स्वार्थों (पता नहीं उनके क्या स्वार्थ अब शेष रह गये हैं) की रक्षा की उचित व्यवस्था किसी पारस्परिक समझौते द्वारा नहीं हो जाती, तब तक उनकी रक्षा के लिये उनको यहाँ रहना ही होगा।

---

* 'महात्मा गाँधी का समाजवाद' अनुवादक श्रीयुत् जग पति चतुर्वेदी हिन्दी भूषण विशारद'।

केवल इतना ही नहीं कि हिन्दुस्तान की निःसत्व और निष्प्राण जातियाँ इस देश के सामाजिक जीवन की प्रगति में अलंध्य वाधा वनाकर स्थायी कर दी गईं; वल्कि ऐंग्लोइन्डियन, योरोपियन और क्रिश्चियनों को भी हिन्दुस्तान में जातियाँ स्वीकार कर इस वाधा को खूब दृढ़ किया गया। यह अजीव-सी वात है कि जो अंग्रेज जाति की प्रथा में विश्वास नहीं करते, जो प्रथा उनके देश या समाज में कभी किसी रूप में स्थान न पा सकीं, वे अंग्रेज हिन्दुस्तान के सामाजिक और राजनीतिक जीवन में जाति का स्वरूप ग्रहण कर लिये हैं। हिंदुस्तान की किसी भी अन्य जाति की भाँति इनकी भी कट्टर जातियाँ हैं, और उनकी रक्षा के लिये राज्य द्वारा विशेष संरक्षण उन्हें दिये गये हैं। हिन्दुस्तान के ग्राम संघों को धूल से नष्ट कर नये-नये परस्पर विरोधी वर्गों और स्वार्थों की सृष्टि की गई।

ईस्ट इंडिया कम्पनी ने इस्तमरारी वन्दोवस्त द्वारा वड़ी जमींदारियों विशेषतया बंगाल की जमींदारियों का अन्त कर दिया। हम लोग देख चुके हैं कि इस प्रथा में कम्पनी का उद्देश्य हिन्दुस्तान के उस शक्ति शाली वर्ग का विनाश करना था, जो वृटिश साम्राज्य-विस्तार और शोषण क्रिया का विरोध करने का साहस करता। लेकिन इस्तमरारी वन्दोवस्त की प्रथा से एक नये प्रगतिशील समाज का निर्माण होने लगा, और इसमें जीवन के असह्य भारों को हल्का करने का साधन दीख पड़ने लगा। उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त की भयावनी आर्थिक कठिनाइयों को कुछ अंश तक सरल बनाने के उद्देश्य से काँग्रेस ने इस्त-

मरारी बन्दोवस्त के विस्तार की सिफारिश की थी। किन्तु जो प्रथा एक वार स्वेच्छा से जारी की गई थी, वही फिर सिफारिश करने पर भी काम में नहीं लायी गई; वल्कि इसके विपरीत वड़ी वड़ी जमींदारियों और ताल्लुकदारियों का निर्माण किया गया। संयुक्त प्रांत की ताल्लुकदारियाँ और बंगाल तथा अन्य, प्रांतों की सभी जमीदारियाँ १९वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में एक ऐसा शक्ति शाली वर्ग बनाने के उद्देश्य से उत्पन्न की गईं जो हिन्दुस्तान में अंग्रेजी राज्य का प्रवल समर्थक हो। जनशक्ति से रक्षा के लिये वृटिश राज्य और ताल्लुकेदारों तथा जमींदारों को एक दूसरे पर निर्भर रहना आवश्यक है। यदि यह आवश्यकता न होती तो जनता और वृटिश राज्य के वीच में राजशक्ति को ताल्लुकेदारों और जमींदारों का एक सहायक दीवाल न बनानी पड़ती। यह एक स्वयं सिद्ध सत्य है कि जनता के हाथों में शक्ति आने के मार्ग में गत इतिहास के सामंत श्रेणी का यह विकृत, निष्प्रयोजन और व्यर्थ रूप वहुत वड़ी वाधा है। समाज या अर्थशास्त्र के किसी भी सिद्धान्त से हिन्दुस्तान के जीवन में यह वर्ग केवल गुणित ऋण; है किन्तु राजनीतिक दृष्टि कोण से अंग्रेजी राज्य के लिये इनका रहना आवश्यक है; इसी लिये इनकी उत्पत्ति की गई और इनकी रक्षा की जाती है। इन ताल्लुकेदारों और जमीदारों का निर्माण स्वेच्छा चारिता और निरंकुशता का ऐसा भयंकर कृत्य है जिसकी समता संसार के इतिहास में प्राप्त करना असंभव है। १८५७ के विद्रोह के पश्चात् इनका निर्माण कर वृटिश साम्राज्य ने अपने लिये दृढ़ स्तंभ तैयार कर लिया।

केवल इनका निर्माण ही कर साम्राज्य की एक सह्य ठोस शक्ति के रूप में परिवर्तित करने के लिये वृटिश सरकार ने इन्हें संगठित भी किया। परिणाम स्वरूप वृटिश इन्डियन असोसियेशन नाम की इनकी एक संस्था स्थापित हुई। इस संस्था के अगुवा महा-राजा वर्द्वम्र के सम्बन्ध में एम० माटेगू ने अपनी डायरी पृ० ८० पर लिखा है कि "वृटिश सम्बन्ध के लिये वे उत्कट और भीषण प्रेम रखते हैं। वृटिश सम्बन्ध में उनका अत्यन्त दृढ़ विश्वास है। "आगरा और अवध के जमींदार और ताल्लुकेदार इस संस्था के सदस्य हैं लखनऊ में केसर वाग में इस संस्था के सुन्दर कार्यालय है। इलाहाबाद में भी इसका कार्यालय है। यह संस्था अंग्रेजी राज्य है।

देशी राज्यों का प्रश्न साम्राज्य-नीति का एक ज्वलंत परिचायक है। एक समय हिन्दुस्तान के निर्विरोध शोषण के लिये सभी देशी राजाओं का अन्त कर देना कम्पनी के अफसरों का उद्देश्य था। विभिन्न प्रकार के साधन इसके लिये काम में लाये गये, और इसी उद्देश्य को पूरा करने के लिये लार्ड डैलहौजी ने 'डाक्ट्रिन आव लैप्स' (गोद क़ानून) का अनुसंधान किया था। इस सिद्धान्त के प्रयोग का यदि कोई उद्देश्य था तो एक मात्र यही कि जितनी शीघ्रता से सम्भव हो सके, देशी राज्यों का अन्त कर दिया जाय। लेकिन १८५७ के विद्रोह के पश्चात् इस नीति में परिवर्तन की आवश्यकता प्रतीत हुई, और देशी राज्यों का एक ऐसा गुट वना लेना अनिवार्य-सा दीख पड़ा जो इस देश में वृटिश साम्राज्य का मित्र

और दृढ़ स्तम्भ सिद्ध हो सके। इसलिये ईस्ट-इंडिया कम्पनी से शासन भार ग्रहण करने के वाद इंगलैंड की सरकार ने इन देशी राज्यों के साथ अलग-अलग संधियां करना आरम्भ किया। इन संधियों द्वारा देशी राज्य सर्वदा के लिये स्थायी वना दिये गये हैं, और शक्ति तथा अधिकार से शून्य ये राज्य सभी प्रकार की प्रतिक्रिया वादिता की संगठित शक्ति वन गये हैं। यदि समय के प्रवाह को यहाँ के राजनीतिक और सामाजिक जीवन को स्वभाविक गति से प्रभावित करने दिया गया होता, यदि संसार की प्रगति-शीलता और विकास को स्वच्छन्द रूप से यहाँ के जीवन में प्रवेश करने दिया गया होता, यदि सदियों पुरानी रूढ़िवादितायें और वे सभी वातें, जिनका कोई प्रयोजन संसार या इस देश को नहीं था, बलपूर्वक स्थायी न बना दी गई होतीं, तो ये देशी राज्य भी संसार के अन्य राज्यों की भाँति आज शक्ति के केन्द्र होते और वहाँ की जनता यातना की चक्की में प्रतिदिन पीसी न जाकर उत्थान और विकाश की ओर अग्रसर होती रहती। सभी शक्तियों से वंचित रखकर देशी राज्य हिन्दुस्तान की वैधानिक उन्नति, आर्थिक तथा सामाजिक विकाश और जन अन्दोलन के मार्ग में एक भीषण वाधा वना कर खड़े कर दिये गये हैं। देशी राज्यों का धन, जन, वल, साम्राज्य की सेवा में सर्वदा समर्पित रहता है, और अनेक वासनाओं के उपभोग के अतिरिक्त अपने गोरे महाप्रभुओं के इशारों की प्रतीक्षा करते रहना इनका एक मात्र काम है। बृटिश सरकार के इशारे के परिणाम स्वरूप ही 'चैम्बर

आफ प्रिंसेस' नाम की उनकी एक संस्था स्थापित है, जिसकी उछल-कूद का तमाशा उस समय देखने ही योग्य था, जब १९३५ के विधान के अनुसार हिन्दुस्तान में संघ शासन बनाने का प्रश्न उपस्थित हुआ था। इन जमींदारों और तालुकदारों की दशा अत्यन्त दयनीय है। एक ओर तो ये बढ़ती हुई जनशक्ति से भयभीत हैं और दूसरी ओर गोरे प्रभुओं की अकृपा से आतंकित रहते हैं। इन्हें मृत प्राय होते देखकर वर्तमान वायसराय लार्ड वॉवेल ने इनमें कुछ समय के साथ आगे बढ़कर कुछ प्रगतिशील परिवर्तन का तकाजा किया था जिससे बढ़ती हुई जनशक्ति को कुछ अंश तक रोक सकने के योग्य हो सकें। और अपने अस्तित्व का औचित्य दिखला सकें। इस तकाजे के सम्बन्ध में प्रिंसेज़ आफ चैम्बर्स के चैंसलर नवाब भोपाल का वक्तव्य जानने योग्य है। दिसम्बर १९४४ को वक्तव्य देते हुये नवाब भोपाल ने कहा था:—"जैसा कि राजाओं ने पहले कहा है उसे इस समय याद दिला देना काफी होगा कि गत तीन-चार वर्षों की घटनाओं से सभी छोटे-बड़े राजा भयभीत हो उठे हैं। बिना एक भ्रमवाद के भी सभी राजा ठोस रूप से साम्राज्य के साथ रहे हैं और युद्ध के सफल संचालन के लिये वे और उनकी रियाया अपनी सभी और सर्वोत्तम शक्ति धन-जन सामान, तथा व्यक्तिगत सेवा के साथ बिना किसी शर्त के हाजिर रहे हैं। इसलिये वे नहीं समझ पा रहे हैं कि सम्राट के साथ अपने लम्बे और सम्मान पूर्ण सम्बन्ध के होते हुये भी इस समय उनके साथ इस

प्रकार का वर्ताव किया जा रहा है। मैं इस आश्वासन को फिर दुहराता हूँ कि सम्राट के सभी शत्रुओं पर जब तक अन्तिम विजय नहीं प्राप्त कर ली जाती है, तब-तक देशी रियासतें अपनी सेवाओं में कमी नहीं होने देंगी।......राजा लोग केवल न्याय की याचना करते हैं। लार्ड वेविल में उनका विश्वास है और सम्राट की सरकार की नेक नीयती पर उनका भरोसा है।"

इन्हीं कारणों से जिन देशी राज्यों को एक समय ब्रिटेन जिस-किसी प्रकार भी समाप्त कर देने पर कटिबद्ध था, उनके अस्तित्व का अब वही सबसे बड़ासमर्थक है।

जमींदार और ताल्लुकेदारों की सृष्टि करने, देशी राज्यों और विभिन्न जातियों के ढाँचे मात्र को स्थायी बनाने में बृटिश सरकार का उद्देश्य शक्ति हीन किन्तु सभी प्रतिक्रियावादी रुढ़ियों के समूह को दृढ़ करना तो था ही, हिन्दुस्तान में औद्योगिक पूँजी पतियों की उत्पत्ति तथा विकास को भी रोकना था। औद्योगिक पूँजि पूँजीपति राष्ट्रीयता का समर्थक होता है, क्योंकि राष्ट्रीय स्वतंत्रता से ही वह संसार की व्यवसायिक प्रति द्वन्दिता में ठहर सकने में समर्थ हो सकता है। इसके अतिरिक्त उद्योग एक ऐसे अनिवार्य मजदूर वर्ग का निर्माण करता है, जो शोषण के विरुद्ध राज्य सत्ता पर अधिकार प्राप्त करने के लिये क्रान्ति करता है। संसार का इतिहास इसका ज्वलंत उदाहरण है। इस वस्तुस्थिति को अँग्रेज भली-भाँति समझते हैं, इसलिये ऐसी कोई भी परिस्थिति यहाँ उत्पन्न होने देना उन्हें अभीष्ट

नहीं था। उन्होंने इन सभी बातों को दृष्टि-कोण में रखकर ऐसे स्वार्थों और वर्गों की सृष्टि की जो स्थिर थीं, जो सभी प्रकार के सृजन शक्ति से शून्य थीं, और जिनका अस्तित्व वृटिश साम्राज्य की आवश्यकता और कृपा पर निर्भर था।

लेकिन एक ओर वृटिश शासन और कुछ स्थायी वर्ग और दूसरी ओर हिन्दुस्तान का विशाल-जन समूह--शक्ति—संतुलन अभी तक साम्राज्य के पक्ष में नहीं था। यदि विशाल जन समूह कभी भी राष्ट्रीयता के सूत्र में आवद्ध हो सकता तो साम्राज्य के लिये 'कल्पनातीत विपत्ति' उपस्थित कर सकता था। वृटिश शासको की यह आशंका निर्मूल तथा निराधार भी नहीं थी। विद्रोह के वाद कई वर्षों तक जनता सर न उठा सकी, देश का पतन और साम्राज्य की शक्ति अधिक से अधिक वढ़ती जा रही थी। किन्तु शीघ्रही देश में चंचलता और जीवन के लक्षण भी स्पष्ट होने लगे। धार्मिक और सामाजिक पुनरुद्धार राजनीतिक तथा आर्थिक सुधारों के लिये अनेक और बहुमुखी प्रयत्न देश भर में होने लगे।

राजाराम मोहनराय ने 'ब्रह्म समाज' की स्थापना कर सामाजिक जाग्रति का श्री गणेश किया। केशवचन्द्र सेन ने 'ब्रह्म समाज' के उद्देश्य को व्यापक रूप दिया। सम्पूर्ण हिन्दुस्तान 'ब्रह्म समाज के प्रभाव से प्रभावित हुआ। पूना में महादेव गोविन्द रानाडे के नेतृत्व में 'प्रार्थना समाज' की स्थापना हुई, जिसका उद्देश्य 'ब्रह्म समाज' जैसा ही था। यह उल्लेखनीय है कि इन संस्थाओं द्वारा जो आन्दोलन आरम्भ

हुआ, वह पश्चिमीय सभ्यता से ओत-प्रोत था। अतएव इनकी प्रति क्रिया में उत्तरी भारत में स्वनाम धन्य स्वामी दयानन्द 'सरस्वती' द्वारा आर्यसमाज की स्थापना सन् १८७५ ई० में हुई और दक्षिण में 'थियोसाफिकल सोसाइटी' का जन्म हुआ। आर्यसमाज का आवेश देश के प्रति अत्यन्त उग्र था और यद्यपि आर्यसमाज वेद और वैदिक सभ्यता तथा संस्कृति की सर्व प्रधानता में विश्वास करता था, किन्तु सामाजिक प्रगति शीलता और राष्ट्रीय चेतना की जाग्रति में इसने जो अथक उद्योग किया तथा अपूर्व योग प्रदान किया, वह हिन्दुस्तान के इतिहास में स्वर्णाक्षरों में लिखने योग्य है। थियोसाफिकल आन्दोलन ने हिन्दुस्तान की उच्च संस्कृति को सामने रखने का प्रयत्न किया और देश में अपनी संस्कृति के प्रति जो निराशा और उपेक्षा का भाव बढ़ता जाता था, उसे दूर करने और आत्म विश्वास तथा आत्म गौरव उत्पन्न करने में सहायता दी। राम कृष्ण परम हंस मिशन तथा स्वामी विवेकानन्द ने सामाजिक तथा सांस्कृतिक चेतना के जागरण में प्रशंसनीय योग्य प्रदान किया।

राजनीतिक जीवन में भी अनेकसंस्थायें और व्यक्ति प्रयत्न शील थे। बंगाल में वृटिश-इंडियन एसोशियेशन' और बम्बई में 'वाम्बे एसोशियेशन' स्थापित हुये। सन् १८७० ई० के लगभग बम्बई में 'ईस्ट-इंडिया ऐसोशियेशन' की नींव पड़ी। दक्षिण में श्री राघवा चारियर द्वारा हिन्दू का उद्घाटन हुआ। महाराष्ट्र में उसी समय 'पूना सार्वजनिक सभा' का जन्म

हुआ। सन् १८७६ ई० में बंगाल में 'इंडियन असोशियेन' की स्थापना हुई। आनन्द मोहन वोस इसके मंत्री थे; लेकिन इस संस्था के प्राण आदरणीय सुरेन्द्रनाथ बैनर्जी थे। १८७५ में ४७५ अखबार विभिन्न प्रान्तीय भाषाओं में प्रकाशित हो रहे थे और उनकी एक प्रभावशाली शक्ति हो गई थी। सन् १८७० से १८८० के ही समय में अधिकारी वर्ग सामाजिक जाग्रति का प्रभाव अनुभव करने लगा था। सुरेन्द्रनाथ ने समस्त उत्तरी हिन्दुस्तान का दौरा किया, और १८७७ ई० के दिल्ली दरबार के अवसर पर, जहाँ हिन्दुस्तान भर के लोग इकट्ठ हुये थे, राजाओं और दूसरे विशिष्ट व्यक्तियों से एक बड़ी राजनीतिक संस्था संगठित करने के प्रश्न पर विचार किया। सन् १८७८ ई० में उन्होंने मद्रास और बम्बई का दौरा किया, और आई० सी० एस० परीक्षा के लिये उम्मेदवारों की उमर की सीमा २३ से घटाकर १९ वर्ष कर देने का प्रबल विरोध किया। इनके अदम्य साहस, अद्भुत वक्तृता शक्ति और संगठन की योग्यता से देश में आवेश तथा उत्साह की लहर दौड़ गई। इन अनेक क्रियाओं के परिणाम स्वरूप हिन्दुस्तान का राजनीतिक वातावरण एक बार फिर क्षुब्ध हो उठा। सन्१८८३ ई० में अलवर्ट हाल कलकत्ता में एक राजनीतिक सम्मेलन हुआ। इस सम्मेलन में श्री सुरेन्द्र-नाथ बैनर्जी ने देश की माँगों का समर्थन और उन्हें व्यक्त करने वाली एक राजनीतिक संस्था संगठित करने का विचार प्रकट किया। १८८१ ई० में मद्रास में 'महाजन-सभा का प्रान्तीय सम्मेलन हुआ और बम्बई में जून सन् १८८५ ई० में मेहता,

तैलंग और तय्यब जी के प्रयत्न से 'बाम्बे प्रेसीडेन्सी असोशियेशन' स्थापित हुआ।

सर सैयद अहमद खाँ ने मुसलमानों को अशिक्षा और निराशा की परिस्थिति से ऊपर उठाने का सराहनीय प्रयत्न किया। 'असबाब बगावत' नाम की पुस्तक लिखकर विद्रोह के कारणों की उन्होंने विवेचना की, और हिन्दुस्तान के लिये एक बड़ी राजनीतिक संस्था की आवश्यकता बतलाई। उन्होंने 'एंग्लो मोहम्मडन कालेज' अलीगढ़ की स्थापना की। इस कालेज के साथ ही सर सैयद ने 'इन्स्टिट्यूट गजट' पत्र भी संचालित किया, जो आरम्भ में मुसलिम जनता को अकर्मयण्ता और रूढ़िवादिता से ऊपर उठाने का सतत प्रयत्न कर रहा था।

सर सैयद बंगालियों के उत्थान से अत्यन्त प्रभावित थे, और वे प्रायः कहा करते थे कि हिन्दुस्तान में बंगाली ही ऐसे हैं जिन पर हम उचित गर्व कर सकते हैं। उनका विश्वास था कि इस देश में बंगालियों के ही कारण राष्ट्रीयता का विकास हो सका है। असेम्बली में भाषण देते हुये एक बार उन्होंने कहा था:—

"राष्ट्र शब्द में मैं हिन्दू और मुसलमान दोनों ही को सम्मिलित करता हूँ, और इस शब्द का यही एक मात्र अर्थ मैं कर सकता हूँ। मेरे लिये यह विचारणार्थ नहीं है कि उनका मजहबी विचार क्या है, क्योंकि इसमें विचार करने लायक कोई बात मुझे नहीं दीखती। किन्तु जो बात मुझे दीख पड़ती है वह यह है कि हम एक ही देश में बसते हैं, एक ही शासन

और एक ही शासक के अन्तर्गत गुलाम हैं, सबके लाभ का एक ही साधन है, और अकाल की ज्वाला में हम सभी एक ही प्रकार से तड़पते रहते हैं। ये विभिन्न कारण हैं जिनके आधार पर इस देश में बसने वाली दोनों जातियों को मैं एक शब्द "हिन्दू" के नाम से पुकारता हूँ, जिसका अर्थ होता है हिन्दुस्तान का निवासी"।*

इस समय लार्ड लिटन हिन्दुस्तान के गवर्नर जनरल थे। उनके कठोर शासन ने यहाँ के क्षुब्ध वातावरण को और अधिक उत्तेजित कर दिया। राजनीतिक वातावरण में जो भीषण क्षोभ उत्पन्न हो गया था, वह दमन के कारण वाह्य रूप न पाकर गुप्त रूप धारण कर रहा था। "यही नहीं कि केवल एक संगठित विद्रोह आगे दीख पड़ रहा था, बल्कि लोग निराश होकर कुछ और भी करने पर तुले थे, जिसका अर्थ था, आकस्मिक भयंकर उत्पात, दुष्ट लोगों की हत्या, बैंकर्स और बाजारों की लूट और गैर कानूनी कार्य जो धीरे-धीरे राष्ट्रीय विद्रोह का रूप धारण कर लेते।"† श्री ए० ओ० ह्यूम एक अंग्रेज उदार सज्जन को इस असंतोष और विद्रोह की संभावना का अ संदिग्ध प्रमाण मिल चुका था। इसलिये उन्होंने तत्कालीन गवर्नर जनरल लार्ड डफरिन और इंगलैंड के अधिकारियों के साथ परामर्श कर हिन्दुस्तान के राजनीतिक असंतोष और माँगों के स्पष्ट तथा

* कम्यनल ट्रैगिल में उद्धृत।

† दि हिस्ट्री आव दि काँग्रेस।

प्रकाश्य रूप मिलने के लिये एक हिन्दुस्तानी राजनीतिक संस्था स्थापित करने का विचार प्रकट किया। परिणाम स्वरूप दिसम्बर सन् १८८५ ई० में बम्बई में 'राष्ट्रीय काँग्रेस' की स्थापना हुई पहले की प्रायः सभी राजनीतिक संस्थायें इस नई राष्ट्रीय संस्था। में विलीन हो गईं। श्री ह्यूम और ब्रिटिश अधिकारियों ने हिन्दुस्तान की अशांति को इस संस्था द्वारा अपने वश में करने की आशा की। शासन की कठोरता से जो परिस्थिति उत्पन्न हो रही थी, वह साम्राज्य के लिये खतरनाक थी, उस खतरे को दूर करने के सम्बन्ध में श्री ह्यूम के प्रयत्न की विवेचना करते हुये श्री विलियम पाल ने कहा था:—

"इन दुर्भाग्य पूर्ण प्रति क्रिया वादी नीतियों ने लार्ड लिटन के शासन के समय हिन्दुस्तान को क्रान्तिकारी विद्रोह के निकट ला दिया था, और एक दम ठीक समय पर श्री ह्यूम ने इस खतरे को दूर करने का प्रयत्न किया।"*

बृटिश सरकार बड़ी सतर्कता से हिन्दुस्तान की मनो भावना और उसके फल स्वरूप होने वाली अनेक घटनाओं की विवेचना कर रही थी। उससे अधिक इस बात को कोई भी दूसरा नहीं समझ सकता था कि जिस शासन के लिये कोई औचित्य और समर्थन इस देश में नहीं प्राप्त था, वह हिन्दुस्तान की विशाल जनता को स्वतंत्र और स्वच्छन्द राजनीतिक जीवन विकसित करने का अवसर देकर एक क्षण भी टिक नहीं सकती थी।

* दि हिस्ट्री आव दि काँग्रेस में उद्धृत।

पिछले परिच्छेद में हम लोगों को सर जान सिली द्वारा निर्धारित नीति का परिचय मिल चुका है। 'हिन्दुस्तान की एक जाति को दूसरे से लड़ाकर विद्रोह दमन किया गया था, और जब तक हिन्दुस्तान की जनता को एक राष्ट्र में गुँथे जाने से रोका जा सकेगा, बृटिश साम्राज्य अटल और निश्चित हो सकेगा। सेना में इस नीति का प्रयोग सफलता पूर्वक किया जा चुका था, जनता को भी एक राष्ट्र में गुथे जाने से रोकने के लिये इसी नीति का अनुसरण एक मात्र सम्भव साधन था। इसलिये एक जाति को दूसरी के विरुद्ध खड़ी करने की नीति का समावेश जन समूह में भी किया गया। हिन्दू और मुसलमान-हिन्दुस्तान की दो बड़ी जातियों को एक दूसरी के विरुद्ध खड़ी कर देने की योजना आरम्भ की गई। इस योजना का श्री गणेश सर्व प्रथम अलीगढ़ मुसलिम कालेज के उत्साही युवक और कार्यशील प्रिंसूपल श्री बेक द्वारा हुआ। किसे सन्देह हो सकता था कि एक स्कूल अध्यापक के द्वारा हिन्दुस्तान के जीवन में वह आग लगा दी जायगी जो निरन्तर हमारे सर्वनाश की धमकी देती रहेगी।

हम लोगों ने पिछले परिच्छेद में देखा है कि सौ वर्षों के लगातार दमन के कारण मुसलमानों की स्थिति अत्यन्त दयनीय हो गई थी, और जिस अंश तक हिन्दुओं को उस दमन की विभीषिका से अवकाश मिला था, उस अंश तक उनकी स्थिति मुसलमानों से अच्छी हो गई थी। इसके अतिरिक्त मुसलमान अंग्रेजी शिक्षा और शासन से अपनी आरंभिक घृणा के कारण और अंग्रेजों को अपवित्र समझकर अपने को अलग रखे रहे;

किन्तु हिन्दुओं ने दोनों ही को खूब अपनाया और इस कारण उनके सामाजिक और आर्थिक जीवन का विकास भी अपेक्षाकृत मुसलमानों से अधिक हुआ। इस प्रकार हिन्दू और मुसलमान इन दो सम्प्रदायों के मध्य एक स्पष्ट आर्थिक और सामाजिक अन्तर उत्पन्न हो गया था। श्री बेक ने इस अन्तर की परिस्थिति को अपने उद्देश्य की पूर्ति का साधन बनाया।

प्रिन्सपल बेक ने अलीगढ़ कालेज से सम्बन्धित इन्स्टिटयूट गजट पर सबसे पहले अधिकार जमाया और उन्होंने उसका उपयोग उस नीति का प्रचार करने में आरम्भ किया जो मुसलमान जाति में दूसरे लोगों से अलग होकर सोचने की प्रवृत्ति उत्पन्न करे। सर सैयद अहमद खाँ का आवेश अवस्था के साथ धीरे-धीरे शिथिल पड़ रहा था। श्री बेक उन्हें यह बात समझा सकने में सफलता प्राप्त कर सके कि मुसलिम जाति के उत्थान और विकास का एक मात्र ठोस साधन ऐंग्लो-मोहम्मडन-मैत्री था। यह बात जितने तर्क के साथ कही गई, उतनाही उसके परिणाम का आकर्षक और लुभावना चित्र खींचा गया। अब तक के प्रचंड राष्ट्रीय श्री सैयद बृटिश मैत्री की मृगमरीचिका के पीछे दौड़ पड़े। श्री बेकने सैयद प्रसिद्ध के नाम का पूर्ण उपयोग किया और इस प्रकार एक महान व्यक्ति और नेता के व्यक्तित्व का लाभ उठा कर 'इन्स्टिटयूट गजट' के द्वारा अपनी बातें मुसलमानों के पास तक पहुँचाने में सफल होने लगे। श्री सैयद के अब तक के सभी राष्ट्रीय उद्गारों के विपरीत बातें गजट में निकलने लगीं, और बेक ने बड़ी चालाकी से यह प्रतीत होने दिया

कि वे सारी बातें श्री सैयद द्वारा कही जा रही थीं। जिस बंगाली जनता के उत्थान में श्री सैयद के गर्व की सीमा न थी, उन्हीं के सम्बन्ध में उनसे यह कहलाया गया कि बंगालियों द्वारा किये जाने वाले प्रत्येक कार्य मुसलिम-हित विरोधी हैं। वास्तवमें बंगाल राष्ट्रीय जाग्रति का केन्द्र था, और वही राष्ट्रीय आन्दोलन का नेतृत्त्व कर रहा था। बंगाल की राष्ट्रीय शक्ति में विरोध और अन्तर उत्पन्न कर देना श्री बेक को अभीष्ट था, इस दृष्टिकोण से उनका निशाना ठीक लक्ष्य पर लगा। परिणाम स्वरूप राष्ट्रीय पत्रों ने 'इन्स्टीटयूट गजट' के लेखों को श्री सैयद का का विचार समझ कर उनकी कटु आलोचना आरम्भ कर दी, और इस प्रकार एक अन्तर का वातावरण-सा बनाने में श्री बेक सफल होने लगे। श्री बेक ने केवल इस परिस्थिति को पैदा ही नहीं किया, यहाँ और इंगलैंड दोनों ही देशों में इसका खूब प्रचार किया। आरम्भ ही से 'काँग्रेस' हिन्दुस्तान की सम्पूर्ण जनता का प्रतिनिधित्व करने का दावा करती थी। इस दावे को व्यर्थ बनाने के उद्देश्य से श्री बेक द्वारा उत्पन्न की गई परिस्थिति का जोरों से शोर मचाकर यह कहा गया कि मुसलमान काँग्रेस से केवल अलग ही नहीं है, बल्कि विरोधी भी हैं। सन् १८८८ ई० में सर आकलैंड कालविन युक्त प्रान्त के लेफ्टिनेन्ट गवर्नर थे। काँग्रेस की आरम्भिक सफलता से नौकर शाही घवरा सी उठी थी, और उसे इस लेफ्टिनेन्ट गवर्नर में एक ऐसा वक्ता और प्रचारक मिला जो काँग्रेस का विरोध करने में श्री बेक का परिपूरक सिद्ध हुआ। काँग्रेस के विरुद्ध इतना शोर किया

गया और विरोध को इतना महत्व दिया गया कि श्री ह्यूम को इसका प्रतिवाद करने के लिये विवश होना पड़ा । श्री ह्यूम ने प्रति वाद करते हुये कहा था:—

मुसलमान किसी भी दूसरे लोगों के बराबर बुद्धिमान हैं, और सबसे अधिक लोकतंत्र प्रिय हैं। काँग्रेस से विरोध के लिये मुसलमानों का उपयोग उन अफसरों द्वारा किया जा रहा है जो 'फूट डालकर शासन करो' के सिद्धान्त से चिपके हुये हैं।*

श्री ह्यूम ने सर सलार जंग, जस्टिस बदरुद्दीन तैयब और जस्टिस सैयद महमूद के प्रसिद्ध नामों का उल्लेख किया जो काँग्रेस के अग्रगण्य व्यक्ति थे। लेकिन फिर भी प्रचार का शोर अब भी समाप्त न हुआ तो काँग्रेस के चौथे अधिवेशन के अवसर पर सुन्नी सम्प्रदाय के नेता लखनऊ के शेख रजा हुसेन खाँ ने एक फतवा प्रकाशित कर काँग्रेस का समर्थन किया और कहा, "मुसलमान नहीं बल्कि उनके सरकारी मास्टर काँग्रेस के विरोधी हैं।†

किन्तु श्रीबेक इतने ही से निराश होनेवाले व्यक्ति नहीं थे। अलीगढ़ कालेज के प्रिंस्पल का स्थान ऐसा था, जहाँ से मुसलिम प्रवृत्ति को एक निर्धारित मार्ग पर ले चलने का प्रयत्न बराबर किया जा सकता था, और फिर जब सर सैयद जैसे व्यक्ति वश में कर लिये गये थे तो और परिस्थिति चाहे जैसी भी हो, निराश

---

* दि हिस्ट्री आव दि काँग्रेस में उद्धृत।

† हिस्ट्री आब दि काँग्रेस में उद्धृत।

होने की तो कोई बात ही नहीं थी। श्री वेक ने इस आग को अधिक तेजी से सुलगाना आरम्भ किया। सन् १८८९ ई० में श्री चार्ल्स ब्राडला ने बृटिश पार्लियामेन्ट में एक बिल पेश किया जिसका उद्देश्य हिन्दुस्तान में पार्लिमेन्टरी शासन की स्थापना करना था। साम्राज्यवाद के पोशक अँग्रेज हिन्दुस्तान में ऐसे शासन की स्थापना की कल्पना भी नहीं करते थे। इसलिए यह बिल पार्लियामेन्ट में यों ही अस्वीकृत होती, लेकिन वेक ने इस परिस्थिति का उपयोग साम्प्रदायिकता को बल प्रदान करने और उसे ठोस बना लेने के लिये किया। उन्होंने मुसलमानों को अपना एक अलग संघ बनाने के लिये उकसाया। श्री वेक अपने उद्देश्य को पूरा करने के लिये कहाँ तक नीचे गिर सकते थे, इसका अनुमान नीचे की घटना से किया जा सकता है :—

"श्री वेक ने उस बिल के विरोध में हिन्दुस्तान के मुसलमानों की ओर से एक आवेदनपत्र तय्यार किया, जिसमें कहा गया कि हिन्दुस्तान एक राष्ट्र नहीं है, इसलिये पार्लियामेन्टरी शासन-प्रणाली व्यवस्था इस देश के लिये उपयुक्त नहीं है। इस आवेदन पत्र के लिये उन्होंने २०७३५ हस्ताक्षर प्राप्त किये; यह कहना तो असम्भव है कि इस आवेदन पत्र का वास्तविक अर्थ इनमें से कितने लोगों को बतलाया गया, लेकिन इसमें सन्देह नहीं है कि श्री वेक ने इन हस्ताक्षरों को इकट्ठा करने के लिये अलीगढ़ कालेज के विद्यार्थियों का पूर्ण उपयोग किया। उनका एक जत्था लेकर वे स्वयं दिल्ली गये थे। वहाँ जाकर वे जुमा मसजिद के पास खड़े हो गये और नमाज के बाद मुसलमानों से यह कहकर उस

आवेदन पत्र पर हस्ताक्षर लिये, कि हिन्दुओं के गो-वध बन्द करने के प्रयत्न के विरोध में हस्ताक्षर लिये जा रहे हैं।"*

'अंजुमन इस्लामियाँ' नाम की एक सभा इँगलैंड में स्थापित थी। इस सभा में भाषण करते हुये श्री बेक ने दो बातों पर विशेष जोर दिया। पहली बात यह थी कि हिन्दू-मुसलिम एकता असम्भव है, क्योंकि उनमें रीति रिवाज और संस्कृति के अन्तर के अतिरिक्त परम्परा गत सङ्घर्ष होता चला आ रहा है। उन्होंने ऐंग्लो मुसलिम मैत्री की सम्भावना अधिक व्यवहारिक बतलाई। दूसरी बात उन्होंने यह कही कि यदि पार्लियामेन्टरी शासन की व्यवस्था की भी जाय तो हिन्दुस्तान में उसका कार्यान्वित किया जाना असम्भव है। इन दो बातों को ब्रूटेन के लोगों के मन में बैठा देने के लिये श्री बेक अत्यन्त उत्सुक थे।

बेक के इस भाषण का विश्लेषण करने पर इसमें कोई सन्देह शेष नहीं रह जाता है कि जब साम्प्रदायिक जन्तु का पोषण गर्भ में किया जा रहा था, उसी समय दो राष्ट्रों के रूप में पाकिस्तान की नींव डाल दी गई, और इसके साथ ही वर्तमान भारत-सचिव लियो पोल्ड एमरी और कायदे आजम श्री मुहम्मद अली जिन्ना को आज यह कहने के लिये कि हिन्दुस्तान लोक तंत्र शासन प्रणाली के अनुपयुक्त है, उसी समय मार्ग प्रशस्त बना दिया गया। लेकिन मजाक यह है कि अपनी चरमावस्था पर पहुँच कर भी साम्प्रदायिकता का भूत हिन्दुस्तान का पिंड छोड़ना नहीं चाहता है, और यह बात आज से अधिक स्पष्ट और कभी भी

* कम्यूनल टैंगिल।

नहीं थी। महात्मा गाँधी द्वारा स्वीकृत श्री राजगोपालाचारी के हिन्दुस्तान के बँटवारे की योजना भी आज इस भूत का पूर्ण भोग सिद्ध हो रही है। इसकी विशद विवेचना हम दूसरे परिच्छेद में करेंगे, यहाँ इतना ही है कहना पर्याप्त है कि साम्राज्य ने अपने अस्तित्व की रक्षा और दृढ़ता के लिये जिस साम्प्रदायिकता का निर्माण किया है, उसका विनाश वह भरसक कभी भी होने नहीं देगा। यहाँ पर एक और बात भी स्पष्ट है। श्री चार्ल्स ब्राडला के बिल के विरोध में श्री बेक ने जो आवेदन पत्र तय्यार किया, उसे सम्पूर्ण मुसलिम जनता की आकांक्षा का प्रतीक बतलाया गया; किन्तु अभी हम देख चुके हैं कि मुसलमानों के अग्र गण्य नेताओं ने और श्री ह्यूम ने भी यह स्पष्ट कर दिया था कि मुसलमानों का उद्देश्य और उनकी आकांक्षायें इससे भिन्न थीं। वास्तव में वह आवेदन पत्र यदि किसी की आकांक्षा का प्रतीक था तो वह साम्राज्यवादी और पूँजीवादी शासकों का था। जो साम्प्रदायिकता है, वही हिन्दुस्तान के मुसलमानों की आकांक्षा है, और जो व्यक्ति या संस्था साम्प्रदायिकता का पोषण करती है वह मुसलिम जनता के मत का प्रतिनिधित्व करती है, यह भली भाँति निश्चित हो गया। इस नीति को अपनाकर अँग्रेजों ने फिर कभी छोड़ा नहीं। हम आगे चलकर देखेंगे कि इस नीति का प्रयोग दूसरे सम्प्रदायों के साथ भी किया गया है, और इसी के अनुसार श्री अम्बेदकर अपनी सेवाओं और त्याग के कारण नहीं, क्योंकि सेवा और त्याग नाम की वस्तु से उन्होंने कभी भी कोई सम्बन्ध नहीं रखा, बल्कि वृटिश सरकार की कृपा के कारण आज अछूतों

के एकमात्र नेता और प्रतिनिधि हैं। इस मार्ग प्रदर्शन के लिये श्री बेक अवश्य ही वृटिश साम्राज्य के धन्यवाद के पात्र हैं।

लेकिन श्री बेक की कहानी अभी समाप्त नहीं हुई। श्री बेक अच्छी तरह समझते थे कि साम्प्रदायिकता का ठोस रूप दिये बिना उसे स्थायी बनाना असम्भव था, इसीलिये सन् १८९३ ई० में उन्होंने 'मोहम्मडन ऐंग्लो ओरियंटल डिफेन्स असोशियेशन आव अपर इंडिया' नाम की एक मुसलिम संस्था स्थापित की और वे स्वयं इसके मंत्री हुये। इस संस्था के उद्देश्य थे, १—मुसलिम सम्प्रदाय के दृष्टिकोण से अँग्रेजी जनता को साधारणतया और वृटिश सरकार को विशेषतया परिचित कराना और मुसलमानों के राजनीतिक अधिकारों की रक्षा करना। २—ऐसे कार्यों और युक्तियों का समर्थन करना, जिसमें वृटिश शासन दृढ़ हो। ३—जनता में राजभक्ति की भावना फैलाना, और ४—मुसलमानों में राजनीतिक आंदोलन की प्रवृत्ति को रोकना। इस सँस्था का कोई मूल्य न होता यदि श्री बेक का प्रचार और वृटिश सरकार द्वारा इसकी मान्यता न होती। अवसर ढूँढ़कर पहले प्रवृत्तियों को उत्तेजित किया जाता था, फिर घटनायें हो जाने पर उससे भी अधिक तेजी से उनका प्रचार किया जाता था। आजमगढ़ जिले में मऊ के पास गो-वध प्रश्न को लेकर हिंदू और मुसलमानों में एक बलवा हो गया जो 'गो रक्षिणी' नाम से प्रसिद्ध है; ऐसा ही एक साम्प्रदायिक दंगा बम्बई में भी हो गया। उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त में हिन्दुस्तान के दो दूरस्थ प्रान्तों में होनेवाली इन घटनाओं के मूल कारण चाहे जो भी बतलाए जाँय, लेकिन इतना

स्पष्ट है कि उस समय सभ्य और सुसंस्कृत अँग्रेज जाति के कुछ एजेन्ट हिंदुस्तान में साम्प्रदायिकता की आग लगाने में सचेष्ट और प्रयत्नशील थे। अँग्रेज़ी शासन काल के पूर्व इतिहास में ऐसी कोई घटना नहीं मिलती। अँग्रेजी शासन काल में भी यह पहली बार ऐसे दो दंगे हुये, इस समय इन घटनाओं के होने का चतुर वृटिश एजेन्टों की कारगुजारी की सफलता के अतिरिक्त दूसरा क्या कारण हो सकता था? और इसके बाद ही इस प्रकार की घटनायें इस देश में साधारण नियम क्यों बन गईं? ऐसी महत्वहीन और तुच्छ घटनायें संसार के प्रत्येक कोने में नित्य ही हुआ करती हैं, और एक मजाक से अधिक उनका कोई भी मूल्य नहीं होता है; लेकिन श्री बेक ने इन उपद्रवों को अपने उद्देश्य की पूर्ति का साधन बनाया। एक लेख द्वारा उन्होंने इसे असाधारण महत्व दिया, और इन घटनाओं का प्रचार खूब जोरों से किया गया। राई का पर्वत बनाने की उनकी शैली और उनकी कूटनीति का अनुपम ढंग ध्यान देने योग्य है :—

"कुछ वर्षों के भीतर इस देश में दो प्रकार के आंदोलनों के विकास देखे गये हैं। एक तो हिंदुस्तान की राष्ट्रीय काँग्रेस का और दूसरा गो-वध के विरोध का। पहला अँग्रेजों के विरुद्ध है, और दूसरा मुसलमानों के विरुद्ध। काँग्रेस का उद्देश्य शासन सूत्र अँग्रेजों के हाथ से निकाल कर हिंदुओं के हाथ में सौंपना है। इसकी माँगें हैं हथियार कानून रद्द कराना, सैनिक व्यय को कम कराना, जिसका अनिवार्य परिणाम सीमाप्रांत की रक्षा को निर्बल

बनाना है। इन माँगों से मुसलमानों की कोई सहानुभूति नहीं हो सकती है। हिंदू गो-वध बन्द करने के उद्देश्य से मुसल्मानों का बहिष्कार तक करने के लिये तय्यार हो गये हैं। बम्बई और आजमगढ़ के बलवे इसके स्पष्ट उदाहरण हैं। इसलिये मुसलमानों और अँग्रेजों की एकता इनका विरोध करने के लिये और हिंदुस्तान में पार्लियामेंटरी शासन को जो हिंदुस्तान की आवश्यकता और स्वभाव के एकदम प्रतिकूल है, असम्भव कर देने के लिये नितांत अनिवार्य है। इसलिये हम बृटिश शासन के प्रति भक्ति और ऐंग्लो मुसलिम मैत्री का समर्थन करते हैं।"*

उस देश के दुर्भाग्य का कोई ठिकाना है, जिसके सामाजिक और राजनीतिक जीवन में इतना विष, इतना विरोध, और इतनी प्रतिक्रिया भर दी जाय। हिंदू राज्य का जो नारा आज साम्प्रदायिक मुसलमानों द्वारा बुलंद किया जा रहा है, यह उनके अनुभव की बात नहीं है, लेकिन जैसा कि उपर्युक्त उद्धरण से स्पष्ट है, इसे साम्राज्य वादी बृटेन ने श्री बेक के द्वारा आरम्भ कराया था। श्री बेक अपनी स्थिति से सतर्क थे, कहीं शिकार भड़क न उठे इसलिये जो कुछ कहते या लिखते उसे सर सैयद अहमद के नाम से करते। सर सैयद का यह आत्म समर्पण, उनका यह मनोभाव और श्री बेक के साथ उनकी गुटबन्दी मुसलमानों को खलने लगी। सर सैयद के मित्र और सहकर्मी अल्लामा शिवली नुमानी ने एक समय के कट्टर राष्ट्रीय और उग्र नेता के इस परिवर्तन पर अपने हृदय की वेदना और आवेश

* 'मुसलमानों का रोशन मुस्तकबील' ले० अख्तर हुसेन।

प्रकट करते हुये स्वतः पूछा था, "यह क्यों हुआ? इसके क्या कारण थे? वह क्या वस्तु थी, जिसने यह आकस्मिक विपरीत धारा बहा दी?"* उन्होंने जोरदार शब्दों में मुसलमानों को सर सैयद के नेतृत्व से सचेत किया और उनके कार्यों तथा नीत को मुसलमानों के लिये खतरनाक और दोषपूर्ण बतलाया। नुमानी के अतिरिक्त सर सैयद के दूसरे सहकर्मी नवाब मोहसिनुल मुल्क, ख्वाजा अलताफ हुसेन हाली और नवात विकरुल मुल्क इत्यादि भी अपने विरोध को और अधिक दबा न सके। शिक्षित तथा व्यवसायी मुसलमानों के अतिरिक्त उल्मा काँग्रेस के समर्थक थे। मौलाना रशीद अहमद गंगोही अलीगढ़ के मौलवी लुतफुल्ला और मुजफ्फर नगर के मुल्ला मुहम्मद मुराद इत्यादि जैसे सम्मानित व्यक्ति काँग्रेस के प्रबल समर्थक थे, और इस प्रकार सर सैयद की नीति और कार्यों के विरोधी थे। लेकिन धन्य हैं श्री बेक और धन्य है हमारी न्याय प्रिय बृटिश सरकार जिसने मुसलमानों के चिल्लाते रहने की परवाह न कर श्री सैयद को उनका एकमात्र प्रतिनिधि और साम्प्रदायिकता, उनकी अविभाज्य आकांक्षा घोषित किया। केवल इतना ही नहीं, इसका देश और विदेश में खूब प्रचार भी किया।

श्री बेक सन् १८९९ ई० के सितम्बर में मर गये। अँग्रेजी पत्रों ने इनकी मृत्यु पर समवेदना प्रकट करते हुये साम्राज्य के प्रति इनकी सेवाओं की खूब प्रशंसा की। श्री बेक साम्राज्य के विशिष्ट व्यक्तियों और उच्च पदाधिकारियों के क्षेत्र में विख्यात और

* उपयुक्त पुस्तक।

सम्मानित व्यक्ति थें, और साम्राज्य के प्रति अपनी सेवाओं के कारण अँग्रेजों की श्रद्धा के पात्र भी हो गये थे। सर जान स्ट्रैची ने इनकी मृत्यु के पश्चात् इनकी प्रशसा करते हुये वृटिश जनता की ओर से श्रद्धाँजलि अर्पित किया था और यह कहा था कि कि श्री वेक ने साम्राज्य निर्माण के कार्य में व्यस्त रहकर एक दूर देश में सैनिक की भाँति मृत्यु प्राप्त की।

इन अनेक घटनाओं के साथ वंग-विच्छेद की एक दूसरी महत्वपूर्ण घटना ने सम्पूर्ण हिन्दुस्तान का ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया। लार्ड कर्जन का शासन स्वेच्छाचारिता और साम्राज्यवादी नीतियों के लिये प्रसिद्ध है, लेकिन सबसे अधिक उनकी प्रसिद्धि वंग विच्छेद के कारण हुई यह वह समय था जब अनेक गुप्त और प्रकट समितियाँ देश की मुक्ति के लिये उतावली हो रही थीं, और बंगाल में हिन्दुस्तान की दबी हुई इच्छाओं की भीषण ज्वाला धधक रही थी। इसलिये लार्ड कर्जन ने सन् १९०४ ई० में बंगाल की शक्ति को छिन्न-भिन्न करने के उद्देश्य से वंग-विच्छेद द्वारा बंगाली भाषा-भाषी लोगों को उनकी इच्छा के विरुद्ध दो प्रान्तों में अलग अलग विभाजित कर दिया। पूर्वी भाग में मुसलमान बहुसंख्यक थे। राष्ट्रीयता से अलग करने के लिये और मुसलमानों का समर्थन प्राप्त करने के लिये बंगाल के पूर्वी भाग को लार्ड कर्जन ने मुसलिम प्रान्त कहकर घोषित किया। दूसरी युक्तियाँ भी काम में लायी गईं। उदाहरण के लिये प्रो० गुरुमुख निहालसिंह का कथन उद्धरण करना पर्याप्त होगा:—

"नवाब सलीमुल्ला खाँ जो बंग-विच्छेद के प्रबल विरोधी थे और जिन्होंने इस योजना को अमानुषिक कहकर घोषित किया था बाद को वायसराय के समर्थक बन गये। बंग-विच्छेद के तुरंत पश्चात् बृटिश सरकार ने नवाब साहब को एक लाख पौं० कर्जा नाम मात्र के सूद पर दिया।"*

इस विभाजन का प्रकाश्य कारण यह बतलाया गया कि बंगाल का प्रान्त इतना बड़ा था कि उसका शासन एक लेफ्टिनेन्ट गवर्नर द्वारा होना असम्भव हो रहा था। इस कठिनाई को सुलझाने के लिये लार्ड कर्जन से यह प्रार्थना की गई कि बंगाल को मद्रास और बम्बई की भाँति सपरिषद् गवर्नर का प्रान्त बनाकर केवल शासन की कठिनाई दूर ही न की जा सकती थी; बल्कि शासन अधिक सुव्यवस्थित बनाया जा सकता था। किन्तु कर्जन को सुव्यवस्था नहीं देखनी थी, उन्हें साम्राज्य की दृढ़ता और शोषण की निश्चित गति की चिंता थी। कलकत्ता में व्यापारियों की सभा में भाषण करते हुये उन्होंने कहा था कि, "शासन और शोषण साथ साथ चलते हैं।"† वास्तव में इस बंग-विच्छेद योजना का मूल कारण बंगाल की एकता, उसकी राष्ट्रीयता और उसके राजनीतिक आन्दोलन की शक्ति को जो साम्राज्य के अस्तित्त्व को धमकी दिया करती थी, निर्बल बना देना था। इस विभाजन का उद्देश्य था, बंगाल प्रान्त की बढ़ती हुई राष्ट्रीयता

* लैन्डमार्क्स इन इंडियन कान्स्टिट्यूशन ऐन्ड डेव्हलपमेन्ट।

† दि हिस्ट्री आफ दि काँग्रेस में उद्धृत।

को रोकने के लिये मुसलमानों को एक प्रान्त में अलग कर हिंदुओं के प्रतिरोध में खड़ा कर देना।

वास्तव में हिन्दू और मुसलमान कोई भी इस योजना क समर्थक नहीं था। केन्द्रीय मुसलिम असोसियेशन कलकत्ता" के मंत्री नवाब अमीर हसन खाँ ने इस योजना का प्रबल विरोध किया था। नवाब जादा ख्वाजा अतीकुल्ला खाँ ने सन् १९०६ ई० की कलकत्ता काँग्रेस में कहा था:—

"मैं तुरन्त आपको बतला देना चाहता हूँ कि यह कहना सही नहीं है कि पूर्वी बंगाल के मुसलमान बंग-विच्छेद के समर्थक हैं। वास्तविक बात यह है कि केवल कुछ चलते-पुर्जे मुसलमान अपने मतलब के लिये इस योजना का समर्थन कर रहे थे।"*

बंग-विच्छेद ने समस्त हिन्दुस्तान में एक भीषण आग प्रज्ज्वलित कर दी। स्वदेशी आन्दोलन ने प्रथम बार अत्यन्त उग्ररूप धारण किया, और इसमें सन्देह नहीं कि इस आन्दोलन के परिणाम से इंगलैंड के पुतलीघर आतंकित हो उठे। हिंसात्मक आन्दोलन की विभीषिका बंगाल से आरम्भ होकर पूरे देश में फैल गई। एक बार ऐसा प्रतीत हुआ कि हिन्दुस्तान के क्षोभ और असंतोष की आग की लपट कुछ भी भस्म किये बिना शेष नहीं छोड़ेगी। जिस अंश तक आन्दोलन उग्र होता गया, सरकारी दमन और बृटिश कूटिनीति भी उसी अंश तक तीव्रतर होती गई। इस कूटनीति का इतिहास जानने के लिये हमें फिर अलीगढ़ कालेज के प्रिन्सपल की ओर लौटना पड़ेगा।

---

* उपर्युक्त पुस्तक गुरुमुख निहालसिंह।

श्री बेक की मृत्यु के बाद 'ऐंग्लो मुसलिम डिफेन्स असोसियेशन' के लंदन शाखा के संचालक श्री थियोडर मारिसन अलीगढ़ कालेज के प्रिंसपल नियुक्त हुये; किन्तु इनका कार्य काल साधारण और अल्प था। सन् १९०५ ई० में उन्होंने कालेज छोड़ दिया, और उनके पश्चात् श्री आर्च बोल्ड बेक जैसे उत्साही और क्रियाशील एक दूसरे व्यक्ति प्रिंसपल नियुक्त हुये। प्रिंसपल आर्च बोल्ड न केवल बेक के स्थान की पूर्ति ही की, बल्कि वे कारनामें कर दिखाये जिसके लिये अँग्रेजी साम्राज्य उनका सर्वदा आभारी रहेगा। अब तक के सरकारी और गैर सरकारी प्रयत्नों के परिणाम-स्वरूप मुसलमान नवाबों, रईसों और अवसर वादियों के एक ऐसे गुट का निर्माण हो गया था जो 'फूट डाल कर शासन करो' के चक्र में फँस कर साम्प्रदायिकता की राग अलापने लगा था। हिन्दुस्तान की शासन व्यवस्था में कुछ वैधानिक परिवर्तन की चर्चा इस शताब्दी के आरम्भ होने के साथ ही गरम थी। अंग्रेज राजनीति में पाशविक शक्ति के उतना अधिक कायल नहीं हैं, जितना अमानुषिक कूटनीति के। वे इस चिंता में लग गये कि हिन्दुस्तान के भावी शासन यंत्र का इस प्रकार निर्माण किया जाय कि हिन्दुस्तान का सम्मिलित जीवन असम्भव बन जाय, और राष्ट्रीयता के विकास के मार्ग में गहरी खाई पड़ जाय। सरकारी कर्मचारी गण और प्रिंसपल आर्च बोल्ड ने इस उद्देश्य को पूरा करने के लिये साम्प्रदायिक गुट को अपना साधन बनाया। इस साम्प्रदायिक गुट की भी प्रत्येक क्रिया पर एक आशंकापूर्ण, विवेचनात्मक दृष्टि रखी जाती थी। उदाहरणतः

अलीगढ़ कालेज के मंत्री नवाब मोहसिनउल मुल्क ने 'अंजुमने उर्दू' संस्था स्थापित किये जाने पर उसका अध्यक्ष पद स्वीकार किया, किन्तु बृटिश सरकार को यह पसन्द नहीं था। वह किसी स्वतंत्र मुस्लिम संस्था का संगठन नहीं होने देना चाहती थी, क्योंकि स्वतंत्र संस्थाओं के द्वारा सामाजिक और राजनीतिक जीवन की प्रगति तथा राष्ट्रीयता के विकास की आशंका संभव थी। अलीगढ़ कालेज तथा उससे सम्बन्धित लोगों के जिस गुट पर सरकार ने अधिकार प्राप्त कर लिया था, उनमें से किसी को भी स्वतंत्र मार्ग पर स्वच्छन्दता पूर्वक चले जाने देना उसे पसन्द नहीं था। एक निर्धारित मार्ग पर ही इन्हें चलाकर अंग्रेज अपना उद्देश्य पूरा कर सकते थे, इसलिये नवाब मोहसिनउल मुल्क को एक स्वतंत्र संस्था में भाग लेने से रोकने के लिये युक्त प्रान्त के लेफ्टिनेन्ट गवर्नर स्वयं अलीगढ़ गये और कालेज के संरक्षकों के सम्मुख स्पष्ट रूप से यह प्रस्ताव उपस्थित किया कि नवाब साहब या तो कालेज के मंत्री रह सकते थे, या 'अंजुमने उर्दू' के सभापति। संसार के इतिहास में इस प्रकार का नियम शायद ही कहीं मिले; किन्तु शासक की शक्ति अपार होती है, वह उन असंख्य धाराओं का मूल स्रोत है, जो देश के जीवन में अनेक संसर्गों और प्रवृत्तियों के साथ वहा करती है, जो शासक की सुविधा के अनुसार देश को छिन्न-भिन्न और विपन्न कर सकता है, या एकता के सूत्र में बाँधकर उसे शक्ति शाली और सम्पन्न बना सकती है। हजारों और लाखों स्त्री पुरुष शासक की कृपा का लेश मात्र प्राप्त करने की आशा लगाये रहते

हैं। क्या आश्चर्य्य ! यदि उसी कृपा और सम्मान का लोभ दिखा कर इसी देश के कुछ लोगों से अपने ही देश के विनाश का बीजारोपण कराया गया।

श्री आर्च बोल्ड ने १० अगस्त सन् १९०६ ई० को गवर्नर जनरल के पास एक मुसलिम प्रतिनिधि मंडल भेजने की आवश्यकता पर जोर देते हुये एक पत्र लिखा:—

वायसराय महोदय के प्राइवेट सेक्रेटरी कर्नल स्मिथ ने मुझे सूचित किया है कि वायसराय मुस्लिम प्रतिनिधि मंडल से मिलने के लिये तय्यार हैं। उनकी (वायसराय की) राय है कि पहले एक जाब्ते का पत्र भेजकर प्रतिनिधि मंडल से मिलने के लिये उनकी स्वीकृति की प्रार्थना की जाय। इस सम्बन्ध में मैं कुछ विचार प्रकट करना चाहूँगा। जाब्ते का पत्र मुसलिम प्रतिनिधियों के हस्ताक्षर के साथ भेजना चाहिये। प्रतिनिधि मंडल में सभी प्रान्तों के प्रतिनिधि सम्मिलित होना चाहिये। तीसरी विचारणीय बात आवेदन पत्र के सम्बन्ध में है। मैं राय दूँगा कि हम लोग सर्व प्रथम दृढ़ राज-भक्ति प्रकट करते हुये, आवेदन पत्र लिखना आरम्भ करें। स्वराज्य के मार्ग में कदम उठाने के सरकारी निर्णय की सराहना करनी चाहिये, किन्तु हमें अपना यह भय भी "स्पष्ट करना चाहिये कि संयुक्त निर्वाचन का सिद्धान्त यदि लागू किया जायगा तो अल्प संख्यक मुसलिम सम्प्रदाय के लिये वह हानिकर सिद्ध होगा। इस बात की सविनय प्रार्थना की जानी चाहिये कि मुसलमानों की राय के अनुसार मजहब के आधार पर नाम जदगी की जानी चाहिये

या प्रतिनिधित्व का सिद्धान्त लागू होना चाहिये। हम लोगों को यह भी कहना चाहिये कि हिन्दुस्तान जैसे देश में जमींदारों की राय पर विशेष जोर देना उपयुक्त होगा। मेरी निजी राय में नामजदगी का समर्थन करना मुसलमानों के लिये अधिक बुद्धि मत्ता पूर्ण होगा, क्योंकि निर्वाचन की व्यावहारिकता का निर्णय करने का समय अभी नहीं आया है। निर्वाचन में मुसलमानों को अपना वास्तविक और पूर्ण भाग प्राप्त करना बड़ा कठिन होगा; किन्तु इन सभी बातों में मुझे पीछे ही रहना चाहिये। अग्रसर तो निश्चित रूप से आप ही लोगों को होना होगा। मैं आवेदन पत्र का मजमून तय्यार कर सकता हूँ, या उसे संशोधित कर सकता हूँ। यदि यह वम्बई में लिखा जाय तो मैं उसे देख लेने को तय्यार हूँ; क्योंकि आप लोग जानते हैं कि मैं इन सब बातों को उपयुक्त भाषा में भली भाँति व्यक्त कर सकता हूँ। कृपया इस बात का ध्यान रखिये कि शेष अल्प काल में यदि हम लोग एक शक्ति शाली आन्दोलन संगठित करना चाहते हैं तो हम लोगों को बहुत शीघ्रता करनी चाहिये।*

पृथक निर्वाचन और साम्प्रदायिकता को स्थायी और साथ ही वैधानिक भी बनाने के लिये यह एक भयानक षड़यंत्र था, और इस षड़यंत्र के आयोजन कर्ता प्रिन्सपल आर्च वोल्ड के साथ हिन्दुस्तान के भाग्य विधाता तत्कालीन गवर्नर जनरल

---

* मुसलमानी हिन्द की हयातसयासी ले० मोहम्मद मिर्जा क्म्यूनल ट्रैंगिल में उद्धृत।

लार्ड मिन्टो थे। जिन बातों को कट्टर साम्प्रदायिक मुसलमान भी सोच नहीं सकते थे, उन्हें अनेक युक्तियों से उनके मस्तिष्क में प्रवेश कराया गया, और 'मुझे पीछे ही रहना चाहिये' की अत्यन्त खोटी और लज्जापूर्ण नीति का अनुसरण किया गया। इस षड़यंत्र के अनुसार सन् १९०६ ई० में ३५ सदस्यों का एक प्रतिनिधि मंडल हिज हाइनेस आगा खाँ की अध्यक्षता में सम्भवतः श्री आर्च बोल्ड द्वारा तय्यार आवेदन पत्र लेकर वायसराय महोदय के पास पहुँचा। स्वर्गीय मौलाना मुहम्मद अली साहब ने कोकोनाडा काँग्रेस के अध्यक्ष पद से भाषण देते हुये इस अभिनय को 'आज्ञा पालन' बतलाया था। किंतु भली भाँति तय्यार किये हुये इस नाटक में वायसराय लार्ड मिंटो का पार्ट सर्वोत्तम कहा जा सकता है। उनके भाषण का कुछ अंश इस नाटक और षड़यंत्र का नंगा चित्र स्पष्ट करने में सहायक होगा:—

"जैसा कि मैं समझता हूँ, आपके आवेदन पत्र का सारांश इस बात की माँग है कि प्रतिनिधित्व की वह प्रथा जिसमें निर्वाचन प्रणाली जारी करने या विस्तृत करने का प्रस्ताव किया जाय और जो म्यूनिसपैलिटी, डिस्ट्रिक्ट बोर्ड या लेजिसलेटिव कौंसिल चाहे जिसे भी प्रभावित करती हो, मुसलिम सम्प्रदाय को एक पृथक सम्प्रदाय की हैसियत में स्वीकार करे। आपका कहना है कि वर्तमान निर्वाचन प्रणाली के अनुसार मुसलिम उम्मीद वार को निर्वाचित होने के बहुत ही कम अवसर हैं, और यदि किसी संयोग से वह चुना भी गया तो यह केवल तभी

संभव है जब वह अपने विचारों का बलिदान देकर अपने सम्प्रदाय के विरोधी बहुसंख्यक सम्प्रदाय के विचार का हो जाय, जिसका वह किसी भी रूपमें प्रतिनिधि नहीं है। और आपकी यह माँग भी उचित ही है कि आपके इस प्रस्ताव का मूल्य आपकी संख्या के आधार पर नहीं; बल्कि आपके सम्प्रदाय के राजनीतिक महत्व और साम्राज्य के प्रति की गई सेवाओं के आधार पर होना चाहिये। मैं आपकी माँगों से पूर्णतः सहमत हूँ।" ❀

कहानीकार और निर्देशक एक ही थे, केवल पात्र भिन्न-भिन्न थे। सन् १९०९ की शासन योजना के लिये यह अभिनय एक भूमिका था। अभी पूर्व परिच्छेद में हमने देखा है कि किस प्रकार एक सदी के भीषण दमन के द्वारा सम्पन्न, उन्नतिशील और शक्तिशाली मुसलिम जाति निराश्रित अशिक्षित और व्यवसाय हीन बना दी गई। लेकिन लार्ड मिन्टों ने सहसा इस "सम्प्रदाय के राजनीतिक महत्त्व और साम्राज्य के प्रति उनकी सेवाओं" के नये तथ्य का अनुसंधान किया। श्री रैम्जे मैकडानल्ड बृटिश पार्लियामेंट के प्रधान मंत्री होने के बहुत पूर्व जब वह मजदूर वर्ग के यशस्वी नेता थे, और जब उनकी भावनाओं में स्वार्थ के स्थान पर वास्तविकता और विश्वबन्धुत्व की लहरें हिलोरें मार रही थीं, 'अवेकनिंग आफ इंडिया' एक पुस्तक लिखकर हिन्दुस्तान के प्रति अपना उद्‌गार प्रकट किया था। उस पुस्तक का एक अंग उद्धरण के योग्य है :—

* 'लार्ड मिन्टो ले० जे० बुचन।

"कुछ ऐंग्लो-इंडियन सरकारी कर्मचारी मुसलिम नेताओं को उभाड़ देते हैं, यही कर्मचारी शिमला और लंदन की भी कुञ्जी ऐंठते रहते हैं। फिर मुसलिम सम्प्रदाय के प्रति विशेष पक्षपात दिखला कर हिन्दू और मुसलमान दोनों सम्प्रदायों में संघर्ष उत्पन्न कर देते हैं।"*

उस समय के भारत सचिव लार्ड मारले ने हिन्दुस्तान की शासन सुधार योजना में संयुक्त निर्वाचन प्रथा की सिफारिश की थी। अल्प संख्यकों के लिये उन्होंने विशेष संरक्षण की व्यवस्था की सलाह दी थी कि मार्ले ने वाइसराय मिन्टो को लिखा था :—"वड़ी नम्रता से मैं आपको एकबार याद दिला देना चाहता हूँ कि आपने पहले अपने भाषण में मुसलमानों के लिये अधिक माँग की चर्चा कर उन्हें उकसाया था।"†

मार्ले मिन्टो शासन-सुधार-योजना सन् १९०९ ई० में कानून के रूप में आई। हम लोगों ने देखा है कि साम्प्रदायिकता इस योजना की पृष्ट भूमि बनायी गयी, और उसे युक्ति पूर्वक विधान का रूप दिया गया। प्रथमवार हिन्दू और मुसलमान कानून द्वारा एक दूसरे से अलग कर दिये गये, और दोनों को अपना परम्परा गत सम्बन्ध विच्छेद कर भिन्न-भिन्न मार्गों में चलने के लिये विवश किया गया। इस योजना के द्वारा मुसलमानों को पृथक निर्वाचन का अधिकार दिया गया और संयुक्त—निर्वाचन में

---

* अवेकनिंग आफ इंडिया ले० रैमजे मैकडानल्ड।

† व्हिसकाउन्ट मारलेतरिकलेक्शन भाग २, ३२९।

भी वोट देने के उनके अधिकार में हस्तक्षेप नहीं किया गया। यह विशेष कृपा केवल साम्प्रदायिकता की उस वैधानिक नींव को दृढ़ बनाने के लिये की गई जो सन् १९०९ के विधान द्वारा डाली गई। यह सुविधा बंगाल, आसाम और पंजाब के अल्प संख्यक हिन्दुओं को नहीं दी गई; क्योंकि केवल मुसलिम सम्प्रदाय के ऊपर ही विशेष कृपा की वर्षा कर साम्प्रदायिकता विकसित रहने के योग्य बनाया जा सकता था। ३०००) सालाना आमदनी पर टैक्स देनेवाला मुसलमान वोटर हो सकता था, किन्तु उसी अधिकार को प्राप्त करने के लिये एक गैर मुसलिम के लिये ३,००,००,० रु० सालाना आमदनी पर टैक्स देना आवश्यक था। इसी प्रकार ग्रेजुएट होने के केवल तीन वर्ष बाद एक मुसलमान वोटर हो सकता था, किन्तु गैर मुसलिम के लिये ग्रेजुएट होने के तीस वर्ष बाद वोटर होने का अधिकार प्राप्त हो सकता था। ३,००० और ३,०००००, ३ वर्ष और ३० वर्ष यह अन्तर ध्यान देने योग्य है। प्रभु शक्ति द्वारा यह विशेष कृपा और ऐसी कल्पनातीत सुविधायें इस निश्चित उद्देश्य से दी गईं कि भविष्य में विशेष सुविधाओं की माँगें बराबर बढ़ती रहेंगी। वृटिश कूटनीति अपनी आवश्यकताओं के अनुकूल शासित जनता में प्रवृत्तियां उत्पन्न करने में प्रवीण तथा दक्ष होती है, और इतिहास ने इसे प्रमाणित भी कर दिया कि उनका यह उद्देश्य उनकी आशा के अनुसार ही सफल हुआ है। साम्राज्य-शासन-नीति की निश्चित योजना के अनुसार पृथक-पृथक निर्वाचन आज दो पृथक राष्ट्रों और दो पृथक राज्यों की माँग के रूप में हिन्दुस्तान के सम्मुख उपस्थित है।

बृटिश सरकार हिन्दुस्तान के दो महान् सम्प्रदायों को देश के प्रत्येक कोने में पृथक्‌ कर देने के लिये तुली बैठी थी। म्यूनिस्पल-बोर्ड और डिस्ट्रिक्टबोर्ड में भी पृथक निर्वाचन प्रथा प्रचलित करने का प्रस्ताव सरकार द्वारा लाया गया। संयुक्त प्रान्त में मुसलमान कुल जन संख्या के केवल १/७ थे, और वहाँ जब पृथक निर्वाचन नहीं था तो म्युनिस्पलबोर्ड में संयुक्त निर्वाचन द्वारा चुने हुये प्रतिनिधियों में ३१० मुसलमान और ५६२ हिन्दू थे। इसी प्रकार डिस्ट्रिक्टबोर्ड में भी १८९ मुसलमान और ४४५ हिंदू संयुक्त प्रथा के परिणाम स्वरूप निर्वाचित हुये थे। पृथक निर्वा-चन के अनुसार मुसलमानों को अपनी संख्या के अनुपात से म्युनिस्पलबोर्ड में केवल १२७ १/७ और डिस्ट्रिक्टबोर्ड में ९० ४/७ स्थान मिलते। यह एक ऐसी परिस्थिति थी जो स्पष्टतः पृथक निर्वाचन के विरुद्ध अकाट्य दलील उपस्थित करती थी, और जहाँ तक मुसलमानों का सम्बन्ध था उनके लिये किसी भी व्यवस्था द्वारा इससे अधिक सुविधा की परिस्थिति निर्माण करना असम्भव था। लेकिन अँग्रेज तो किसी की सुविधा-असुविधा की पर्वाह नहीं करते थे। वे हिन्दू और मुसलमानों के सम्मिलित जीवन को असम्भव बनाकर केवल साम्राज्य को दृढ़ बनाने के लिये प्रयत्न कर रहे थे। युक्त प्रान्त के लेफ्टिनेन्ट गवर्नर सर जान हेवेट जैसे प्रतिक्रियावादी और साम्राज्यवादी व्यक्ति भी नहीं चाहते थे कि युक्त प्रान्त की तत्कालीन व्यवस्था में कोई छेड़-छाड़ की जाय। प्रान्त एक निश्चित गति से चल रहा था, और सरल गति को छोड़कर केवल अव्यवस्था और उलझनपूर्ण स्थिति

ही उत्पन्न की जा सकती थी। श्री मुहम्मद अली जिन्ना ने भी म्युन्सिपलबोर्ड और डिस्ट्रिक्टबोर्ड में प्रथक निर्वाचन के प्रसार का विरोध किया। सन् १९१० ई० में इलाहाबाद के काँग्रेस अधिवेशन में श्री जिन्ना ने एक प्रस्ताव उपस्थित कर साम्प्रदायिकता के आधार पर प्रतिनिधित्व के सिद्धान्त की निन्दा की; मौलवी मजरुल हक ने इस प्रस्ताव का समर्थन किया, लेकिन 'वर्न' सरक्यूलर ने इन बातों की परवाह न कर म्युन्सिपल और डिस्ट्रिक्टबोर्डों में भी मुसलमानों के लिये पृथक निर्वाचन की व्यवस्था दी; और साथ-साथ संयुक्त निर्वाचन में भी उन्हें वोट देने का अधिकार दिया।

मार्ले मिन्टो शासन योजना ने हिन्दू और मुसलमान दो सम्प्रदायों के अतिरिक्त ज़मींदार वर्ग और व्यवसायिक वर्ग को भी वैधानिक रूप दिया। इस योजना का मूल आधार जाति-जाति में द्वेष और प्रतिस्पर्धा की भावना उत्पन्न करना था। इस बात का प्रयत्न किया गया कि समाज में ऐसे गुटों का निर्माण किया जाय जो परस्पर प्रतिद्वन्दिता और अपने निजी स्वार्थों में इस प्रकार एकांत चित्त से लगे रहें कि उन्हें उस स्वार्थ पूर्ण परिधि से बाहर सोचने का अवकाश न मिल सके। समाज में जो क्रियाशील और चैतन्य शक्तियां थीं, उन्हें अलग अलग गुटों में विभाजित कर सम्मिलित जीवन के लिये व्यर्थ बना देने का प्रयत्न किया गया। उन प्रवृत्तियों का समावेश किया गया जो स्पष्टतः साम्प्रदायिक थीं; और जो अब तक अस्पष्ट और केवल काल्पनिक थीं उन्हें वैधानिक रूप देकर सर्वदा के लिये

स्थायी बना दिया गया। शासन विधान द्वारा देश की राजनीति में ईर्ष्या, द्वेष और पारस्परिक असहानुभूति तथा खींचतान के पुष्ट बीज बोये गये। किंतु मार्ले मिन्टो योजना सम्पूर्ण हिंदुस्तान को अत्यंत प्रतिक्रियावादी प्रतीत हुई, और शासन में जो अधिकार इसके द्वारा प्राप्त हुआ, वह अत्यंत नगण्य और मजाक-सा था। 'इस योजना से सभी वर्ग और सम्प्रदाय के लोग क्षुब्ध थे। साम्प्रदायिक मुसलमानों ने भी अनुभव किया कि देश स्पष्टत: एक गहरे गड्ढे में चला जा रहा था। क्षोभ और निराशा ने प्रत्येक व्यक्ति और वर्ग को अपने हृदय को टटोलने के लिये और परिस्थितियों पर गम्भीर विचार करने के लिये विवश किया। एक समझौते का वातावरण उत्पन्न हो गया, और किसी न किसी एक सम्मिलित निर्णय पर पहुँचने के लिये लोगों में एक बेचैनी-सी दीख पड़ी। परिणाम स्वरूप श्री आगा खाँ और श्री वेडर वर्न ने समझौते का प्रयत्न आरम्भ किया। श्री वेडर वर्न काँग्रेस के सम्मानित व्यक्ति थे, और उनका एक महत्वपूर्ण स्थान था। वे एक ऐसी परिस्थिति में थे, जो दोनों सम्प्रदायों में समझौते का सफल प्रयत्न कर सकते थे। उन्होंने परिस्थितियों की गम्भीरता और हिंदुस्तान के दुर्भाग्य से क्षुब्ध और दु:खित होकर समझौते का एक निश्चित प्रयत्न करना निर्णय किया, और इस उद्देश्य से वे श्री आगा खाँ के पास पहुँचे। किन्तु बृटिश अधिकारियों को इस निर्दोष प्रयत्न में भी खतरा दीख पड़ा। इस सम्बन्ध में बृटिश अधिकारियों के भय की चर्चा करते हुये सन् १९११ ई० के कलकत्ता-कांग्रेस-अधिवेशन

में अध्यक्ष पद से भाषण करते हुये श्री विशन नरायन दर ने कहा था :—

"सर डब्लयू वेडर वर्न और हिज हाई नेस आगा खाँ के परामर्श के अनुसार एक वर्ष पूर्व दोनों सम्प्रदायों के प्रतिनिधि पारस्परिक समझौते के लिये जब इलाहाबाद में इकट्ठे होने वाले थे, तो एक ऐंग्लो इंडियन पत्र ने, जो सिविल सर्विस का पत्र कहा जाता है, लिखा था, "यदि यह मेल सरकार के विरुद्ध नहीं किया जा रहा है तो ये लोग दोनों सम्प्रदायों में मेल क्यों कराना चाहते हैं ?"

उन दिनों श्री आगा खाँ मुसलमानों के एक मात्र प्रतिनिधि घोषित किये गये थे। अधिकारियों को चिंता थी कि यदि वह भी उनके शिकंजे से निकल गये, और पारस्परिक समझौते के द्वारा राष्ट्रीयता के विकास तथा सम्मिलित मार्ग ढूढ़ने के प्रयत्न में लग गये तो अँग्रेजों के लिये दोनों सम्प्रदायों को अलग रखने का कोई बहाना शेष नहीं रहेगा। इसी आशंका का उद्गार सिविल सर्विस के पत्र के उपर्युक्त कथन में व्यक्त हुआ था।

हिन्दुस्तान और हिन्दुस्तान के वाहर जिन परिस्थितियों का निर्माण हो रहा था, वे न केवल महान परिवर्तन की सूचक थीं, वे स्वयं अपनी गति की तीव्रता और आवेश की तीक्ष्णता में उन अनेक कृत्रिम और विषम क्रियाओं को नष्ट और परिवर्तित कर रही थी, जिनकी मनमानी सृष्टि साधारण समय में की गई थी। सन् १९१४ ई० में योरप में युद्ध आरम्भ हो गया। इस युद्ध में राष्ट्रों की उन आकाक्षाओं की पूर्ति का अवसर और

साधन दीख पड़ा जो अब तक सैनिक शक्ति, षडयंत्र और कूटिनीति के द्वारा पद दलित की गई थीं। परतंत्र और पिछड़े देशों ने परतंत्रता औरविकास की ओर अग्रसर होने का उग्र प्रयत्न आरम्भ कर दिया। दकियानूसी और प्रतिकियावादी गुट भी निराश होकर या प्रगति के प्रवाह में बह कर प्रगतिशील व्यक्तियों और संस्थाओं की पंक्ति में दीख पड़ने लगे। सन् १९१२ ई० में बंग-विच्छेद के रद्द करने की घोषणा की गई, इसने राष्ट्रीयता की ओर प्रगति की लहर को तीव्रतर करने में अभूत-पूर्व सफलता प्राप्त की। इसने बृटिश शासकों के निर्देश पर साम्प्रदायिकता का अभिनय करने वालों को भी हृदय टटोलने के लिये विवश कर दिया। मुसलिम साम्राज्य (ओटोमन इम्पायर) के साथ बृटिश साम्राज्य का व्यवहार समस्त मुसलिम संसार के लिये भीषण क्षोभ का कारण हो रहा था। हिन्दुस्तान इन प्रभाव से अछूता नहीं बच सकता था। मुसलिम लीग भी इन परिस्थितियों से इस प्रकार प्रभावित हुई, कि उसने एक प्रस्तावों द्वारा अपना उद्देश्य एक दम परिवर्तित कर स्वराज्य प्राप्त करना अपना उद्देश्य घोषित किया। काँग्रेस ने समझौते के लिये हाथ बढ़ाया और परिणाम स्वरूप १९१६ ई० में काँग्रेस और मुसलिम लीग एक पारस्परिक निर्णय पर पहुँची, जो लखनऊ पैक्ट के नाम से प्रसिद्ध है। काँग्रेस और लीग की एक संयुक्त समिति ने साम्प्रदायिक समझौते के अतिरिक्त एक वैधानिक शासन योजना भी तैय्यार की। उन दिनों पार्लियामेन्ट में हिन्दुस्तान के वैधानिक सुधार की चर्चा थी, जो मांटेग्यू चेम्सफोर्ड शासन सुधार के नाम

से कानून बना। इसी चर्चा को दृष्टि कोण में रखकर काँग्रेस और लीग ने अपनी शासन योजना उपस्थित की, जिसका उद्देश्य यह था कि बृटिश पार्लियामेन्ट को हिन्दुस्तान के लिये विधान बनाने का अवसर न देकर उसके-सम्मुख हिन्दुस्तान के प्रतिनिधियों द्वारा तैयार शासन योजना उपस्थित किया जाय। और इस प्रकार उसे हिन्दुस्तान की आकांक्षाओं का हनन कर साम्राज्य का स्वार्थ इस देश के ऊपर लादने से वंचित कर दिया जाय। इस योजना के अनुसार यह माँग की गई थी, कि, "योजना में कहे गये शासन-सुधार को स्वीकृत कर स्वराज्य की ओर निश्चित कदम उठाया जाय," और हिन्दुस्तान को "परतंत्रता की स्थिति से ऊपर उठाकर साम्राज्य के अन्तर्गत दूसरे स्वशासित उपनिवेशों के समान साझीदार का बराबर पद दिया जाय।" समझौते की सफलता के लिये मुसलमानों और दूसरे अल्प संख्यकों की आपत्तियों का अन्त कर देने के उद्देश्य से केन्द्र और प्रान्तों में पृथक निर्वाचन की प्रथा मान ली गई थी। केन्द्रीय असेम्बली में कुल निर्वाचित प्रतिनिधियों की ⅓ संख्या मुसलमानों के लिये निश्चित थी, तथा विभिन्न प्रान्तों में निर्वाचित प्रतिनिधियों में मुसलमानों की संख्या पंजाब में ५० प्रतिशत, युक्त प्रान्त में ३० प्रतिशत, बंगाल में ४० प्रतिशत, बिहार में २५ प्रतिशत, मध्य प्रदेश में १५ प्रतिशत, मद्रास में १५ प्रतिशत और बम्बई में ⅓ निश्चित हुई। यह एक धारा भी उसमें जोड़ दी गई :—

"कोई बिल या उसकी कोई धारा, या कोई प्रस्ताव यदि

व्यवस्थापिका सभा में किसी गैर सरकारी सदस्य द्वारा पेश किया जाय, और उसका प्रभाव किसी भी सम्प्रदाय पर पड़ता हो, और वह प्रश्न उसी साम्प्रदाय के सदस्यों द्वारा-निर्णय होना हो तो यदि केन्द्रीय या प्रान्तीय कौंसिल (जहाँ भी वह प्रश्न उपस्थित हो) के उस सम्प्रदाय के $\frac{३}{४}$ सदस्य उसका विरोध करें, तो उस पर विचार करना स्थगित हो जायगा।"

पृथक निर्वाचन को परिस्थितियों का एक अनिवार्य परिणाम मान कर इस आशा से समझौता हुआ था कि आगे चल कर जब सभी वर्ग और सम्प्रदाय के लोग देश के उत्थान के लिये साथ-साथ कार्य करेंगे तो इस दोष को दूर कर संयुक्त निर्वाचन की प्रथा मान्य कर ली जायगी। इसलिये समझौते का यह अंग महत्वपूर्ण होते हुये भी साधारण था, जो प्रधान और विशेष था वह अँग्रेजों के हाथ से शासन शक्ति हिन्दुस्तान के हाथ में प्राप्त करना था। काँग्रेस-लीग-शासन योजना के अनुसार प्रान्तीय सरकार में प्रधान पद पर गवर्नर का रहना स्वीकृत कर लिया गया था, किन्तु यह शर्त निश्चित की गई कि वह साधारण तथा इंडियन सिविल सार्विस का न होगा। और यह भी निश्चित था कि इंडियन सिविल सर्विस वाले साधारणतः प्रान्तीय शासन परिषद के सदस्य न हो सकेंगे। शासन परिषद के कम से कम आधे सदस्य व्यवस्थापिका सभा के निर्वाचित सदस्यों द्वारा निर्वाचित होंगे। यह भी निश्चित था कि व्यवस्थापिका सभा द्वारा पास बिल शासन परिषद् को अनिवार्य रूप से मान्य होगा व्यवस्थापिका सभा द्वारा पास बिल को रद्द करने का गवर्नर के विशेष-

धिकार का अन्त कर दिया गया था। आन्तरिक शासन सम्बन्धी सभी प्रश्नों में व्यवस्थापिका सभा का पूर्ण अधिकार और उत्तरदायित्व कायम किया गया था। प्रान्तीय आय के प्रान्तीय और केन्द्रीय दो भाग न कर उसका केवल एक निश्चित प्रतिशत केन्द्र के लिये निधारित कर दिया गया था। केन्द्रीय शासन परिषद् में भी आधे सदस्यों की असेम्बली के निर्वाचित सदस्यों द्वारा विर्वाचित होना निश्चित था, और यह भी निश्चित था कि इंडियन सिविल सर्विस के सदस्य साधारणतया नियुक्त न हुआ करेंगे। असेम्वली द्वारा पास कानून शासन परिषद् को अनिवार्य रूप से मान्य होगा, और गवर्नर जनरल को उसे रद्द करने का अधिकार न होगा, यह निश्चित कर दिया गया था। इस योजना के अनुसार जो सरकार वनती उसके हाथ में इम्पीरियल सिविल सर्विस के पदों की नियुक्ति का अधिकार दिया गया था। भारत मंत्री का पद तोड़ कर उसके स्थान पर उपनिवेशों के मंत्री की भाँति का पद कर देने की व्यवस्था की गई थी। शासन परिषद् असेम्वली के प्रति उत्तरदायी वना दी गई थी। अन्य अनेक धारायें थीं, जिनसे स्पष्ट था कि काँग्रेस-लीग-शासन-योजना के द्वारा देश के आन्तरिक शासन का वहुत वड़ा अधिकार वृटिश सरकार के हाथ से निकल रहा था। वास्तव में यह योजना औपनिवेशिक स्वराज्य की माँग थी।*

यह समझौता स्वेच्छा से हुआ था। वृटिश सरकार को इसमें दखल देने का अवसर नहीं दिया गया था हिन्दुस्तान के

* पुस्तक के अन्त में काँग्रेस-लीग योजना दी गई है।

प्रतिनिधियों ने बृटिश राजनीतिज्ञों को उनकी सुविधा के अनुकूल शासन सुधार हिन्दुस्तान के सर पर लादने का अवसर न देकर स्वयं अपनी योजना को उनके सम्मुख उपस्थित कर दिया था, और उस परिस्थिति का अन्त कर दिया था जिसका लाभ उठाकर बृटिश राजनीतिज्ञ विभिन्न सम्प्रदायों के मतभेद और किसी योजना के लिये स्वयं सहमत न होने की उनकी अयोग्यता का बहाना बनाया करते थे। जैसा कि निश्चित था हमारे गोरे महा प्रभुओं को यह अच्छा नहीं लगा। श्री पट्टाभि सीतारमैया ने लिखा है :—

"गवर्नमेन्ट को चिढ़ाने वाली बात यह थी, कि जब तक दिल्ली और शिमला के बीच सुधारों के सम्बन्ध में गुप्त पत्र व्यवहार हो रहा था, काँग्रेस और लीग ने...स्वराज्य की पूर्ण योजना से उन्हें पहले ही घेर लिया।"*

स्वराज्य की आकर्षित भूमिका के साथ हिन्दुस्तान की अकांक्षाओं के प्रति हार्दिक उद्वेग प्रकट करते हुये दक्ष बृटिश राजनीतिज्ञों के अनुकूल ही एक विशद वक्तव्य के साथ मांटेग्यू चेम्सफोर्ड-शासन योजना पार्लियामेन्ट द्वारा प्रकाशित की गई। काँग्रेस लीग द्वारा प्रस्तुत शासन योजना की कोई चर्चा तक न की गई थी, और न उसकी माँगों पर ध्यान दिया गया था। मांटेग्यू-चेम्सफोर्ड-योजना प्रकाशित करते हुये केवल शासन संबन्धी कठिनाइयों पर विशेष जोर दिया गया था, और अधिक प्रगतिशील सुधारों के मार्ग में अनेक असम्भव दिक्कतों की

* दि हिस्ट्री आफ दि काँग्रेस।

तालिका उपस्थित की गई थी, और अन्त में जैसा कि निश्चित था, इन कठिनाइयों और दिक्कतों को ही सफलता मिली। काँग्रेस-लीग-योजना के अनुसार उत्तरदायित्वपूर्ण स्वराज्य की माँग थी, लेकिन मांटेग्यू-चेम्सफोर्ड शासन योजना ने शासन को दो भागों में विभाजित कर दिया। इस विभाजन में वास्तविक अधिकार पूर्णतया गवर्नरों के हाथ में सुरक्षित रक्खा गया। गवर्नर की सपरिषद् कौंसिल एक व्यर्थ का अभिनय था। वास्तविक शक्ति गवर्नर के हाथ में थी। परिषद् के मंत्रियों की व्यवस्था केवल स्वराज्य का ढाँचा खड़ा कर हिन्दुस्तानियों की आँख में धूल झोंकने का एक अच्छा प्रयत्न था। सर के० वी० रेड्डी ने बड़े ही मार्मिक तथा तथ्य पूर्ण शब्दों में मंत्रियों की स्थिति का वर्णन किया है :—

"मैं जंगलों के बिना उन्नति विभाग का मंत्री हूँ। मैं बिना कारखाने के उद्योग का मंत्री हूँ, क्योंकि कारखाने संरक्षित विषय हैं, और कारखानों के बिना उद्योग व्यवसाय की कल्पना भी नहीं की जा सकती.........। मैं बिना बिजली के उद्योग का मंत्री हूँ, क्योंकि बिजली भी संरक्षित विषय है। श्रम और ब्वायलर भी संरक्षित विषय हैं।*

मांटेग्यू-चेम्सफोर्ड योजना की यही विशेषता थी कि सभी मुख्य विषय संरक्षित थे, और कोई हिन्दुस्तानी प्रतिनिधि उनमें हाथ नहीं लगा सकता था। गवर्नरों को विशेष अधिकार देकर शासन अत्याधिक स्वेच्छाचारी और अनियंत्रित बना दिया

* प्राब्लेम आफ़ इंडिया।

गया। मंत्रियों को कोई अधिकार नहीं था, देश के प्रति उनका कोई उत्तरदायित्व नहीं था, निर्वाचित सदस्यों के प्रति भी ये उत्तरदायी नहीं थे, इनका मंत्री बना रहना गवर्नर की कृपा पर निर्भर था। फिर भी इस व्यर्थ पद का निर्माण कर स्वराज्य का ढाँचा खड़ा करने के अतिरिक्त अंग्रेजों का उद्देश्य एक ऐसे वर्ग की सृष्टि करना था, जो पद, सम्मान उपाधि और वेतन के लिये लोलुप बन कर बृटिश शासन के प्रबल, समर्थक हो जाँय, और इसमें तो संदेह ही नहीं कि बृटिश राजनीतिज्ञों को अपने इस उद्देश्य में अभूत पूर्व सफलता प्राप्त हुई। विश्लेषण करने पर इन मंत्रियों के लिये इस शासन के अन्तर्गत केवल एक ही काम दीख पड़ सकता है—बृटिश नीति और शासन की प्रत्येक कार्यवाही का औचित्य प्रमाणित करते रहना और जनता की माँगों का प्रतिरोध करना। अंग्रेजी कूटनीति को इस व्यवस्था में सब से बड़ी सुविधा यह प्राप्त हुई कि शासन के कुपरिणाम का उत्तरदायित्व इन हिन्दुस्तानी मंत्रियों के सर मढ़ अंग्रेजों की निर्दोषिता और उनके उद्देश्यों की पवित्रता की रक्षा की जा सकती थी। मंत्रियों का शक्तिशाली वर्ग बृटिश शासन का दलाल मात्र था, जो हिन्दुस्तानी जनता की प्रत्येक प्रगति को निष्क्रिय कर देने के लिये उग्र रूप से सचेष्ट था।

इस शासन सुधार का अत्यन्त भयंकर अंग साम्प्रदायिकता थी। श्री मांटेग्यू और लार्ड चेम्सफोर्ड ने अपनी रिपोर्ट में लिखा था कि यद्यपि वे पृथक निर्वाचन के सिद्धान्त से सहमत नहीं हैं फिर भी जब तक परिस्थिति में परिवर्तन नहीं होता मुसलमानों

अनेक आर्थिक प्रश्नों के अतिरिक्त अन्य उपायों से भी हिंदुस्तान के शासन-विधान में परिवर्तन करना अनिश्चित समय तक टालते रहने का प्रयत्न वृटिश सरकार द्वारा किया गया। साइमन कमीशन और गोलमेज कान्फरेंस इत्यादि के मायाजाल वृहत् आकार में फैलाये गये। हिंदुस्तान के लोगों को माया-जालों में फँसाये रखने के अतिरिक्त, इनके द्वारा साम्राज्य को शक्तिशाली बनाये रखने के साधन ढूढ़े गये। जो साधन अभी तक गुप्त थे उन्हें प्रकाश्य रूप दिया गया। और जो नहीं थे उनका निर्माण किया गया।

किन्तु देश इन माया जालों को खूब अच्छी तरह समझ रहा था। हिंदुस्तान के वैधानिक भाग्य का निर्णय करने के लिये जो साइमन कमीशन नियुक्त हुआ उसका एक भी सदस्य हिंदुस्तानी नहीं था। यही कष्ट तो हमारी उदार वृटिश सरकार हिंदुस्तानियों को देना नहीं चाहती; किन्तु हम जो ठहरे वृटिश सरकार के प्रति अकृतज्ञ। काँग्रेस तथा अन्य अनेक संस्थाओं ने साइमन कमीशन का वहिष्कार किया। वास्तव में वृटिश शासन के समर्थकों के अतिरिक्त हिंदुस्तान का कोई ऐसा वर्ग या व्यक्ति नहीं था, जिसने इस कमीशन का घोर विरोध न किया हो। ऐसा प्रतीत हुआ कि देश व्यापी मोर्चे के विरुद्ध साइमन कमीशन का ठहर सकना असम्भव हो जायगा और उचित भी यही था कि जब हिंदुस्तान को कमीशन पसन्द नहीं था तो वह वापस लौट जाय, किन्तु अँग्रेज सूक्ष्म युक्तियाँ पसन्द करते हैं। लार्ड वर्कन हेड ने फरवरी सन् १९२८ ई० में तत्कालीन

वायसराय के पास एक पत्र लिखा, जो बृटिश कूटनीति का एक स्पष्ट उदाहरण है :—

"मैं साइमन को राय दूँगा कि प्रत्येक अवस्था में वह उन सभी लोगों से मिले, जो कमीशन का वहिष्कार नहीं कर रहे हैं। मुसलमान और अछूतों से अवश्य मिलें। मुसलमान प्रतिनिधियों के साथ उनकी मुलाक़ात का मैं पूर्ण प्रचार करूँगा। अब सम्पूर्ण नीति स्पष्ट है—विशाल हिंदू जनता को इस आशंका से भयभीत करना है कि कमीशन मुसलमानों का पक्षपाती होता जा रहा है और वह ऐसी रिपोर्ट प्रकाशित कर सकता है जो हिंदुओं के लिये विनाशकारी होगा। इस प्रकार मुसलमानों का प्रबल समर्थन प्राप्त कर जिन्ना की अवहेलना की जा सकती है।"

इसके शीघ्र ही पश्चात् परिस्थितियों से विवश होकर काँग्रेस को सरकार के विरुद्ध सत्याग्रह संग्राम छेड़ना पड़ा। इस सत्याग्रह संग्राम का अन्त 'गाँधी-इर्विन संधि' द्वारा हुआ। यह एक अस्थायी संधि थी। इसकी अन्य धाराओं में एक धारा विदेशी वस्त्र की दूकानों पर धरना देने के सम्बन्ध में थी। संधि के अस्थायी काल में इन दुकानों पर काँग्रेस के धरना देने का अधिकार स्वीकार किया गया था। लार्ड इर्विन ने संधि में इस शर्त को मानने पर जोर दिया था कि मुसलिम दुकाने इससे वरी रहेंगी और काँग्रेस का धरना देने के अधिकार का प्रयोग मुसलिम दुकानों के विरुद्ध नहीं किया जा सकेगा। इस प्रश्न के कारण संधि की सफलता में एक विकट परिस्थिति उत्पन्न हो गयी थी। यहाँ उल्लेखनीय यह है कि हिंदुस्तान के प्रतिनिधि

की हैसियत से महात्मा गाँधी वृटिश प्रतिनिधि लार्ड इर्विन से संधि कर रहे थे। लार्ड इर्विन ने मुसलमानों के लिये इस अपवाद का निर्माण कर उन्हें समस्त हिन्दुस्तान से और हिन्दुस्तानी स्वार्थ से पृथक तथा भिन्न प्रतीत होने देने का मार्ग निकालने का प्रयत्न किया। उदार वायसराय लार्ड इर्विन भी साम्प्रदायिकता की आग को प्रज्वलित और उग्र बनाये रखने के प्रयत्न में आलस्य दिखाने को तय्यार नहीं थे। लेकिन वे हमारे उज्ज्वल दिन थे, लार्ड इर्विन की यह शर्त स्वीकृति न हो सकी, और परिणाम स्वरूप उनका यह विषैला प्रयत्न सफल न हो सका।

गोल मेज का नाटक वृटिश नीति की परम्परा का एक उत्कृष्ट उदाहरण है। इस सम्मेलन के लिये हिन्दुस्तान से ऐसे प्रतिनिधियों का चुनाव अँग्रेजी सरकार द्वारा किया गया जो इंगलैंड जाकर मजे लूटने का अरमान पूरा कर सकते थे, और प्रभुओं की इच्छानुसार सम्मेलन के अवसर पर तू-तू मैं-मैं का प्रहसनीय और लज्जाजनक दृश्य उपस्थित कर सकते थे। दूसरे स्वार्थों और सम्प्रदायों के प्रतिनिधियों के अतिरिक्त देशी नरेशों के प्रतिनिधि थे, जिनका मेल हिंदुस्तान की आकांक्षाओं के साथ हो नहीं सकता था। "मुसलमान हिंदुओं के विरुद्ध, सिख मुसलमानों के विरुद्ध कास्तकार जमीन्दारों के विरुद्ध और देशी राजागण अपनी प्रजा के विरुद्ध एक सर्व और सब एक के विरुद्ध खड़े किये गये थे।"*

---

* सर्दार शार्दूल सिंह कवीश्वर Non-violent peration 1934. P. 219

कोई भी प्रतिनिधि जनता द्वारा चुना हुआ नहीं था; सभी सरकार द्वारा नामजद थे। हमारे इस देश में जो व्यक्ति भी चलता पुरजा निकला और उसने यदि वृटिश सरकार के इशारे पर रात को दिन और दिन को रात कहने की क्षमता प्रदर्शित की तो हमारी न्याय प्रिय सरकार उस व्यक्ति को सम्मान और उपाधियों से विभूषित कर अविलंब जनता का प्रतिनिधि घोषित कर देती है, और वही व्यक्ति हिंदुस्तान की जनता का भाग्य विधाता वन बैठता है, यद्यपि जनता से न तो उसका कोई सम्पर्क होता है, और न उनके स्वार्थ ऐसे नेताओं से एक दम भिन्न होते हैं। जव तक हमारी सरकार को आगाखाँ की आवश्यकता होती है, तव तक मुसलिम जनता के नेता और प्रतिनिधि आगाखाँ होते हैं, और जब शौकत अली या जिन्ना से काम चलता है, तो उस पद पर वे आसीन कर दिये जाते हैं। श्री अम्वेदकर इसी माप-दंड से हिंदुस्तान के अछूतों के असंदिग्ध नेता वने हैं; और उसी प्रकार इस देश के दूसरे सरकारी समर्थक लिवरल दल के नाम पर देश की जनता के नेता हैं।

"गाँधी इरविन" अस्थायी संधिके परिणाम स्वरूप महात्मा गाँधी का गोल मेज कान्फरेन्स में सम्मिलित होना निश्चित हो गया था। लार्ड इरविन ने डाक्टर अन्सारी को भी गोल मेज के लिये प्रतिनिधि नामजद करने का वचन गाँधी जी को दिया था। डाक्टर अंसारी सम्मानित मुसलिम नेता थे, और मुसलिम जनताकी वास्तविक आकांक्षाओं के सच्चे प्रतिनिधि

थे। उन्होंने त्याग तपस्या और कष्ट का जीवन बिताकर सम्पूर्ण हिन्दुस्तान के साथ मुसलिम हित का सतत प्रयत्न किया था। लेकिन डा० अंसारी प्रतिनिधियों की नामावली में स्थान न प्राप्त कर सके। डा० पट्टाभि सीता रमैया जो अधिकार पूर्वक इस समय की घटनाओं का वर्णन कर सकते हैं, लिखते हैं:—

"किन्तु यह एक प्रकट रहस्य है कि गाँधी जी के कहने पर लार्ड इरविनने पण्डित मदन मोहन मालवीय, डा० अन्सारी और श्री मती सरोजनी नायडू को नामजद करने का स्पष्ट वादा किया था। मालवीय जी और सरोजनी नायडू तो नाम जद किये गये, लेकिन डा० अन्सारी छाँट दिये गये। लार्ड विलिंगडन (लार्ड इरविन चले गये थे और उनके स्थान पर लार्ड विलिंगडन हिन्दुस्तान के गवर्नर जनरल और वायसराय हो कर आ गये थे) की दयनीय परिस्थिति थी, यह बात नहीं थी कि वे लार्ड इरविन के वादे से अनभिज्ञ थे; किन्तु बृटेन के स्वार्थ के अनुकूल यह था कि गोल मेज सम्मेलन में यह प्रकट होने दिया जाय कि मुसलमान स्वराज्य नहीं चाहते थे। लार्ड इरविन का वादा पूरा करने की माँग के उत्तर में लार्ड विलिंगडन ने यह दलील उपस्थित की, कि मुसलिम प्रतिनिधि गण डाक्टर अन्सारी के प्रतिनिधि नाम जद किये जाने के पक्ष में नहीं थे। वे तो निश्चय ही डाक्टर अन्सारी के प्रतिनिधित्व का विरोध करते, यदि वे विरोध न करते तो वे मुसलिम प्रतिनिधि न हो कर हिन्दुस्तान के प्रतिनिधि होते, वे डाक्टर अन्सारी का चुना जाना कैसे सहन कर सकते थे, जिसका देश में अद्वितीय स्थान

था, विशाल जनता जिसके नेतृत्व के पीछे चलती थी, और जो साम्प्रदायिकता का प्रबल शत्रु था ? काँग्रेस ने साम्प्रदायिक प्रश्न के सुलझाने का एक मार्ग खोज निकाला था, और यह आवश्यक था कि गोल मेज सम्मेलन में उसका समर्थन एक हिन्दू और एक मुसलमान द्वारा किया जाय। बृटिश सरकार को इसकी सूचना मिल चुकी थी । इसलिये उसने किसी ऐसे मुसलिम प्रतिनिधि को जो उस मार्ग से सहमत होता और गोल मेज में उसका समर्थन करता, नाम जद न कर काँग्रेस के प्रयत्न को विफल बना देना चाहा।"*

गोल मेज सम्मेलन का आयोजन हिन्दुस्तान के लिये वैधानिक शासन का रूप निश्चित करने के लिये किया गया था, लेकिन इंगलैंड में जब प्रतिनिधि गण एकत्र हुये तो वहाँ साम्प्रदायिकता का इतना विशाल रूप खड़ा किया गया कि शासन विधान तय्यार करने का प्रश्न उसके सामने एक दम नगण्य सा हो गया। अल्प संख्यक समिति में बोलते हुये गाँधी जी ने ऊबकर कतिपय वास्तविक बातों पर प्रकाश डाला था:—

"उन्होंने (गाँधी जी ने) स्थिति को स्पष्ट करते हुये कहा था कि विभिन्न सम्प्रदायों को पूरी शक्ति और प्रचंडता के साथ अपनी अपनी "बातों पर जोर देने के लिये प्रोत्साहित किया गया है, और यह बताया कि यह प्रश्न मुख्य नहीं है, बल्कि विधान

---

* दि हिस्ट्री आफ दि काँग्रेस ।

निर्माण करने का प्रश्न प्रधान है। उन्होंने पूछा कि क्या अपने घर से छः हजार मील की दूरी पर प्रतिनिध गण साम्प्रदायिक प्रश्न हल करने के लिये बुलाये गये हैं।"*

तीसरे गोल मेज सम्मेलन के अवसर पर बृटिशनीति के कारनामा ने तो संसार के इतिहास में घटने वाली सभी क्षुद्रताओं को मात कर डाला। प्रधान मंत्री रैमजे मैकडानल्डने देश के ऊपर एक साम्प्रदायिक निर्णय लाद दिया था। वह जितना ही जहरीला था उतना ही प्रतिक्रियावादी और विनाशकारी था। देश का कोई वर्ग, कोई सम्प्रदाय, और कोई भी व्यक्ति उससे सन्तुष्ट नहीं था। लेकिन एक गुंजाइश थी, बार बार यह घोषित किया गया था कि हिन्दुस्तान के सम्प्रदाय आपस में कोई निर्णय करलें तो वह निर्णय प्रधान मंत्री द्वारा किये गये साम्प्रदायिक निर्णय का स्थान ग्रहण कर सकेगा। इस घोषणा के अनुसार महामना पं० मदन मोहन मालवीय ने इलाहाबाद में 'एकता सम्मेलन' का आयोजन किया। यह सम्मेलन और इसमें होने वाली घटनायें हमारी स्मृति में अभी एक दम ताज़ी हैं। सम्मेलन की सफलता ने देश में जीवन और आशा का संचार कर दिया। मनहूसी का वातावरण देखते-देखते उत्साह में परिणत हो गया। मुख्य विवादास्पद प्रश्नों का निपटारा बिना किसी दिक्कत के हो गया। केन्द्रीय व्यवस्थापिका में बृटिश हिन्दुस्तान के मुसलमानों को ३२ प्रतिशत प्रतिनिधित्व स्वीकृत

* दि हिस्ट्री आफ दि काँग्रेस।

हो गया, और सिंध का प्रान्त बम्बई से अलग बनाना निश्चित कर दिया गया। यह भी निश्चित हो चुका था कि सिंध को केन्द्र से कोई आर्थिक सहायता नहीं मिलेगी, और वहाँ के अल्प संख्यक हिन्दुओं को कतिपय विशेष सुविधायें प्राप्त होंगी। केवल बंगाल का प्रश्न निर्णय के लिये शेष रह गया था। अंगरेजी विधान में बंगाल के हिन्दू और मुसलमान दोनों को जितनी प्रतिनिधि संख्या मिलनी चाहिये थी उसे कम कर वहाँ के योरोपियनों को अत्यधिक स्थान दिया गया था। बंगाल में योरोपियन कुल जनसंख्या के केवल .०१ प्रतिशत थे, किन्तु निष्पक्ष बृटिश सरकार ने उन्हें २५००० प्रतिशत अधिक प्रतिनिधित्व प्रदान किया था। हिन्दू और मुसलमान स्वभावतः अपना पूर्ण प्रतिनिधित्व चाहते थे। 'एकता सम्मेलन' के प्रतिनिधियों के सामने केवल यही दिक्कत शेष रह गयी थी इस गुत्थी को सुलझाने के लिये सम्मेलन की समिति इस उद्देश्य से कलकत्ते गयी कि वहाँ मौके पर कोई मार्ग अवश्य निकल आयेगा।

यह सरलता पूर्वक देखा जा सकता है कि हिन्दू और मुसलमानों की पारस्परिक उलझने निपट चुकी थीं। उन्हें केवल योरोपियनों से निपटना था। इसमें सन्देह नहीं था कि हिन्दू और मुसलमान योरोपियनों से अपने अधिकार प्राप्त करनेका प्रयत्न सहयोग के साथ करते, और यदि प्रश्न न भी निपटता तो अन्तर हिन्दू और मुसलमानों के मध्य न होकर हिन्दुस्तानियों और योरोपियनों के मध्य होता। बृटिश सरकार हिन्दुस्तानियों का अधिकार कम कर बंगाल के योरोपियनों को अधिक स्थान देने

के लिये उत्तरदायी थी। इस प्रकार हिन्दू और मुसलमानों की एक संयुक्त माँग बन रही थी, और ब्रिटिश सरकार इस खतरे से बेचैन हो रही थी। लेकिन ब्रिटिश राजनीतिज्ञ ऐसे अवसर को नहीं चूकते। ऐसे महत्वपूर्ण अवसर पर सर सैमुयल होर ने गोल मेज सम्मेलन में यह घोषणा की कि सम्राट् की सरकार ने हिन्दुस्तान के मुसलमानों को केन्द्र में ३३⅓ प्रति शत प्रतिनिधित्व का अधिकार प्रदान किया है, और न केवल सिन्ध का प्रान्त अलग बनाना निश्चित हुआ है, बल्कि केन्द्र से उसे आर्थिक सहायता भी देना स्वीकृत हो गया है। वहाँ के अल्प संख्यक हिन्दुओं के संरक्षण के सम्बन्ध में कोई बात नहीं कही गयी, और न इस घोषणा में बंगाल की समस्याओं के सम्बन्ध में कोई चर्चा की गई। सर सैमुयल की यह घोषणा हिन्दुस्तान में उसी क्षण पहुँचायी गई। मुसलमान 'एकता सम्मेलन' के प्रयत्न के परिणाम स्वरूप जो कुछ स्वेच्छा से लेना स्वीकृत किये थे, "सम्राट की सरकार" ने उससे कहीं अधिक उन्हें दिया। एकताके मार्ग में 'सम्राट की सरकार' ने एक बार फिर ठीक अवसर पर गहरी खाई का निर्माण कर अपनी विश्व विख्यात उदारता का अतुलनीय परिचय दिया। यह कार्य विध्वंसक के रूप में था, और एकता सम्मेलन तुरंत नष्ट हो गया।

प्रधान मंत्री रैमजे मैकडानल्ड का साम्प्रदायिक निर्णय बना रह गया। एक लम्बे प्रयत्न के पश्चात् हिन्दू और मुसलमानों के बीच अन्तर उत्पन्न करने में अंग्रेजों को सफलता मिल चुकी थी; किन्तु विशाल हिन्दू सम्प्रदाय की ही अकेली शक्ति उन्हें

बेचैन करते रहने के लिये पर्याप्त थी। रैमजे मेकडानल्ड इंगलैंड के प्रगति शील-वर्ग-मजदूर वर्ग के नेता थे और एक समय हिन्दुस्तान की आकांक्षाओं के समर्थक थे। लेकिन प्रधान मंत्री हो जाने के पश्चात् जब साम्राज्य को अक्षुण्ण बनाये रखने का उत्तरदायित्त्व उन्होंने ग्रहण किया तो हिन्दू सम्प्रदाय की ठोस एकता उन्हें खटकने लगी। साम्प्रदायिक निर्णय द्वारा उन्होंने इस एकता को छिन्न-भिन्न करने का प्रयत्न किया। अछूतों को हिन्दू सम्प्रदाय से अलग कर एक पृथक सम्प्रदाय मान लिया गया और इस प्रकार हिन्दू सम्प्रदाय का अंग काट कर बहुसंख्यक सम्प्रदाय को अल्प संख्यक सम्प्रदाय बना देने की युक्ति निकाली गयी। सिख, बौद्ध, जैन, अछूत, इत्यादि अनेक विकसित तथा अविकसित जातियाँ और विभिन्न विश्वासवालों का सम्मिलित नाम हिन्दू है। यदि इन प्रत्येक को पृथक सम्प्रदाय का वैधानिक रूप दे दिया जाय, और प्रत्येक को एक दूसरे की प्रतिद्वन्दिता में अपने-अपने स्वार्थ के लिये उसी प्रकार बराबर उत्तेजित किया जाय, जिस प्रकार साम्प्रदायिक मुसलमान किये जाते हैं, तो हिन्दू सम्प्रदाय की एकता का टुकड़े-टुकड़े हो जाना निश्चय है, और हिन्दुस्तान में बृटिश साम्राज्य का सुरक्षित रहना भी असंदिग्ध है।

इसी लक्ष्य को दृष्टि में रख कर हिन्दू सम्प्रदाय से अलग अछूत सम्प्रदाय का वैधानिक रूप दिया गया। यह तो स्पष्ट ही है कि इस योजना का अर्थ था कि जो एक बार अछूत हैं वे सर्वदा अछूत बने रहेंगे। महात्मा गाँधी जो अछूतों को अछूत

न रहने देकर उन्हें सवर्ण हिन्दुओं की श्रेणी में लाने के लिये प्रयत्न शील थे, इस निर्णय को रद्द करा देने के लिये अपने प्राणों की बाजी लगा दिये। उन्होंने आमरण उपवास का व्रत ठान दिया, और इसके फल स्वरूप हिन्दू नेताओं ने पारस्परिक समझौता किया, जो 'पूना पैक्ट' के नाम से प्रसिद्ध है। इस पैक्ट के द्वारा प्रधान मंत्री रैमजे मैकडानल्ड के साम्प्रदायिक निर्णय का वह अंश रद्द हो गया जो हिन्दू सम्प्रदाय को टुकड़ों में विभाजित करने के उद्देश्य से दिया गया था। हम देख चुके हैं कि दक्षिण में अब्राह्मण आन्दोलन की सृष्टि कर अछूतों का एक पृथक सम्प्रदाय बनाना बृटिश शासकों का लक्ष्य था। यद्यपि 'पूना पैक्ट' के द्वारा उनका यह लक्ष्य कुछ समय के लिये असफल बना दिया गया; किन्तु राजशक्ति किसी समय भी अपनी हरकतों से बाज नहीं आई। के० टी० शाह ने लिखा है :—

"हिंदुओं के अंतर्गत दलित वर्ग, मद्रास या महाराष्ट्र के पिछड़े हुये किंतु बहुसंख्यक ब्राह्मण, अछूत और पहाड़ी जातियाँ सभी अपने लिये पृथक निर्वाचन मुख्यत: उसी तर्क के आधार पर माँगती हैं जिसने मुसलमानों को प्रोत्साहित किया था।..............हिंदुस्तान की सरकार ने सन् १९३५ ई० के पश्चात् एक प्रस्ताव द्वारा इस सिद्धान्त को स्वीकृत कर लिया है, जो विभिन्न सम्प्रदायों के लिये देश की नौकरियों में कम से कम स्थान सुरक्षित करने का निश्चय करता है। देश के शासन और सुव्यवस्था को इसके लिये

क्या मूल्य चुकाना पड़ेगा, इसे केवल भविष्य ही प्रकट कर सकेगा।"*

बृटिश राजनीतिज्ञों द्वारा लम्बे चौड़े शब्दों में घोषणा तो यह की गई कि १९३५ का शासन-विधान स्वराज्य के मार्ग में बहुत अधिक दूर तक पहुँच गया है, किंतु सन् १९१९ की मांटेग्यू चेम्स फोर्ड योजना के अनुसार मतदाता यदि दस भागों में विभाजित किये गये थे तो इस विधान के अनुसार वे सत्रह विषम टुकड़ों में बाँट दिये गये। इन साम्प्रदायिक विभाजनों के अतिरिक्त बृटिश शासकों ने स्वार्थों और वर्गों के आर्थिक अन्तरों का उपयोग अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिये किया। नये विधान में जमीन्दार, व्यावसायिक मजदूर, व्यापार और उद्योग विश्वविद्यालय और स्त्रियों के लिये पृथक निर्वाचन की व्यवस्था की गई है; यहाँ ही तक नहीं बल्कि हिन्दुस्तानी व्यवसाय और उद्योग तथा हिन्दुस्तान के योरोपियन व्यवसाय और उद्योग में भी अंतर मान कर उन्हें पृथक निर्वाचन का अधिकार दिया गया है। योरोपियन एंग्लो इन्डियन और हिंदुस्तानी ईसाई जो जाति और मजहब की दृष्टि से एक ही हैं प्रत्येक अलग अलग निर्वाचन का अधिकार प्राप्त किये हैं। योरोपियनों की संख्या तो हिंदुस्तान में इस प्रकार नगण्य है कि पृथक-निर्वाचन-अधिकार प्राप्त करने के लिये उनके स्थायी स्वार्थ का यहाँ कोई बहाना भी नहीं है।

अंग्रेजी सरकार ने मुसलमानों को वैधानिक बहुमत संरक्षण

* प्राविन्सियल एटानामी ले० के० टी० शाह।

और पृथक निर्वाचन सभी कुछ प्रदान किया। १६३५ के विधान में केवल मुसलमान और ब्रिटिश इन दो अल्प संख्यकों का ही ध्यान रखा गया। उन प्रान्तों में जहाँ मुसलमान बहुसंख्यक और हिंदू अल्प संख्यक थे मुसलमानों को ही संरक्षण दिया गया। इसकी सत्यता के लिये बंगाल की स्थिति का विश्लेषण कर लेना प्रयप्ति होगा। बंगाल के प्रत्येक साधारण निर्वाचन क्षेत्र में शहरों के लिये ३००७०६ जन संख्या पर एक नागरिक सदस्य निर्वाचित होता है; किंतु इसके विपरीत प्रत्येक मुसलिम क्षेत्र में शहरों के लिये २४२१६४ मुसलिम जनता पर एक नागरिक मुसलिम सदस्य निर्वाचित किया जाता है। साधारण देहाती क्षेत्र (अमुसलिम क्षेत्र) में ३७६०६ जन संख्या पर एक सदस्य चुना जाता है, और मुसलिम देहाती क्षेत्र में केवल२९५९६ जन संख्या पर ही एक सदस्य निर्वाचित होता है। सन् १९२१ की मनुष्य गणना के अनुसार वहाँ की मुसलिम जन संख्या कुल जन संख्या का ५४·८ प्रतिशत है, और अमुसलिम अर्थात् हिंदू कुल जन संख्या के ४४·८ प्रतिशत हैं। इस अनुपात से यदि बंगाल व्यवस्थापिका सभा में दोनों सम्प्रदायों को स्थान दिया गया होता तो मुसलमानों को १०९ और साधारण (हिंदुओं) को ९० स्थान मिलते; लेकिन मुसलमानों को ११९ और हिंदुओं को केवल ८० स्थान मिले हैं। संरक्षण अल्प संख्यक सम्प्रदाय को न देकर बहु संख्यक सम्प्रदाय को दिया गया। लेकिन बंगाल की जागृत शक्ति को कुचलने के लिये इतनाही नहीं काफी समझा गया। योरोपियन, ऐंग्लो इंडियन और ईसाइयों को अत्यधिक

संरक्षण प्रदान किये गये। इसके लिये नीचे की तालिका पर दृष्टि पात करना आवश्यक है :—

सम्प्रदाय	पूर्ण जन-संख्या का प्रतिशत	साम्प्रदायिक निर्णय के अन्तर्गत व्यवस्थापिका सभा में स्थानों का प्रतिशत	संरक्षण प्रतिशत
मुसलमान	५४·८	४७·६	
हिन्दू	४४·८	३२	
हिन्दुस्तानी ईसाई	०.३	०·८	३००
ऐंग्लो इंडियन	०·१	१·६	३०००
योरोपियन	०·०१	२५	२५०००

अपने मज़हब और जाति वालों के साथ सम्राट की न्यायप्रिय सरकार ने जो पक्षपात् किया उसकी चर्चा तक हम नहीं करना चाहते हैं; लेकिन मुसलमानों को व्यवस्थापिका सभा में कुछ प्रतिशत अधिक स्थान देने से उनकी आर्थिक और सामाजिक स्थिति यदि नित्य प्रति गिरती न जाकर उन्नति कर सकती तो निश्चय ही समस्त हिन्दुस्तान को संतोष होता, और आज जब वहाँ के लोग भयंकर क्षुधा-पीड़ा से लाखों की संख्या में कीड़ों और पतिंगों की भाँति मर रहे हैं, सभी प्रकार के रोगों के शिकार हो रहे हैं, और स्त्रियाँ तथा बच्चे टुकड़ों पर बिक रहे हैं, तो शासकों के इस पक्षपात, इस उदारता और इस साजिश

का अर्थ केवल हम हिन्दुस्तानी ही नहीं; बल्कि अरब का अपरिचित मुसलमान भी समझ सकता है। इससे अधिक स्पष्ट और क्या हो सकता है कि हिन्दू मुसलिम सम्बन्ध को वर्तमान सीमा तक पहुँचाने में अंग्रेज जाति ने उन अनेक घृणित षडयंत्रों का आश्रय लिया है जिसकी कल्पना भी असम्भव-सी प्रतीत होती है।

साम्प्रदायिक विभाजनों के साथ प्रान्तों का निर्माण भी बृटिश सरकार की राजनीतिक साजिशों का एक अंग है। बृटिश शासन काल में प्रान्तों की लगातार काँट छाँट होती आ रही है। जब-जब अंग्रेजी शासन को जैसी-जैसी राजनीतिक आवश्यकता उपस्थित होती है, प्रान्तों का निः संकोच परिवर्तन किया जाता है। बंगाल प्रान्त के विभाजन में साम्राज्यवाद की विरोधी शक्तियों को छिन्न-भिन्न करने की ही नीति सन्निहित थी। सिंध का पृथक प्रान्त इसी उद्देश्य से बनाया गया। १९३१ की जन गणना के अनुसार सिंध की जन संख्या ३८८७०७० थी, और क्षेत्र फल ४६३७८ वर्ग मील है। केन्द्र से आर्थिक सहायता मिलने पर इस प्रान्त का प्रबंध किया जा सकता है। इस दशा में बम्बई से अलग कर सिंध का भिन्न प्रान्त बनाने का इससे अतिरिक्त और क्या अर्थ हो सकता है कि मुसलिम सम्प्रदाय से प्रतिक्रियावादी नीतिकी आशा कर हिन्दुस्तान की उत्तर-पश्चिम सीमा पर मुसलिम प्रान्तों का एक ठोस गुट निर्माण कर राष्ट्रीय विकास की बाढ़ को रोकने का कौशल पूर्ण प्रयास किया गया। यह विवादास्पद नहीं हैं कि हिन्दुस्तान का पुनः प्रान्तीय

करण अनिवार्य है; किन्तु साथ ही यह भी विवादास्पद नहीं है कि इसके लिये सम्पूर्ण राजनीतिक और आर्थिक दृष्टि-कोण को बदल देना पड़ेगा और इस प्रकार की किसी योजना को सफलता पूर्वक कार्यान्वित करने के पहले बृटिश साम्राज्य का अन्त करना आवश्यक होगा। यदि यह परिस्थिति नहीं उत्पन्न होती है, तो बृटिश शासन शैली के अन्तर्गत प्रान्तों के विघटन और संघटन का अर्थ प्रतिक्रिया और साम्राज्य की दृढ़ता के अतिरिक्त और कुछ नहीं हो सकता है। बृटिश नीति सीधा मार्ग न ग्रहण कर परोक्ष से काम करती है, और इसी नीति के अनुसार राष्ट्रीय एकता के सम्मुख प्रान्तीय भावना का वातावरण उत्पन्न किया गया है, और जैसे सम्प्रदायों को प्रोत्साहित कर अविवेक पूर्ण परिस्थिति में पहुँचा दिया गया है, उसी प्रकार प्रान्तीयता का वातावरण उत्पन्न कर राष्ट्रीयता के मार्ग में गहरी खाई खोदने का प्रयत्न किया गया है। हिन्दू मुसलिम समस्या से भी बड़ा खतरा बंगाल बंगालियों के लिये; सिंध सिंधियों के लिये, बिहार बिहारियों के लिये, इत्यादि का नारा हो रहा है। हिन्दुस्तान से बर्मा का सम्बन्ध, विच्छेद होने के पूर्व वहाँ पर यह नारा अपनी चरम सीमा पर पहुँच चुका था।

साम्प्रदायिक अन्तर विभिन्न वर्गों तथा स्वार्थों के अन्तर, जातीय और सांस्कृतिक अंतर आर्थिक अंतर, प्रगतिशील और पिछड़ी हुई जातियों के अंतर, स्त्री और पुरुष के मध्य अंतर तथा प्रान्त और प्रान्त के बीच अंतर का स्पष्ट तथा वैधानिक रूप देकर और फिर भी हिन्दुस्तान के इन विभिन्न वर्गों को

के लिये पृथक निर्वाचन की वर्तमान व्यवस्था का बना रहना आवश्यक है, लेकिन जिन प्रान्तों में मुसलिम वोटरों की संख्या दूसरों से अधिक है, वहाँ साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व के प्रचलित करने की आवश्यकता नहीं है। यद्यपि उन्होंने अपनी रिपोर्ट में यह बात लिखी, लेकिन वास्तविक व्यवहार में इसका ठीक उल्टा व्यवहार किया गया। सिक्खों को पृथक निर्वाचन का अधिकार दिया गया, और यद्यपि पंजाब में मुसलिम वोटरों की सबसे अधिक संख्या थी, किन्तु उन्हें भी पृथक प्रतिनिधित्व का अधिकार मिला। पृथक निर्वाचन का प्रसार, जहाँ तक सम्भव था, निःसंकोच किया गया। मद्रास के ईसाइयों, मद्रास और बंगाल के ऐंग्लो इंडियनों, पंजाब तथा मध्य प्रान्त के अतिरिक्त अन्य सभी प्रान्तों के योरोपियनों में पृथक निर्वाचन प्रथा का विस्तार किया गया। इन विभिन्न जातियों को अलग अलग तो किया ही गया, सबसे अधिक साहस पूर्ण प्रयत्न हिन्दू सम्प्रदाय को छिन्न-भिन्न करने का था। इस प्रयत्न की सफलता यद्यपि सन् १९३५ के शासन-विधान में 'अछूत सम्प्रदाय के रूप में पूर्णतया स्पष्ट हुई; किन्तु उस समय अभी इसका बीज बोया गया। ज्वाइन्ट सेलेक्ट कमेटी ने मद्रास और बम्बई के अब्राह्मणों के लिये विशेष स्थान संरक्षित करने की सिफारिश की। मुसलिम साम्प्रदायिकता के जन्म तथा विकास में जितना हाथ इस न्याय प्रिय जाति का रहा है, उससे तनिक भी कम 'अछूत सम्प्रदाय' के निर्माण में नहीं हैं। दक्षिण में अब्राह्मण आन्दोलन की सृष्टि बृटिश सरकार द्वारा की गई। स्वर्गीय श्री

सी० वाई० चिंता मणि ने अकाट्य प्रमाण उपस्थित करते हुये यह सिद्ध किया है कि अब्राह्मण आन्दोलन का जन्म बृटिश कूटनीति का परिणाम है :—

"घटनाओं को पूर्ण प्रकाश में ला देने योग्य प्रमाण उस समय प्राप्त हुआ जब लार्ड सिनहा सन् १९१९ ई० की प्रस्ताविक शासन-सुधार-योजना के सम्बन्ध में 'ज्वाइंट सेलेक्ट कमेटी' के सम्मुख सर अलेक्जेन्डर कार्डेव की जो उन दिनों सरकार के सम्मानित और विशेष व्यक्ति थे, जिरह कर रहे थे, सर अलेक्जेन्डर ने जोरदार शब्दों में इस अभियोग को अस्वीकार किया कि "मद्रास सरकार ने किसी समय भी 'जस्टिस पार्टी' की उन्नति में सहायता की, या उसके विकास को प्रोत्साहित किया; लेकिन लार्ड सिनहा ने जब सरकारी प्रस्ताव का एक अंश जिस पर अलेक्जेंडर का हस्ताक्षर था, उनके सामने पेश किया तो उन्होंने अभियोग अस्वीकार करना बन्द किया, और अत्यन्त अप्रतिभ हो गये। वे लोगों की नजरों में तुच्छ भी दीख पड़ने लगे।"*

मद्रास में अब्राह्मण आन्दोलन का प्रयोग सवर्णों की प्रगतिशीलता के विरुद्ध एक अस्त्र के साथ दे दिया गया। "जब सन् १९१९ ई० में शासन विधान पर विचार हो रहा था तो उस समय लंदन में मद्रास के स्वर्गीय टी०एम० नैयर

* इंडियन पालिटिक्स सिन्स दि म्यूटिनी।

कॉंग्रेस नेताओं का विरोध करने के लिये नेता बनाये गये थे।"*

यह आन्दोलन अब्राह्मणों द्वारा नहीं, बल्कि केवल सवर्ण हिन्दुओं द्वारा चलाया जा रहा है और इसके सभी संचालकगण बड़े बड़े विशिष्ट जन हैं, जिन्हें सरकारी कृपा प्राप्त है। सन् १९१८ ई० में एक कमीशन (साउथबारो) मताधिकार प्रश्न पर विचार करने के लिये बृटिश पार्लियामेन्ट द्वारा नियुक्त हुआ था। श्री निवास शास्त्री भी इसके एक सदस्य थे। अब्राह्मण आन्दोलन का भार जिनको सौंपा गया था, उन्हें यह आशंका हुई कि, श्री शास्त्री लार्ड साउथबरो को प्रभावित कर लेंगे और अब्राह्मणों के लिये पृथक निर्वाचन प्रथा की सिफारिश न करने देंगे। यह दिक्कत बृटिश नीति के मार्ग में अत्यन्त अप्रिय दीख पड़ी और इसलिये श्री शास्त्री को कमीशन की सदस्यता से हटाने के लिये अब्राह्मण आन्दोलन को प्रोत्साहित किया गया। श्री शास्त्री को हटाने के लिये हिन्दुस्तान में तो इस आन्दोलन की उग्रता का प्रदर्शन किया ही गया, इस प्रश्न को इंगलैंड तक भी पहुँचाया गया। जैसा कि निश्चित था उन्हें सफलता भी अपने उद्देश्य में प्राप्त हुई। असफल होने का तो कोई कारण ही न था; १९१७ में इस आन्दोलन की सृष्टि केवल इसी एक उद्देश्य से की गई थी। इस प्रकार एक नये अब्राह्मण सम्प्रदाय को जन्म दिया गया। यह सम्प्रदाय हिन्दुस्तान की राजनीति

* "दि इंडियन स्ट्रगल" पृ० ४१ सुभाष चन्द्र बोस। टी० एम० नेयर अब्राह्मणों फिल्म के नेता थे।

में उग्र साम्प्रदायिकता का रूप धारण करता जा रहा है, और इसमें कोई संदेह नहीं दीख पड़ता कि शीघ्र भविष्य में अछूत सम्प्रदाय का प्रश्न मुसलिम सम्प्रदाय से तनिक भी कम जटिल रहे।

मांटेग्यू-चेम्स फोर्ड-शासन-सुधार हिन्दुस्तान के सर पर निरंकुशता के साथ बल पूर्वक लादा गया। वह न तो हिन्दुस्तानियों की माँग के अनुसार था, और न उसके निर्माण में उनका कोई हाथ था काँग्रेस और मुसलिम लीग दोनों ने सन् १९१६ ई० की स्वीकृत और स्वनिर्मित काँग्रेस-लीग शासन योजना को कानून का रूप प्राप्त होने का लगातार प्रयत्न किया। काँग्रेस का एक विशेष अधिवेशन सन् १९१८ ई० में बम्बई में श्री हसन इमाम की अध्यक्षता में हुआ। इस अधिवेशन में मांटेग्यू-चेम्स फोर्ड योजना को "उत्साह हीन और असंतोषप्रद" घोषित किया, और 'काँग्रेस लीग' योजना को कार्यान्वित करने की माँग की। इस बात की भी स्पष्ट घोषणा इस अधिवेशन में की गई कि "साम्राज्य के अन्तर्गत उत्तरदायित्व पूर्ण स्वराज्य" के अतिरिक्त कोई अन्य शासन योजना हिंदुस्तान की आकांक्षाओं को पूरा करने में असमर्थ है; और इसलिये अमान्य है। इसी समय राजा महमूदाबाद की अध्यक्षता में मुसलिम लीग का अधिवेशन हुआ, जिसमें ऐसे ही प्रस्ताव पास हुये। इसके पूर्व सन् १९१७ ई० में काँग्रेस कमेटी और मुसलिम लीग की कौंसिल की एक संयुक्त बैठक में, जो ६ अक्टूबर को इलाहाबाद में हुई थी, यह निर्णय हुआ कि एक हिंदुस्तानी प्रतिनिधि मंडल वायसराय और

भारतमंत्री के पास काँग्रेस-लीग-योजना के समर्थन के लिये भेजा जाय। २८ जुलाई सन् १९१७ ई० में काँग्रेस कमेटी और मुसलिम लीग कौंसिल ने अपनी संयुक्त बैठक में अपनी योजना को वैधानिक रूप प्राप्त कराने के लिये एक प्रतिनिधि मंडल इंगलैंड भेजने का निश्चय किया, और श्री जिन्ना, श्री शास्त्री, श्री सप्रू और श्री वजीर हसन इस प्रतिनिधि मंडल के सदस्य नियुक्त हुये। यह स्पष्ट दीख पड़ेगा कि श्री बेक, आर्च बोल्ड अनेक गवर्नर और वायसराय के प्रयत्न के अतिरिक्त भी हिंदू और मुसलमान न केवल राय और एक मत से एक संयुक्त-शासन-योजना उपस्थित किये, बल्कि उसे ही वैधानिक रूप दिये जाने के लिये लगातार प्रबल प्रयत्न करते रहे, किंतु उनके सम्मिलित जीवन की ऐसी ही क्रियायें और संयुक्त माँग की वैधानिक योजना हमारे उदार शासकों की सबसे बड़ी परेशानी का कारण थी।

इस देश के नेताओं द्वारा निर्मित और निर्दोष शासन योजना की चर्चा तक न कर विदेशियों द्वारा बनाई गई योजना को हिंदुस्तानियों के गले के नीचे उतारने के लिये श्री मांटेग्यू ने अनेक युक्तियों से काम किया। श्रीमांटेग्यू की डायरी से हमें उनके इस सम्बंध के प्रयत्न में अनेक सूचनायें प्राप्त होती हैं उन्होंने सम्पूर्ण हिंदुस्तान का दौरा किया और इस दौरे में अपनी योजना का पूरा यश गान किया, उन सभी लोगों से वे मिले जिनसे उन्होंने अपनी योजना के लिये समर्थन प्राप्त करने की आशा की, और जो वे इस योजना के अन्तर्गत मंत्रि-पद स्वीकार कर शासन को कार्यान्वित करनेवाले व्यक्तियों को ढूढ़ते रहे। सन् १९१६ ई० के

लखनऊ कांग्रेस में गरम दल और नरम दल के लोगों का अन्तर समाप्त हो गया था, और सभी लोग शासन सम्बन्धी प्रश्न पर एक ही निर्णय पर पहुँचे थे, किन्तु मांटेग्यू ने इस एकता को नष्ट करने का निश्चय किया, क्योंकि इसके बिना उनकी योजना का कार्यान्वित होना असम्भव था। श्री मांटेग्यू की डायरी इसके लिये पर्याप्त प्रमाण उपस्थित करती है :—

"गरम दल वालों को जो सरकार का कल्याण नहीं चाहते उन लोगों से अवश्य अलग कर देना होगा जो सरकार का साथ देना चाहते हैं।"

श्री मांटेग्यू की चाल स्पष्ट थी। गवर्नमेंट ने एक विभाग स्थापित कर नरम दल वालों की एक अलग संस्था संगठित करने में सहायता देने का निश्चय किया। श्री मांटेग्यू ने अपनी डायरी में लिखा है :—

"एक प्रस्ताव (२७ वाँ) द्वारा हिन्दुस्तानियों का एक नया दल संगठित करने का निश्चय हुआ। यह निश्चय हुआ कि इस संस्था द्वारा सुधार योजना का प्रचार कराया जाय। हमारी सहायता करने के लिये इस संस्था द्वारा एक प्रतिनिधि मंडल इंगलैंड भिजवाकर वहाँ की योजना के सम्बन्ध में प्रचार कराया जाय। यह निश्चय हुआ कि सभी प्रकार गवर्नमेंट इस संस्था की सहायता करेगी।"

इस प्रस्ताव को क्रियात्मक रूप देने के लिये श्री मांटेग्यू ने ठोस प्रयत्न भी किया, और उन्हीं की डायरी से उनकी क्रियाओं पर पूर्ण प्रकाश पड़ता है:—

"हम लोगों ने एक नरम दल बनाने के सम्बन्ध में बात-चीत की, वे बहुत ही उत्सुक थे, और समाचार पत्र इत्यादि प्रकाशित करने की भी चर्चा हुई। मैं सोचता हूँ कि वे इस कार्य को तल्लीनता के साथ करना चाहते हैं।"

यह विशेष व्यक्ति, जिनके साथ श्री मांटेग्यू की गुप्त संधि हुई, श्री सिन्हा थे। श्री सिनहा किस लोभ के कारण तल्लीनता से काम करना चाहते थे, वह श्री मांटेग्यू के ही कथन से स्पष्ट है :—

'तीसवें और ३१वें प्रस्ताव द्वारा यह विचार निश्चित हुआ था कि सर सिनहा मांटेग्यू के स्थान पर नियुक्त किये जाँयगे, और मांटेग्यू उप मंत्री होंगे।"*

यह बात सर्व साधारण जानकारी की है कि श्री सिनहा को लार्ड की उपाधि तक मिली, और उन दिनों हिन्दुस्तान के एक प्रांत के गवर्नर भी नियुक्त हुये, जब हिंदुस्तानियों का विश्वास साधारण पद के उत्तरदायित्व के लिये भी नहीं किया जा सकता था निष्पक्षता और नैतिकता का स्वर अलापने वाली अँग्रेज जाति और उसके कूटनीतिज्ञों ने इन अनेक खोटी और तुच्छ युक्तियों से हिंदुस्तान में नरम दल की स्थापना कर एक और वर्ग की सृष्टि की जिसका उद्देश्य बृटिश सरकार के पक्ष में प्रचार करना और उसके कार्य्यों में सहायता पहुँचाना था। संसार के इतिहास में इस प्रकार के षड्यंत्रों का शायद ही दूसरा उदाहरण कहीं मिले। सन् १९१९ ई० में लिबरल दल का जन्म इन्हीं

* दि काँग्रेस हिस्ट्री।

षड्यंत्रों के परिणाम स्वरूप हुआ, और इसमें संदेह नहीं कि श्री मांटेग्यू और सिनहा की गुप्त संधि और योजना के अनुसार ही इस संस्था ने अपने जीवन के आरम्भ काल से बृटिश शासन के समर्थन और उसकी वैधानिक युक्तियों के प्रचार में अपने को लगाया है। हिंदुस्तान का नरम दल एक ऐसा वर्ग है जो बृटिश नीति के प्रचार का साधन है और जो बदले में शासन के लुभावने पदों पर रहकर संतोष की साँस लेता है।

ऐसी क्रियाओं का अन्त यहाँ ही नहीं था। लखनऊ पैक्ट के द्वारा हिंदू मुसलिम एकता की अभूतपूर्व सफलता और उसकी प्रबल क्रियात्मक शक्ति अँग्रेजों को न तो सह्य थी और न मान्य। 'लखनऊ पैक्ट' से जो कुछ मुसलमानों को प्राप्त था उससे अधिक देने का वादा बृटिश सरकार ने उनको किया। यह एक प्रयत्न था जो 'लखनऊ पैक्ट' को सर्वदा के लिये अंत कर देने के उद्देश्य से किया गया था। हिंदुस्तान की बृटिश सरकार ने 'लखनऊ पैक्ट' की आलोचना करते हुये जो भाव व्यक्त किया और जिस नीति का अनुसरण किया वह विचारणीय है :—

"यह स्पष्ट है कि समझौते द्वारा बंगाल के मुसलमानों को जो प्रतिनिधि संख्या मिली है, वह कम है। यह बात प्रश्नात्मक और संदेह पूर्ण है कि जब काँग्रेस-लीग समझौता हो रहा था, तो पूर्वीय बंगाल के मुसलमानों की माँग उपस्थित की गई थी या नहीं? मुसलमान सम्प्रदाय पिछड़ा हुआ और निर्धन है। सन् १९१२ ई० में 'वंग-विच्छेद' के रद्द करने से उन्हें बहुत ही संतोष हुआ और अब हम लोगों की असीम उदासीनता होगी, यदि हम

इस बात पर ध्यान नहीं देते हैं कि मुसलमानों के अधिकारों की रक्षा उदारता पूर्वक की जा रही है या नहीं। बंगाल के मुसलमानों की संख्या के अनुपात से यदि अधिक नहीं तो उसके अनुसार भी उन्हें 'लखनऊ पैक्ट' द्वारा प्राप्त ३४ स्थानों के अतिरिक्त ४४ स्थान मिलने चाहिये।"

लखनऊ समझौते को नष्ट कर देने के लिये यह एक विध्वंशक अस्त्र था। हरे भरे बंगाल प्रांत की जो दुर्दशा अंग्रेजी राज्य में हुई वह इतिहास में सर्वदा असाधारण बनी रहेगी। पब्लिक स्वास्थ्य विभाग के भूतपूर्व डाइरेक्टर जनरल सर जान मेगा के अनुसार बंगाल के १०० व्यक्तियों में केवल २२ को भर पेट भोजन मिलता था; ४७ आधा पेट खाकर बसर करते थे और ३२ भूखे ही दिन काट देते थे। गरीबी बंगाल में इस प्रकार घर कर गई थी कि जिसका दूसरा उदाहरण संसार में ढूँढ़ने पर न मिल सकता था। जनरल मेगा के इस अनुमान से अत्यधिक भयावह स्थिति आज बंगाल प्रान्त की है। १९४३ के भयंकर अकाल से कितने लाख बंगाली मर गये, इसका अनुमान भी करना कठिन है। संसार के कोने-कोने से दान की भिक्षा से भूखे बंगाल की चिल्लाहट किसी प्रकार कुछ अंश तक शांत की जा सकी है। आज भी अकाल, महामारी, मलेरिया से बंगाल की दयनीय दशा ने हाहाकार मचा रखा है। यद्यपि इस समय सरकारी प्रयत्न द्वारा बंगाल के अकाल का शोर रोक दिया गया है, किंतु वास्तविक दशा में बंगाल के दिहातों में और शहरों की सड़कों पर भूख की ज्वाला से तड़प-तड़प कर मरे हुये लोगों

की संख्या कुछ नगण्य नहीं है। इसमें संदेह नहीं कि दरिद्रता की इन दुर्दशाओं के सबसे अधिक शिकार वहाँ की मुस्लिम जनता और विशेषकर पूर्वीय बंगाल की मुस्लिम जनता बनी; और यह भी अब विवादास्पद नहीं रहा कि मुसलमानों विशेषतया बंगाल के मुसलमानों पर कृपा की अजस्र वर्षा करनेवाली बृटिश सरकार बंगाल की इस परिस्थिति के लिये उत्तरदायी है। बंगाल में निरन्तर पड़नेवाले अकालों का मूल कारण बृटिश सरकार है। हिंदू मुसलिम एकता को विनष्ट कर असेम्बली में कुछ अधिक स्थान देने तक ही बृटिस सरकार की कृपा सीमित थी, और इसी में "पिछड़े हुये तथा निर्धन मुसलमान सम्प्रदाय" के सामाजिक तथा आर्थिक उन्नति का सम्पूर्ण साधन उपस्थित होना समझा गया। लेकिन अपने अनैतिक आचरण को औचित्य का रूप देकर शोषण क्रिया में व्यति क्रम न पड़ने देने में एक क्षण के लिये भी अन्तर न पड़ने दिया गया, यद्यपि केवल एक क्षण का अन्तर ही इस भयानक परिस्थिति को बदल सकता था।

साम्राज्य और शोषण का प्रश्न प्रायः विकट और विषम होता है और शोषण की पूर्ण सफलता के लिये विभिन्न नीतियों का उपयोग करना पड़ता है। 'लखनऊ पैक्ट' को रद्द करने के उद्देश्य से हिंदुस्तान के मुसलमानों पर; जिस समय कृपा की वर्षा करने का स्वांग रचा जा सकता था, उसी समय हिंदुस्तान के बाहर मुस्लिम साम्राज्य को छिन्न भिन्न करने में और मुस्लिम देशों पर प्रभुत्व स्थापित करने में अँग्रेजी सेना लगी हुई थी।

गत योरोपीय युद्ध के वाद जो संधि हुई उसके द्वारा तुर्की साम्राज्य का विघटन हो गया, और इस विघटन में वृटिश साम्राज्य का सबसे अधिक हाथ था। हिंदुस्तान के मुसलमानों पर इसकी भीषण प्रतिक्रिया हुई। तुर्की के साथ जो संधि वृटिश साम्राज्य ने की उसके बाद मुसलमानों ने वृटिश शासन के अन्तर्गत रहना असम्भव समझा और हिंदुस्तान को छोड़कर अफ़गानिस्तान को हिजरत करने का आन्दोलन आरम्भ कर दिया। यह आंदोलन सिंध प्रान्त से आरम्भ होकर उत्तर पश्चिम सीमान्त प्रांत तक फैल गया। हिजरत करने वालों में और वृटिश सेना में कच्ची गढ़ी के पास संघर्ष हो गया। लगभग १८ हजार मुसलमान हिंदुस्तान छोड़कर अफगानिस्तान के लिये प्रस्थान कर चुके थे; लेकिन अफगान सरकार ने अपने देश में इनके प्रवेश पर रोक लगा दी, और इस प्रकार बहुत अधिक हानि और कष्ट उठाने के पश्चात इस आन्दोलन का अन्त हुआ। आन्दोलन का अन्त तो हो गया, किंतु देश और विदेश में अंग्रेजी नीति से उत्पन्न क्षोभ का शांत होना असम्भव था। महात्मा गाँधी के नेतृत्व में खिलाफत और असहयोग आंदोलन छिड़ा और इसकी प्रबलता ने हिंदुस्तान में वृटिश शासन की जड़ तक हिला दी। हिंदू और मुसलमान, हिंदुस्तान और आजादी, लोगों का विना किसी भेद भाव के यही एक मात्र नारा था। पशु वल के सामने मनुष्य की अधिक से अधिक पवित्र और उच्च आकाँक्षायें भी नत मस्तक हो जाती हैं। वृटिश शासन के दमन के परिणाम स्वरूप 'खिलाफत और असहयोग' का प्रसिद्ध

आन्दोलन का अन्त हो गया। युद्ध में विजय प्राप्त करने और आन्दोलन को दमन कर लेने के बाद अँग्रेज जाति फिर साम्राज्य को दृढ़ करने में लग गयी।

आन्दोलन की असफलता से हिन्दुस्तान के जीवन में शिथिलता आ गई। आशा, उत्साह और प्रगति शीलता का स्थान निराशा और नैतिकपतन ने ले लिया। येही अवसर हुआ करते हैं जब बृटिश कूटनीति अपनी क्रियाशीलता का सतर्क उपयोग करती है। अँग्रेजी सरकार ने शासन सुधार की चर्चा एक दम बन्द कर आर्थिक उन्नति की लम्बी-लम्बी बातें करनी आरम्भ करदीं। अनेक समितियाँ नियुक्त हुईं। सन् १९२४ ई० के बाद एक के पश्चात् दूसरी अनेक समितियाँ नियुक्त होती रहीं और इनका अन्त गोल मेज सम्मेलन हुआ। १९२४ में उडीमान कमेटी, सन् १९२७ ई० में स्टेटुटरी कमीशन १९२९ ई० में रायल कमीशन फ्राम लेवर और सन् १९३०-१९३२ ई० में गोलमेज सम्मेलनों के लगातार दृश्य एक के पश्चात् दूसरे देश के सामने उपस्थित होते रहे। इन्होंने आर्थिक सुधार की बड़ी-बड़ी रिपोर्टें प्रकाशित कीं। अनिश्चित और दयनीय परिस्थिति में पड़ी हुई असहाय और निराश जनता के लिये इन आकर्षक रिपोर्टों में उलझ जाने के अतिरिक्त कोई अन्य मार्ग शेष नहीं था। हिन्दू-मुसलिम एकता पर प्रहार करने के लिये इससे अच्छा अवसर बृटिश सरकार को कब मिलता। साम्प्रदायिक अनुपात का उपयोग पूर्ण रूप से आरम्भ किया गया। और सन् १९२१ ई० को हिन्दू मुसलिम सम्मिलित

मोर्चें की पुनरावृत्ति को भविष्य में असम्भव वना देने के लिये साम्प्रदायिक अनुपात को सफल अस्त्र के रूप में प्रयोग किया गया। नौकरियों में संख्या के अनुपात का सिद्धान्त लागू कर साम्प्रदायिकता का प्रसार शासन के विभिन्न और प्रत्येक अंग में किया गया। सन् १९२५ ई० में इस सिद्धान्त के प्रयोग का श्री गणेश हुआ और सन् १९३४ ई० में एक विशद योजना द्वारा इसका पूर्ण विस्तार किया गया। ऐंग्लो-इंडियन तथा हिन्दुस्तान में वसने वाले योरोपियनों को उनकी संख्या के अनुपात से वहुत अधिक स्थान देने की गुंजाइश की गई। मुसलमानों और अछूतों को उनकी संख्या के अनुसार स्थान सुरक्षित करने का वृटिश सरकार ने आश्वासन दिया, और नौकरियों में इसी आश्वासन के अनुसार मुसलमानों को २५ प्रतिशत और अछूतों को ८⅓ प्रतिशत स्थान निश्चित कर दिये गये। जब देश में और हिन्दुस्तान की राजनीति में लोगों की दिलचस्पी के लिये कोई अन्य साधन और आधार शेष नहीं थे तो उस दशा में प्रत्येक सम्प्रदाय अपने तुच्छ स्वार्थों के तू-तू, मैं-मैं में लीन हो गया। संसार के सभी देशों में योग्यता और कर्तव्य के आधार पर नौकरियों में भर्तियाँ होती हैं, लेकिन वृटिश हुकूमत की करामात ही क्या होगी, यदि यही साधारण नियम इस देश में भी वह बर्तने लगे। वर्ग स्पर्धा, और एक जाति को दूसरी जाति के विरुद्ध खड़ा करने की नीति का समावेश सर्विस (सेवा) विभाग में भी किया गया, जिसका विश्व-व्यापी उद्देश्य निष्पक्षता के साथ विना किसी

भेद भाव के नागरिकों के सुख सुविधा और ऐश्वर्य की वृद्धि करना है। उस देश की दुर्दशा की कल्पना सरलता से की जा सकती है, जहाँ मनुष्य में वर्ग को पहचान कर सेवा करने तथा कर्तव्य पालन करने की प्रवृत्ति उत्पन्न की जाय। हिन्दुस्तानी सेना में यह वर्गीकरण बहुत पहले ही किया जा चुका था, अब आवश्यकता के अनुसार नागरिक शासन में भी इस नीति का प्रयोग किया गया, और प्रत्येक वर्ग के अनुपात में परिवर्तन कर संख्या के दृष्टिकोण से सर्विस विभाग में स्थान निश्चित किये गये। हमने देखा है कि सेना से मुसलमानों का वहिष्कार कर दिया गया था, और हिन्दुओं को प्रधानता दी गई थी। यह अनुपात-सम्बन्ध एक दम उलट दिया गया। राष्ट्रीय आन्दोलन की उग्रता हिंदुओं में बढ़ रही थी, इसलिये पहले यदि मुसलमान सैनिकों द्वारा सेना में विद्रोह होने की आशंका थी, तो वह आशंका अब हिंदू सैनिकों में स्थानान्तरित हो गयी। पंजाबी मुसलमान और पठान अब बहुत बड़ी संख्या में सेना में भर्ती किये जाने लगे। सिखों की संख्या घटाकर बहुत कम कर दी गयी, और मद्रासी ब्राह्मणों की संख्या प्रायः नगण्य हो गयी। यह परिवर्तन क्रम बराबर जारी है, और सेना में भर्तियाँ आज बड़ी छान बीन के साथ इसी निश्चित नीति के अनुसार की जा रही हैं। वर्ग स्पर्धा की नीति एक जहर का घूंट थी, और उसे हिंदुस्तान के गले के नीचे ऐसे समय उतारा गया, जब अँग्रेज जाति के अथक परिश्रम के परिणाम स्वरूप इस जहर की पूर्ण क्रिया के लिये साम्प्रदायिकता का वातावरण खूब

अच्छी तरह से तैय्यार हो चुका था। देश के प्रत्येक अंग को छिन्न-भिन्न कर एक दूसरे से अलग कर दिया गया। देश का प्रत्येक व्यक्ति सर्विस (सेवा) की भावना से प्रेरित नहीं किया गया, वल्कि हिंदुस्तान का प्रत्येक सम्प्रदाय सर्विस (सेवा) के व्यापार में हिस्सा वटाने के होड़ में लगा दिया गया।

साम्प्रदायिकता का वास्तविक रूप सन् १९२१ के पश्चात् से आरम्भ हुआ कहा जा सकता है। देश में अनेक साम्प्रदायिक दंगे हुये। १९२८ ई० में वम्वई और १९३१ ई० में कानपुर और वनारस के दंगे अपनी विभीषिका के लिये अत्यन्त प्रसिद्ध हैं। इसमें तो सन्देह ही नहीं कि ये सभी दंगे स्थायी वर्ग के लोगों और वृटिश सरकार के षड़यत्रों के परिणाम थे। किन्तु वृटिश सरकार का पार्ट अत्यन्त वीभत्स और गन्दा था। वम्वई के दंगे के सम्वन्ध में जाँच समिति ने लिखा है :—

"हम लोग इस राय के हैं कि इस दलील में काफी वल है कि पुलिस कमिश्नर को फौज की सहायता वहुत पहले लेनी चाहिये थी।"*

कानपुर दंगे की जाँच करने वाले कमीशन ने तो एक दम पर्दाफास कर डाला है :—

"सभी श्रेणी के गवाह इस वात में सहमत थे कि दंगे की अनेक घटनाओं को शान्त करने में पुलिस ने उदासीनता और निष्क्रयता दिखलाई।......हम लोगों को इसमें सन्देह नहीं रह गया है कि दंगे के पहले तीन दिनों तक पुलिस ने अपने कर्तव्य

* वाम्बे रायट १९२९ पृ० २६ माइनारिटी प्रावलम में उद्धृत।

पालन में वह तत्परता नहीं दिखाई जिसकी उससे आशा की जाती थी। अनेक गवाहों ने ऐसी घटनाओं का उदाहरण पेश किया है जब पुलिस के सामने ही भीषण जुर्म हुये और पुलिस खड़ी देखती रही। अनेक गवाहों ने हम लोगों से कहा है और जिलाधीश ने भी अपनी गवाही में स्वीकार किया है कि पुलिस की उदासीनता और निष्क्रियता की शिकायतें उसी समय अधिकारियों के पास की गईं। यह दुख की बात है कि इन शिकायतों पर कोई ध्यान ही नहीं दिया गया।"*

कमेटी ने अपनी रिपोर्ट में लिखा है कि एक गवाह ने बयान देते हुये कहा था कि—"लोगों में यह आम धारणा है कि स्थानीय अधिकारियों ने दंगा शान्त कर देने के लिये कोई समुचित कारवाई इसलिये नहीं की कि वे व्यवसायी वर्ग से इसलिये रुष्टथे कि वे काँग्रेस की सहायता करते हैं, और अधिकारी यह दिखला देना चाहते थे कि अधिकारियों की सहायता के बिना वे अपने जान-माल की रक्षा नहीं कर सकते हैं।†

यह अजीब-सी बात है कि बड़े-से-बड़े देशव्यापी आन्दोलन को दमन करने में वृटिश सरकार को केवल कुछ दिन लगते हैं लेकिन एक शहर या क़स्बे का साम्प्रदायिक दंगा शान्त नहीं किया जा सकता है। इसका अर्थ इतना स्पष्ट है कि इसकी अधिक व्याख्या की आवश्यकता नहीं।

---

* कानपुर रायट रिपोर्ट १९३१ माइनारिटी प्राबलम से उद्धृत।
† कानपुर रायट रिपोर्ट १९३१ माइनारिटी प्राबलम से उद्धृत।

या प्रतिनिधित्व का सिद्धान्त लागू होना चाहिये। हम लोगों को यह भी कहना चाहिये कि हिन्दुस्तान जैसे देश में जमींदारों की राय पर विशेष जोर देना उपयुक्त होगा। मेरी निजी राय में नामजदगी का समर्थन करना मुसलमानों के लिये अधिक बुद्धि मत्ता पूर्ण होगा, क्योंकि निर्वाचन की व्यावहारिकता का निर्णय करने का समय अभी नहीं आया है। निर्वाचन में मुसलमानों को अपना वास्तविक और पूर्ण भाग प्राप्त करना बड़ा कठिन होगा; किन्तु इन सभी बातों में मुझे पीछे ही रहना चाहिये। अग्रसर तो निश्चित रूप से आप ही लोगों को होना होगा। मैं आवेदन पत्र का मजमून तय्यार कर सकता हूँ, या उसे संशोधित कर सकता हूँ। यदि यह बम्बई में लिखा जाय तो मैं उसे देख लेने को तय्यार हूँ; क्योंकि आप लोग जानते हैं कि मैं इन सब बातों को उपयुक्त भाषा में भली भाँति व्यक्त कर सकता हूँ। कृपया इस बात का ध्यान रखिये कि शेष अल्प काल में यदि हम लोग एक शक्ति शाली आन्दोलन संगठित करना चाहते हैं तो हम लोगों को बहुत शीघ्रता करनी चाहिये।*

पृथक निर्वाचन और साम्प्रदायिकता को स्थायी और साथ ही वैधानिक भी बनाने के लिये यह एक भयानक षड्यंत्र था, और इस षड्यंत्र के आयोजन कर्ता प्रिन्सपल आर्च बोल्ड के साथ हिन्दुस्तान के भाग्य विधाता तत्कालीन गवर्नर जनरल

---

* मुसलमानी हिन्द की हयातसयासी ले० मोहम्मद मिर्जा क्म्यूनल ट्रैंगिल में उद्धृत।

लार्ड मिन्टो थे। जिन बातों को कट्टर साम्प्रदायिक मुसलमान भी सोच नहीं सकते थे, उन्हें अनेक युक्तियों से उनके मस्तिष्क में प्रवेश कराया गया, और 'मुझे पीछे ही रहना चाहिये' की अत्यन्त खोटी और लज्जापूर्ण नीति का अनुसरण किया गया। इस षड़यंत्र के अनुसार सन् १९०६ ई० में ३५ सदस्यों का एक प्रतिनिधि मंडल हिज हाइनेस आगा खाँ की अध्यक्षता में सम्भवतः श्री आर्च वोल्ड द्वारा तय्यार आवेदन पत्र लेकर वायसराय महोदय के पास पहुँचा। स्वर्गीय मौलाना मुहम्मद अली साहब ने कोकोनाडा काँग्रेस के अध्यक्ष पद से भाषण देते हुये इस अभिनय को 'आज्ञा पालन' बतलाया था। किंतु भली भाँति तय्यार किये हुये इस नाटक में वायसराय लार्ड मिंटो का पार्ट सर्वोत्तम कहा जा सकता है। उनके भाषण का कुछ अंश इस नाटक और षड़यंत्र का नंगा चित्र स्पष्ट करने में सहायक होगा:—

"जैसा कि मैं समझता हूँ, आपके आवेदन पत्र का सारांश इस बात की माँग है कि प्रतिनिधित्व की वह प्रथा जिसमें निर्वाचन प्रणाली जारी करने या विस्तृत करने का प्रस्ताव किया जाय और जो म्यून्सिपैलिटी, डिस्ट्रिक्ट बोर्ड या लेजिसलेटिव कौंसिल चाहे जिसे भी प्रभावित करती हो, मुसलिम सम्प्रदाय को एक पृथक सम्प्रदाय की हैसियत में स्वीकार करे। आपका कहना है कि वर्तमान निर्वाचन प्रणाली के अनुसार मुसलिम उम्मीद वार को निर्वाचित होने के बहुत ही कम अवसर हैं, और यदि किसी संयोग से वह चुना भी गया तो यह केवल तभी

संभव है जब वह अपने विचारों का बलिदान देकर अपने सम्प्रदाय के विरोधी बहुसंख्यक सम्प्रदाय के विचार का हो जाय, जिसका वह किसी भी रूपमें प्रतिनिधि नहीं है। और आपकी यह माँग भी उचित ही है कि आपके इस प्रस्ताव का मूल्य आपकी संख्या के आधार पर नहीं; बल्कि आपके सम्प्रदाय के राजनीतिक महत्व और साम्राज्य के प्रति की गई सेवाओं के आधार पर होना चाहिये। मैं आपकी माँगों से पूर्णतः सहमत हूँ।" ❀

कहानीकार और निर्देशक एक ही थे, केवल पात्र भिन्न-भिन्न थे। सन् १९०९ की शासन योजना के लिये यह अभिनय एक भूमिका था। अभी पूर्व परिच्छेद में हमने देखा है कि किस प्रकार एक सदी के भीषण दमन के द्वारा सम्पन्न, उन्नतिशील और शक्तिशाली मुसलिम जाति निराश्रित अशिक्षित और व्यवसाय हीन बना दी गई। लेकिन लार्ड मिन्टों ने सहसा इस "सम्प्रदाय के राजनीतिक महत्त्व और साम्राज्य के प्रति उनकी सेवाओं" के नये तथ्य का अनुसंधान किया। श्री रैम्जे मैकडानल्ड वृटिश पार्लियामेंट के प्रधान मंत्री होने के बहुत पूर्व जब वह मजदूर वर्ग के यशस्वी नेता थे, और जब उनकी भावनाओं में स्वार्थ के स्थान पर वास्तविकता और विश्वबन्धुत्व की लहरें हिलोरें मार रही थीं, 'अवेकनिंग आफ इंडिया' एक पुस्तक लिखकर हिन्दुस्तान के प्रति अपना उद्गार प्रकट किया था। उस पुस्तक का एक अंग उद्धरण के योग्य है :—

* 'लार्ड मिन्टो ले० जे० बुचन।

"कुछ ऐंग्लो-इडियन सरकारी कर्मचारी मुसलिम नेताओं को उभाड़ देते हैं, यही कर्मचारी शिमला और लंदन की भी कुञ्जी ऐंठते रहते हैं। फिर मुसलिम सम्प्रदाय के प्रति विशेष पक्ष-पात दिखला कर हिन्दू और मुसलमान दोनों सम्प्रदायों में संघर्ष उत्पन्न कर देते हैं।"*

उस समय के भारत सचिव लार्ड मारले ने हिन्दुस्तान की शासन सुधार योजना में संयुक्त निर्वाचन प्रथा की सिफारिश की थी। अल्प संख्यकों के लिये उन्होंने विशेष संरक्षण की व्यवस्था की सलाह दी थी कि मार्ले ने वाइसराय मिन्टो को लिखा था :—"बड़ी नम्रता से मैं आपको एकबार याद दिला देना चाहता हूँ कि आपने पहले अपने भाषण में मुसलमानों के लिये अधिक माँग की चर्चा कर उन्हें उकसाया था।"†

मार्ले मिन्टो शासन-सुधार-योजना सन् १९०९ ई० में कानून के रूप में आई। हम लोगों ने देखा है कि साम्प्रदायिकता इस योजना की पृष्ठ भूमि बनायी गयी, और उसे युक्ति पूर्वक विधान का रूप दिया गया। प्रथमवार हिन्दू और मुसलमान कानून द्वारा एक दूसरे से अलग कर दिये गये, और दोनों को अपना परम्परा गत सम्बन्ध विच्छेद कर भिन्न-भिन्न मार्गों में चलने के लिये विवश किया गया। इस योजना के द्वारा मुसलमानों को पृथक निर्वाचन का अधिकार दिया गया और संयुक्त—निर्वाचन में

---

* अवेकनिंग आफ इंडिया ले० रैमजे मैकडानल्ड।

† व्हिसकाउन्ट मारलेतरिकलेक्शन भाग २, ३२५।

भी वोट देने के उनके अधिकार में हस्तक्षेप नहीं किया गया। यह विशेष कृपा केवल साम्प्रदायिकता की उस वैधानिक नींव को दृढ़ बनाने के लिये की गई जो सन् १९०९ के विधान द्वारा डाली गई। यह सुविधा बंगाल, आसाम और पंजाब के अल्प संख्यक हिन्दुओं को नहीं दी गई; क्योंकि केवल मुसलिम सम्प्रदाय के ऊपर ही विशेष कृपा की वर्षा कर साम्प्रदायिकता विकसित रहने के योग्य बनाया जा सकता था। ३०००) सालाना आमदनी पर टैक्स देनेवाला मुसलमान वोटर हो सकता था, किन्तु उसी अधिकार को प्राप्त करने के लिये एक गैर मुसलिम के लिये ३,००,००,० रु० सालाना आमदनी पर टैक्स देना आवश्यक था। इसी प्रकार ग्रेजुएट होने के केवल तीन वर्ष बाद एक मुसलमान वोटर हो सकता था, किन्तु गैर मुसलिम के लिये ग्रेजुएट होने के तीस वर्ष बाद वोटर होने का अधिकार प्राप्त हो सकता था। ३,००० और ३,०००००, ३ वर्ष और ३० वर्ष यह अन्तर ध्यान देने योग्य है। प्रभु शक्ति द्वारा यह विशेष कृपा और ऐसी कल्पनातीत सुविधायें इस निश्चित उद्देश्य से दी गई कि भविष्य में विशेष सुविधाओं की माँगें बराबर बढ़ती रहेंगी। बृटिश कूटनीति अपनी आवश्यकताओं के अनुकूल शासित जनता में प्रवृत्तियां उत्पन्न करने में प्रवीण तथा दक्ष होती है, और इतिहास ने इसे प्रमाणित भी कर दिया कि उनका यह उद्देश्य उनकी आशा के अनुसार ही सफल हुआ है। साम्राज्य-शासन-नीति की निश्चित योजना के अनुसार पृथक-पृथक निर्वाचन आज दो पृथक राष्ट्रों और दो पृथक राज्यों की माँग के रूप में हिन्दुस्तान के सम्मुख उपस्थित है।

वृटिश सरकार हिन्दुस्तान के दो महान् सम्प्रदायों को देश के प्रत्येक कोने में पृथक कर देने के लिये तुली बैठी थी। म्यूनिस्पल-वोर्ड और डिस्ट्रिक्टवोर्ड में भी पृथक निर्वाचन प्रथा प्रचलित करने का प्रस्ताव सरकार द्वारा लाया गया। संयुक्त प्रान्त में मुसलमान कुल जन संख्या के केवल १/३ थे, और वहाँ जब पृथक निर्वाचन नहीं था तो म्युनिस्पलवोर्ड में संयुक्त निर्वाचन द्वारा चुने हुये प्रतिनिधियों में ३१० मुसलमान और ५६२ हिन्दू थे। इसी प्रकार डिस्ट्रिक्टवोर्ड में भी १८९ मुसलमान और ४४५ हिंदू संयुक्त प्रथा के परिणाम स्वरूप निर्वाचित हुये थे। पृथक निर्वाचन के अनुसार मुसलमानों को अपनी संख्या के अनुपात से म्युनिस्पलवोर्ड में केवल १२७ १/३ और डिस्ट्रिक्टवोर्ड में ९० ४/७ स्थान मिलते। यह एक ऐसी परिस्थिति थी जो स्पष्टतः पृथक निर्वाचन के विरुद्ध अकाट्य दलील उपस्थित करती थी, और जहाँ तक मुसलमानों का सम्बन्ध था उनके लिये किसी भी व्यवस्था द्वारा इससे अधिक सुविधा की परिस्थिति निर्माण करना असम्भव था। लेकिन अँग्रेज तो किसी की सुविधा-असुविधा की पर्वाह नहीं करते थे। वे हिन्दू और मुसलमानों के सम्मिलित जीवन को असम्भव बनाकर केवल साम्राज्य को दृढ़ बनाने के लिये प्रयत्न कर रहे थे। युक्त प्रान्त के लेफ्टिनेन्ट गवर्नर सर जान हेवेट जैसे प्रतिक्रियावादी और साम्राज्यवादी व्यक्ति भी नहीं चाहते थे कि युक्त प्रान्त की तत्कालीन व्यवस्था में कोई छेड़-छाड़ की जाय। प्रान्त एक निश्चित गति से चल रहा था, और सरल गति को छोड़कर केवल अव्यवस्था और उलझनपूर्ण स्थिति

ही उत्पन्न की जा सकती थी। श्री मुहम्मद अली जिन्ना ने भी म्युन्सिपलवोर्ड और डिस्ट्रिक्टवोर्ड में प्रथक निर्वाचन के प्रसार का विरोध किया। सन् १९१० ई० में इलाहावाद के काँग्रेस अधिवेशन में श्री जिन्ना ने एक प्रस्ताव उपस्थित कर साम्प्रदायिकता के आधार पर प्रतिनिधित्व के सिद्धान्त की निन्दा की; मौलवी मजरुल हक ने इस प्रस्ताव का समर्थन किया, लेकिन 'वर्न' सरक्यूलर ने इन वातों की परवाह न कर म्युन्सिपल और डिस्ट्रिक्टवोर्डों में भी मुसलमानों के लिये पृथक निर्वाचन की व्यवस्था दी; और साथ-साथ संयुक्त निर्वाचन में भी उन्हें वोट देने का अधिकार दिया।

मार्ले मिन्टो शासन योजना ने हिन्दू और मुसलमान दो सम्प्रदायों के अतिरिक्त ज़मींदार वर्ग और व्यवसायिक वर्ग को भी वैधानिक रूप दिया। इस योजना का मूल आधार जाति-जाति में द्वेष और प्रतिस्पर्धा की भावना उत्पन्न करना था। इस वात का प्रयत्न किया गया कि समाज में ऐसे गुटों का निर्माण किया जाय जो परस्पर प्रतिद्वन्दिता और अपने निजी स्वार्थों में इस प्रकार एकांत चित्त से लगे रहें कि उन्हें उस स्वार्थ पूर्ण परिधि से वाहर सोचने का अवकाश न मिल सके। समाज में जो क्रियाशील और चैतन्य शक्तियां थीं, उन्हें अलग अलग गुटों में विभाजित कर सम्मिलित जीवन के लिये व्यर्थ वना देने का प्रयत्न किया गया। उन प्रवृत्तियों का समावेश किया गया जो स्पष्टतः साम्प्रदायिक थीं; और जो अव तक अस्पष्ट और केवल काल्पनिक थीं उन्हें वैधानिक रूप देकर सर्वदा के लिये

स्थायी वना दिया गया। शासन विधान द्वारा देश की राजनीति में ईर्ष्या, द्वेष और पारस्परिक असहानुभूति तथा खींचतान के पुष्ट वीज बोये गये। किंतु मार्ले मिन्टो योजना सम्पूर्ण हिंदुस्तान को अत्यंत प्रतिक्रियावादी प्रतीत हुई, और शासन में जो अधिकार इसके द्वारा प्राप्त हुआ, वह अत्यंत नगण्य और मजाक-सा था। इस योजना से सभी वर्ग और सम्प्रदाय के लोग क्षुब्ध थे। साम्प्रदायिक मुसलमानों ने भी अनुभव किया कि देश स्पष्टतः एक गहरे गड्ढे में चला जा रहा था। क्षोभ और निराशा ने प्रत्येक व्यक्ति और वर्ग को अपने हृदय को टटोलने के लिये और परिस्थितियों पर गम्भीर विचार करने के लिये विवश किया। एक समझौते का वातावरण उत्पन्न हो गया, और किसी न किसी एक सम्मिलित निर्णय पर पहुँचने के लिये लोगों में एक वेचैनी-सी दीख पड़ी। परिणाम स्वरूप श्री आगा खाँ और श्री वेडर वर्न ने समझौते का प्रयत्न आरम्भ किया। श्री वेडर वर्न काँग्रेस के सम्मानित व्यक्ति थे, और उनका एक महत्वपूर्ण स्थान था। वे एक ऐसी परिस्थिति में थे, जो दोनों सम्प्रदायों में समझौते का सफल प्रयत्न कर सकते थे। उन्होंने परिस्थितियों की गम्भीरता और हिंदुस्तान के दुर्भाग्य से क्षुब्ध और दुःखित होकर समझौते का एक निश्चित प्रयत्न करना निर्णय किया, और इस उद्देश्य से वे श्री आगा खाँ के पास पहुँचे। किन्तु बृटिश अधिकारियों को इस निर्दोष प्रयत्न में भी खतरा दीख पड़ा। इस सम्बन्ध में बृटिश अधिकारियों के भय की चर्चा करते हुये सन् १९११ ई० के कलकत्ता-कांग्रेस-अधिवेशन

में अध्यक्ष पद से भाषण करते हुये श्री विशन नरायन दर ने कहा था :—

"सर डब्ल्यू वेडर वर्न और हिज हाई नेस आगा खाँ के परामर्श के अनुसार एक वर्ष पूर्व दोनों सम्प्रदायों के प्रतिनिधि पारस्परिक समझौते के लिये जब इलाहाबाद में इकट्ठे होने वाले थे, तो एक ऐंग्लो इंडियन पत्र ने, जो सिविल सर्विस का पत्र कहा जाता है, लिखा था, "यदि यह मेल सरकार के विरुद्ध नहीं किया जा रहा है तो ये लोग दोनों सम्प्रदायों में मेल क्यों कराना चाहते हैं ?"

उन दिनों श्री आगा खाँ मुसलमानों के एक मात्र प्रतिनिधि घोषित किये गये थे। अधिकारियों को चिंता थी कि यदि वह भी उनके शिकंजे से निकल गये, और पारस्परिक समझौते के द्वारा राष्ट्रीयता के विकास तथा सम्मिलित मार्ग ढूढ़ने के प्रयत्न में लग गये तो अँग्रेजों के लिये दोनों सम्प्रदायों को अलग रखने का कोई बहाना शेष नहीं रहेगा। इसी आशंका का उद्गार सिविल सर्विस के पत्र के उपर्युक्त कथन में व्यक्त हुआ था।

हिन्दुस्तान और हिन्दुस्तान के बाहर जिन परिस्थितियों का निर्माण हो रहा था, वे न केवल महान परिवर्तन की सूचक थीं, वे स्वयं अपनी गति की तीव्रता और आवेश की तीक्ष्णता में उन अनेक कृत्रिम और विषम क्रियाओं को नष्ट और परिवर्तित कर रही थी, जिनकी मनमानी सृष्टि साधारण समय में की गई थी। सन् १९१४ ई० में योरप में युद्ध आरम्भ हो गया। इस युद्ध में राष्ट्रों की उन आकाक्षाओं की पूर्ति का अवसर और

साधन दीख पड़ा जो अब तक सैनिक शक्ति, षडयंत्र और कूटिनीति के द्वारा पद दलित की गई थीं। परतंत्र और पिछड़े देशों ने परतंत्रता औरविकास की ओर अग्रसर होने का उग्र प्रयत्न आरम्भ कर दिया। दकियानूसी और प्रतिकियावादी गुट भी निराश होकर या प्रगति के प्रवाह में बह कर प्रगतिशील व्यक्तियों और संस्थाओं की पंक्ति में दीख पड़ने लगे। सन् १९१२ ई० में बंग-विच्छेद के रद्द करने की घोषणा की गई, इसने राष्ट्रीयता की ओर प्रगति की लहर को तीव्रतर करने में अभूत-पूर्व सफलता प्राप्त की। इसने बृटिश शासकों के निर्देश पर साम्प्रदायिकता का अभिनय करने वालों को भी हृदय टटोलने के लिये विवश कर दिया। मुसलिम साम्राज्य (ओटोमन इम्पायर) के साथ बृटिश साम्राज्य का व्यवहार समस्त मुसलिम संसार के लिये भीषण क्षोभ का कारण हो रहा था। हिन्दुस्तान इन प्रभाव से अछूता नहीं बच सकता था। मुसलिम लीग भी इन परिस्थितियों से इस प्रकार प्रभावित हुई, कि उसने एक प्रस्तावों द्वारा अपना उद्देश्य एक दम परिवर्तित कर स्वराज्य प्राप्त करना अपना उद्देश्य घोषित किया। काँग्रेस ने समझौते के लिये हाथ बढ़ाया और परिणाम स्वरूप १९१६ ई० में काँग्रेस और मुसलिम लीग एक पारस्परिक निर्णय पर पहुँची, जो लखनऊ पैक्ट के नाम से प्रसिद्ध है। काँग्रेस और लीग की एक संयुक्त समिति ने साम्प्रदायिक समझौते के अतिरिक्त एक वैधानिक शासन योजना भी तैय्यार की। उन दिनों पार्लियामेन्ट में हिन्दुस्तान के वैधानिक सुधार की चर्चा थी, जो मांटेग्यू चेम्सफोर्ड शासन सुधार के नाम

से कानून बना। इसी चर्चा को दृष्टि कोण में रखकर काँग्रेस और लीग ने अपनी शासन योजना उपस्थित की, जिसका उद्देश्य यह था कि बृटिश पार्लियामेन्ट को हिन्दुस्तान के लिये विधान बनाने का अवसर न देकर उसके-सम्मुख हिन्दुस्तान के प्रतिनिधियों द्वारा तैयार शासन योजना उपस्थित किया जाय। और इस प्रकार उसे हिन्दुस्तान की आकांक्षाओं का हनन कर साम्राज्य का स्वार्थ इस देश के ऊपर लादने से वंचित कर दिया जाय। इस योजना के अनुसार यह माँग की गई थी, कि, "योजना में कहे गये शासन-सुधार को स्वीकृत कर स्वराज्य की ओर निश्चित कदम उठाया जाय," और हिन्दुस्तान को "परतंत्रता की स्थिति से ऊपर उठाकर साम्राज्य के अन्तर्गत दूसरे स्वशासित उपनिवेशों के समान साझीदार का बराबर पद दिया जाय।" समझौते की सफलता के लिये मुसलमानों और दूसरे अल्प संख्यकों की आपत्तियों का अन्त कर देने के उद्देश्य से केन्द्र और प्रान्तों में पृथक निर्वाचन की प्रथा मान ली गई थी। केन्द्रीय असेम्बली में कुल निर्वाचित प्रतिनिधियों की $\frac{1}{3}$ संख्या मुसलमानों के लिये निश्चित थी, तथा विभिन्न प्रान्तों में निर्वाचित प्रतिनिधियों में मुसलमानों की संख्या पंजाब में ५० प्रतिशत, युक्त प्रान्त में ३० प्रतिशत, बंगाल में ४० प्रतिशत, बिहार में २५ प्रतिशत, मध्य प्रदेश में १५ प्रतिशत, मद्रास में १५ प्रतिशत और बम्बई में $\frac{1}{3}$ निश्चित हुई। यह एक धारा भी उसमें जोड़ दी गई :—

"कोई बिल या उसकी कोई धारा, या कोई प्रस्ताव यदि

व्यवस्थापिका सभा में किसी गैर सरकारी सदस्य द्वारा पेश किया जाय, और उसका प्रभाव किसी भी सम्प्रदाय पर पड़ता हो, और वह प्रश्न उसी साम्प्रदाय के सदस्यों द्वारा-निर्णय होना हो तो यदि केन्द्रीय या प्रान्तीय कौंसिल (जहाँ भी वह प्रश्न उपस्थित हो) के उस सम्प्रदाय के $\frac{3}{4}$ सदस्य उसका विरोध करें, तो उस पर विचार करना स्थगित हो जायगा।"

पृथक निर्वाचन को परिस्थितियों का एक अनिवार्य परिणाम मान कर इस आशा से समझौता हुआ था कि आगे चल कर जब सभी वर्ग और सम्प्रदाय के लोग देश के उत्थान के लिये साथ-साथ कार्य करेंगे तो इस दोष को दूर कर संयुक्त निर्वाचन की प्रथा मान्य कर ली जायगी। इसलिये समझौते का यह अंग महत्वपूर्ण होते हुये भी साधारण था, जो प्रधान और विशेष था वह अँग्रेजों के हाथ से शासन शक्ति हिन्दुस्तान के हाथ में प्राप्त करना था। काँग्रेस-लीग-शासन योजना के अनुसार प्रान्तीय सरकार में प्रधान पद पर गवर्नर का रहना स्वीकृत कर लिया गया था, किन्तु यह शर्त निश्चित की गई कि वह साधारण तथा इंडियन सिविल सार्विस का न होगा। और यह भी निश्चित था कि इंडियन सिविल सर्विस वाले साधारणतः प्रान्तीय शासन परिषद के सदस्य न हो सकेंगे। शासन परिषद के कम से कम आधे सदस्य व्यवस्थापिका सभा के निर्वाचित सदस्यों द्वारा निर्वाचित होंगे। यह भी निश्चित था कि व्यवस्थापिका सभा द्वारा पास बिल शासन परिषद् को अनिवार्य रूप से मान्य होगा व्यवस्थापिका सभा द्वारा पास बिल को रद्द करने का गवर्नर के विशेष-

धिकार का अन्त कर दिया गया था। आन्तरिक शासन सम्बन्धी सभी प्रश्नों में व्यवस्थापिका सभा का पूर्ण अधिकार और उत्तर-दायित्व कायम किया गया था। प्रान्तीय आय के प्रान्तीय और केन्द्रीय दो भाग न कर उसका केवल एक निश्चित प्रतिशत केन्द्र के लिये निधारित कर दिया गया था। केन्द्रीय शासन परिषद् में भी आधे सदस्यों की असेम्बली के निर्वाचित सदस्यों द्वारा विर्वाचित होना निश्चित था, और यह भी निश्चित था कि इंडियन सिविल सर्विस के सदस्य साधारणतया नियुक्त न हुआ करेंगे। असेम्बली द्वारा पास कानून शासन परिषद् को अनिवार्य रूप से मान्य होगा, और गवर्नर जनरल को उसे रद्द करने का अधिकार न होगा, यह निश्चित कर दिया गया था। इस योजना के अनुसार जो सरकार बनती उसके हाथ में इम्पीरियल सिविल सर्विस के पदों की नियुक्ति का अधिकार दिया गया था। भारत मंत्री का पद तोड़ कर उसके स्थान पर उपनिवेशों के मंत्री की भाँति का पद कर देने की व्यवस्था की गई थी। शासन परिषद असेम्बली के प्रति उत्तरदायी बना दी गई थी। अन्य अनेक धारायें थीं, जिनसे स्पष्ट था कि काँग्रेस-लीग-शासन-योजना के द्वारा देश के आन्तरिक शासन का बहुत बड़ा अधिकार बृटिश सरकार के हाथ से निकल रहा था। वास्तव में यह योजना औपनिवेशिक स्वराज्य की माँग थी।*

यह समझौता स्वेच्छा से हुआ था। बृटिश सरकार को इसमें दखल देने का अवसर नहीं दिया गया था हिन्दुस्तान के

* पुस्तक के अन्त में काँग्रेस-लीग योजना दी गई है।

प्रतिनिधियों ने वृटिश राजनीतिज्ञों को उनकी सुविधा के अनुकूल शासन सुधार हिन्दुस्तान के सर पर लादने का अवसर न देकर स्वयं अपनी योजना को उनके सम्मुख उपस्थित कर दिया था, और उस परिस्थिति का अन्त कर दिया था जिसका लाभ उठाकर वृटिश राजनीतिज्ञ विभिन्न सम्प्रदायों के मतभेद और किसी योजना के लिये स्वयं सहमत न होने की उनकी अयोग्यता का बहाना बनाया करते थे। जैसा कि निश्चित था हमारे गोरे महा प्रभुओं को यह अच्छा नहीं लगा। श्री पट्टाभि सीतारमैया ने लिखा है :—

"गवर्नमेन्ट को चिढ़ाने वाली बात यह थी, कि जब तक दिल्ली और शिमला के बीच सुधारों के सम्बन्ध में गुप्त पत्र व्यवहार हो रहा था, काँग्रेस और लीग ने...स्वराज्य की पूर्ण योजना से उन्हें पहले ही घेर लिया।"*

स्वराज्य की आकर्षित भूमिका के साथ हिन्दुस्तान की अकांक्षाओं के प्रति हार्दिक उद्वेग प्रकट करते हुये दक्ष वृटिश राजनीतिज्ञों के अनुकूल ही एक विशद वक्तव्य के साथ मांटेग्यू चेम्सफोर्ड-शासन योजना पार्लियामेन्ट द्वारा प्रकाशित की गई। काँग्रेस लीग द्वारा प्रस्तुत शासन योजना की कोई चर्चा तक न की गई थी, और न उसकी माँगों पर ध्यान दिया गया था। मांटेग्यू-चेम्सफोर्ड-योजना प्रकाशित करते हुये केवल शासन संबन्धी कठिनाइयों पर विशेष जोर दिया गया था, और अधिक प्रगतिशील सुधारों के मार्ग में अनेक असम्भव दिक्कतों की

* दि हिस्ट्री आफ दि काँग्रेस।

तालिका उपस्थित की गई थी, और अन्त में जैसा कि निश्चित था, इन कठिनाइयों और दिक्कतों को ही सफलता मिली। काँग्रेस-लीग-योजना के अनुसार उत्तरदायित्वपूर्ण स्वराज्य की माँग थी, लेकिन मांटेग्यू-चेम्सफोर्ड शासन योजना ने शासन को दो भागों में विभाजित कर दिया। इस विभाजन में वास्तविक अधिकार पूर्णतया गवर्नरों के हाथ में सुरक्षित रक्खा गया। गवर्नर की सपरिषद् कौंसिल एक व्यर्थ का अभिनय था। वास्तविक शक्ति गवर्नर के हाथ में थी। परिषद् के मंत्रियों की व्यवस्था केवल स्वराज्य का ढाँचा खड़ा कर हिन्दुस्तानियों की आँख में धूल झोंकने का एक अच्छा प्रयत्न था। सर के० वी० रेड्डी ने बड़े ही मार्मिक तथा तथ्य पूर्ण शब्दों में मंत्रियों को स्थिति का वर्णन किया है :—

"मैं जंगलों के विना उन्नति विभाग का मंत्री हूँ। मैं विना कारखाने के उद्योग का मंत्री हूँ, क्योंकि कारखाने संरक्षित विषय हैं, और कारखानों के विना उद्योग व्यवसाय की कल्पना भी नहीं की जा सकती.........। मैं विना विजली के उद्योग का मंत्री हूँ, क्योंकि विजली भी संरक्षित विषय है। श्रम और व्वायलर भी संरक्षित विषय हैं।*

मांटेग्यू-चेम्सफोर्ड योजना की यही विशेषता थी कि सभी मुख्य विषय संरक्षित थे, और कोई हिन्दुस्तानी प्रतिनिधि उनमें हाथ नहीं लगा सकता था। गवर्नरों को विशेष अधिकार देकर शासन अत्याधिक स्वेच्छाचारी और अनियंत्रित वना दिया

* प्राब्लेम आफ़ इंडिया।

गया। मंत्रियों को कोई अधिकार नहीं था, देश के प्रति उनका कोई उत्तरदायित्व नहीं था, निर्वाचित सदस्यों के प्रति भी ये उत्तरदायी नहीं थे, इनका मंत्री बना रहना गवर्नर की कृपा पर निर्भर था। फिर भी इस व्यर्थ पद का निर्माण कर स्वराज्य का ढाँचा खड़ा करने के अतिरिक्त अंग्रेजों का उद्देश्य एक ऐसे वर्ग की सृष्टि करना था, जो पद, सम्मान उपाधि और वेतन के लिये लोलुप बन कर बृटिश शासन के प्रबल, समर्थक हो जाँय, और इसमें तो संदेह ही नहीं कि बृटिश राजनीतिज्ञों को अपने इस उद्देश्य में अभूत पूर्व सफलता प्राप्त हुई। विश्लेषण करने पर इन मंत्रियों के लिये इस शासन के अन्तर्गत केवल एक ही काम दीख पड़ सकता है—बृटिश नीति और शासन की प्रत्येक कार्यवाही का औचित्य प्रमाणित करते रहना और जनता की माँगों का प्रतिरोध करना। अंग्रेजी कूटनीति को इस व्यवस्था में सब से बड़ी सुविधा यह प्राप्त हुई कि शासन के कुपरिणाम का उत्तरदायित्व इन हिन्दुस्तानी मंत्रियों के सर मढ़ अंग्रेजों की निर्दोषिता और उनके उद्देश्यों की पवित्रता की रक्षा की जा सकती थी। मंत्रियों का शक्तिशाली वर्ग बृटिश शासन का दलाल मात्र था, जो हिन्दुस्तानी जनता की प्रत्येक प्रगति को निष्क्रिय कर देने के लिये उग्र रूप से सचेष्ट था।

इस शासन सुधार का अत्यन्त भयंकर अंग साम्प्रदायिकता थी। श्री मांटेग्यू और लार्ड चेम्सफोर्ड ने अपनी रिपोर्ट में लिखा था कि यद्यपि वे पृथक निर्वाचन के सिद्धान्त से सहमत नहीं हैं फिर भी जब तक परिस्थिति में परिवर्तन नहीं होता मुसलमानों

एक सूत्र में बाँध कर बृटिश साम्राज्य तथा उसके अवाध शोषण में कोई रुकावट उत्पन्न करने के लिये सम्पूर्ण हिन्दुस्तान को एक दम अयोग्य और पंगु बना दिया गया है। नये विधान में मत दाताओं का अधिक विस्तार हुआ था। इसके स्वच्छन्द उपयोग से राष्ट्रीय शक्तियाँ अत्यन्त तीव्रगति से आगे बढ़तीं, किंतु उन्हें नगण्य और सत्वहीन कर देने के लिये मत दाताओं को सत्रह भागों में विभाजित करने के अतिरिक्त बड़े प्रान्तों में अपर चैम्बर्स का निर्माण किया गया, और इसके द्वारा साधारण सभा की प्रत्येक प्रगति में बाधा उपस्थित करने की युक्ति तय्यार की गई। केन्द्रीय संघ-शासन में देशी राजाओं को निमंत्रित किया गया, और देशी रियासतों के प्रतिनिधियों के निर्वाचित किये जाने के बजाय उनके नामजद करने की व्यवस्था की गई। इस व्यवस्था में प्रजा को प्रतिनिधियों के चुनने या नामजद करने का अधिकार न देकर देशी राजाओं को यह अधिकार दिया गया। देशी रियासतों के लगभग कुल ६४६ राजा हैं, किंतु इन्हें सब से अधिक संरक्षण दिया गया है। देशी रियासतों की जन संख्या कुल जनसंख्या की केवल २३ प्रतिशत थी, किंतु संघ-शासन के साधारण भवन में उन्हें ३३ प्रतिशत और अपर हाउस में ४० प्रतिशत मताधिकार दिया गया है। देशी रियासतों की समस्यायें अब तक की हिन्दुस्तान की सभी विषम और जटिल समस्याओं को अपनी विकरालता के सम्मुख भविष्य में नगण्य बना देने की धमकी दे रही है।

इन विषम और परस्पर विरोधी आधारों पर बना हुआ संघ-

शासन भी राज्य-शक्ति से शून्य था। वास्तविक राज्य-शक्ति इस देश से वाहर बृटिश पार्लियामेन्ट के हाथ में सुरक्षित है। हिंदुस्तान के प्रत्येक वर्ग और प्रत्येक भाग के सभी लोग मिलकर चाहे जितना भी प्रयत्न करें, किंतु पार्लियामेन्ट की अनुमति के विना हिंदुस्तान के विधान की मुख्य धाराओं में कोई परिवर्तन नहीं किया जा सकता है। जहाँ हिंदुस्तान की जनता विधान में कोई भी महत्व पूर्ण परिवर्तन करने में असमर्थ है, वहाँ बृटिश पार्लियामेन्ट किसी भी प्रकार का परिवर्तन करने का पूर्ण अधिकार रखती है।

सौभाग्य या दुर्भाग्य से संग स्थापित होने की नौबत नहीं आई। विधान के प्रान्तीय अंग को कांग्रेस सरकारों ने २७ महीने तक किसी प्रकार कार्यान्वित किया। सन् १९४० ई० से अब तक हिंदुस्तान के बहुत बड़े भाग में गवर्नरों का अनियंत्रित शासन है। देश की हुकूमत आर्डिनेन्सों द्वारा हो रही है। हिंदुस्तान का कोई ऐसा वर्ग, सम्प्रदाय, संस्था या व्यक्ति नहीं है, जिसने आरम्भ से अपनी पूरी शक्ति के साथ इस विधान का प्रवल विरोध न किया हो; किंतु सम्राट की सरकार इससे तनिक भी विचलित नहीं हुई। जब तक साम्प्रदायिक वहाने प्राप्त होते रहते हैं, सम्राट की सरकार उनकी शरण में उदारता और निष्पक्षता के साथ अपना उद्देश्य पूरा करती रहती है; किंतु ऐसे बहानो की अनुपस्थिति में बृटिश साम्राज्य नग्न नृत्य करने से भी नहीं चूकती है।

सम्राट की सरकार के प्रमुख व्यक्तियों ने वार वार इस बात

की घोषणा की है, कि 'यदि हिंदुस्तानी किसी संयुक्त माँग को उपस्थित करें तो उसे मान लेने में सरकार को कोई वाधा नहीं होगी। सर्वदल सम्मेलन के निश्चय के अनुसार सन् १९२८ ई० में नेहरू-रिपार्ट ने एक शासन योजना उपस्थिति की थी, यदि वृटिश सरकार की घोषणा ईमानदारी से की जाती है, तो नेहरू-शासन-योजना को वृटिश सरकार ने क्यों टाल दिया? उस शासन योजना के उपस्थित रहते फिर दूसरे शासन-विधान के निर्माण करने का आडंवर क्यों फैलाया गया? यदि नेहरू-शासन-योजना के विरोध में दो-चार क्षीण आवाजें जहाँ तहाँ सुनाई दीं, और इसी कारण उस शासन योजना को स्वीकार करना असम्भव समझा गया, तो प्रवल देश व्यापी विरोध और आन्दोलन होने पर भी सन् १९३५ का शासन-विधान किस औचित्य पर हिंदुस्तान के सर लादा गया? सन् १९१६ ई० की काँग्रेस-लीग शासन योजना को न केवल हिंदुस्तान की समस्त जनता का पूर्ण समर्थन प्राप्त था, वल्कि उसी योजना को स्वीकार कर कार्यान्वित करने के लिये जनता ने सभी सम्भव प्रयत्नों का आश्रय लिया; किंतु सम्राट की सरकार ने उसे क्यों शासन-विधान का रूप नहीं दिया? ये अनेक प्रश्न हैं, जो वृटिश नीति पर स्पष्ट प्रकाश डालते हैं, और साम्प्रदायिक वाधा का वास्तविक चित्र उपस्थित करते हैं।

गत योरोपीय युद्ध (१९१४-१८) के वाद हिंदुस्तान की जनता के सम्मुख आर्थिक योजना का आकर्षक चित्र उपस्थित कर लोगों की स्वाभाविक माँग को टालने का प्रयत्न किया गया। हम

लोगों ने अभी देखा है कि अपनी आकांक्षाओं को पूरा करने के प्रयत्न में असफल होने पर जनता किस प्रकार इन आर्थिक प्रलोभनों में उलझ कर आप में ही तू-तू-मैं-मैं करने लगी थी। इसी परीक्षित नीत का प्रयोग आज भी होने लगा है, हिंदुस्तान की जनता देश के शासन में अपना वास्तविक स्थान प्राप्त करने के लिये बेचैन हो उठी है, और इस विश्व-व्यापी युद्ध के समय जब प्रत्येक देश अपने व्यक्तित्व का पूर्ण विकास करने में लगा हुआ है, तो हिंदुस्तान भी अपने लक्ष्य को प्राप्त करने के लिये उत्सुक है। अगस्त् १९४२ के आन्दोलन द्वारा वह अपनी बेचैनी प्रकट भी कर चुका है; किंतु उसका प्रयत्न असफल हो चुका है, अतएव साम्राज्य का आर्थिक जाल फैलाया जा रहा है। केन्द्रीय व्यवस्थापिका सभाओं के संयुक्त अधिवेशन में १७ फरवरी सन् १९४४ ई० में लार्ड वैवेल ने अपने भाषण में हिंदुस्तान के आर्थिक विकास का एक सुन्दर चित्र खींचा था। बृटिश राज-नीतिज्ञों द्वारा अनेक आर्थिक योजनायें प्रकाशित कर युद्धोत्तर हिंदुस्तान की जनता का रहन सहन ऊँचा करने का आश्वासन और प्रलोभन दिया गया है। हिंदुस्तान के कतिपय व्यवसायिकों द्वारा तय्यार किये हुये बंबई योजना में अंग्रेजों ने बड़ी दिलचस्पीं दिखाई है, और उसका स्वागत भी किया है। बृटिश-पार्लियामेन्ट के साधारण सभा में हिंदुस्तान के सम्बन्ध में किये गये विवाद का उत्तर देते हुये २८ जुलाई सन् १९४४ ई० को भारत मंत्री एमरी ने कहा था :—

"मुझे आशा है, उस व्यावसायिक उन्नति के साथ साथ

सामाजिक उन्नति भी होगी। यहाँ पर हम केवल शुभ कामना कर सकते हैं। वे दिन बीत गये जब इंगलैंड के व्यावसायिक हिन्दुस्तान को एक मात्र अपना सुरक्षित बाजार समझते थे; और हिन्दुस्तानी व्यवसाय को अपने अधिकार क्षेत्रमें एक ऐसा अनधिकारपूर्ण अतिक्रमण समझते थे, जो आर्थिक दृष्टि-कोण से कोई मूल्य नहीं रखती थी। इसके विपरीत मैंने इस समय अपने यहाँ के व्यवसायियों के साथ हिंदुस्तान के प्रश्न पर जब भी बातचीत की है, तो यह देखा है कि हिंदुस्तान के व्यावसायिक उत्थान के प्रति अब वे उत्सुक हैं। उन्हें यह विश्वास है कि अब बीते हुये समय की भाँति हिंदुस्तान के बाजार में केवल अपनी आमदनी के अनुसार अपने मन की वस्तुयें न बेचकर हिंदुस्तान की आवश्यकता की चीजें बेचें तो हिंदुस्तान की व्यावसायिक उन्नति में बृटिश व्यापार के लिये भी गुंजाइश है।......मैं इस बात से सहमत हूँ कि राजनीतिक प्रश्न को टालने के लिये आर्थिक विकास की चर्चा का सहारा नहीं लिया जा सकता। जैसा कि श्री पैथिक लारैंस ने यह ठीक ही कहा है कि यदि शासन-विधान अनुकूल न रहा तो दूसरी दिशा में किये गये विकासों की रक्षा नहीं की जा सकती है। मैं केवल इतनाही कहना चाहता हूँ कि शासन-सुधारों का मुख्य उद्देश्य व्यक्ति गत रहन सहन और सामूहिक साधनों का आदर्श ऊँचा करना है; और इनके बिना हिंदुस्तान की स्वतंत्रता का मूल्य हिंदुस्तान या उसके बाहर एकदम नगण्य है।"

कितनी सुन्दर दलील के साथ भारत मंत्री श्री लियो पोल्ड

एमरी ने हमें समझा दिया है कि स्वतंत्रता बेकार है, वास्तविक वस्तु आर्थिक उन्नति है; और इस उन्नति के लिये इंगलैंड का प्रत्येक व्यक्ति इच्छुक तथा उत्सुक है। व्यवस्थापिका सभाओं की सयुक्त बैठक में वर्तमान गवर्नर जनरल लार्ड वैवेल ने १७ फरवरी सन् १९४४ को भाषण करते हुये कहा था :—

"न्याय, ईमानदारी और विकास के नाम में हिंदुस्तान को हिंदुस्तानियों के,ऐसे शासन में सौंपने के लिये हम बचन बद्ध हैं, जो उस शांति सुव्यवस्था और विकास की रक्षा कर सके, जिसे हम लोगों ने बड़े प्रयत्न से कायम किया है। मेरा विश्वास है कि इस कार्य के लिये हमें कुछ खतरा उठाना चाहिये; किंतु जब तक कम से कम हिंदुस्तान के दोनों मुख्य सम्प्रदाय आपस में सहमत नहीं हो जाते, तब तक मैं आगे बढ़ने की कोई आशा निकट भविष्य में नहीं देखता।"

देश ने इस भाषण को पढ़ा, महात्मा गाँधी ने भी पढ़ा। बहुत बड़ा खतरा उठाकर गाँधी जी ने मुसलिम लीग की माँग पाकिस्तान सिद्धान्त को स्वीकार कर लीग के अध्यक्ष श्री जिन्ना को आपस में समझौता कर लेने के लिये आमंत्रित किया; जिसके फल स्वरूप बंबई में श्री जिन्ना के निवास स्थान पर समझौते की बातचीत आरम्भ करने के लिये तारीख निश्चित हुई। श्री जिन्ना और मुसलिम लीग ने उस सद्भावना का परिचय दिया, जिससे देश में आशा की लहर उत्पन्न हो गयी, और सम्पूर्ण देश तथा प्रत्येक वर्ग का ध्यान बंबई की ओर आकर्षित हो गया। किंतु "कम से कम हिंदुस्तान के दोनों मुख्य

सम्प्रदायों" के पारस्परिक समझौते की आशा ने हमारे शोषक महाप्रभुओं को बेचैन कर दिया। अतएव एलाहाबाद के 'एकता सम्मेलन' को विफल कर देने के लिये जिस नीतिका प्रयोग सैमुअल होर ने कुछ दिन पूर्व किया था, उसी परीक्षित नीतिका उपयोग 'न्याय और ईमानदारी' के नाम में बंधे हुये हमारे वर्तमान गवर्नर जनरल लार्ड वैवेल ने भी किया। इस बात चीत के ठीक पूर्व लार्ड वैवेल ने महात्मा गाँधी के नाम लिखा हुआ अपना १५ अगस्त का एक पत्र प्रकाशित कर दिया। यह उल्लेखनीय है कि गाँधी जी के पास पहुँचने के पहले ही यह पत्र प्रकाशित कर दिया गया था, और इस प्रकार गाँधी को इसका उत्तर देने के अवसर से वंचितकर दिया गया। इस पत्रके प्रकाशित करने से 'गाँधी-जिन्ना' वार्तालाप के पूर्व जिस वातावरण को उत्पन्न करने की युक्ति सोची गयी थी, वह सम्भवतः गाँधी जी के उत्तर के प्रकाशित होने से व्यर्थ हो जाती। 'न्याय और ईमानदारी' के नाम में बंधे हुये वायसराय ने इस पत्र में गाँधी जी को लिखा था :—

"यदि हिंदू; मुसलमान और अन्य मुख्य अल्प संख्यक जातियों के नेता वर्तमान शासन-विधान के अन्तर्गत स्थापित अस्थायी सरकार में काम करने के लिये सहमत हों, तो मेरा विश्वास है कि अच्छी उन्नति की जा सकती है। ऐसे अस्थायी सरकार की सफलता के लिये यह आवश्यक है कि उसके स्थापित होने के पूर्व हिंदू, मुसलमान और अन्य सभी मुख्य वर्गों में उन आधार भूत सिद्धान्तों पर निश्चय रूप से समझौता हो जाना

चाहिये, जिनके अनुसार नया शासन-विधान बनाया जायगा।"

लार्ड वावेल के १७ फरवरी के भाषण में 'कम से कम हिंदुस्तान के दोनों सम्प्रदाय' के स्थान पर हिंदू, मुसलमान, अछूत, योरोपियन, ऐंग्लो इंडियन, ईसाई, देशी राज्य और हिन्दुस्तानी सेना में समझौता आवश्यक हो गया। इतने पर भी वर्तमान शासन-विधान के अन्तर्गत ही अस्थायी सरकार कायम की जा सकती थी। इस पत्र के प्रकाशित करने का केवल उद्देश्य गाँधी-जिन्ना समझौते के प्रयत्न को यह घोषित कर बेकार बना देना था कि केवल इन दो नेताओं के समझौते का कोई मूल्य नहीं होगा, क्यों कि दो सम्प्रदायों के अतिरिक्त अन्य मुख्य वर्ग भी थे, जिनके सहयोग के बिना शासन में कोई परिवर्तन कर कुछ भी अधिकार हिंदुस्तान के हाथ में नहीं दिया जा सकता था। लार्ड वावेल ने यह पृष्ठ भूमि किसी भी प्रकार के समझौते के प्रयत्न को असम्भव बना देने के लिये तैय्यार की थी।

सन् १९३५ के शासन-विधान के द्वारा हिंदुस्तान की जनता को जिन अनेक भिन्न-भिन्न तथा विषम टुकड़ों में बाँटा गया था, उतने से ही बृटेन की सम्राट की सरकार को संतोष नहीं है। लार्ड वावेल ने एक संख्या और इन अनेक टुकड़ों में जोड़ने का निर्देश किया है। हिंदुस्तान के सैनिकों का भी एक वर्ग इस तालिका में जोड़कर उन्होंने यह स्पष्ट कर दिया है कि भविष्य में अनेक सम्प्रदायों और वर्गों के अतिरिक्त इनकी भी गणना उसी प्रकार करनी होगी, जिस प्रकार वर्तमान मुख्य सम्प्रदायों

की की जा रही है। एमरी ने भी सैनिकों की हितरक्षा की बात उदारता पूर्वक दोहराई है। इस युद्ध काल में हिंदुस्तानी सैनिकों को जो महत्व दिया जा रहा है, और उनकी हितरक्षा के प्रति जो चिंता प्रकट की जा रही है, वह केवल पुरानी नीतिकी पुनरावृत्ति मात्र है। गत योरोपीय युद्ध के समय भी अवसरवादी बृटिश राजनीतिज्ञों ने इसी प्रकार की बातें कही थीं, किंतु हम सभी जानते हैं कि युद्ध के कुछ वर्षों के पश्चात् ही इन हिंदुस्तानी सैनिकों को कोई पूछने वाला तक नहीं था। हिंदुस्तान की सेना की संख्या आज इस सीमा तक पहुँच गयी है, कि वह युद्धोत्तर हिन्दुस्तान के लिये एक खतरनाक समस्या का कारण बनने की धमकी दे रही है। इस परिस्थिति को सफलता पूर्वक हिन्दुस्तान के राष्ट्रीयता के विकास और वैधानिक प्रगति के मार्ग में एक विकट रुकावट के रूप में परिवर्तित कर न केवल साम्राज्य को खतरे से बचाया जा सकता है बल्कि उसके आधार को और अधिक सुदृढ़ तथा सुरक्षित बनाया जा सकता है। गांधी जी ने आगाखाँ महल से ९ मार्च सन् १९४४ को एक पत्र लार्ड वावेल के नाम लिखा था, जिसमें उन्होंने उनके १७ फरवरी सन् १९४४ के एसेम्बली के भाषण के सम्बन्ध में हिन्दुस्तानी सेना के प्रति वायसराय के उद्देश्य को स्पष्ट करते हुये लिखा था कि वायसरय के भाषण का यह अर्थ है:—

"हम अंग्रेज हिन्दुस्तानी सैनिकों का साथ अवश्य देंगे, जिनका अस्तित्व हमने कायम किया है और जिन्हें हमने

हिन्दुस्तान में अपना शासन तथा स्थिति सुदृढ़ बनाने के लिये शिक्षित किया है, और जो जैसा कि हमने अनुभव से देखा है, दूसरे राष्ट्रों के विरुद्ध युद्ध में हमारी सफल सहायता कर सकते हैं।"

सम्प्रदायों और वर्गों की संख्या इस प्रकार निरन्तर बढ़ाई जा रही है; उनका कहीं अन्त भी है, इसका कोई अनुमान नहीं किया जा सकता है। वर्तमान विश्व-व्यापी युद्ध की विवेचना करने पर केवल यही स्पष्ट होता है कि साम्राज्य और शोषण की दृढ़ता तथा प्रसार में बृटेन पूर्ण शक्ति और कला के साथ लगा है। हिन्दुस्तान के सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक जीवनमें अनेक वर्गों स्वार्थों और सम्प्रदायों का निर्माण कर, तथा देश को अनेक रूपसे विभाजित कर हिन्दुस्तान की एकता और राष्ट्रीयता के मार्ग में ऐसी विशाल चट्टाने निरन्तर उपस्थित की जा रही हैं, जिससे बृटिश साम्राज्य और हिन्दुस्तान की जनता के शोषण के विरुद्ध कोई प्रभावशाली सम्मिलित मोर्चा तय्यार न किया जा सके। यह स्पष्ट है कि हिन्दुस्तान में सम्प्रदायों का अस्तित्त्व बृटिश साम्राज्य के स्वार्थों का अनिवार्य परिणाम है।

—:o:—

मुसलिम-लीग

पूर्व परिच्छेद में हम इस बात की विवेचना कर चुके हैं कि अलीगढ़ कालेजके प्रिंसपल श्री आर्च बोल्ड तथा तत्कालीन वायसराय लार्ड मिन्टो के सम्मिलित षडयंत्र के परिणाम स्वरूप श्री आगाखाँ की अध्यक्षतामें शिमला से एक मुसलिम प्रतिनिधि मंडल का आयोजन हुआ था, जो वायसराय महोदय के सम्मुख आवेदन पत्र के साथ उपस्थित हुआ। इस प्रतिनिधि-मंडल का आवेदन पत्र वायसराय के संकेत और परामर्श के अनुसार श्री आर्चबोल्ड द्वारा लिखा गया था। लार्ड मिन्टो ने इस आवेदन पत्र के उत्तर में प्रतिनिधि मंडलको जो वक्तव्य दिया,* वह साम्प्रदायिककता के इतिहास में सर्वदा प्रमुख स्थान पाता रहेगा। इस वक्तव्य में एक स्पष्ट संकेत और आह्वान था; और मुसलमानों के लिये यह निर्देश था कि वे हिन्दुस्तानकी समस्त जनता से प्रथक हों, अपने में केवल अपने सम्प्रदाय की चेतना जागृत करें। बृटिश सरकार की ओर से लार्ड मिन्टोने उनकी इस तथा इस प्रकार की अन्य चेष्टा-ओंको पूरा करने के लिये उत्सुकता प्रदर्शित की। स्पष्ट ही वाय-सराय ने इस वक्तव्य के द्वारा बृटिश साम्राज्य और मुसलिम जाति के मध्य एक संधि का प्रस्ताव किया। इस वक्तव्यके निर्देश

---

* देखिये पृष्ठ ६८।

और आह्वान का सूत्र पकड़ कर नवाब सलीमुल्लाखाँने सन् १९०६ ई० में ढ़ाका में एक सम्मेलन आमंत्रित किया, जिसके परिणाम स्वरूप ३० दिसम्बर सन् १९०६ ई० को मुसलिम लीग की नींव पड़ी। इस संस्था के उद्देश्य इस प्रकार निश्चित हुये:—

"एक हिन्दुस्तान के मुसलमानों में वृटिश शासन के प्रति भक्ति-भावना को बढ़ाना, और किसी नीति से सम्बन्धित सरकार के इरादे में' यदि कोई गलत फहमी पैदा हो जाय, तो उसे दूर करना; (२) हिन्दुस्तानी मुसलमानों के राजनीतिक तथा अन्य अधिकारों की रक्षा करना, और उनकी आवश्यकताओं तथा आकांक्षाओं को नरम शब्दों में सरकार के सम्मुख उपस्थित करना; (३) धारा १ और दो, के उद्देश्यों को, कोई हानि पहुँचाये बिना जहाँ तक सम्भव हो, मुसलमानों तथा हिन्दुस्तान के दूसरे सम्प्रदायों के बीच सद्‌भावना को बढ़ाना।"

लीग के उपयुक्त उद्देश्य में साम्राज्य के साथ संधि की वे शर्तें दीख पड़ेगी, जिनके लिये वायसराय के वक्तव्य में संकेत किया गया था लेकिन हिन्दुस्तान की विशाल तथा महान मुसलिम जनता की ओर से इन कतिपय नवाबों और उपाधि धारियों को इस प्रकार की संधि करने का क्या अधिकार प्राप्त था? इन प्रतिनिधियों के व्यक्तिगत स्वार्थ और सम्मान प्राप्त करने की लालसा के साथ मुसलमान जाती के हित और उन्नति का लेश मात्र भी सामंजस्य था या नहीं? वृटिश शासन की दृढ़ता के लिये उसके इरादे की ईमानदारी का प्रचार करते रहने की शर्तें किस मूल्य पर स्वीकार की गई? ये अनेक प्रश्न

हिन्दुस्तान के राजनीतिक इतिहास की विवेचना करने वालों के लिये सर्वदा उलझन पूर्ण बने रहेंगे। इसमें तो संदेह ही नहीं है कि साम्राज्य के दलालों ने अत्यन्त सावधानी के साथ जिस चक्र व्यूह का निर्माण किया, उससे उन्हें उनकी आशा के अनुरूप ही सफलता प्राप्त हुई; और इन उद्देश्यों के साथ जिस संस्था का संगठन हुआ वह भविष्य में हिन्दुस्तान के जीवन में उथल पुथल उत्पन्न करने वाली बनी।

मुसलिम लीग ने पूर्ण प्रतिक्रियावादी और सम्मिलित जीवन को विभाजित और विघटित करने की नीति से अपना जीवन आरम्भ किया। उस समय एक महान व्यक्ति, विद्वान और मुसलमान जाति तथा हिन्दुस्तान के शुभचिंतक आदरणीय स्वर्गीय मौलाना शिब्लीनुमानी ने लखनऊ के मुसलिम गजट में एक लेख लिखकर लीग की कार्य शैली पर प्रकाश डालने का प्रयत्न किया था :—

"शिमला प्रतिनिधि मंडल का उद्देश्य हिन्दुओं द्वारा प्राप्त राजनीतिक अधिकारों में हिस्सा बटाँना था; और यह बात स्पष्टतया स्वीकार की गई थी। दिखलावे के लिये लीग ने कुछ राष्ट्रीय प्रस्ताव भी पास किया है; किन्तु सभी जानते हैं कि यह राष्ट्रीय वरदान नहीं, बल्कि अभिशाप है। दिन रात इसका यही प्रचार है कि मुसलमान हिन्दुओं द्वारा सताये जाते हैं, इसलिये वे इन संरक्षणों की माँग पर जोर दे रहे हैं। शिमला डेपुटेशन के महत्वको हम कम नहीं समझते हैं, यह साम्प्रदायिक प्लेटफार्म पर सबसे बड़ा प्रदर्शन था।

जब वायसराय के पास जाने वाले डेपुटेशन में सम्मिलित होने का प्रश्न था, तो देश के प्रत्येक कोने से लोगों ने अपनी सेवायें समर्पित की। किन्तु उनमें से कितने व्यक्ति, यदि डेपुटेशन वायसराय के पास न जाकर किसी मामूली अफसर के पास उतने ही, वल्कि उससे अधिक महत्वपूर्ण उद्देश्य के लिये जाता, तो सम्मिलित होने की उत्सुकता दिखाते? जरा एक कदम और आगे हम बढ़ें। कल्पना कीजिये वायसराय के चेहरेपर क्रोध की झलक दीख पड़ने की आशंका और भय होता, तो शायद ही कोई ऐसे डेपुटेशन में सम्मिलित होने के लिये आगे आता। वास्तविक बात यह है कि ये लोग आत्म प्रवंचना के शिकार हैं। वृक्ष अपने फलों से पहिचाना जाता है। यदि हमारी राजनीति गम्भीर राजनीति रही होती तो वह एक आदर्श के लिये युद्ध करने की क्षमता और वलिदान तथा त्याग करने की तत्परता उत्पन्न करती।"*

कई वर्ष पूर्व अखिल भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का जन्म हुआ था, वृटिश नीति का आशीर्वाद इसकी स्थापना के लिये भी प्राप्त था। श्री ए० ओ० ह्यूमने अनेक दिशाओं में तीव्र उग्रता से वहते हुये जन-आवेश को, जो किसी समय फूट कर विद्रोह का प्रचंड प्रकाश्य रूप धारण कर सकता था, काँग्रेस की स्थापना में सीमा वद्ध कर उसे वैधानिक रूप देने का प्रयत्न किया था। इस संस्था के द्वारा एक अज्ञात धधकती हुई आग को प्रकट और स्थिर रूप देकर उसकी तीक्ष्णता और विस्तार को रोक देने

* कम्यूनल ट्रैङ्गिल में उद्धृत।

की व्यवस्था की गई थी। वृटिश राजनीतिज्ञों की साम्राज्य रक्षा की जिस वलवती लिप्सा ने सन् १८८५ ई० में काँग्रेस स्थापित करने के लिये श्री ह्यूम को समर्थन और सहयता प्रदान की थी, फिर उसी साम्राज्य की रक्षा के लिये ऐसे ही एक दूसरे क्षण सन् १९०६ ई० में परतंत्रता की पीड़ा से तड़पते हुये हिंदुस्तानी राष्ट्रीयता के प्रवाह को मोड़ देने के लिये श्री आर्च वोल्ड तथा लार्ड मिन्टो की कूटनीति ने मुसलिम लीग की स्थापना के लिये आवश्यक सामान एकत्र किया।

किंतु दोनों का वीजा रोपण दो भिन्न आदर्शों और उद्देश्यों के साथ हुआ था; उनके जन्म में हीं दो भिन्न लक्ष्य और आकांक्षायें निहित थीं, काँग्रेस हिंदुस्तान की सम्पूर्ण जनता की आकांक्षाओं और हिंदुस्तानी राष्ट्रीयता की प्रतीक वनी। अपने उद्देश्य और आदर्शों के अनुरूप ही कभी मन्दगति से और कभी तीव्रता से काँग्रेस पूर्ण दृढ़ता और विश्वास के साथ अग्रशील होती गई। त्याग, तपस्या वलिदान और कष्ट सहन के अत्यंत कण्टक पूर्ण और विकट मार्ग का अनुसरण कर आज वह न केवल हिंदुस्तान वल्कि सम्पूर्ण संसार के दलित और पीड़ित वर्गों के स्वार्थों का प्रतिनिधित्व करने का दावा करती है। अपने जीवन की सीढ़ियों को क्रमशः पार कर वह संसार की क्रान्तिकारी और प्रगतिशील संस्था वनने की क्षमता रखती है; और इसमें प्रतिहिंसा और शोषण की ज्वाला से मुक्ति पाने की असंख्य जनता की आशा छिपी है। काँग्रेस की राजनीति 'गम्भीर राजनीति' है, और असहाय जन वर्ग में इसमें एक

'आदर्श के लिये युद्ध करने की क्षमता और बलिदान तथा त्याग करने की तत्परता' उत्पन्न की है।

साम्राज्य की शर्तों पर संधि करने के बाद मुसलिम लीग ने जीवन आरम्भ किया, और हिंदुस्तान में साम्प्रदायिकता के आधार पर खड़ी होकर राष्ट्रीयता विरोधी मार्ग ग्रहण किया। समस्त हिंदुस्तान और हिंदुस्तान की जनता से पृथक जीवन इसकी राजनीति का मूल मंत्र निश्चित किया गया। इस पृथक जीवन का आरम्भ मुसलिम सम्प्रदाय के लिये पृथक निर्वाचन की माँग से आरम्भ हुआ, और अब एक भिन्न और पृथक राष्ट्र होने का दावा तथा हिंदुस्तान के उत्तर पश्चिम और उत्तर पूर्व भू भागों पर पूर्ण स्वतंत्र राज्य स्थापित करने की माँग इस संस्था के जन्म गत नीति के अंतिम परिणाम हैं। राष्ट्रीयता के प्रवाह को उल्टी दिशा में मोड़ देने के लिये जिस संस्था का संगठन प्रोत्साहित किया गया; उसने उस राष्ट्रीयता को कई टुकड़ों में विभाजित कर देने की परिस्थिति पैदा कर दी है।

राष्ट्रीय तथा प्रगतिशील शक्तियाँ मुसलिम लीग की प्रति क्रिया वादी नीति पर विजय प्राप्त करने के लिये बराबर प्रयत्न शील रहीं और उन्हें जब तब सफलता मिली भी; किंतु जिसनीति और उद्देश्य के साथ इस संस्था की प्राण प्रतिष्ठा हुई, वे अभि-शाप बन कर निरन्तर उसकी क्रियाओं को प्रभावित करते चले आ रहे हैं। प्रतिक्रियावादी और प्रगति शील शक्तिओं के संघर्ष के अनुसार लीग का इतिहास चार भागों में विभाजित किया जा सकता है:—

(१) १९०६—१२ = प्रतिक्रियावादी काल

(२) १९१३—२१ = प्रगति शील काल

(३) १९२२—३६ = निष्क्रिय लिवरल काल

(४) १९३७—अब तक = घोर प्रति क्रिया वादी काल

लीग की स्थिति, इरादे और शक्तिको स्पष्टतया समझने के लिये उसके कार्य काल का सूक्ष्म इतिहास जान लेना उपयुक्त होगा।

शिमला डेपुटेशन और मुसलिम लीग की स्थापना से मुसलमानों में तुरन्त विरोध की प्रति क्रिया हुई, और एक वर्ष के ही भीतर एक प्रति द्वन्द्वी मुसलिम लीग भी संगठित हो गयी। एक के नेता श्री मुहम्मद शफी थे, और दूसरी के मियाँ फजली हुसैन। लेकिन शीघ्र ही दोनों संस्थायें अलीगढ़ के अधिवेशन के अवसर पर सम्मिलित होकर एक हो गयीं। श्री मुहम्मद शफी और मियाँ फजली हुसैन दोनों व्यक्तियों को बाद में सरकार द्वारा 'सर' की उपाधि प्रदान की गयी।

दिसम्बर सन् १९०८ ई० में सर सैयद अली इमाम की अध्यक्षता में लीग का अधिवेशन अमृतसर में हुआ। इस अधिवेशन में वंग-विच्छेद के सरकारी निर्णय का विरोध करने के लिये काँग्रेस की निन्दा की गयी। अन्य प्रस्तावों द्वारा स्वायत्त शासन में पृथक प्रतिनिधित्व, प्रिवी कौंसिल में एक मुसलमान और एक हिंदू की नियुक्ति और सरकारी नौकरियों में मुसलिम सम्प्रदाय के लिये एक निश्चित प्रतिशत स्थान तय कर देने के लिये सरकार से मागें की गयीं। लीग का यह अधिवेशन महत्व पूर्ण

था, क्योंकि सन् १९०९ ई० के मांटेग्यू-चेम्स फोर्ड शासन सुधार में साम्प्रदायिकता पर पक्की मुहर लगा देने के लिये शासन-योजना के निर्माताओं को इस प्रकार के समर्थन की दिखाऊ आवश्यकता थी। लीग ने इस आवश्यकता को पूरा करने का भरसक पूर्ण प्रयत्न किया और इन्हीं कारणों से सन् १९०९ ई० के अधिवेशन में भी लीग ने अपने इन प्रस्तावों को फिर से दुहरा दिया।

इसके पश्चात् अनेक आन्तरिक और बाहरी घटनाओं ने लीग की राजनीति को प्रभावित किया। अत्यंत महत्व पूर्ण घटना लीग के ऊपर से अलीगढ़ कालेज के योरोपियन प्रिन्स्पल के प्रभाव का अन्त हो जाना था। मुसलिम लीग और कालेज दोनों के मंत्री नवाब बिकरुल मुल्क थे। उनके और कालेज के प्रिंस्पल श्री आर्च बोल्ड के मध्य गहरा मतभेद हो गया। परिणाम स्वरूप लीग का दफ़्र अलीगढ़ से हटाकर लखनऊ कर दिया गया, और इस प्रकार कालेज के अंग्रेज प्रिंस्पलों के चंगुल से लीग की मुक्ति हुई। बृटिश शासन के समर्थक जिन मुसलमानों ने बंग-विच्छेद के औचित्य का प्रचार किया था, और इसका बिरोध करने के लिये काँग्रेस की निन्दा की थी, उन्हें उस समय अत्यन्त धक्का लगा, जब उनकी एक दम अवहेलना कर बृटिश सरकार ने बंग-विच्छेद की योजना रद्द कर दी। नवाब सलीमुल्ला खाँ और उनके साथियों ने तो दुखित और लज्जित होकर अपने को राजनीति से ही एक दम अलग कर दिया। दूसरे साम्प्रदायिक मुसलमानों के आवेश भी ठंढे पड़ गये। इन घटनाओं से जो स्थिति उत्पन्न हुई, वह एक

तीसरी बाहरी घटना से अत्यधिक प्रभावित हुई। योरप में बालकन प्रान्त के वे देश जो मुसलिम साम्राज्य के अन्तर्गत थे, इंगलैंड की सहायता और बल से मुक्त और स्वतंत्र होने के प्रयत्न में सफल होने लगे। स्वयं तुर्की अंग्रेजी कूटनीति और षड़यंत्र का शिकार हो रहा था, और ऐसा प्रतीत हो रहा था कि मुख्य तुर्की का ही अस्तित्व खतरे में पड़ गया था। इससे छुटकारा पाने के आन्दोलन के परिणाम स्वरूप जिस नये तुर्की राष्ट्र का अभ्युदय हुआ, वह समस्त मुसलिम संसार के लिये जागरण, स्वतंत्रता और बृटिश साम्राज्य के प्रति विद्रोह का संदेश लेकर आया।

हिंदुस्तान के मुसलमान इन घटनाओं से अछूते न बच सके। राष्ट्रीयता ने प्रतिक्रियावादी मुसलिम शक्ति पर विजय प्राप्त की, और सन् १९१३ ई० में मुसलिम लीग ने अपने उद्देश्य में मौलिक परिवर्तन कर डाला, और उसने लीग का लक्ष्य बृटिश साम्राज्य के अन्तर्गत स्वराज्य प्राप्त करना निश्चित किया। उस समय की राजनीति के अनुसार यह एक लम्बा कदम था। इस समय से लीग का प्रगति शील काल आरम्भ होता है।

सन् १९१४ ई० में योरप में युद्ध छिड़ गया। इसने राष्ट्रीय चेतना को अभूत पूर्व शक्ति प्रदान किया। सन् १९१५ ई० में काँग्रेस और लीग के अधिवेशन एक ही साथ और एक ही स्थान पर हुये। महात्मा गाँधी, पं० मदन मोहन मालवीय और श्री मती सरोजनी नायडू जैसे उल्लेखनीय व्यक्तियों के अतिरिक्त काँग्रेस नेता बड़ी संख्या में मुसलिम लीग के अधि-

वेशन में सम्मिलित हुये थे। इस बार इसके स्थाई अध्यक्ष हिज हाई नेस श्री आगा खाँ ने लीग से इस्तीफा दे दिया। मुसलिम लीग अलीगढ़ कालेज के अँग्रेज प्रिंसपलों और स्थायी अध्यक्ष दो अत्यन्त प्रतिक्रियावादी शक्तियों से मुक्ति पा गई। और अब वह राष्ट्रीय कार्य क्रम के निर्माण में अग्रसर होने लगी। श्री मुहम्मद अली जिन्ना के एक प्रस्ताव के अनुसार लीग ने एक समिति कायम की, जिसका काम काँग्रेस के सहयोग और परामर्श से हिंदुस्तान के लिये शासन-सुधार की योजना तैयार करना था। काँग्रेस और लीग ने साम्राज्य के अन्तर्गत हिंदुस्तान के लिये स्वराज्य की योजना तैयार करने के लिये एक संयुक्त समिति कायम की। संयुक्त समिति की सिफारिशों पर अखिल भारतीय काँग्रेस कमेटी और मुसलिम लीग की कौंसिल की संयुक्त बैठक में अक्टूबर सन् १९१६ ई० में कलकत्ता में विचार हुआ। लखनऊ में काँग्रेस लीग शासन-सुधार योजना को दोनों संस्थाओं ने स्वीकृत किया।" लखनऊ समझौते से" हिंदुस्तान के स्वातंत्र्य-युक्त के इतिहास में एक नये परिच्छेद का आरम्भ हुआ, और इसमें सन्देह नहीं कि सन् १९१६ से सन् १९२१ तक हिंदुस्तान की एकता, लक्ष्य और उद्देश्य की समानता अभूत पूर्व थी। काँग्रेस के साथ मुसलिम लीग भी संघर्ष के मैदान में कूद पड़ी थी। २९ जुलाई सन् १९१७ ई० को बम्बई में अखिल भारतीय काँग्रेस कमेटी और मुसलिम लीग कौंसिल की बैठक में सविनय अवज्ञा आन्दोलन के सम्बन्ध में योजना तैयार करने की सम्भावना पर विचार किया गया।

परिस्थितियों में कुछ परिवर्तन आ जाने के कारण कॉंग्रेस और लीग के सम्मिलत अधिवेशन में बाद को सविनय अवज्ञा आन्दोलन का विचार स्थगित कर दिया; लेकिन कॉंग्रेस-लीग शासन-सुधार-योजना का प्रवल समर्थन करने के लिये एक सर्व भारतीय प्रतिनिधि-मंडल वायसराय और भारत मंत्री के पास भेजना निश्चित किया। कॉंग्रेस और लीग ने एक दृढ़ सम्मिलित मोर्चा स्थापित कर उस शासन-योजना को प्राप्त करने का पूर्ण प्रयत्न किया, जो उनके ऊपर विदेशी शक्ति द्वारा नहीं लादा गया था; वल्कि जिसे दोनों ने स्वेच्छा से तैयार किया था।

लीग के लखनऊ अधिवेशन के अध्यक्ष श्री मुहम्मद अली जिन्ना थे। उनका भाषण हिंदुस्तान की राष्ट्रीयता के विचार से ओत-प्रोत था। इस अधिवेशन में लखनऊ समझौते का समर्थन किया गया और हथियार कानून, प्रेस कानून तथा भारत रक्षा कानून को रद्द करने के लिये प्रस्ताव पास किये गये।

लीग की तीव्र प्रगति सन् १९१७ ई० के कलकत्ता अधिवेशन में स्पष्ट थी। इस अधिवेशन के लिये मौ० मोहम्मद अली, जो उन दिनों नजर वन्द थे, अध्यक्ष चुने गये। उनकी अनुपस्थिति में राजा महमूदाबाद ने सभापति का आसन ग्रहण किया। महात्मा गाँधी और श्री मती सरोजनी नायडू इस अधिवेशन में सम्मिलित हुई थीं, और मौ० मोहम्मद अली तथा शौकत अली की रिहाई के प्रस्ताव का समर्थन किया था।

दिसम्बर सन् १९१८ ई० में लीग का अधिवेशन दिल्ली में हुआ। इसके स्वागताध्यक्ष डा० अन्सारी थे। उनका भाषण

इतना ज्वलंत तथा प्रचंड था कि सरकार ने उनके छपे हुये भाषण को जब्त कर लिया। इस अधिवेशन में हिन्दुस्तान के मुसलिम उलेमा अत्यधिक संख्या में सम्मिलित हुये थे, और अपनी उपस्थिति से लीग की शान और शालीनता कई गुना अधिक बढ़ गई थी।

सन् १९१८ ई० में योरोपीय युद्ध की समाप्ति मित्र राष्ट्रों की विजय के साथ हुई। इस विजय में हिन्दुस्तान का शानदार भाग था, इसके लिये उसने अतुलनीय त्याग किया था। स्वभावत अपनी आकांक्षाओं की पूर्ति के लिये हिंदुस्तान भी आशान्वित हो उठा। लेकिन युद्ध की संधि की शर्तें अत्यन्त निराशा पूर्ण थीं। मुसलिम देशों की स्वतन्त्रता और अधिक खतरे में पड़ गई, केवल वृटिश साम्राज्य की शक्तियाँ अत्यधिक बलवती अवश्य हो गयीं। समस्त हिंदुस्तान और विशेषतया मुसलिम हिंदुस्तान मार्मिक वेदना से कराह उठा। उसमें विद्रोह की आग भड़क उठी। मुसलिम लीग राष्ट्रीय प्रवाह में वह अवश्य चली थी, किन्तु उसकी नीति और प्रगति से मुसलमान संतुष्ट नहीं थे। परिस्थितियों ने क्षोभ का जो वातावरण उत्पन्न किया था, वह और तेजी का तकाजा कर रहा था। राष्ट्रीयता ने मुसलिम लीग को प्रभावित अवश्य किया था; किन्तु उसे एक दम अपना न सकी थी। अभी तक लीग में ऐसे लोगों की शक्ती और प्रभाव कम नहीं था, जो सम्पूर्ण हिंदुस्तान से पृथक रहने की नीति पर दृढ़ थे। सन् १९१६ ई० के काँग्रेस लीग समझौते में मुसलमानों के लिये न केवल पृथक निर्वाचन ही से ये लोग

संतुष्ट हुये; बल्कि विशेष संरक्षणों का अधिकार भी प्राप्त किया। केवल इन लोगों को शांत कर लीग के अन्दर जो भी राष्ट्रीय भावना और शक्ति जागृत हुई थी, उसे पर्याप्त बल प्रदान करने के लिये ही काँग्रेस ने सहमत न होते हुये भी इन शर्तों को मान कर समझौता किया था। लेकिन युद्ध के परिणामों ने जन चेतना को कोड़े लगाकर पूर्ण रूप से जब जागृत कर दिया, तो इस खींचतान से चलने वाली संस्था मुसलमानों की भावना को संतुष्ट करती हुई प्रतीत नहीं हुई। परिणाम स्वरूप सन् १९१९ ई० में दिल्ली में खिलाफत कॉंफ्रेंस हुई। हिंदुस्तान के उलेमाओं ने भी इसी समय स्पष्टता और दृढ़ता के साथ जनता का साथ देने के लिये अपनी अलग संस्था संगठित करने का निश्चय किया और मौलाना मोहम्मद हसन ने जो गत योरोपीय युद्ध के समय राज्य-विद्रोहात्मक कार्यों के कारण माल्टा टापू में नजरबन्द थे, सन् १९१९ ई० में 'जमैयतुल उलमाटो हिंद को' स्थापित किया। इस संस्था का उद्देश्य स्पष्ट करते हुये कहा गया :—

"सन् १९१९ में खिलाफत कॉंफ्रेंस दिल्ली के अवसर पर उलेमाओं ने यह अनुभव किया कि हिंदुस्तान के पेश इमामों को जिनकी सम्मिलित शक्ति और प्रभाव सन् १८५७ ई० के विद्रोह के पश्चात् नष्ट कर डाला गया, फिर से संगठित होना चाहिये। अब तक राजनीति का अर्थ चाप लूसी और राज्य-भक्ति प्रकट करना रहा है। वह व्यक्ति जो बृटिश सरकार का सबसे बड़ा भक्त है, मुसलमानों का नेता मान लिया जाता है।

यही कारण है कि उलेमा जो चाप लूसी से घृणा करते हैं, और जो सत्य के लिये जालिम का सामना करने के आदी हैं, अब तक राजनीति से दूर रहे। किन्तु अब मुसलिम राजनीति अच्छे मार्ग पर चल रही है। उलेमाँ इस क्षेत्र में पुनः प्रवेश कर रहे है; और 'जमैयतुल उलमाये हिंद' स्थापित की जा रही है।"

सन् १९१९ ई० में मुसलिम लीग, जमैयतुल उलमाये हिंद, खिलाफत कॉन्फ्रेंस के अधिवेशन, काँग्रेस के साथ अमृतसर में 'जालियान वाला बाग' के हत्या कांड पर विचार करने के लिये हुआ। श्री हकीम अजमल खाँ मुसलिम लीग के अध्यक्ष थे।

सन् १९२० ई० के लीग अधिवेशन के अध्यक्ष डा० आन्सारी थे। उनकी अध्यक्षता में लीग ने काँग्रेस के 'सविनय अवज्ञा' कार्य क्रम का पूर्ण समर्थन किया और उसके साथ सहयोग करने का निश्चय किया।

सन् १९२१ ई० में लीग ने फिर अपना अधिवेशन काँग्रेस के साथ ही अहमदाबाद में किया। मौ० हसरत मोहानी लीग अधिवेशन के अध्यक्ष थे। अध्यक्ष पद से जो उनका भाषण हुआ, उसमें हिंदुस्तान के लिये क्रांति का संदेश भरा था, और हिंदुस्तान तथा अन्य मुसलिम देशों की बृटिश साम्राज्य के चंगुल से मुक्त करने के लिये उसमें स्पष्ट आह्वान था। भाषण की प्रचंडता के कारण अध्यक्ष मौ० हसरत मोहानी गिरफ़ार कर लिये गये।

उग्रता अपनी चरम सीमा पर पहुँच चुकी थी। असहयोग और खिलाफत आन्दोलन की भीषणता और व्यापकता अभी

हमारी स्मृतियों में एक दम ताजी है। चौरी चौरा कांड के कारण महात्मा गाँधी ने आन्दोलन स्थगित कर दिया। विद्रोही जनता निरुपाय और स्तब्ध होकर शिथिल पड़ गयी थी। आशा की उग्रता निराशा और क्षोभ में परिवर्तित हो गयी। निराशा और असफलता का अनिवार्य भावी परिणाम नैतिक पतन हुआ करता है। जो कुछ था सब निर्जीव हो गया।

मुसलिम लीग का तीसरा काल-लिबरल काल-आरम्भ हुआ। सन् १९२३ में लीग का अधिवेशन लखनऊ में हुआ। उपस्थिति इसमें इतनी कम थी कि खुला अधिवेशन नहीं हो सका। इसके पश्चात् के भी तीन अधिवेशन एक दम निर्जीव थे, उनमें किसी को कोई दिलचस्पी नहीं थी। थोड़ा बहुत साम्प्रदायिक चर्चा करने के पश्चात् उद्देश्य हीन अधिवेशन समाप्त हो जाते थे। इन वर्षों में देश का वातावरण साम्प्रदायिकता से धीरे-धीरे क्षुब्ध हो रहा था। हिंदू मुसलिम सम्बन्ध में तनातनी बढ़ती जा रही थी। सन् १९२७ ई० में प्रतिक्रियावादी मुसलमानों ने फिर लीग पर अधिकार प्राप्त करने का प्रयत्न किया। इसी समय 'साइमन कमीशन' की नियुक्ति हुई थी। सम्पूर्ण हिंदुस्तान ने इस कमीशन का बहिष्कार किया था। प्रतिक्रिया वादी मुसलमानों ने कमीशन का स्वागत करना चाहा और जब पूरी लीग उनके साथ न चल सकी तो मलिक फीरोज खाँनून सर मोहम्मद अकबाल और जफरुल्ला खाँ ने लीग का एक प्रति द्वन्द्वी अधिवेशन लाहौर में बुलाया। अधिवेशन सर मुहम्मद शफी की अध्यक्षता में हुआ, और इसने 'साइमन कमीशन' का स्वागत

करने का प्रस्ताव पास किया। इस अधिवेशन में हिंदुस्तान के सभी प्रान्तों से कुल केवल ३५२ प्रतिनिधि आये थे। लीग का वास्तविक अधिवेशन कलकत्ते में श्री जिन्ना की अध्यक्षता में हुआ। इस अधिवेशन में साइमन कमीशन का वाहिष्कार करने और नजरबन्दराज बन्दियों को रिहा करने के प्रस्ताव पास हुये। किन्तु इस अधिवेशन में सब से महत्वपूर्ण कार्य यह हुआ। कि लीग की कौंसिल को अन्य राजनीतिक दलों के साथ मिल कर हिंदुस्तान के लिये शासन विधान तय्यार करने के लिये एक समिति नियुक्त करने का आदेश दिया गया। इस अधिवेशन ने मार्च सन् १९२८ ई० में दिल्ली में होने वाले राष्ट्रीय सम्मेलन में सम्मिलित होने का निश्चय किया।

'साइमन कमीशन' हिंदुस्तान के भावी शासन-योजना के सम्बन्ध में जाँच करने के लिये भेजा गया था। काँग्रेस ने उसका वहिष्कार किया था, इसलिये हिंदुस्तानियों द्वारा शासन योजना तय्यार करने के उद्देश्य से फरवरी और मार्च सन् १९२८ ई० में दिल्ली में 'सर्वदल सम्मेलन बुलाया गया था। शासन-विधान के अतिरिक्त साम्प्रदायिक प्रश्न भी इस सम्मेलन के लिये विचारणीय विषय था। दो महीने के भीरत २५ बैठकें हुईं, और लगभग ¾ प्रश्न सुलझ चुके थे। १९ मई सन् १९२८ ई० को डा० अन्सारी की अध्यक्षता में दिल्ली में सम्मेलन की बैठक नेएक समिति नियुक्त की, जिसके अध्यक्ष पं० मोतीलाल नेहरू हुये। नेहरू रिपोट ने शासन-विधान की एक योजना तय्यार की, जो 'नेहरू रिपोर्ट' के नाम से प्रसिद्ध है।

श्री जिन्ना इसी समय इंगलैंड से वापस आये थे। आने के साथ ही 'नेहरू रिपोर्ट' का उन्होंने विरोध करना शुरू किया। दिसम्बर सन् १९२८ ई० में लीग का अधिवेशन हुआ, लेकिन उपस्थिति अपर्याप्त कह कर श्री जिन्ना ने अधिवेशन स्थगित कर दिया। नेहरू रिपोर्ट तथा दूसरे कई विचारनीय विषय मार्च सन् १९२९ में होने वाले अधिवेशन के लिये टाल दिये गये।

सर मुहम्मद शफी की अध्यक्षता में प्रतिद्वन्द्वी लीग का जो अधिवेशन लाहौर में हुआ था, उसने एक मुसलिम सर्वदल सम्मेलन दिल्ली में बुलाया। दोनों लीगें इसमें शामिल हो गयीं। इस सम्मेलन ने 'नेहरू रिपोर्ट' को अमान्य कह कर अस्वीकृत कर दिया। विलास के संसार में विचरने वाले, और हिंदुस्तान की भूमि से प्रायः सर्वदा दूर योरप के बेशकीमत होटलों में विहार करनेवाले हिज हाइनेस श्री आगा खाँ एक बार फिर मुसलिम राजनीति के क्षेत्र में उतर पड़े थे। 'नेहरू रिपोर्ट' का विरोध जिस ढंग से उन्होंने किया वह जानने योग्य है :—

"वे (आगाखाँ) हम से कहते हैं कि अंग्रेज उस देश में सैनिक शक्ति या नागरिक शासकों को छोड़ कर चले जाने के लिये सम्मान पूर्वक कदापि सहमत न हो सकेंगे, जिसके अच्छे शासन के लिये वे आगे उत्तरदायी न रहेंगे। यदि आवेश में अंग्रेजों ने ऐसा किया, जिसका दूसरा उदाहरण इतिहास में नहीं है, तो उस देश में जिसमें उनके उत्तरदायित्व का अन्त हो चुका रहेगा दूसरे लोगों द्वारा शासन करने के लिये अस्त्र शस्त्र प्रदान

करने के लिये न केवल समस्त संसार की आँखों में वल्कि सभी काल के इतिहास में गिर जांयगे।"❀

नेहरू रिपोर्ट के इस प्रकार के विरोध से श्री आगाखाँ बृटिश साम्रज्य को उस संधिका स्मरण दिला रहे थे, जिसके आधार पर सन् १९०६ ई० में उन्होंने अपने मित्रों के साथ मुसलिम लीग स्थापित किया था, और अपनी ओर से साम्राज्य को यह आश्वासन और विश्वास दे रहे थे कि उनका मुसलिम गुट उस संधिका अपना भाग (उद्देश्य की १ व २ धारायें) पूरा करने को तय्यार था। श्री आगा खाँ हिन्दुस्तान को सीधे छोड़ कर न हट जाने के लिये अंग्रेजों में क्यों इतनी उत्प्रेरणा और ईर्ष्या उत्पन्न कर रहे थे, यह राजनीति के एक साधारण विद्यार्थी को भी समझ लेना सरल है। एक हिजहाइनेस का सम्मान पूर्ण और विलासपूर्ण जीवन जिस साम्राज्य के आधार पर अवलंवित था, उसके सरक जाने पर क्या होगा, उसका प्रत्यक्ष उदाहरण रूस श्री आगा खाँ के सम्मुख शीघ्र ही विशद और स्पष्ट रूप में उपस्थित कर चुका था।

नेहरू रिपोर्ट में प्रकाशित शासन-योजना के प्रति बाद में श्री आगा खाँ ने एक दूसरी सूझ उपस्थित की :—

"आगा खाँ ने प्रत्येक हिंदुस्तानी प्रान्त की स्वतंत्रता के लिये तर्क किया, और कहा कि प्रत्येक प्रान्त की स्थिति एक अमेरिकन

❀ सप्लिमेन्टरी रिपोर्ट आफ नेहरू कमेटी।

स्टेट या स्विटजरलैंड के प्रान्त की भाँति न होकर पूर्व जर्मन संघ के ववेरिया प्रान्त के रूप में होनी चाहिये।"*

नेहरू रिपोर्ट ने हिन्दुस्तान के लिये साम्राज्य के अन्तर्गत केवल औपनिवेशिक स्वराज्य की माँग की थी; किन्तु आगा खाँ के अनुसार प्रत्येक हिंदुस्तानी प्रान्त को स्वतंत्रता की माग के लिये बृटिश साम्राज्य को एक दम हिन्दुस्तान छोड़ कर हट जाना निश्चित् था, जो आगा खाँ की दृष्टि में बृटेन के लिये अत्यन्त लज्जा जनक कार्य था। फिर इस सूझ को उपस्थित करने में इसके अतिरिक्त दूसरा क्या अर्थ हो सकता था कि आगाखाँ उलझन उत्पन्न कर नेहरू रिपोर्ट को झमेले में डाल देना चाहते थे, और इस प्रकार उसका अन्त कर साम्राज्य की दृढ़ता और मुसलमानों में पृथकत्व की भावना को जाग्रित रखकर वर्तमान व्यवस्था को अपरिवर्तित वनाये रखने के लिये उत्सुक थे। इसके अतिरिक्त उनकी नीयत यदि कुछ और थी, तो उसे केवल आगा खाँ ही बता सकते हैं।

राष्ट्रीय मुसलमान कतिपय संशोधनों के साथ नेहरू रिपोर्ट को स्वीकृत कर लेने के पक्ष में थे, लेकिन विरोधी शक्तियाँ उनसे वहुत अधिक वलवती सिद्ध हुई। परिणाम स्वरूप राष्ट्रीय मुसलमान लीग से अलग हो गये। सन् १९३१ ई० में हिंदुस्तान के राष्ट्रीय मुसलमान सर अली इमाम की अध्यक्षता में एक सम्मेलन लखनऊ में बुलाया। अध्यक्ष ने हिन्दुस्तानी राष्ट्रीयता में पूर्ण निष्ठा व्यक्त करते हुये पृथक निर्वाचन की निन्दा की।

* काँग्रेस हिस्ट्री।

सभी प्रमुख प्रश्नों को बालिक मताधिकार तथा संयुक्त निर्वाचन के आधार पर निर्णय करने के प्रस्ताव इस सम्मेलन में पास किये गये। सन् १९३० ई० में काँग्रेस ने सरकार के विरुद्ध सविनय अवज्ञा आन्दोलन आरम्भ कर दिया था, देश की अन्य राष्ट्रीय शक्तियों के साथ राष्ट्रीय मुसलमान भी पूरी शक्ति के साथ इस आन्दोलन में सम्मिलित थे। राष्ट्रीय मुसलमानों के हटने के बाद मुसलिन लीग एक निरुपाय संस्था रह गयी, इसके पास न कोई कार्य क्रम था और न कोई शक्ति इसमें शेष थी।

सन् १९३१ ई० में लीग का अधिवेशन सर मुहम्मद इकबाल की अध्यक्षता में इलाहाबाद में हुआ, जिसमें ७५ से भी कम सदस्य उपस्थित थे। कोरम पूरा न होने से अधिवेशन न हो सका। दूसरे वर्ष के अधिवेशन की हालत इससे भिन्न नहीं थी। इसमें लगभग १०० सदस्य उपस्थित थे। श्री जफरुल्ला खाँ की अध्यक्षता में अधिवेशन दिल्ली के एक निजी मकान में हुआ। लीग केवल कहने भर की एक संस्था रह गयी।

१ अप्रैल सन् १९३४ ई० को लीग कौंसिल की बैठक दिल्ली में हुई। कुल ४० सदस्य उपस्थित थे। कौंसिल ने ब्रिटिश प्रधान मंत्री का साम्प्रदायिक निर्णय उस समय तक के लिये स्वीकृत कर लिया, जब तक दूसरे सभी सम्प्रदाय पारस्परिक समझौते से कोई अन्य साम्प्रदायिक निर्णय न करें। कौंसिल ने देश के मानने योग्य शासन-विधान प्राप्त करने में दूसरे सम्प्रदायों तथा दलों के साथ सहयोग करने का निश्चय किया। श्री जिन्ना ने गोल मेज के निर्णय को देश द्रोही बताया और कहा कि हिंदुस्तान के सर्वो-

त्तम स्वार्थ की सिद्धि के लिये मुसलमान किसी से भी पीछे न रहेंगे। अनेक प्रतिक्रियायों के साथ श्री जिन्ना इंगलैंड से निश्चित रूप से हिंदुस्तान लौट आये थे, और संभवतः इंगलैंड से प्राप्त किये मान के आधार पूर्ण आवेश के साथ लीग को फिर से संगठित करने का प्रयत्न आरम्भ किया।

लीग का दूसरा अधिवेशन अप्रैल सन् १९३६ ई० में वम्बई में सर सैयद वजीर हसन की अध्यक्षता में हुआ। सर वजीर का भाषण विशद, स्पष्ट और राष्ट्रीयता से ओत प्रोत था। उनकी अध्यक्षता ने इस अधिवेशन को महत्व प्रदान कर दिया। उन्होंने सन् १९३५ के शासन विधान को लोक तंत्र तथा स्वतंत्रता की सृष्टि करने वाली शक्तियों का विनाशक और मुसलिम पूँजीपति तथा मुसलिम जनता दोनों ही के लिये हानि प्रद वताते हुये कड़ी आलोचना की। देश की स्वतंत्रता के लिये केवल हिंदू और मुसलमान में ही नहीं, वल्कि देश के सभी वर्गों और राजनीतिक संस्थाओं में एकता के लिये अध्यक्ष ने अनुरोध किया, और राष्ट्रव्यापी आन्दोलन की सृष्टि करने के लिये कई कार्य क्रमों की सूझ उपस्थित की। इस अधिवेशन ने स्वराज्य के मार्ग में सन् १९३५ के शासन सुधार के संघ भाग को सबसे वड़ा रोड़ा घोषित कर अस्वीकृत कर दिया।

किंतु लीग के मंच से यह अन्तिम राष्ट्रीय उगद्गार था, वह उसका अन्तिम प्रगतिशील अधिवेशन था। सन् १९३७ ई० के आरम्भ में नये शासन-विधान के अनुसार प्रान्तीय निर्वाचन हिंदुस्तान भर में हुये। काँग्रेस ने अपने एक निर्णय द्वारा इस

शासन-विधान को बेकार और व्यर्थ कर देने का निश्चय किया था। इसी प्रधान निश्चय के अनुसार उसने निर्वाचन में भाग लिया। मुसलिम लीग ने भी अपने उम्मेद वारों को निर्वाचन में खड़ा किया। यद्यपि काँग्रेस और लीग में निर्वाचन सम्बन्धी कोई समझौता नहीं था; किंतु जिस मुसलिम क्षेत्रों में काँग्रेस अपना उम्मेद वार नहीं खड़ा कर सकी थी, वहाँ लीग के उम्मेद वारों का समर्थन किया। निर्वाचन के पश्चात् काँग्रेस ने जब मंत्रि-पद ग्रहण करना स्वीकृत किया, तो किसी अन्य संस्था के साथ संयुक्त मंत्रि-मंडल न बनाकर विशुद्ध काँग्रेस मंत्रि मंडल निर्माण करना निश्चय किया। यह घटना मुसलिम लीग के इतिहास में भीषण परिवर्तन का कारण सिद्ध हुई, और सन् १९३७ के पश्चात् लीग का कार्य क्रम और नीति प्रति क्रिया तथा साम्प्रदायिकता के उग्रतम मार्ग पर चल पड़ी। अक्टूबर सन् १९३७ में लीग का अधिवेशन हुआ, इसके स्वागताध्यक्ष महमूदा बाद के राजा थे, उनके भाषण का एक अंश लीग के क्षोभ की विवेचना करने के लिये अनिवार्य होगा :—

"हमारे देश में एक नाजुक राजनीतिक स्थिति पैदा हो गयी है। बहु संख्यक सम्प्रदाय मुसलिम सम्प्रदाय को सम्प्रदाय की हैसियत से मानने से अस्वीकार कर रहा है, और हमारे नेताओं के साथ मिलकर राष्ट्रीय उन्नति के लिये काम करने से भी अस्वीकार कर रहा है।"

अधिवेशन के अध्यक्ष श्री जिन्ना ने काँग्रेस की निन्दा इस

लिये की कि उसने शासन-विधान बेकार बना देने की प्रतिज्ञा कर उसे सचमुच कार्यान्वित किया, उन्होंने कहा :—

"कांग्रेस का वर्तमान नेतृत्व विशेष कर १० वर्षों से ऐसी नीति का जो एक दम हिंदू नीति है, अधिक से अधिक अनुसरण कर मुसलमानों की सहानुभूति खो देने के लिये उत्तरदायी है। और जब कि छः प्रान्तों में जहाँ उसका बहुमत है, अपनी ही सरकार बनाकर उसने अपने शब्दों, कार्यों, कार्य क्रमों से यह दिखा दिया कि मुसलमान उससे न्याय की आशा नहीं कर सकते। तनिक सा अधिकार मिलते ही बहु संख्यक सम्प्रदाय ने यह स्पष्ट कर दिया, कि हिन्दुस्तान केवल हिंदुओं के लिये है।"

अभी तक इस अधिवेशन में श्री जिन्ना ने लीग का उद्देश्य हिन्दुस्तान के लिये पूर्ण राष्ट्रीय जन तंत्र शासन प्राप्त करना घोषित किया।

अप्रैल सन् १९३८ का लीग अधिवेशन फिर श्री जिन्ना की अध्यक्षता में कलकत्ते में हुआ। यह अधिवेशन कांग्रेस के विरोधी नारों, कांग्रेस के शासन द्वारा मुसलमानों पर अत्याचार 'इस्लाम खतरे में', और 'हिन्दूराज्य' की शिकायतों से गूँज उठा। श्री फजलुल हक ने इस्लाम के नाम पर मुसलमानों को एक हो जाने के लिये प्रोत्साहित किया।

उसी साल दिसम्बर सन् १९३८ में पटना में लीग का अधिवेशन फिर हुआ। इस अधिवेशन की भी विशेषता कांग्रेस का विरोध थी। देशी रियाशतों से सम्बंधित कांग्रेस

नीति को केन्द्रीय असेम्बली में बहुमत प्राप्त करने का षड़यंत्र बताते हुये श्री जिन्ना ने यह धमकी दी कि लीग को रियासती मुसलमानों की रक्षा करनी पड़ेगी और उन्होंने मुसलमानों से राष्ट्रीय भावना जागृत करने का अनुरोध किया।

मार्च सन् १९३९ ई० में लीग कार्य समिति की बैठक मेरठ में हुई। इस बैठक में हिन्दुस्तान के मुसलमानों के अधिकार और स्वत्त्व की रक्षा के लिये अनेक शासन योजनाओं पर विचार कर एक रिपोर्ट तय्यार करने के लिये एक समिति नियुक्ति की गयी। इस समिति ने जो रिपोर्ट तैयार की वह प्रसिद्ध 'पाकिस्तान योजना' है। इस योजना के जन्म दाता हैदराबाद के डा० अब्दुल लतीफ कहे जा सकते हैं।

सितम्बर सन् १९३९ ई० में योरप में फिर महासमर आरम्भ हो गया इंगलैंड ने जर्मनी के विरुद्ध युद्ध-घोषणा की, हिन्दुस्तान भी वायसराय की घोषणा के द्वारा युद्ध में शामिल कर दिया गया। लीग कार्य समिति ने इस अवसर पर अपनी नीति स्पष्ट करते हुये कहा कि मुसलिम लीग बृटिश सरकार को युद्ध में सहयोग देने के प्रश्न पर तभी विचार करेगी जब बृटिश सरकार लीग की सभी माँगें पूरा करने का वादा करेगी।

हिन्दुस्तान की राय की परवाह किये बिना उसे योरोपीय युद्ध में सम्मिलित कर देने के कार्य का कांग्रेस ने प्रबल विरोध किया, और बृटिश पार्लियामेन्ट से युद्ध के उद्देश्य की घोषणा करने का आग्रह किया, और यह स्पष्ट कर दिया कि यदि युद्ध का उद्देश्य जन तंत्र की रक्षा हो तो हिन्दुस्तान की स्वतंत्रता

प्रदान करने की तुरंत घोषणा कर उस उद्देश्य की ईमानदारी का प्रमाण अविलम्ब उपस्थित होना चाहिये। केवल इसी परिस्थिति में कांग्रेस बृटिश सरकार के साथ युद्ध में शामिल होने को तैयार थी। बृटिश सरकार के संतोष प्रद उत्तर न देने पर कांग्रेस के निश्चय के अनुसार कांग्रेस मंत्रिमंडलों ने अपने पदों से इस्तीफा दे दिया। बृटिश शासन के इतिहास में यह अभूतपूर्व वैधानिक परिस्थिति थी, और बृटिश सरकार इस परिस्थिति के कारण जब तक स्तब्ध और हैरान थी, लीग अध्यक्ष श्री जिन्ना ने हिन्दुस्तान भर की लीग शाखाओं को "मुक्ति-दिवस" मनाने का आदेश दिया। इससे निश्चय ही बृटिश सरकार को काफी तसल्ली और राहत मिली।

मुसलिम-लीग—राजनीति की इस पृष्ट भूमि में उसके अध्यक्ष श्री जिन्ना को २३ दिसम्बर सन् १९३९ को एक पत्र में गवर्नर जनरल लार्ड लिनलिथगो ने लिखा था :—

"बादशाह की सरकार को हिन्दुस्तान में किसी वैधानिक विकास की सफलता और दृढ़ता के लिये मुसलिम सम्प्रदाय के संतोष के महत्व के संबन्ध में कोई गलतफहमी नहीं है। इसलिये आपको इस बात का कोई भी डर नहीं होना चाहिये कि आप के सम्प्रदाय की स्थिति और उसकी अनिवार्य शक्ति को देखते हुये उसके विचारों का कम मूल्य लगाया जायगा।"

श्री जिन्ना अत्यंत प्रतिक्रियावादी पथ का अनुसरण करने लगे थे। युद्ध घोषणा होते ही बृटिश सरकार के साथ उन्होंने उस संधि को पुनर्जीवित करने का प्रयत्न आरम्भ किया जो

लीग के राष्ट्रीय और लिबरल काल में स्थगित सी हो गयी थी। युद्ध में वृटेन के साथ सहयोग करने की शर्तें जिस ढंग से श्री जिन्ना ने उपस्थिति कीं और २३ दिसम्बर सन् १९३९ के उपर्युक्त पत्र में गवर्नर जनरल ने कुछ लिखा, वे सन् १९०६ ई० के श्री आगा खाँ के प्रतिनिधि मंडल के आवेदन पत्र और तात्कालिक गवर्नर जनरल के उत्तर से भिन्न नहीं हैं। अन्त-राष्ट्रीय और विशेषतया इस देश की नाजुक राजनीतिक परिस्थिति ने मुसलिम लीग और वृटिश सरकार के मध्य संधि सूत्र फिर से स्थापित हो गया।

लीग का दूसरा अधिवेशन मार्च १९४० ई० में लाहौर में हुआ। श्री जिन्ना अध्यक्ष थे। अपने भाषण में उन्होंने कहा कि इस्लाम और हिंदुत्व 'ठीक अर्थ में धर्म नहीं हैं। किन्तु वास्तव में दो भिन्न सामाजिक व्यवस्थायें हैं।' और हिन्दू तथा मुसलमान कभी भी 'एक राष्ट्र' नहीं बना सकेंगे। उन्होंने कहा कि यदि समय रहते हम ठीक से यह नहीं समझ लेते हैं कि यहाँ हिंदू और मुसलमान दो राष्ट्र हैं तो यह एक 'हिंदुस्तानी राष्ट्र' का भ्रम हमारा विनाश कर डालेगा। उन्होंने घोषणा की कि जन तंत्र शासन हिंदुस्तान के लिये उपयुक्त नहीं है। मुसलमान एक भिन्न राष्ट्र हैं इसलिये उनका भी अपना एक अलग देश, अपना राज्य और अपनी सरकार अवश्य होनी चाहिये। श्री जिन्ना ने लीग को शक्ति शाली बनाने पर जोर दिया और वृटिश सरकार को यह चेतावनी दी कि 'यदि बादशाह की सरकार बिना हमारे समर्थन और स्वीकृत के कोई

वैधानिक घोषणा करती है तो मुसलिम हिंदुस्तान उसका प्रतिरोध करेगा।'

किन्तु इस लाहौर अधिवेशन का सर्वज्ञात कार्य वह प्रस्ताव था जो 'पाकिस्तान' के नाम से प्रसिद्ध है। श्री फजलुला हक ने प्रस्ताव उपस्थित किया था। इस योजना द्वारा लीग ने हिंदुन्तान में पृथक मुसलिम राज्य स्थापित करने का सिद्धान्त स्वीकृत किया।

सन् १९४१ ई० में लीग का दूसरा अधिवेशन श्री जिन्ना की अध्यक्षता में अप्रैल में हुआ। पाकिस्तान लीग का 'ध्येय' हो गया। श्री जिन्ना ने अपने भाषण में कहा, "हम लोग किसी परिस्थिति में भी सम्पूर्ण हिंदुस्तान के लिये एक केन्द्रीय सरकार और एक विधान नहीं चाहते हैं। हम लोग कदापि इसके लिये सहमत नहीं होंगे। हम लोग एक अलग राष्ट्र के आधार पर अलग स्वतंत्र राज्य स्थापित करने पर तुले हैं। सन् १९४२ का अधिवेशन भी साधारण रूप से हो गया।

दिसम्बर १९४३ का अधिवेशन श्री जिन्ना की अध्यक्षता में कराँची में हुआ। श्री जिन्ना ने इस आरोप का प्रतिरोध करते हुये कि मुसलिम लीग हिन्दुन्तान की स्वतंत्रता के प्रश्न से उदासीन है, अपने भाषण में कहा था :—

"बृटिश सरकार एक निश्चित नीति का अनुसरण कर रही है। वह किसी दल का सहयोग नहीं चाहती है। काँग्रेस ने असहयोग करना निश्चित किया और सविनय अवज्ञा आन्दोलन किया। काँग्रेस ग़ैर क़ानूनी करार दी गई। शेष हिंदुस्तान

ने क्या किया है? हम लोगों ने युद्ध जीतने के लिये अपने सहयोग का हाथ बढ़ाया, बशर्ते कि वह एक विश्वासनीय मित्र की सहायता की भाँति जिसे सरकार में अधिकार और भाग प्राप्त हैं, स्वीकार किया जाय और युद्ध के पश्चात् उसके फल में हमारा भाग, हमारा हिस्सा देने का निश्चित वादा किया जाय, किन्तु यह अस्वीकार कर दिया गया। और फिर भी हमारी संस्था के साथ उस काँग्रेस की ही भाँति वर्ताव किया जा रहा है जो हिंदुओं की एक ठोस संख्या का प्रतिनिधित्व करती है। दोनों संस्थाओं काँग्रेस और मुसलिम लीग के साथ एकसा व्यवहार किया जा रहा है।"

वृटिश सरकार के विरुद्ध से श्री जिन्ना की शिकायतें केवल संधि की अच्छी शर्तें प्राप्त करने के लिये की गई थीं। श्री जिन्ना वृटिश सरकार से इस लिये अप्रसन्न थे कि वृटिश सरकार उनके साथ एक विशेष प्रकार का वर्ताव नहीं कर रही थी। श्री जिन्ना ने आगे कहा :—

"हम लोग वृटिश सरकार पर इस वात का जोर डाल रहे हैं, कि वह हिंदुस्तान का बँटवारा करने के पश्चात् इसे छोड़ कर चली जाय।"

सिन्ध के सम्बन्ध में श्री जिन्ना ने कहा "यह पाकिस्तान का द्वार होगा। इस अधिवेशन में 'मुसलमान केवल मुसलमानों से ही चीजें खरीदें' का नारा ऊँचा किया गया। चौधरी खली कुज्जमाँ के प्रस्ताव के अनुसार पाकिस्तान प्राप्त करने के उद्देश्य से

हिंदुस्तान के मुसलमानों को संगठित करने के लिये एक समिति बनाने का निश्चय हुआ।

इसके बाद की परिस्थितियाँ लीग के अनुकूल नहीं थीं और लीग का वार्षिक अधिवेशन होना असम्भव हो गया। लीग का अधिवेशन इधर हुआ ही नहीं। लीग का जो सूक्ष्म इतिहास हमने दिया है उससे यह स्पष्ट है कि यह संस्था अपने आरम्भिक उद्देश्य के पथ पर सन् १९३६ ई० के बाद श्री जिन्ना की अध्यक्षता में तीव्रता से चलने लगे। इंगलैंड में गोल मेज सम्मेलन समाप्त होने के बाद श्री जिन्ना निश्चित रूप से हिन्दुस्तान में आ गये; और यद्यपि अभी कुछ ही दिन पूर्व यहाँ कि राजनीति से ऊब कर और इसमें कभी फिर न पड़ने की शपथ लेकर श्री जिन्ना इंगलैंड चले गये थे, किन्तु अपने इस निर्णय के विरुद्ध निश्चय के साथ विदेश से स्वदेश लौटे, और मुसलिम लीग की कमान अपने हाथ में ली। देश और विदेश में घटने वाली कतिपय घटनाओं ने मुसलिम लीग के लिये अनुकूल परिस्थिति उत्पन्न कर दी।

सन् १९३७ के निर्वाचन में काँग्रेस अत्यधिक बहुमत के साथ विजयी हुई। पहले छः फिर हिंदुस्तान के आठ प्रान्तों का शासन भार इस साम्राज्य विरोधी संस्था के हाथ आया। गवर्नर जनरल और भारत मंत्री जिनके हाथ में शासन सूत्र था, वे अब केवल दर्शक मात्र से रह गये। हिंदुस्तान का नागरिक शासन जो अब तक साम्राज्य की मूल संस्था पार्लियामेन्ट से शक्ति, आदेश और प्रेरणा प्राप्त करता था, वह अब साम्राज्य विरोधी

संस्था अखिल भारतीय काँग्रेस से कुछ काल के लिये आदेश और परामर्श प्राप्त करता हुआ सा प्रतीत होने लगा। वृटिश राजनीतिज्ञों के लिये यह अत्यन्त चिन्तनीय परिस्थिति थी। अन्तर्राष्ट्रीय उलझनें नाजुक हो रही थीं, और युद्ध का ज्वालामुखी किसी समय भी विस्फोट हो सकता था। उस समय तक योरप में युद्ध के सभी लक्षण एक दम स्पष्ट हो गये थे, और युद्ध के भीषणता तथा भिन्न-भिन्न शक्तियों और दलों के सहयोग और विरोध के प्रश्न में भी कोई सन्देह शेष नहीं रह गया था। इस परिस्थिति में हिंदुस्तान में साम्राज्य विरोधी संस्था द्वारा शासन संचालन एक परेशानी की वात थी। यदि शीघ्र भविष्य में छिड़ने वाले युद्ध के साथ ही हिंदुस्तान ने भी पूर्ण स्वतंत्रता की सम्मिलित और सवल माँग उपस्थित की, तो सफलता पूर्वक उस माँग को ठुकरा सकना वृटिश साम्राज्य के लिये असम्भव होगा, यह अँग्रेजों के लिये समझ लेना अत्यन्त सरल था, इस लिये ऐसी किसी परिस्थिति को भविष्य में असम्भव वना देने के उद्देष्य से मुसलिम लीग और अपने मध्य की संधि को वृटिश सरकार ने साधन वनाया, और परिणाम स्वरूप लीग को हिंदुस्तान की राजनीति में आशातीत सुविधायें और समर्थन प्राप्त होने लगा।

काँग्रेस सरकारें कलह का कारण वन गयीं। वरसों के वलिदान तथा परिश्रम के वाद काँग्रेस द्वारा प्राप्त की इस शक्ति में केवल पद तथा सम्मान के लोलुप लीग के सदस्यों ने जव भाग वँटाने की असीमित उत्कंण का परिचय दिया, तो

काँग्रेस के तात्कालिक अध्यक्ष पं० जवाहरलाल नेहरू ने लीग के सम्मुख यह प्रस्ताव उपस्थित किया कि समान राजनीतिक और आर्थिक कार्य क्रम होने से काँग्रेस के साथ सहयोग सम्भव है :—

"काँग्रेस असेम्बली में एक निश्चित कार्य क्रम तथा एक निश्चित नीति को अग्रसर करने के लिये गयी है। उस कार्य क्रम तथा नीति को अग्रसर करने में वह प्रसन्नता पूर्वक दूसरे दलों के साथ सहयोग करेगी, चाहे वह (काँग्रेस) बहुमत में हो या अल्पमत में हो। इस आधार पर संयुक्त मंत्री मंडल निर्माण करने का विचार भी मैं कर सकता हूँ।"*

पं० नेहरू ने युक्तप्रान्त के लीगी नेताओं नवाब मुहम्मद इस्माइल खाँ और चौ० खलीकुज्जमाँ के सम्मुख भी आर्थिक तथा राजनीतिक कार्य क्रम की समानता का प्रस्ताव संयुक्त मंत्री-मंडल के निर्माण के लिये रखा। लीग के साथ यह एक संधि का प्रस्ताव था। बृटिश सरकार और काँग्रेस हिंदुस्तान की इन दो सबल संस्थाओं में से किससे संधि करने में लीग का मतलब सध सकेगा, इसका निर्णय करना लीगी नेताओं के लिये कुछ कठिन-सा था। काँग्रेस, जिसके लिये मंत्रि-मंडल साम्राज्य विरोधी युद्ध का एक अंग मात्र था, किस समय इसे ठुकरा देगी, साम्राज्य के आधार और समर्थक नवाब, जमींदार और सत्ता-धारी स्वार्थों के प्रति उसका क्या रुख होगा, जन शक्ति के उत्थान, और उसकी क्रान्ति कारिणी चेतना को जागृत करने

* नेहरू जिन्ना करेसपान्डेन्ट।

तथा वृटिश सरकार के आश्रित-स्वार्थों को शक्ति हीन बनाने में उसके क्या कार्य क्रम होंगे, और सबसे बढ़कर मंत्रित्व के सम्मान तथा शक्ति का आकर्षक पद हजारों रुपये के स्थान पर केवल पाँच सौ रुपये मासिक का जन सेवा का अत्यन्त उत्तर दायित्व पूर्ण कार्य रह जायगा, इन अनेक विवेचनाओं ने मुसलिम लीग के निर्णय का मार्ग प्रशस्त कर दिया। काँग्रेस के साथ संधि करने में लीग और उसके संचालकों का अस्तित्व ही खतरे में था। इसके विपरीत वृटिश सरकार के साथ उसकी अलिखित संधि थी, जिसकी सीमा इतनी विस्तृत थी, कि उसमें वह सरलता पूर्वक जाति प्रेम का दिखावटी स्वरूप धारण कर अपना नेतृत्व कायम रख सकती थी।

काँग्रेस और काँग्रेस सरकारों के विरुद्ध मुसलिम लीग ने युद्ध घोषित कर दिया। केवल यही मार्ग उसकी सम्मान रक्षा के उपयुक्त और वृटिश हित के अनुकूल था। 'हिन्दू राज्य' का भय और 'इस्लाम खतरे में' का जोरदार और देश व्यापी नारा ऊँचा किया गया। इस्लाम के नाम पर मुसलिम जनता को उभाड़ने का प्रयत्न किया गया। 'हिन्दू राज्य' और 'इस्लाम खतरे में' के नारे से भी अधिक प्रभावशाली जिस अस्त्र का लीग ने अनुसंधान किया वह था 'कांग्रेस सरकारों के विरुद्ध मुसलमानों पर अत्याचार' का अभियोग। लीग के प्लैटफार्म से 'मुसलमानों पर अत्याचार' के अभियोग का प्रचार जितनी प्रचंडता कलापूर्ण उपायों से किया जा सकता था लीग के सभी प्रभावशाली तथा उत्तरदायी व्यक्तियों द्वारा किया गया, और

ये अभियोग लीग के लिये शक्ति तथा प्रभाव प्राप्त करने के साधन बनाये गये। हिन्दुस्तान के एक एक कोने में कांग्रेस सरकारों के प्रत्येक कार्य, प्रत्येक कानून, और प्रत्येक शासन नीति को पद पद पर मुसलिम हित विरोधी कहते रहना लीग का एक मात्र उद्देश्य हो गया।

अन्तराष्ट्रीय उलझनों में फँसी हुई बृटिश सरकार साम्राज्य विरोधी कांग्रेस को उलझन में फँसाये रखने वाली इस संस्था को पर्याप्त बल प्रदान करने में पीछे न रही। सन् १९३७ ई० के निर्वाचन के प्रतिकूल परिणाम के अतिरिक्त भी बृटिश सरकार ने तत्परता और तीव्रता से मुसलिम लीग को मुसलमान जाति की एक मात्र प्रतिनिधि संस्था और उसके स्थायी अध्यक्ष श्री जिन्ना को उसका एक मात्र नेता मान लिया। इस समय के पूर्व हिंदुस्तान की किसी भी एक संस्था को चाहे वह जितनी भी बड़ी हो, और किसी एक व्यक्ति को चाहे वह जैसा भी महान हो, यह श्रेय अब तक नहीं प्राप्त हो सका था। अक्टूबर सन् १९३७ ई० में पंजाब के प्रधान मंत्री सर सिकन्दर हयात खाँ और बंगाल के प्रधान मंत्री श्री फजलुल हक ने सहसा श्री जिन्ना और उनकी लीग में अपना विश्वास प्रकट किया। दो प्रान्तों के प्रधान मंत्रियों के सम्मिलित होने से लीग को अत्यधिक शक्ति प्राप्त हुई। प्रो० हुमायूँ कबीर ने अमृत बाजार पत्रिका सन् १९४४ में एक लेख लिखकर इस पर प्रकाश डालते हुये कहा था :—

"इसमें सन्देह नहीं है कि श्री जिन्ना ने काँग्रेस प्रान्तों में अत्याचार का नारा लगाना आरम्भ किया था, किंतु वह नारा

इतना सवल या प्रभाव पूर्ण नहीं था, जो लीग के बाहर के किसी व्यक्ति को प्रभावित कर सकता। यह निश्चित रूप से प्रसिद्ध था कि सर सिकन्दर हयात खाँ बृटिश सरकार के स्थायी दलाल थे, और उन्होंने कोई ऐसा महत्व पूर्ण निर्णय कभी नहीं किया था, जिसे हिंदुस्तान के बृटिश अधिकारी न चाहते हों। उनका लीग में सम्मिलित होना इस वात का प्रमाण था कि श्री जिन्ना और उनकी लीग पर इस समय बृटिश अधिकारियों की कृपा दृष्टि थी।"

इस शक्ति और प्रोत्साहन के साथ मुसलिम लीग ने अपने को मुसलमान जाति की एक मात्र प्रतिनिधि संस्था करार देते हुये, काँग्रेस को केवल हिंदुओं की एक संस्था घोषित किया, यद्यपि कुछ ही दिन पूर्व सन् १९३५ ई० में श्री जिन्ना ने हिंदुओं के प्रतिनिधित्व करने के काँग्रेस अधिकार को एक दम अस्वीकृत कर दिया था। सन् १९३५ ई० में तत्कालीन काँग्रेस अध्यक्ष श्री राजेन्द्र प्रसाद जी और श्री जिन्ना के मध्य गोल मेज सम्मेलन के साम्प्रदायिक निर्णय में परिवर्तन करने के लिये वात चीत चल रही थी, और दोनों व्यक्ति एक निर्णय पर पहुँच भी चुके थे। लेकिन श्री जिन्ना इस वात पर अड़ गये कि समझौते में हिंदू सभा भी अवश्य सम्मिलित हो और समझौता पत्र पर उसका भी हस्ताक्षर अवश्य हो। काँग्रेस अध्यक्ष ने यह विश्वास और आश्वासन दिलाया कि काँग्रेस उन हिंदुओं या हिंदू संस्थाओं से निपट लेगी, जो समझौते का विरोध करेंगे; किंतु यह श्री जिन्ना के लिये पर्याप्त नहीं था, और उनकी दृष्टि में हिंदू

महासभा के सम्मिलित हुये विना हिंदुओं की ओर से काँग्रेस का उत्तर दायित्व मान्य नहीं था। सन् १९३८ ई० में मुसलमान जाति के एक मात्र प्रतिनिधि के पद से जिन्ना ने फिर अपना पैतरा वदला, और गाँधी जी को 'देश भर के हिंदुओं'* का प्रतिनिधित्व करने के लिये आमांत्रित किया। इसके कुछ ही दिन वाद काँग्रेस का यह भी स्थिति लीग के अध्यक्ष को मान्य नहीं रही। अब वह केवल हिंदुओं की एक ठोस संस्था, और विशेषतया उच्च जाति के हिंदुओं की संस्था रह गयी।

श्री जिन्ना और उनकी लीग से अधिक स्पष्ट इस बात को हिंदुस्तान का कोई भी दूसरा व्यक्ति नहीं जानता था, कि काँग्रेस सरकारों के विरुद्ध मुसलिम लीग द्वारा लगाये जाने वाले अभियोग न केवल निराधार हैं, बल्कि एक दम कल्पित हैं। हिंदू राज्य का दोषारोपण केवल निम्नतर साम्प्रदायिक उत्तेजना को उभाड़ने के लिये किया गया था। बृटिश साम्राज्य के अन्तर्गत हिन्दुस्तान के ग्यारह प्रान्तों का निर्माण साम्राज्य की राजनीतिक सुविधा के अनुसार हुआ है। प्रान्तों के वर्तमान स्वरूप समय समय पर आवश्यकता के अनुसार किये गये अनेक परिवर्तनों के परिणाम हैं। प्रान्तों की व्यवस्था के अनुसार सीमा प्रान्त, पंजाव, सिंध और वंगाल में निश्चित रूप से मुसलिम बहुमत है, और शेष प्रान्तों में हिंदू बहुमत में हैं। हिंदुस्तान की कुल मुसलिम संख्या का ७४ प्रतिशत बहुसंख्यक मुसलिम प्रान्तों में वसा है। और शेष २६ प्रतिशत हिंदू बहु-

* नेहरू जिन्ना करेसपान्डेन्स।

संख्यक प्रान्तों में रहता है। हिंदू अनुपाततः १९ प्रतिशत वहुसंख्यक मुसलिम प्रान्तों में बस्ते हैं, और ८१ प्रतिशत वहु-संख्यक हिंदू प्रान्तों में रहते हैं।* १९३५ ई० के शासन-विधान के अनुसार हिंदुस्तान के ११ प्रान्तों में कुल ७१ मंत्री थे, जिनमें २६ मुसलमान थे। शेष ४५ मंत्रियों में १० अन्य सम्प्रदायों के थे, केवल ३५ मंत्री हिंदू थे। श्री जिन्ना और मुसलिम लीग के अनुसार अछूत भी हिंदू सम्प्रदाय से अलग अस्तित्व रखते है। छः वहुसंख्यक हिंदू प्रान्तों में विशुद्ध काँग्रेस मंत्रि मंडल का शासन था ; इनमें कुल ३५ मंत्री थे, जिनमें छः मुसलमान थे, और पाँच अन्य कई सम्प्रदाय के थे। इन छः प्रान्तों के अतिरिक्त काँग्रेस ने सीमा प्रान्त और आसाम में और लोगों की सहायता से मंत्रि-मंडल का निर्माण किया था। सीमा प्रान्त में कुल चार मंत्रियों में तीन मुसलमान थे, और आसाम में भी तीन मुसलमान मंत्री थे। वहुसंख्यक मुसलिम प्रान्तों में शासन में मुसलिम मंत्रियों का प्राधान्य था, और वहुसंख्यक हिंदू प्रान्तों में मुसलिम जनसंख्या के अनुपात के अनुसार मुसलिम मंत्री शासन में भागीदार थे। इस विवेचना से यह स्पष्ट है कि 'हिंदू राज्य' का नारा केवल अनुत्तरदायित्व पूर्ण और उच्छृङ्खलता पूर्ण था।

काँग्रेस सरकारों द्वारा मुसलमानों पर 'अत्याचार' का दोपारोपण भी ठीक ऐसा ही था। एक प्रान्त के प्रधान मंत्री की

* मुस्लिम प्रान्तों का शासन मुस्लिम मंत्रियों के हाथ में था। वस 'हिन्दू राज्य' को दोपारोपण का प्रश्न नहीं था।

स्थिति के व्यक्ति श्री फजलुल हक ने मुसलमानों पर अत्याचार करने के लिये काँग्रेस सरकारों को दोषी वतलाते हुये अत्यंत उत्तेजक शब्दों में यह घोषणा की कि वे स्थान स्थान पर घूम कर इन अभियोगों की सत्यता पं० जहावर लाल नेहरू को प्रमाणित करेंगे। पं० नेहरू ने उनके साथ घूम कर सत्य की जाँच करने के इस निमंत्रण को तुरन्त स्वीकार किया। किंतु अनुरोध करने पर भी श्री हक को अभियोगों की जाँच तो दूर रही, अपने वचन के पालन करने का भी समय नहीं मिला। श्री हक भली भाँति जानते थे कि प्रचार के लिये अभियोगों को साधन वनाना एक वस्तु है, और उन्हें वास्तविक जाँच का विषय वनाना उससे एक दम भिन्न दूसरी वस्तु है। किंतु लीग के महारथी गण इससे तनिक भी अप्रतिभ होने वाले व्यक्ति नहीं थे। अभियोगों का आरोप वरावर तीव्र गति से चलता रहा। एक दूसरे अवसर पर अक्टूवर सन् १९३९ ई० में उस समय के काँग्रेस अध्यक्ष श्री राजेन्द्र प्रसाद जी ने लीग अध्यक्ष श्री जिन्ना को एक पत्र में लिखा :—

"अखिल भारतीय मुसलिम लीग की कार्य समिति ने शीघ्र ही दिल्ली के एक प्रस्ताव में प्रान्तीय सरकारों की चर्चा की है। यह कहा गया है कि कई प्रान्तों में प्रान्तीय शासन का परिणाम हिंदुओं द्वारा मुसलिम अल्प संख्यको पर प्रभुत्व स्थापित करना हुआ है। मुसलमानों का जीवन उनकी स्वतंत्रता, सम्पत्ति और सम्मान खतरे में है, तथा उनके मजहवी अधिकार और उनकी संस्कृति प्रति दिन अनेक प्रान्तों में काँग्रेस सरकार

द्वारा कुचली जा रही है।"......आप हम लोगों के साथ सहमत होंगे, कि जब ऐसे अभियोग गम्भीरता के साथ लगाये जाँय तो उनकी जाँच अवश्य होनी चाहिये, और या तो उन्हें सत्य प्रमाणित किया जाय या असत्य सिद्धकर दिया जाय। अभियोग के लिये इस कार्य प्रणाली को हम पसंद करते हैं। यदि आप सहमत हों तो हम लोग हिंदुस्तान के सबसे बड़े न्यायाधीश, संघ न्यायालय के प्रधान जन से इसकी जाँच करने की प्रार्थना कर सकते हैं।"*

श्री जिन्ना का उत्तर उनके अनुकूल ही था। काँग्रेस अध्यक्ष के प्रस्ताव को अस्वीकृत करते हुये उन्होंने उत्तर में लिखा :—

"यह विषय गवर्नर जनरल के विचाराधीन है, और वही इस विषय में ऐसे कार्य तथा उपाय करने के अधिकारी हैं, जो हम लोगों की आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकेगा।"

कुछ दिनों के पश्चात् श्री जिन्ना ने अभियोगों की जाँच के लिये शाहीकमीशन की माँग पेश की, जिसे वृटिश सरकार ने तुरंत ही अस्वीकृत कर दिया। इसके बाद फिर कभी श्री जिन्ना ने उसकी कोई परवाह नहीं की, शायद इतने ही से अभियोगों के जाँच की अनिवार्य नैतिक आवश्यकता पूरी हो जाती थी, और सम्भवतः इतने ही से श्री जिन्ना का उद्देश्य भी सफल हो जाता था।

काँग्रेस के महारथी मौ० अब्दुल कलाम आज़ाद ने इन

---

* कम्यूनल ट्रैंगिल में उद्धृत।

'अत्याचारों' को लीग की एक दम कोरी कल्पना बताते हुये अपने एक वक्तव्य में कहा था :—

"मैं थोड़े ही में बतला सकता हूँ कि आदि से अन्त तक जो भी अभियोग मेरी जानकारी में लाये गये हैं, उन सभी की पूरी और कड़ी जाँच तथा छान बीन की गयी। मेरे सभी साथी जानते हैं कि इस विषय में किस सीमा तक मेरी मनोवृत्ति दृढ़ और हठीली रही है। मेरे लिये यह साधारण सी बात हो गई थी, कि ऐसे सभी कागजातों और मिसिलों को मैं स्वयं देखता था, और प्रत्येक प्रश्न की छान बीन कड़ाई से करता था।"*

लीग के उच्छृङ्खल अभियोग किसी प्रकार रुकते नहीं दीखते थे। अभियोगों की जाँच कराने के सभी अनुरोध भी व्यर्थ हो चुके थे। एक बेहूदी सी परिस्थिति थी। इन अभियोगों को समूल नष्ट करने के लिये काँग्रेस ने अपने मंत्रि-मंडलों को यह आदेश दिया कि वे अपने प्रान्त के गवर्नरों से लीग के आक्षेपों और अभियोगों पर उनका मत प्रकट करने का अनुरोध करें। मंत्रि मंडलों के अनुरोध के परिणाम स्वरूप गवर्नरों ने स्पष्ट रूप से घोषित किया कि सभी अभियोग निराधार और कल्पित हैं। इतना ही नहीं, गवर्नरों ने निष्पक्ष और अच्छे शासन के लिये काँग्रेस-मंत्रि-मंडलों की प्रशंसा भी की। गवर्नर प्रान्तीय शासन का प्रधान था, और मुस्लिम लीग

---

* मौ० अब्दुल कलाम आजाद ले० महादेव देसाई।

को भी गवर्नर के किसी दल विशेष के साथ पक्षपात करने की कोई शिकायत नहीं थी।

मुसलिम-लीग सन् १९३७ ई० में एक निर्वाचन घोषणा के साथ निर्वाचन क्षेत्र में आई थी। निर्वाचकों के प्रति उसके उत्तर दायित्त्व के निर्वाह पर एक दृष्टि डालना आवश्यक है, और यह देखना भी आवश्यक है कि मुस्लिम लीग अपने निर्वाचन घोषणा के प्रति कितनी ईमानदार रही। जून सन् १९३६ ई० की अपनी निर्वाचन घोषणा में लीग ने कहा था :—

"विभिन्न असेम्बलियों के अपने प्रतिनिधियों से हम इन मुख्य सिद्धान्तों के अनुसार काम करने की आशा करते हैं, (१) वर्तमान प्रान्तीय विधान तथा केन्द्रीय संघ विधान के स्थान पर शीघ्र ही प्रजा तंत्र शासन की स्थापना करना। (२) तब तक (प्रजा तंत्र शासन स्थापित होने के समय तक) लीगी सदस्य विभिन्न असेम्बलियों का पूर्ण उपयोग कर राष्ट्रीय जीवन के अनेक क्षेत्रों में जनता के लिये अधिक से अधिक लाभ उठायेंगे। जब तक पृथक निर्वाचन की प्रथा प्रचिलित हैं, असेम्बली में लीग का पृथक दल रहेगा, लेकिन वह दूसरे ऐसे दलों के साथ जिनका लक्ष्य तथा उद्देश्य लीग के समान होगा, स्वच्छन्दता पूर्वक सहयोग करेगा। लीग मुसलमानों से अनुरोध करती है कि वे अपने को आर्थिक या किसी अन्य लोभ में फँसने न देंगे, जिससे मुसलिम सम्प्रदाय की एकता नष्ट होती हो।"

लेकिन मुसलिम जनता के सम्मुख गम्भीरता से की गई इस घोषणा का क्या लेशमात्र भी पालन लीग ने किया है?

संसार की शायद ही किसी दूसरी घोषणा की न केवल एकदम इतनी अवहेलना, बल्कि उससे अतयंत विपरीति कार्य इतने साहस और आवेश से हुआ हो, जिस रूप में मुसलिम लीग ने इस घोषणा के प्रति किया है। लीग का दूसरा कार्य क्रम पहले विचारणीय है। काँग्रेस सरकारों ने जिस कार्य क्रम का अनुसरण किया, वह जन हित के दृष्टि से अनुकरणीय था। तत्कालीन परिस्थिति में असेम्बलियों में काँग्रेस ही एक ऐसा दल था, जिसके साथ, 'जनता के लिये अधिक से अधिक लाभ उठाने के उद्देश्य से सहयोग करना अनिवार्य्य था, लेकिन लीग ने इसके विरुद्ध आचरण किया। काँग्रेस सरकारों ने जनता के लाभ के लिये नशा-निषेध नीति को अपनाया और उससे होने वाली आर्थिक क्षति की पूर्ति, पूँजी पर कर लगा कर किया। यह कर सभी सम्प्रदाय के कुछ सम्पत्ति शाली व्यक्तियों पर ही लगा; लेकिन मुसलिम मज़हब में नशा प्रत्येक व्यक्ति के लिये वर्जित होने पर भी इस जन-हित कार्य के विरोध में एक विशाल मुसलिम जुलूस बंबई की सड़कों पर निकाला गया, और इसी विषय को लेकर काँग्रेस की भरपूर निन्दा की गयी। संयुक्त प्रान्त में कास्तकारी कानून जिसका एक मात्र उद्देश्य युगों से दीनता और विवशता की पीड़ा से कराहती हुई जनता को कुछ अत्यन्त साधारण सुविधा में प्रदान करना था, इसको भी मुसलिम लीग का समर्थन प्राप्त न हो सका। बम्बई असेम्बली में काँग्रेस सरकार ने स्थानीय स्वायत्त शासन संबन्धी एक कानून इस उद्देष्य से उपस्थित किया कि पृथक

निर्वाचन की प्रथा ज्यों की त्यों रहते हुये भी प्रत्येक व्यक्ति को संयुक्तनिर्वाचन का आश्रय लेने की स्वतंत्रता होगी। इसके पहले मुसलिम लीग को भी यह व्यवस्था मान्य थी; लेकिन जब काँग्रेस सरकार ने उसे कार्यान्वित किया, तो लीग ने उसका प्रबल विरोध किया, और काँग्रेस को इसके लिये मुसलिम विरोधी कहा। सिन्ध प्रान्त के स्वतंत्र दल के मुसलिम प्रतिनिधियों की सरकार ने स्वायत्त शासन सम्बन्धी एक कानून संयुक्त निर्वाचन के लिये पास किया, लेकिन षणयंत्रों के परिणाम स्वरूप जब सिन्ध में लीग की सरकार स्थापित हुई, तो उसने इस जनोपयोगी, साम्प्रदायिक सद्भावना की इस प्रथम सीढ़ी का विनाश कर डाला। केवल उदाहरण के लिये कतिपय घटनाओं की यह चर्चा है। पूरी संख्या गिनाना असम्भव है। अशिक्षा-निवारण, ग्रामोद्धार, जन सम्पर्क, इत्यादि काँग्रेस कार्य क्रमों में से प्रत्येक को लीग ने मुसलमानों के साथ 'अत्याचार' घोषित किया।

उन क्रियाओं पर ध्यान देना आवश्यक है जो मुस्लिम लीग के शासन-काल में लीगी मंत्रि मंडलों द्वारा हुई हैं। हिन्दुस्तान के पाँच प्रान्तों-सीमा प्रान्त, सिन्ध, पंजाब, बंगाल और आसाम में लीग की सरकारें कायम हुई। ये सरकारें काँग्रेस सरकारों के इस्तीफा देने के बाद युद्ध काल में बनी हैं। बंगाल के प्रधान मंत्री यद्यपि लीग में अपने विश्वास की घोषणा किये थे, लेकिन कुछ ही दिनों में लीग और बृटिश सरकार को उनकी बेअदबी ज्ञात हुई, और इस लिये उन्हें हटा कर बगाल में विशुद्ध लीगी मंत्रि-मंडल स्थापित हुआ।

पंजाब जिसे श्री जिन्ना ने अभिमान पूर्वक पाकिस्तान का 'गौरव' कहा है और जिसकी पाक भूमि में बस जाने के लिये उन्होंने एक महल भी वहाँ खरीदा है, 'जनता को अधिक से अधिक लाभ' पहुँचाने का स्तव्य कर देने योग्य उदाहरण उपस्थित करता है। सन् १९४४ ई० में प्रकाशित अपनी पुस्तक 'ए ट्रिप टू पाकिस्तान' में श्री यूसफ मेहर अली ने जन हित कार्यों का चित्र आकर्षक और अत्यंत व्यांगत्मक शब्दों में खींचा है :—

"पाकिस्तान में जो हो रहा है, वह अभूत पूर्व महत्त्व की जमीन्दारी क्रान्ति है। २० वर्ष पूर्व शायद ही कोई ऐसी जमीन्दारी थी जिसकी वार्षिक आय तीन लाख या उससे अधिक रही हो। आज संख्या विशेष रूप से बढ़ रही है। ऐसा अंशतः तो नहरों के कारण और अंशतः सर सिकन्दर हयात खाँ और सर छोटू राम जैसे राज नीतिज्ञों के प्रयत्न के कारण हो रहा है। यदि इनका शासन एक या दो युग और रहा, तो इसमें सन्देह नहीं कि किसान भूपतियों की चीण होती हुई रैयतवारी प्रथा का स्थान स्वास्थ्य और सबल जमींदारी प्रथा ग्रहण कर लेगी और इसके परिणाम स्वरूप इससे एक ऐसा सभ्य वर्ग उत्पन्न होगा, जो पाकिस्तान के लिये अभिमान और संयुक्त प्रान्त तथा बंगाल के ताल्लुकेदारों और पुराने समय के प्रसिद्ध जमींदारों के लिये ईर्ष्या करने योग्य होगा। किसान उस समय इस जानकारी में कि उसकी चिन्ताओं और उलझनों का उत्तरदायित्व नये जमींदारों के कंधे पर चला गया, प्रसन्नता से आराम की नींद

सोयेंगे। जब कि संसार के प्रत्येक भाग में जमींदारी प्रथा निश्चित रूप से दम तोड़ रही है, उस समय उसे पाकिस्तान में सफलता पूर्वक उत्पन्न करके दृढ़ बना देना एक ऐसी कृति होगी, जिसे आने वाली पीढ़ियाँ सरलता से नहीं भूलेंगी।"

जन हित के न भूल सकने योग्य इन कार्य्यों के अतिरिक्त उसी पुस्तक के लेखक द्वारा पाकिस्तान शासन का 'व्यक्ति स्वतन्त्र्य' सम्बन्धी एक दूसरी सूचना जानने योग्य है :—

"दूसरे अवसर पर हमें आपको खाकसारों के प्रधान कार्य्यालय 'इछरा' को दिखलाये होते: लेकिन खाकसार संगठन शीघ्र ही गैर कानूनी घोषित करार दे दिया गया है। इसके नेता कैद कर लिये गये हैं, इसका फन्ड जब्त कर लिया गया है, और इसका समाचार पत्र बन्द कर दिया गया है।"*

श्री यूसुफ मेहर अली के पूछने पर कि इतना दमन क्यों किया गया है, उन्हें उत्तर मिला :—

"अल्लमाँ मशरिकी इस्लाम पुनरुद्धार आन्दोलन के नेता हैं। मुसलिम पुरोहित उनसे घृणा करते हैं.........अल्लमाँ की महत्व कॉंक्षायें भी बड़ी हैं। उन्होंने एक अतिरिक्त 'खाकसारिस्तान' राज्य के निर्माण की योजना बनायी। "जिसका उद्देश्य न केवल पाकिस्तान को अपने में समेट ही लेना था; बल्कि उससे भी कहीं बढ़ कर था।" पाकिस्तान का हिमायती पूँजीपति वर्ग, एक दूसरे बढ़ते हुये वर्ग को कैसे देख सकता था। आज तो लीग और खाक सार एक दूसरे के भयंकर विरोधी हैं।

---

* लेखक के मित्र और पथ प्रदर्शक।

मार्च सन् १९४० ई० में लाहौर में मुसलिम लीग का अधिवेशन होना निश्चत था। इससे कुछ पूर्व पाकिस्तान सरकार की आज्ञा उल्लंघन करने के कारण खाकसार जत्थों पर पुलिस ने अनेक वार गोलियाँ चलायीं, जिसके परिणाम स्वरूप ३० खाकसार गोली के शिकार हुये, और बहुत से बेतरह घायल हुये। काँग्रेस के विरुद्ध अत्याचार का अनवरत नारा लगाने वाली मुसलिम लीग ने अपनी सरकार की इस करतूत के प्रति विशेष सौजन्य का परिचय दिया; और इस घटना के प्रति न केवल अपना मुख एक दम वन्द रखा; बल्कि इसके तुरन्त पश्चात् ही लाहौर में अपना शानदार अधिवेशन किया।

बंगाल प्रान्त के भयानक अकाल ने लीगी सरकारों और अखिल भारतीय मुसलिम लीग के वास्तविक उद्देश्य और 'जनता को अधिक से अधिक लाभ पहुँचाने' के नारे की परीक्षा के लिये उपयुक्त साधन उपस्थित किया। बंगाल की स्थिति ने न केवल हिन्दुस्तान, बल्कि समस्त संसार में कल्पनातीत विभीषिका उत्पन्न कर दी। हराभरा प्रसिद्ध बंगाल प्रान्त एक दम श्मशान वन गया। कितने लोग क्षुधा ज्वाला से पीड़ित हो तड़प तड़प कर कीटाणुओं की भाँति मर गये, इसके सही आकड़े प्राप्त अरना असम्भव है। पं० हृदय नाथ कुंजरू ने पूर्वीय बंगाल की दशा देखने के वाद वहाँ की स्थिति के संबंध में एक वक्तव्य देते हुये कहा था :—

"सर्वत्र असह्य कष्ट है। शहरों और गाँवों दोनों में लोग भूखों मर रहे हैं, लेकिन गाँवों की दशा बड़ी ही नाजुक है।

गाँव वालों की यातना विशेष कर स्त्रियों और बच्चों की दशा आँखों में आँसू ला देती है। पत्नियों का पतियों द्वारा, और बच्चों का माँ, बाप द्वारा त्याग दिये जाने की संख्या बढ़ती जा रही है। छोटे छोटे किसान अपनी जमीनों को या मजदूर जिनके पास जमीन नहीं है, अपने घरों को भोजन पाने के लिये चन्द रुपयों में बेच रहे हैं। ढाकर, चाँदपुर और नरायन गंज इत्यादि में 'दरिद्रगृह' खुले हैं, जहाँ पर यदि लोग न पहुँचा दिये जाँय, तो सड़कों के किनारे ही लग कर मर जाँय। अनिवार्य अस्पताल, मलेरिया, हैजा, पेचिश इत्यादि रोगों के लिये, खोले गये हैं, फिर भी जहाँ भी जाइये, मुर्दे पड़े हुये मिलेंगे। सड़कों पर ऐसे बहुत पड़े हुये लोग मिलते हैं, जो अन्तिम दम तोड़ रहे हैं।"

श्री मती विजयालक्ष्मी पंडित ने एक दूसरे समय वहाँ की स्थिति का वर्णन करते हुये कहा था :—

"आज भूख की पीड़ा तो है ही, उसके साथ ही परिस्थिति को और अधिक विकट बनाने के लिये प्रान्त भर में महामारी फैल रही है। छोटे किसान, और मजदूर जो कुछ भी अपना था, सभी कुछ बेंच चुके हैं, और अब भोजन की खोज में शहरों में चले जा रहे हैं। जिनके पास जो कुछ भी घरेलू वस्तुयें थीं, उनसे वे या तो कुछ पैसों के लिये, या एक मुट्ठी अन्न के लिये अलग हो चुके हैं। बाजार के दिनों पर कस्कुट के बर्तन या चाँदी के गहने दुकानों पर बिकने के लिये दीख पड़ेंगे। किन्तु जो कुछ दूर गावों में हो रहा है, उनके सामने ये घटनायें

एक दम नगण्य हैं। बहुत से गाँव बिल्कुल उजड़ चुके हैं, और उनमें निर्जन झोपड़ियाँ केवल अपनी करुण कहानी सुनाने के लिये खड़ी हैं।"

कलकत्ता कारपोरेशन के चेयरमैन श्री सैयद बदरुद्दुजा ने वहाँ की स्थिति के सम्बन्ध में कहा था :--

"विभिन्न समाचार पत्रों में प्रतिदिन जो समाचार प्रकाशित होते हैं, उनसे देहाती बंगाल के ऊपर पड़ी हुई अभूतपूर्व विपत्ति का वास्तविक रूप जान लेना असम्भव है।"

यह ध्यान देने योग्य बात है कि इस समय बंगाल प्रान्त का शासन मुसलिम लीग के हाथ में था। इस युद्ध काल के असीमित व्यय में जब प्रत्येक देश स्वयं आर्थिक संकट से कराह रहा था, तब चीन और आयर्लैन्ड ने बंगाल की इस विपत्ति के समय सराहनीय सहायता प्रदान की। हिन्दुस्तान की क्रियाशील संस्थायें बहुत पहले ही से जेलों में बन्द कर दी गयी थीं, किन्तु जो बाहर थीं यहाँ तक कि हिन्दू महासभा ने भी परिस्थितियों में जो कुछ भी संभव था, उसे करने का सतत प्रयत्न किया, बंगाल की सहायता के लिये समस्त देश दौड़ पड़ा, लेकिन इस विपत्ति के समय भी कोई संस्था या किसी संस्था के व्यक्ति यदि विचलित नहीं हुये, तो वह अखिल भारतीय मुसलिम लीग, और जनता के लिये अधिक से अधिक लाभ पहुँचाने की घोषणा कर असेम्बली में स्थान ग्रहण करने वाले उसके सदस्य थे। कुछ करना या करने का प्रयत्न करना तो दूर रहा, प्लैटफार्म से गला साफ करने की कला में अत्यन्त

निपुण मुसलिम लीग इस अवसर पर विशेष रूप से चुप रही, और बंगाल की प्राकृतिक नहीं, बल्कि मनुष्यकृत विपत्ति के सम्बन्ध में कुछ कहने या करने में उस संयम का परिचय दिया, जिसके लिये भावी संताने उसे सर्वदा स्मरण रखेंगी। यह जान लेना आवश्यक है कि अकाल का प्रकोप बंगाल के पूर्वीय भाग में था, जिसमें बंगाल के मुसलमानों की लग भग कुल संख्या बसती है; लेकिन मुसलिम जाति की एक मात्र प्रतिनिधि संस्था और उसके स्थायी अध्यक्ष श्री जिन्ना या उनके किसी दूसरे प्रतिनिधि ने बंगाल के असहाय पीड़ितों के कष्ट निवारण की कोई व्यवस्था करना तो दूर रहा, वहाँ जाकर उनकी दशा तक जानने का भी कष्ट नहीं किया।

जिस समय बंगाल की सड़कों पर और गलियों में नर-कंकाल, और उनके अस्थिपंजर बिखरे थे, उस समय उस प्रान्त का शासन लीग मंत्रिमंडल के हाथ में था। इतना ही नहीं, बंगाल के अतिरिक्त, आसाम, सिन्ध, पंजाब और सीमा प्रान्त में भी लीग के ही मंत्रि-मंडल शासन कर रहे थे। जनता को 'अधिक से अधिक लाभ पहुँचाने' के इन लीगी शासनों के कारनामें भी ध्यान देने योग्य हैं। ९ अगस्त सन् १९४३ ई० को केन्द्रीय असेम्बली में बंगाल के खाद्य संकट के सम्बन्ध में वाद विवाद के समय सर अब्दुल हलीम गजनवी ने श्री फजलुल हक के बंगाल प्रान्तीय असेम्बली में ५ जुलाई सन् १९४३ ई० के भाषण का हवाला देते हुये कहा था :—

"वे (श्री हक) अगस्त सन् १९४२ ई० में ही बंगाल के

गवर्नर को सूचित कर चुके थे, कि केवल गवर्नर के अनुचित हस्तक्षेप के कारण बंगाल में चावल के अकाल का संकट उपस्थित हो रहा है।"

लेकिन श्री हक गवर्नर द्वारा प्रधान मंत्री के स्थान से हटा दिये गये, मुसलिम लीग का मंत्रि-मंडल स्थापित हुआ। लीग मंत्रि-मंडल के कार्य्य क्रम पर प्रकाश डालते हुये सर अब्दुल हलीम गजनवी ने उसी भाषण के अन्त में कहा था:—

"बंगाल की सरकार (लीगी सरकार) परिस्थितियों से एक दम उदासीन और लापरवाह थी, और उस समय भी अनिश्चित उद्देश्य के लिये खाद्य सामग्री खरीद रही थी, और सबसे ऊपर बंगाल सरकार ने प्रान्त की दुखस्था और अकाल का समाचार पत्रों में प्रकाशित न करने के लिये बहुत ही कड़ी आज्ञा दे रखी थी। इस नीति के कारण बंगाल की मरती हुई जनता को बचाने के लिये सार्वजनिक रूप से धन इकट्ठा करना और उनकी सहायता के लिये देश का ध्यान आकर्षित करना असम्भव हो गया।"

किसी प्रकार बंगाल की अत्यन्त भीषण और भयानक स्थिति का समाचार किसी विदेशी पत्र के सम्वाद दाता के कौशल से हिन्दुस्तान के बाहर प्रकाशित हो गया, और तब संसार का ध्यान अचानक इस गम्भीर प्रश्न की ओर आकर्षित हुआ। समाचार की भयानकता ने वृटिश पार्लियामेन्ट के एक सदस्य श्री गाडफ्रे निकोलसन को भारत मंत्री श्री एमरी से साधारण सभा में यह प्रश्न पूछने के लिये बाध्य किया कि क्या यह सच

था कि बंगाल में जनता देहातों से शहरों में आकर कलकत्ता के घूरों और कूड़ों पर फेंके गये चीजों पर बसर करती है। उत्तर में श्री एमरी ने कहा था :—

"मुझे सभा को सभी समाचारों की सूचना देने में प्रसन्नता होगी, किन्तु बंगाल का प्रश्न मुख्यत: और प्रथमत: उस प्रान्त के स्वतंत्र मंत्रि-मंडल के उत्तरदायित्व का प्रश्न है।"

सम्भवत: उत्तरदायित्व की ही सुविधा के लिये बृटिश सरकार ने धृष्ट प्रधान मंत्री श्री हक़ को हटाकर मुसलिम लीग का आज्ञा पालक मंत्रि-मंडल स्थापित किया। अब जब बंगाल की स्थिति संसार भर को ज्ञात हो गयी, और उत्तरदायित्व का प्रश्न कुछ विचित्र ढंग से सामने उपस्थिति हुआ, तो लीग मंत्रि मंडल ने तुरन्त केवल अपने करने योग्य काम यह किया कि इस परिस्थिति का दोष पूर्व मंत्रि-मंडल और पूर्व प्रधान मंत्री श्री हक़ के सर मढ़ दिया। किन्तु श्री हक जो इस समय बंगाल एसेम्बली के विरोध पक्ष के नेता थे, तुरन्त ललकार बैठे :—

"बंगाल के वर्तमान संकट के सम्बन्ध में बृटिश और लीग गुट द्वारा मुझ पर और पूर्व मंत्रिमंडल पर दोष मढ़ने का प्रयत्न किया जा रहा है।...मैं वर्तमान अकाल के कारणों की जाँच के लिये, और बंगाल में जो कुछ हो रहा है, उसके लिये कौन उत्तरदायी है, इसकी जाँच के लिये शाही कमीशन की नियुक्ति की माँग करता हूँ।"

सेन्ट्रल नेशनल मुहम्मडन असोशियेशन के अध्यक्ष तथा

केन्द्रीय असेम्बली के सदस्य सर अब्दुल हलीम गजनवी ने अपने एक वक्तव्य में कहा :—

"बंगाल को खाद्य सामग्री देना, और उसके वितरण का पूरा अधिकार भारत सरकार को निश्चय रूप से अपने हाथ में ले लेना चाहिये।......जब तक खाद्य विषय प्रान्तीय सरकार के हाथ से छीनकर केन्द्र से संचालित नहीं होता तब तक समस्या सुलझ नहीं सकती।"

इन कारणों से और लोगों के क्षोभ से बंगाल के लीग मंत्रि मंडल की स्थिति अत्यन्त नाजुक हो गयी थी। इससे मुसलमान जाति की एक मात्र प्रतिनिधि संस्था लीग, और उसके स्थायी अध्यक्ष श्री जिन्ना कुछ घबरा अवश्य गये; किन्तु अप्रतिभ तनिक भी नहीं हुये। दिल्ली में लीग कार्य समिति की बैठक हुई, उनके प्रस्तावों के साथ उसने एक प्रस्ताव बंगाल के संकट के सम्बन्ध में भी पास किया, जो लीग के भय का लज्जा जनक चित्र उपस्थित करता है। प्रस्ताव इस प्रकार है :—

"मुसलिम लीग देश की और विशेषतया बंगाल की खाद्य स्थिति तथा बंगाल और देश के कुछ अन्य भागों में उससे उत्पन्न होने वाले भयानक परिणामों को अत्यधिक चिंता जनक और खतरनाक समझती है, इसलिये भारत सरकार तथा ब्रिटिश सरकार से खाद्य समस्या को सम्हाल लेने के लिये, तुरन्त प्रभाव पूर्ण और कारगर उपाय काम में लाने के लिये प्रबल अनुरोध करती है।......वर्तमान मंत्रि मंडल अपनी शक्ति भर सब कुछ कर रहा है, इसलिये यह कौंसिल बंगाल की जनता से

मंत्रि मंडल का समर्थन और उसके सहयोग करने का अनुरोध करती है।"

इस प्रस्ताव के अतिरिक्त लीग ने न तो किसी क्रियात्मक कार्यक्रम पर विचार करने की परवाह की और न वास्तव में वह कुछ कर सकती थी। वंगाल का लीग मंत्रि मंडल वृटिश सरकार की कृपा और आवश्यकता से कायम हुई थी, वह केवल वृटिश सरकार की गति विधिका अनुसरण और उसके संकेतों के अनुसार आचरण मात्र कर सकती थी। इसलिये जब लीग मंत्रि मंडल की निस्सारता और व्यर्थता की चिल्लाहट मची, और उसका अपने पद पर वने रहना संदेह पूर्ण हो गया, तो लीग की कौंसिल ने उस मूल शक्ति वृटिश सरकार और भारत सरकार से स्थिति सम्हालने की प्रार्थना की, जिसकी इच्छा और आज्ञा के विना अपने कर सकने योग्य कार्य भी मंत्रि-मंडल करने में असमर्थ था। श्री जिन्ना ने वंगाल की जनता से मंडिमंडल का समर्थन करने के लिये अनुरोध करते हुये, जनता के कष्ट निवारण के लिये एक ठोस कार्य अवश्य किया। वह था इस परिस्थिति का कुल दोष भूत पूर्व मंत्रि मण्डल के सर पर श्री जिन्ना द्वारा मढ़ा जाना। लीग ने इस प्रयत्न को लगातार जारी रखा। भूत पूर्व प्रधान मंत्री श्री फजलुल हक ने तुरन्त प्रतिवाद करते हुये एक वक्तव्य दिया जो लीग अध्यक्ष की ठोस सेवा के लिये प्रत्येक युग में यश का कारण वनता रहेगा। श्री हक का वक्तव्य घटनाओं पर जानने योग्य प्रकाश डालता है :—

"मैं घटनाओं को जनता के सामने उपस्थित करना चाहता

हूँ, जो यह सिद्ध करेंगे कि लीगी मंत्रियों ने स्वयं स्वीकार किया है कि वर्तमान संकट उनके मंत्रित्व ग्रहण करने के लम्बे समय के बाद आरम्भ हुआ।"

मंत्रि पद ग्रहण करने के १० दिन बाद सिविल सप्लाई विभाग के मंत्री श्री सुहरावर्दी ने कहा था :—

"बंगाल के खाद्य पदार्थों के वर्तमान मूल्य भ्रमात्मक हैं, और केवल अनुमान पर अवलंबित हैं। प्रान्त भर में जितना खाद्य-सामान इस समय है, उसका कोई सम्बन्ध आज के मूल्य से नहीं है। मैं इस बात से पूर्णतया निश्चिन्त हूँ, कि यदि इस साल कोई कमी हुई, तो वह १९४१-४२ की आमदनी से पूरी हो जायगी।"

कृष्ण नगर की एक सभा में १५ मई सन् १९४३ ई० को एक अभिनन्दन पत्र का उत्तर देते हुये सर अजीजुल हक ने कहा था सरकार द्वारा प्रकाशित खाद्य सम्बन्धी संख्या बिल्कुल सही थी, और उन्होंने यह विश्वास दिलाया था, कि बंगाल में चावल की कोई कमी नहीं थी। भारत सरकार के व्यवसाय सदस्य सर अजीजुल हक द्वारा अपने ऊपर लगाये गये दोषों कर उत्तर देते हुये, और बंगाल के संकट का कारण बतलाते हुये १० अगस्त सन् १९४३ को भूत पूर्व प्रधान मंत्री और अब बंगाल असेम्बली के विरोधी पक्ष के नेता श्री फजलुल हक ने कहा था :—

"वे (सर अजीजुल हक) मेरे इस अभियोग का उत्तर नहीं दिये हैं कि भारत सरकार ने बंगाल के सम्बन्ध में यह

निश्चित कर लिया था कि इस प्रान्त को तुरन्त कोई सहायता नहीं देनी चाहिये, और यद्यपि हमें यह गम्भीर आश्वासन दिया गया था कि प्रान्तीय सरकार की स्वीकृत के बिना बंगाल के बाहर अन्न नहीं भेजा जायगा, फिर भी अत्यधिक मात्रा में अन्न लगातार बाहर भेजा गया। क्या मैं सर अजीजुल हक को यह बतला दूँ कि इस समय भी भारत सरकार के संकेत पर बंगाल से बहुत अधिक खाद्य सामग्री बाहर भेजी जा रही है। और केन्द्रीय सरकार के माननीय सदस्यों के अस्वीकार करने पर भी हम जानते हैं कि खाद्य पदार्थ बाहर भेजे जा रहे हैं। बंगाल के बाहर चावल की ये निर्यातें प्रान्त की वर्तमान नाज़ुक परिस्थिति के लिये उत्तरदायी हैं।"

केन्द्रीय असेम्बली के सदस्य सर अब्दुल हलीम गजनवी ने असेम्बली में भाषण देते हुये बंगाल के खाद्य संकट पर प्रकाश डाला था :—

"अधिक चावल वाले जिलों से चावल हटा कर शत्रु के हाथ में पड़ने से बचाने के लिये उसे सुरक्षित स्थान पर रख दिया गया। चावल इकट्ठा करते समय बंगाल के लोगों को आश्वासन दिया गया था कि कुल चावल केवल उन्हीं लोगों के लिये प्रयोग किया जायगा।...कुल चावल जो इकट्ठा किया गया था, और सुरक्षित स्थानों पर हटा दिया गया था, भारत सरकार के वादों को पूरा करने के लिये हिन्दुस्तान से बाहर भेज दिया गया। भारत सरकार गत वर्ष बाहर भेजने के लिये चावल का लाइसेन्स के बाद लाइसेन्स मंजूर करती गयी, और

इस प्रकार प्रान्त में जो कुछ भी चावल था, वह सरकार के वादों को पूरा करने के लिये हिन्दुस्तान से वाहर भेज दिया गया।"

भारत सरकार की इस नीति में हस्तक्षेप करने, या विरोध करने या जनता से उसे स्पष्ट कहने के लिये लीग मंत्रि मंडल स्थापित नहीं किया गया था। इसमें हस्तक्षेप करने के कारण श्री फजलुलहक प्रधान मंत्रित्व से हटा दिये गये थे; किन्तु लीग इस भयानक परिणाम के लिये किसी दशा में भी तय्यार न थी। उसे किसी प्रकार पद पर वने रहना था और इस अत्यन्त लज्जाजनक अपमान जनक, भयानक और दर्दनाक हालत में भी वह स्थान पर वृटिश सरकार के इशारों को पूरा करने के लिये वनी रही।

वंगाल की खाद्य स्थिति से उत्पन्न होने वाले 'भयानक परिणामों' का भय केवल वंगाल के मंत्रि-मंडल के लिये ही नहीं था, वल्कि देश के कुछ अन्य भागों में भी इस भय की आशंका से मुसलिम लीग चिन्तित थी। सिन्ध प्रान्त के लीग मंत्रि-मंडल पर भारत सरकार एक विशेष आर्थिक नियम पालन करने का दवाव डाल रही थी। सिन्धि की लीगी सरकार अन्न की और विशेष रूप से चावल का भाव मँहगा करना चाहती थी, लेकिन केन्द्रीय सरकार ने ऐसा करने की आज्ञा नहीं दी; वल्कि एक भाव निश्चित कर दिया। सिन्ध के लीगी मंत्रि गण इससे अत्यन्त दुखित हुये, क्योंकि मनमाना लाभ उठाने का अवसर उन्हें नहीं दिया गया। सूचना विभाग के

मंत्री श्री एम० एच० गजदर ने अपनी मनोव्यथा प्रकट करते हुये कहा था :—

"यदि भारत सरकार सिन्ध मंत्रि-मंडल को तंग नहीं करना चाहती है, तो उसे सिन्ध में भी वही नीति करनी चाहिये, जो पंजाब में वह बरत रही है। भारत सरकार पंजाब मंत्रि-मंडल को तंग नहीं करना चाहती है, सिन्ध के साथ भी वैसा ही बर्ताव होना चाहिये।"

सिन्ध के मंत्रियों के अन्न का भाव बढ़ाने की उत्कराठा के उत्तर में उस प्रान्त के गवर्नर ने सेलिवान की युद्ध समिति के सामने भाषण देते हुये कहा था :—

"मैं आशा करता हूँ, आप उन लोगों की बात नहीं सुनोगे जो लाभ के लोभ में आप से और अधिक मँहगे भाव के लिये उतावलापन प्रकट करने के लिये कहते हैं। इससे आपके ही गरीब भाइयों को कष्ट होगा, और हिन्दुस्तान के दूसरे प्रान्तों में रहने वाले आपके गरीब भाइयों को फाँके की हालत में रहना पड़ेगा।...आप जानते हैं कि बंगाल तथा हिन्दुस्तान केदूसरे भागों में खाद्य की कमी से कैसी विपत्ति उत्पन्न हो गयी है।"

सिन्ध के गवर्नर की मार्मिक शब्दों में यह हृदय स्पर्शी प्रार्थना मुसलिम जाति की एक मात्र प्रतिनिधि और 'जनता को अधिक से अधिक लाभ पहुँचाने' के लिये प्रतिज्ञा बद्ध संस्था लीग की सरकारों के प्रति थी। बंगाल, पंजाब और सिन्ध की लीगी सरकारों में परस्पर कलह चलता रहा, और एक को दूसरे के विरुद्ध यह शिकायत थी कि दूसरे को एक की अपेक्षा

केन्द्रीय सरकार की अधिक कृपा प्राप्त थी। लीगी मंत्रि-गण व्यक्तिगत लाभ के लोभ में लीन थे, और खाद्य संकट जिसके प्रति मंत्रियों की कोई सहानुभूति नहीं थी, उनके लाभ के व्यवसाय में वाधा उपस्थित कर रही थी। वास्तव में युद्धकाल और अकाल दोनों ही परिस्थितियाँ व्यक्ति गत लाभ के अत्यंत उपयुक्त अवसर होते हैं, लीगी मंत्री इस अवसर से पूरा लाभ उठाना चाहते थे। लाभ रहित मंत्रित्व लीगी मंत्रियों के लिये समझना कठिन है। पंजाव के प्रसिद्ध लीगी मंत्री श्री शौकतहयात खाँ और वंगाल के श्री पिटेन के कारनामें इतिहास प्रसिद्ध हो चुके हैं। व्यक्तिगत स्वार्थों के लिये अपने पद का उपयोग किस सीमा तक किया जा सकता है, इसका अभूत पूर्व उदाहरण इन मंत्रियों ने उपस्थित किया है। लीगी मंत्रि-मंडलों के लिये एक विषम परिस्थिति सर्वदा ही उपस्थित हो जाया करती थी और उनके पदच्युत होने की भयानक आशंका से श्री जिन्ना चिंतित रहा करते थे। और ऐसे अवसरों पर स्थिति को सम्हालने के लिये उन्हें भारत तथा वृटिश सरकार से प्रार्थना करनी पड़ती रही। वंगाल, सिन्ध और सीमा प्रान्त सभी लीग मंत्रि मंडलों की डावा डोल परिस्थिति विषम स्थिति उपस्थित करती रही लेकिन सिंध ने तो कुछ अजीव दिलचस्प नाटक का अभिनय किया था; और इसमें संदेह नहीं कि आगे आने वाली पीढ़ियों के लिये इस नाटक के दृश्य पर प्रत्येक काल में मनोरंजन और साथ ही घृणा के कारण वने रहेंगे। जिस समय समस्त देश क्षुधा की ज्वाला से कीटाणुओं की भाँति

मरते हुये लोगों के कष्ट से कराह रहा था, और उनकी सहायता के लिये अपनी पूरी शक्ति से दौड़ पड़ा था, मुसलिम लीग केवल मंत्रित्त्व बनाये रखने के प्रयत्न में व्यस्त थी। हिन्दुस्तान के पाँच प्रान्तों में एक समय साथ ही लीग का शासन था। हिन्दुस्तान और उसकी भावी संतान को यह जान कर केवल प्रसन्नता होगी, यदि अखिल भारतीय मुसलिम लीग या उसकी सरकारों ने हिन्दुस्तान के अत्यंत नाजुक समय में और भीषण विपत्ति के अवसर पर एक भी व्यावहारिक कार्य क्रम को अपना कर कष्ट निवारण में कोई योग प्रदान किया।

इसके अतिरिक्त मुसलमानों के प्रतिनिधित्व का दावा करने वाली लीग से पूछा जा सकता है कि हिंदुस्तान के सात लाख गाँवों में बसने वाली मुसलिम जनता, किसानों और मजदूरों के लिये उसने कुछ किया है! करने का प्रयत्न भी कभी किया है? बल्कि इस विषय पर ईमानदारी से कभी कुछ सोचने की भी चेष्टा की है? मुसलमानों की निरक्षरता, उसकी असीम निर्धनता को दूर करने के लिये लीग या उसकी सरकारों ने कोई कार्यक्रम अपनाया है? देश की दशा आज से अधिक चिंता जनक कभी नहीं थी; लीग से पूछा जा सकता है इस परिस्थिति में शासन करने में, शासनारूढ़ रहने के प्रयत्न में व्यस्त रहने में उसका क्या उद्देश्य है?

हिंदुस्तान की समस्त मुसलिम जाति के प्रतिनिधित्व का दावा करने की लीग की क्षमता पर विचार करना आवश्यक है। हम लोगों ने अभी कुछ पहले देखा है कि अपने राष्ट्रीयकाल

के पश्चात् १९३१ से १९३६ तक मुसलिम लीग एक नाम मात्र की नगण्य संस्था थी। मुसलमानों के अन्तर्गत इस संस्था का कोई स्थान न था, और वास्तव में शहरों के कतिपय मुसलमानों के अतिरिक्त लीग का नाम लेने वाला कोई नहीं था। सन् १९३७ के प्रान्तीय निर्वाचनों में लीग ने भी भाग लिया। हिंदुस्तान के विभिन्न प्रान्तों में मुसलिम लीग के निर्वाचित सदस्यों की संख्या नीचे की तालिका से ज्ञात होगी :—

प्रान्त	मुसलिम लीग	दूसरे मुसलिम सदस्य
सीमा प्रान्त	+	३६
पंजाब	१	८३
सिन्ध	+	३६
बंगाल	४०	७७
आसाम	९	२५
संयुक्त प्रान्त	२७	३७
बम्बई	२०	९
मद्रास	११	१७
मध्य प्रान्त	+	१४
उड़ीसा	+	४
बिहार	+	३९
कुल योग	१०८	३७७

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि लीग की निर्वाचन घोषणा से संमभवतः प्रभावित हो काँग्रेस अध्यक्ष पं० नेहरू और जमैयतुल अहरार ने भी विरोध न कर लीग के उम्मेदवारों को अपना

वरद हस्त प्रदान किया था, किन्तु फिर भी कुल मुसलिम निर्वाचित सदस्यों की संख्या का केवल ४-६ प्रतिशत लीगी सदस्य निर्वाचित हुये। यह ध्यान देने योग्य है कि बहु संख्यक मुसलिम प्रान्तों ने तो जिसमें हिंदुस्तान की कुल मुसलिम संख्या की ७४ प्रतिशत मुसलिम जनता बसती है, मुसलिम लीग की हस्ती मानने से इन्कार कर दिया। स्पष्टतय: निर्वाचन परिणाम ने मुसलिम जाति का प्रतिनिधित्व करने के लीग के दावे को बेतरह ठुकरा दिया। जनता का निर्णय ही किसी संस्था की प्रतिनिधित्व शक्ति का माप दंड होता है, इस माप दंड के अनुसार संसार के किसी दूसरे देश में सम्पूर्ण जाति के प्रतिनिधित्व करने का दावा करना तो दूर रहा, लीग का अस्तित्व शेष रहना कठिन हो जाता।

किन्तु इस परिस्थिति के होते हुये भी सन् १९३८ ई० में जब श्री जिन्ना से काँग्रेस अध्यक्ष पं० नेहरू ने लीग के संतुष्ट होने योग्य शर्तें पूछीं तो उन्होंने ११ शर्तों में एक यह शर्त उनके सामने उपस्थित की "मुसलिम लीग हिन्दुस्तान के मुसलमानों की एक मात्र प्रति निधि संस्था स्वीकार की जाय।" जिस समय जिन्ना ने यह शर्त उपस्थित की, उस समय काँग्रेस में मुसलमानों की संख्या लीग में रहने वाले मुसलमानों की संख्या से अधिक थी, और अकेले यही एक बात पूर्ण प्रति निधित्व का दावा न करने देने के लिये काफी थी। इसके अतिरिक्त मुसलमानों की दूसरी प्रभाव शाली और क्रिया शील संस्थायें इस दावा और माँग को प्रहसनीय बनाने के लिये मौजूद थीं।

वहुसंख्यक मुसलिम प्रान्तों, सीमाप्रान्त, पंजाव, सिन्ध, वंगाल में निर्वाचन के वाद जो मंत्रिमंडल वने उनका मुसलिम लीग से लेश मात्र भी कोई सम्वन्ध नहीं था। पंजाव और वंगाल दो वड़े प्रान्तों में क्रमशः यूनियनिस्टदल और कृषक प्रजा दल के मंत्रि-मंडल कायम हुये। सिन्ध में अनेक मंत्रि-मंडल कायम हुये जो अन्य दलों के संयुक्त मंत्रि-मंडल थे। कुछ दिनों के वाद सीमा प्रान्त और आसाम में काँग्रेस ने अन्य लोगों के सहयोग से मंत्रि-मंडल वनाया। इस प्रकार छः वहुसंख्यक हिन्दू प्रान्तों और दो मुसलिम प्रान्तों में काँग्रेस का शासन था, तथा शेष तीन वहु संख्यक मुसलिम प्रान्तों में अन्य मुसलिम दलों की सरकारें स्थापित थीं। अव तक मुसलिम लीग का कोई अस्तित्व कहीं नहीं था।

लेकिन साम्राज्य की साधारण तथा युद्ध काल की अनिवार्य आवश्यकताओं के कारण विशेष रूप से हिन्दुस्तान की यह स्थिति वृटिश सरकार को अभीष्ट न थी। हमने अभी शीघ्र ही देखा है कि वृटिश सरकार के अनन्य भक्त सर सिकन्दर हयात खाँ ने अपने को लीग से संवंधित घोषित किया और वंगाल मुसलिम लीग के अध्यक्ष सर निजामुद्दीन को निर्वाचन में हरा कर प्रधान मंत्री के पद पर वैठे हुये श्री फजलुलहक साहव ने भी दूसरे क्षण अपने को मुसलिम लीग का एक सच्चा सेवक घोषित किया। स्वतन्त्र देशों में भी सरकारी कृपा का मूल्य अधिक होता है, हिन्दुस्तान में तो उसके लिये प्रति क्षण आशा लगाये रहने वालों की क्या कमी हो सकती है? काँग्रेस कार्य क्रम की

उग्रता और सर्व व्यापकता के सम्मुख अन्य दलों के मंत्रियों का ठहर सकना असम्भव हो रहा था। बंगाल मंत्रिमंडल में तीन मुसलमान नवाब और दो हिन्दू राजा मन्त्री थे। ऐसे मन्त्री मन्डल को अपने सम्मान और पद की लज्जा की रक्षा के लिये शक्तिशाली ब्रृटिश सरकार की कृपा पात्र मुसलिम लीग का आश्रय पकड़ना ही श्रेयस्कर दीख पड़ा। चाहे वह भले ही लीग का विरोध ही कर क्यों न निर्वाचित हुये हों, उसकी तनिक भी परवाह न कर लीग में सम्मिलित हो गये। इस प्रकार के लोगों ने लीग को जीवित रखने का प्रयत्न किया। इनके अतिरिक्त एक वर्ग ऐसे व्यक्तियों का था, जो मन्त्रि पद की आशा लगाये बैठा था, किन्तु काँग्रेस मन्त्रिमन्डलों के स्थापित होने से उनकी आशा पूरी न हो सकी, और इस लिये काँग्रेस के प्रति उनके द्वेष और चिढ़ का ठिकाना न रहा। अखिल भारतीय मुसलिम मजलिश के मन्त्री डा० शौकतुल्ला शाह अंसारी ने तंजीर जिला मुसलिम लीग के अधिवेशन (१९४४) में दिये गये चौ० खलीकुज्जमाँ के भाषण के सम्बन्ध में वक्तव्य देते हुये कहा था :—

"राष्ट्रीय मुसलमानों के विरुद्ध चौ० खलीकुज्जमाँ के उद्गारों से मुझे आश्चर्य नहीं होता। सन् १९३७ ई० में काँग्रेस मन्त्रि मन्डल में स्थान न पा सकने के कारण वे छः वर्षों से उग्र मानसिक रोग से पीड़ित हैं।"

ऐसे सभी व्यक्तियों तथा ब्रृटिश सरकार के लिये मुसलिम लीग को काँग्रेस के समानान्तर मुसलिम जाति की पूर्ण प्रतिनिधि

संस्था मान लेना ही एक मात्र तर्क युक्त मार्ग था। वृटिश सरकार ने हिन्दुस्तान में इसे गुप्त नहीं रहने दिया कि वह लीग को मुसलमान जाति की प्रति निधि संस्था मानती है। भारत सचिव एमरी ने भी अविलम्ब लीग को मुसलमानों की प्रतिनिधि संस्था घोषित किया। यद्यपि अखिल भारतीय मोमीन सम्मेलन ने एक तार भेज कर श्री एमरी को तुरंत सूचित किया कि हिन्दुस्तान के मोमीन जो मुसलमानो की कुल संख्या के आधे हैं, मुसलिम लीग को अपना प्रतिनिधि कदापि नहीं मानते, किन्तु श्री एमरी को इस पर ध्यान देने की कहाँ फुरसत और गुंजाइश थी, बल्कि इन विरोधों के कारण वृटिश सरकार के लिये और भी आवश्यक हो गया कि मुसलिम लीग की शक्ति बढ़ाई जाय। सिन्ध के प्रधान मन्त्री श्री अल्लाबख्श अपनी राष्ट्रीयता और उग्रता के लिये बहुत अधिक प्रसिद्ध हो चले थे, और वर्धा की ओर परामर्श तथा सहयोग की भावना से देखा करते थे। वृटिश सरकार ने श्री अल्लावख्श से प्रधान मन्त्रित्त्व छीन कर उस स्थान पर मुसलिम लीग को आसीन कर दिया। साधारण निर्वाचन में मुसलिम लीग को एक भी स्थान सिंध में नहीं प्राप्त था। और वहीं फिर सरकार की असीम कृपा से उसकी सरकार बनी। लीग गर्व से फूल उठी, बंगाल के प्रधान मन्त्री श्री हक बेअदब से हो रहे थे, और वृटिश सरकार के लिये इसलिये एक समस्या से हो रहे थे। इसलिये बंगाल के गवर्नर ने श्री हक को हटा कर वहाँ भी लीग मन्त्रि मन्डल स्थापित कर दिया। पर जान लेने योग्य है कि सिन्ध और

बंगाल के गवर्नरों ने अत्यंत उद्दण्डता पूर्ण और अवैधानिक तरीके से श्री अलावख्श और श्री हक को हटा कर लीग मन्त्रि मन्डल कायम होने दिया। सीमा प्रान्त और आसाम में भी बृटिश सरकार की ही क्रिया के परिणाम स्वरूप लीग मन्त्रिमन्डल बने। इन मन्त्रिमन्डलों की स्थिति जितनी ही दयनीय रही, उतनी ही अनिश्चित भी। बंगाल में लीग मन्त्रि मन्डल इसलिये निभाता जा रहा है, क्योंकि योरोपियन दल उसकी रक्षा के लिये सर्वदा सतर्क और कटिबद्ध रहता है, और इस दल की भी शक्ति इसलिये काम कर जाती है, कि बंगाल असेम्बली के काँग्रेस सदस्य जेलों में बन्द हैं। सीमा प्रान्तआसाम और सिन्ध की लीग सरकारों का शासन भी असेम्बली के काँग्रेस सदस्यों को जेलों में बन्द करके ही चलाया गया है।

बृटिश सरकार की कृपा और आवश्यकता मात्र पर टिकी हुई लीगी सरकारों की वास्तविक स्थिति का उदाहरण पंजाब में उपस्थित हुआ। यद्यपि पंजाब के प्रधान मंत्री सर सिकन्दर तथा उनके बाद मलिक खिजरहयात खाँ, और उनके दल के मुसलमान सदस्यों ने मुसलिम लीग में अपना विश्वास घोषित किया, किन्तु मंत्रि-मंडल लगातार अविच्छिन्न रूप से यूनियनिस्ट मंत्रि-मंडल कहा जाता है। बंगाल, सिन्ध, तथा दूसरे प्रान्तों की घटनाओं से फूले न समाते हुये श्री जिन्ना को यह पसन्द नहीं था, और वे मंत्रि-मंडल को लीगी मंत्रि-मंडल के नाम से प्रसिद्ध करने के लिये उत्सुक थे। उन्होंने पंजाब मंत्रि-मंडल को दो

एक बार लीगी मंत्रि-मंडल कह कर सम्बोधित भी किया, किन्तु सर छोटूराम जो मंत्रि मंडल और यूनियनिस्ट दल के प्रभावशाली व्यक्ति थे; इसका तुरंत प्रबल प्रतिरोध किया। श्री जिन्ना को यह असहनीय हो गया, और उन्होंने पंजाब का मंत्रि-मंडल विशुद्ध लीगी मंत्रि-मंडल में बदल देने के लिये बंबई से लाहौर की यात्रा की; लेकिन श्री जिन्ना भूल गये थे कि बंगाल और सिन्ध, सीमा प्रान्त और आसाम के लीगी मंत्रि-मंडल उनकी नहीं बल्कि बृटिश सरकार की आवश्यकता और इच्छा की उपज थे। सर सिकन्दर और खिज्रहयात खाँ, तथा उनके दल के मुसलिम सदस्यों का लीग में विश्वास घोषित करना भी बृटिश सरकार के ही संकेत का परिणाम था। पंजाब मंत्रि-मंडल में और किसी अन्य परिवर्तन की आवश्यकता बृटिश सरकार को नहीं थी। पंजाब सरकार का युद्धोद्योग अतुलनीय था, और उसमें बृटिश सरकार को तनिक भी बाधा पड़ने देना मंजूर नहीं था। इसलिये पंजाब में श्री जिन्ना को जो मुहकी खानी पड़ी, वह कभी भी इसके पहले उनको नसीब नहीं थी। प्रधान मंत्री मलिक खिज्रहयात खाँ तिवाना ने श्री जिन्ना के पत्र का उत्तर तक देना उचित नहीं समझा, और उनके पत्र को लेने तक से अस्वीकार कर दिया। मुसलिम लीग के प्रबल समर्थक और श्री जिन्ना के अनुयायी शौकत हयात खाँ को उसी समय पंजाब के गवर्नर ने मंत्रि-पद से हटा दिया। पंजाब असेम्बली के मुसलिम सदस्य जो लीग के सदस्य हो गये थे, फिर जैसे जादू की छड़ी के छूते ही लीग से इस्तीफा

दे दिया। लाहौर में जिन्ना साहब के भाषण देने के लिये एक सभा बुलायी गई थी, लेकिन उनको सुनने के लिये जनता ही नहीं आई। स्यालकोट जाने की तय्यारी को श्री जिन्ना को इसलिये तीन बार स्थगित कर देना पड़ा, क्योंकि वहाँ के स्थानीय मुसलमान इस्लामियाँ स्कूल का अहाता, जिन्ना के भाषण या उनके व्यवहार के लिये देने से अस्वीकार कर दिये थे। पंजाब में जिसे जिन्ना पाकिस्तान का केन्द्र और गढ़ का नाम दे चुके हैं, उनके बैठने की शरण नहीं है, किन्तु कुछ दिन पूर्व वहाँ उन्होंने एक विशाल प्रासाद खरीदा था, शायद समस्त पाकिस्तान पर वहीं से शासन करने के लिये अपनी शक्ति का यह भ्रम अभी तक श्री जिन्ना के मस्तिष्क से सम्भवतः दूर नहीं हो सका है।

लीगी मंत्रि-मंडलों तथा उनके द्वारा उत्पन्न हुई; मुसलिम लीग की कृत्रिम शक्ति की विवेचना कर लेने के बाद अन्य दृष्टि कोणों से भी मुसलिम लीग की मुसलमानों की पूर्ण प्रतिनिधि संस्था के दावा की परीक्षा भी करनी चाहिये। मुसलिम लीग के सर्वज्ञात लाहौर प्रस्ताव पाकिस्तान के कुछ ही महीने बाद स्वर्गीय श्री अल्लाबख्श के प्रयत्न से आजाद सम्मेलन का संगठन हुआ। इस सम्मेलन में हिन्दुस्तान के सभी प्रगतिशील मुसलिम संस्थाओं के प्रतिनिधि सम्मिलित हुये थे। इस सम्मेलन की व्यापकता और सफलता इतनी स्पष्ट थी, कि 'लीगियों को भी स्वीकार करना पड़ा कि इस सम्मेलन ने श्री जिन्ना के मुसलमानों के

एक मात्र प्रतिनिधि होने के दावे को एक दम मिट्टी में मिला दिया।'*

जमैयतुल उलमाये हिन्द और जमैयतुल अहरार हिन्दुस्तान की आजादी और मुल्क के लिये अधिक से अधिक कुर्बानी करने वाले मुसलमानों की संस्थायें हैं। देश की आजादी की सभी लड़ाइयों में ये संस्थायें किसी से पीछे नहीं रही हैं और आज भी इन संस्थाओं के सदस्य दूसरे लोगों के साथ जेलों के भीतर बन्द हैं। इन संस्थाओं ने इनकी प्रान्तीय तथा जिले की शाखाओं ने श्री जिन्ना और उनकी लीग का सर्वदा विरोध किया है, और मुसलिम लीग को अवसर वादियों, पद लोलुपों तथा मुसलिम पूँजीपतियों की एक संस्था घोषित किया है। दिल्ली प्रान्तीय अहरार सम्मेलन अप्रैल सन् १९४४ ई० में शेख हिसामुद्दीन साहब की अध्यक्षता में हुआ। श्री मुहम्मद युसुफ स्वागताध्यक्ष थे, और बम्बई असेम्बली के स्वागताध्यक्ष श्री हाफिज अली बहादुर ने इस सम्मेलन का उद्‌घाटन किया था। जब पंजाब में श्रोताओं के अभाव के कारण लीग अध्यक्ष श्री जिन्ना की सभायें स्थगित हो जाती थीं, अहरार सम्मेलन में एक लाख से अधिक मुसलिम जनता सम्मिलित हुई थी। पाकिस्तान का विरोध करते हुये इस सम्मेलन में स्पष्ट शब्दों में यह व्यक्त किया गया कि हिन्दुस्तान में केवल कांग्रेस और बृटिश सरकार दो ही संस्थायें हैं, तीसरी कोई संस्था देश में नहीं है।

---

* अमृत बाजार पत्रिका में प्रकाशित लेख "ऐंग्लो मुसलिम लीग एन्टिटी ले० प्रो० हुमायूं कबीर।

खाकसार दल जिसे कुछ दिन पूर्व लीग अध्यक्ष गर्व से पाकिस्तान की राष्ट्रीय सेना कहते थे, उनकी नीति और कार्य क्रम से ऊब कर आज उनका शत्रु हो गया है। सन् १९४३ ई० में रफीक सवीर मझनगवी एक युवक जिन्ना के निवास स्थान पर जाकर उनके ऊपर छूरे से आक्रमण करता हुआ पकड़ा गया। वह युवक खाकसार बताया गया। वह युवक चाहे खाकसार था या नहीं, किन्तु उसे खाकसार घोषित किया जाना ही लीग और खाकसार के विरोध की भीषणता और कटुता की चरमावस्था है। इस सम्बन्ध के मुकदमे के दौरान में एक पुलिस अफ़सर ने अदालत में बयान देते हुये कहा था कि उसने खाकसारों द्वारा श्री जिन्ना के पास भेजे गये २०० पोस्टकार्ड, ५५० चिट्ठियाँ और ५०० तार अपने अधिकार में किये थे, जिनमें खाकसारों ने जिन्ना से गांधी जी से मिलने की प्रार्थना की थी। जिन्ना के अस्वीकार करने और उनके रवैये से खाकसार बे तरह क्षुब्ध थे, इस बयान का यही मन्तव्य था। छुरा श्री जिन्ना के दुर्बल शरीर पर नहीं, बल्कि वास्तव में उनकी दूषित राजनीति पर चलाया गया था। मुसलिम लीग ने अपने सदस्यों पर खाकसार दल से कोई, सम्बन्ध न रखने का प्रतिबन्ध लगा दिया है। इस प्रतिबन्ध का प्रस्ताव लीग में पेश करते समय चौ० खलीकुज्जमाँ ने कहा था कि यदि खाकसारों के कहने को मानकर जिन्ना साहब गांधी जी से मिले होते, तो लीग का अस्तित्व ही मिट जाता। यह कह कर चौ० साहब ने लीग की वास्तविक स्थिति पर प्रकाश डाला था। श्री जिन्ना पर आक्रमण

होने के कुछ ही दिन बाद खाकसार दल के नेता अल्लामा मशरिकी ने एक वक्तव्य देते हुये मुसलिम लीग के सम्बन्ध में कहा था :—

"जब हम लोगों ने खाकसार संस्था कायम की तो मुसलिम लीग का अस्तित्व नहीं था, आज भी वह बृटिश सरकार के सहारे टिकी हुई है। यदि बृटिश सरकार चाहे तो इसे टूट जाना पड़े। कायदे आजम ने स्वयं इस बात को लाहौर अधिवेशन में सन् १९४० ई० में अध्यक्ष की हैसियत से बोलते हुये अपने भाषण में स्वीकार किया था। हम लोग किसी दूसरे के सहारे नहीं, केवल अपने ही प्रयत्न और बलिदान के आधार पर खड़े हैं।

अखिल भारतीय मोमीन सम्मेलन ने श्री जिन्ना और उनकी लीग के सभी मुसलमानों के प्रतिनिधित्व करने के दावे का सर्वदा घोर विरोध किया है। मोमीन सम्मेलन का दावा है कि मोमीन मुसलमानों की कुल संख्या के आधे हैं, और उनका प्रतिनिधित्व मोमीन सम्मेलन करता है। बार बार और अत्यन्त स्पष्ट रूप से मोमीनों ने मुसलिम लीग के नेतृत्व को ठुकराया है, और अपने विश्वास को सर्वदा प्रकट किया है। मोमीन सम्मेलन पाकिस्तान के विरुद्ध हिन्दुस्तान की स्वतंत्रता और एकता का इच्छुक है, और मुसलिम लीग का ध्येय ठीक इससे विपरीत है। शिया सम्मेलन ने भी श्री जिन्ना और उनके लीग को अपना प्रतिनिधि मानने से अस्वीकार किया है, और मुस-लिम लीग के प्रतिनिधित्व के दावे का व्यंगात्मक खण्ठन जितना

शिया सम्मेलन ने किया है, वह हिन्दुस्तान और इसके बाहर भी छिपा नहीं है। इंगलैंड में रहने वाले मुसलमानों ने भी जिन्ना के नेतृत्व और मुसलिल लीग का घोर विरोध किया है, तथा हिन्दुस्तान के अन्य प्रगतिशील दलों के साथ इस देश की स्वतंत्रता और एकता अपना लक्ष्य घोषित किया है। पंजाब की यूनियनिस्ट पार्टी और बंगाल की कृषक प्रजा पार्टी ने मुसलिम लीग को सर्वदा गहरा धक्का लगाया है।

अखिल भारतीय मुसलिम मजलिस अभी कुछ ही दिन पूर्व स्थापित हुई है। इस संस्था के स्थापित करने का एक मात्र उद्देश्य मुसलिम लीग की प्रतिक्रिया वादिता से मुसलिम जनता को निकाल कर प्रगति के मार्ग पर अग्रसर करना है। मुसलिम लीग की नीति के सम्बन्ध में मजलिस के अध्यक्ष ने अपने एक वक्तव्य में कहा था :—"विनाश निर्माण से अधिक सरल है, और मनुष्य का मस्तिष्क ऐसा बना होता है कि जनता में प्रेम की अपेक्षा घृणा उत्पन्न करना अत्यन्त सरल होता है। श्री जिन्ना की लीग का यह एक प्रकट गुप्त भेद है।"

सन् १९४४ की गरमी में लीग के अध्यक्ष श्री जिन्ना प्रकाश्य रूप से स्वास्थ्य सुधार के लिये काश्मीर की यात्रा किये थे, किन्तु स्वास्थ्य सुधार के अतिरिक्त वहाँ की मुसलिम राजनीति को सुधार कर लीग को प्रधान संस्था बनाने के प्रयत्न में लग गये। उनसे क्षुब्ध हो 'जम्बू काश्मीर नेशनल कान्फ्रेंस' के नेता शेख मुहम्मद अब्दुल्ला ने २० जून सन् १९४४ ई० को श्री नगर की एक विराट सभा में घोषित किया था कि 'यदि लाखों जिन्ना

भी काश्मीर आयें तो भी उन्हें काश्मीर की राजनीति के बदलने में सफलता नहीं मिल सकती। मैं चाहता था कि काश्मीर की राजनीति बाहरी दखल से आजाद रहे। लेकिन बदकिस्मती से मि० जिन्ना बृटिश भारत की राजनीति के जहरीले कीड़े यहाँ भी ले आये।'*

लाहौर अधिवेशन में लीग के मञ्च से पाकिस्तान का प्रस्ताव बंगाल के तत्कालीन प्रधान मन्त्री श्री फजलुलहक़ ने उपस्थित किया था, किन्तु अब वे स्वयं पाकिस्तान के विरोधी हैं, और मुसलिम लीग के विरोध में हिन्दुस्तान के मुसलमानों को संगठित करने के लिये उत्सुक हैं। पाकिस्तान योजना के प्रारम्भिक प्रवर्तक और निर्माणकर्ता हैदराबाद के डा० अब्दुल लतीफ ने लीग की घातक नीति से अत्यन्त क्षुब्ध होकर राष्ट्रीय मुसलमानों से लीग पर अधिकार प्राप्त कर उसके वर्तमान रूप का अन्त कर देने का अनुरोध किया है। लीग की वर्तमान नीति से उनके हृदय में जो जलन और क्षोभ उत्पन्न हुआ है उसका अनुमान उनके सन् १९४४ में दिये गये वक्तव्य के एक अंश से किया जा सकता है :—

"क्या अब भी मुसलमान कम से कम यह अनुभव करेंगे कि मुसलिम लीग के अध्यक्ष उन्हें कहाँ लिये जा रहे हैं? आरम्भ ही से मैं जानता हूँ कि पाकिस्तान में ही ईमानदारी के साथ जिन्ना कभी भी विश्वास नहीं करते थे।......"यह सच है कि कराँची में गरज कर उन्होंने कहा कि अंग्रेज हिन्दुस्तान

* विश्व वाणी जुलाई १९४४।

को विभाजित कर चले जाँय'। अब वे बतलाते हैं कि उनके ऐसा कहने का ठीक अर्थ यह था कि अंग्रेज पाकिस्तान और हिन्दुस्तान में अपने पूर्ण सैन्य बल के साथ आराम से ठहरें और अपने परराष्ट्र नीति और सम्बन्ध का भी संचालन सुविधा के साथ करते रहें। अपने तईं वे बतलाते हैं कि वे केवल 'कुछ घरेलू स्वच्छंदता' जो हमें अभी तक नहीं प्राप्त है, उन्हीं के मिलने से वे सन्तुष्ट हो जायँगे। यह है हिन्दुस्तान के वैधानिक भविष्य के प्रति देश भक्ति से ओत प्रोत श्री जिन्ना का दृष्टि कोण। क्या कोई अंग्रेज जिन्ना को इसके लिये बधाई देगा। एक दम निरे प्रतिक्रियावादी अंग्रेज को भी इस प्रकार की मनोवृत्ति पर केवल दुःख पूर्ण आश्चर्य्य ही होगा।...... देश के अन्य दलों के साथ समझौता करने के अवसर का लाभ उठाने के अतिरिक्त श्री जिन्ना हिन्दुस्तान की मुसलमान जनता जैसी स्वतंत्रता प्रेमी जाति की ओर से कहते हैं; 'नहीं', धन्यवाद, हम लोग गुलाम ही बने रह कर प्रसन्न होंगे। क्या मुसलिम लीग के लोग इस परिस्थिति का समर्थन करेंगे ?"

इन विवेचनाओं और प्रमाणों से यदि यह स्पष्ट है कि मुसलिम लीग मुसलिम जनता तथा सभी मुसलिम संस्थाओं द्वारा त्याज्य है तो यह विचारणीय है कि वह किस वर्ग या स्वार्थ का प्रतिनिधित्व करती है। 'मुसलिम मजलिश में' सम्मिलित होने के लिये मुसलमानों से प्रार्थना करते हुये उसके अध्यक्ष श्री ख्वाजा ने कहा था, 'हम लोग जानते हैं कि खिलाफत आन्दोलन के समय अमन सभा में काम करने वाले, जो आज मुसलिम

लीग के प्रधान अंग बने हैं, सर्व ज्ञात कारणों से हम लोगों का साथ नहीं दे सकते हैं।' श्री ख्वाजा ने एक शब्द में मुसलिम लीग के प्रतिनिधित्व के दावे का वास्तविक माप-दंड उपस्थित कर दिया है। अमन सभा में काम करने वाले मुसलिम लीग के कर्णधार और महारथी बने हैं, यह निर्विवाद और निर्विरोध है। मुसलिम लीग उन मुसलमान नवाबों, तालुकेदारों, रईसों तथा अन्य पूँजी पतियों से बनी हुई है, जिनके क्षुद्र स्वार्थ की रक्षा केवल वृटिश राज के अन्तर्गत सम्भव है। उनमें न तो देश प्रेम या आजादी का आदर्श है, और न तो उसके लिये नैतिक बल, त्याग, कष्ट सहन और दूसरे कठिन संघर्षों में पड़ने की शक्ति वास्तव में उनका ढाँचा ही दूसरा है, उनकी जरूरतें भिन्न हैं, जिनके लिये वृटिश सरकार की सतत संरक्षता अनिवार्य है। बढ़ती हुई जनशक्ति की ललकार की भीषणता के खतरे से अपनी रक्षा करने के लिये मुसलिम लीग या अन्य आश्रय के द्वारा जहाँ भी काम सधता हुआ दीखता है इन स्वार्थी व्यक्तिओं का दल एक स्थान से दूसरे स्थान पर भटकता फिरता है। पद तथा शक्ति की लोलुपता लीग के सदस्यों को किस स्थान तक ले जा सकती है, इसके दो निकृष्ट उदाहरण हिन्दुस्तान के इतिहास में उपस्थित हुये हैं। सीमा प्रान्त के लीग मन्त्रि-मण्डल की करतूत का वर्णन करते हुये प्रो० हुमायूँ कवीर ने लिखा था :—

"सीमा प्रान्त के शीघ्र हुये निर्वाचन में पदाधिकारियों के षड़यंत्र और बेइमानी के कारण कांग्रेस की विजय, हार में

बदल दी गयी। वोट के कागज वाले वाक्स गिनने के केन्द्रों पर भेजने के पहले ही तोड़ डाले गये, और तब वे खुले हुये ढक्कनों में भेजे गये। निर्वाचन सम्बन्धी मुकदमें इस समय भी वहाँ लड़े जा रहे हैं।"*

इसी लेख में इसका कारण भी विद्वान् प्रोफेसर ने बताया है :—

"डा० खाँ साहब की ललकार अब भी बनी हुई है कि ईमान दारी के साथ किये गये निर्वाचन में यदि १० प्रतिशत वोटर भी मुसलिम लीग के लिये वोट दें तो वे स्वयं कांग्रेस से अलग होकर लीग में सम्मिलित हो जाँयगे।"

परिस्थितियों से निराश होकर सीमाप्रान्त की लीग को इस सीमा तक नीचे जाना पड़ा, जहाँ ईमान ताक पर रख कर स्वार्थ साधन के लिये सभी कुछ किया जाता है, लेकिन सिन्ध की घटना तो न केवल आश्चर्य जनक है, बल्कि अत्यन्त घृणित तथा रोमांचकारी भी है। श्री अल्ला बख्श की निर्मम हत्या एक कठोर सत्य है। इस हत्या के अभियोग में सिन्ध की लीग सरकार के माल मन्त्री खाँ बहादुर खुरों गिरफ़ार किये गये, और उन पर श्री अल्ला बख्श की हत्या का मुकदमा चल चुका है। इस निर्मम हत्या के समय खाँ बहादुर खुरों सिन्ध प्रान्तीय मुसलिम लीग के अध्यक्ष थे। श्री अल्ला बख्श सिन्ध के ओजस्वी नेता थे, और उनकी तेजस्विता तथा क्रिया शीलता ने

* ४ जून १९४४ अमृत बाजार पत्रिका में प्रकाशित एक लेख से।

न केवल सिन्ध में बल्कि समस्त हिन्दुस्तान में लीग की सत्ता के लिये खतरा उपस्थित कर दिया था।

निश्चित रूप से पतन की ओर जाती हुई अपनी अव्यवस्थित स्थिति की रक्षा के लिये आरम्भ ही से इस वर्ग के लोगों ने मनुष्य की निम्नतर उत्तेजना और भावनाओं को उत्तेजित करने का मार्ग ग्रहण किया है। एक सम्प्रदाय के नाम से स्थापित हुई संस्था के लिये साम्प्रदायिक अरक्षा की भावना जागरित करना अत्यन्त सरल सिद्ध हुआ, और हिन्दुस्तान की परिस्थितियों में तो इस नीति की सफलता निश्चित सी है। राष्ट्रीय चेतना तथा जन आन्दोलन ज्यों-ज्यों तीव्रतर होते गये, मुसलिम सम्प्रदाय की अरक्षा का आतंक भी विशाल रूप धारण करता गया। इस्लाम खतरे में मुसलिम संस्कृति और सभ्यता खतरे में, हिन्दू राज्य, बहु संख्यकों का अत्याचार इत्यादि अनेक कल्पनाओं के भय मुसलमानों के सामने समय-असमय भयानक बनाकर खड़े किये जाते हैं। अरक्षा से बचने के लिये एक संरक्षण की माँग की जाती है, उसके पूरा होने पर भी पहले के सभी भय ज्यों के त्यों बल्कि उससे भी अधिक प्रबल बने रहते हैं, फिर दूसरे संरक्षणों की माँग उपस्थित होती है, इस प्रकार यह सीमा रहित कार्य शैली केवल इस उद्देश्य से चलाई जा रही है कि केवल कुछ लोग अपने स्वार्थ साधनों को अनंत काल तक भोगते रहें और इच्छानुकूल गुलछर्रे उड़ाते रहें। सन् १९०६ ई० में इन स्वार्थी व्यक्तियों ने पृथक निर्वाचन की माँग की, सन् १९०९ ई० में वह माँग पूरी हो गयी, किन्तु इसके बाद पृथक निर्वाचन के साथ

संरक्षण का प्रस्ताव उपस्थित हुआ, वह भी सन् १९१६ ई० में लखनऊ समझौते द्वारा और सन् १९१९ ई० में मांटेग्यू-चेम्सफोर्ड शासन सुधार द्वारा स्वीकृत हो गया। किन्तु मुसलिम सम्प्रदाय की अरक्षा की भावना में लेश मात्र की भी कमी नहीं आने दी गयी, और साम्प्रदायिक वातावरण को अधिक से अधिक क्षुब्ध बनाने का प्रयत्न किया गया। सन् १९२८ ई० में श्री जिन्ना की प्रसिद्ध १४ शर्तें सामने आयीं। प्रायः ये सभी शर्तें और इनसे भी बहुत अधिक बढ़ कर मुसलिम हित के संरक्षण सन् १९३५ ई० के शासन विधान में सम्मिलित कर दिये गये, किन्तु अरक्षा का भय, इस्लाम पर खतरा बढ़ता ही गया। सन् १९३८ ई० में पं० नेहरू के यह पूछने पर कि वे ठीक-ठीक चाहते क्या हैं, श्री जिन्ना ने उन्हें अपनी १४ शर्तों की याद दिलाई जब पं० नेहरू ने उन्हें लिखा कि, '१४ शर्तें समय से पुरानी हो चुकी हैं, उनकी अनेक शर्तें साम्प्रदायिक निर्णय और दूसरी योजनाओं द्वारा कार्यान्वित हो चुकी हैं,'* तो जिन्ना ने दूसरी ११ नयी शर्तों को पेश कर दिया। उनकी १४ शर्तें कार्यान्वित हो चुकी हैं या नहीं इस पर श्री जिन्ना ने न तो कभी विचार किया था, और न विचार करने की आवश्यकता समझी थी। उनके लिये केवल इतना वातावरण बनाये रखना पर्याप्त था कि हिन्दू उनकी कोई बात नहीं मान रहे हैं। मागे हुये सभी और अधिक संरक्षणों के मिल जाने पर भी हिन्दू अत्याचार से मुसलमानों को खतरा बढ़ता ही गया, और सन् १९३९ ई० में देश

* नेहरू जिन्ना कारेस्पान्डेंस।

के शासन में ५०-५० प्रतिशत भाग की माँग की गयी, लेकिन सन् १९४० ई० तक यह भी सम्प्रदाय की रक्षा के लिये पर्याप्त नहीं समझा गया, और २३ मार्च सन् १९४० ई० को लाहौर में हिन्दुस्तान से अलग पृथक मुसलिम राज्य की माँग की गयी, और इसे 'पाकिस्तान' का एक आकर्षक नाम दिया गया। बड़ी बुद्धिमता से इस नये नारे की न तो कोई परिभाषा बताई गयी, और न इसका ठोस रूप प्रकट किया गया, फिर भी इस अज्ञात माँग को न मानने पर हिन्दुओं को (हिन्दुओं का अर्थ लीग के लिये 'काँग्रेस' से है) इसका दुष्परिणाम भुगतने की धमकी दी गयी है। लेकिन इससे भी अधिक बुद्धिमानी इस बात में दिखायी गई है कि यह माँग अखण्ड भारत का नारा लगाने वाली हिन्दू महासभा या हिन्दुस्तान की अखण्डता की पोषक दूसरी संस्थाओं से नहीं की जा रही है, जिनका हिन्दुस्तान के विभाजन के लिये राजी होना आवश्यक होगा, या यह माँग बृटिश सरकार से भी नहीं की जा रही है, जो पृथक राज्य या कोई दूसरा राज्य देने की शक्ति रखती है। यह माँग काँग्रेस से की जा रही है, जो पीड़ित और दलित जनता के अधिकार प्राप्त करने के लिये स्वयं ही एक लम्बे समय से प्रयत्नशील है, जिसके पास किसी को देने के लिये राज्य नहीं है, बल्कि जो जनता का राज्य प्राप्त करने के लिये स्वयं युद्ध कर रही है; लेकिन जिसकी बढ़ती हुई जन शक्ति साम्राज्य के साथ, व्यक्ति-गत स्वार्थों और सुविधाओं का अन्त करने का प्रतिक्षण खतरा उपस्थित कर रही है। लीग अध्यक्ष श्री जिन्ना ने यह स्पष्ट कर दिया है कि पाकि-

स्तान का प्रश्न देशी रियासतों के मुसलमानों के लिये नहीं उठता है। पता नहीं किस अपराध के कारण देशी रियासतों के मुसलमान पाक मुल्क की विभूतियों से वंचित किये जा रहे हैं? या उन पर हिन्दू राज्य का खतरा क्यों नहीं उपस्थित है? या वहाँ इसलाम और मुसलिम संस्कृति क्यों खतरे में नहीं है? वहाँ किन कारणों से ब्रटिश हिन्दुस्तान की समस्यायें क्यों अनुपस्थित मान ली गई हैं? शायद वहाँ अभी व्यक्ति गत स्वार्थ खतरे में नहीं है।

लेकिन इस अज्ञात पाकिस्तान की माँग का एक ज्ञात रूप देकर चक्रवर्ती राजगोपालाचारी ने मुसलिम लीग के अध्यक्ष को उसे स्वीकार करने के लिये निमन्त्रित किया तो श्री जिन्ना ने राजा जी से बात करना भी पसंद नहीं किया। उसे और विशद तथा व्यापक रूप देकर महात्मा गाँधी ने ९ सितम्बर से २८ सितम्बर सन् १९४४ तक लगातार मलाबार पहाड़ी पर स्थित श्री जिन्ना के महल की परिक्रमा की, लेकिन लाहौर के प्रस्ताव के गर्भ में जो पाकिस्तान था, वह विकास के नियमानुसार समय के प्रत्येक मोड़ पर बढ़ता हुआ सिद्ध हुआ। यदि पाकिस्तान सचमुच वाँछनीय आदर्श है, तो उसका स्पष्ट रूप संसार के सम्मुख रख कर उसके लिये अनिवार्य त्याग, कष्ट सहन, परिश्रम और यातना झेलना है एक मार्ग हो सकता है। समय समय पर सुविधा के अनुकूल नये नये नारों का निर्माण कर विदेशी प्रभुत्व और साम्राज्य वादी शोषण की वर्तमान अवस्था के अन्तर्गत अपने स्वार्थ साधन को पूर्ति के

लिये जन आन्दोलन और राष्ट्रीय उत्पात के मार्ग में चट्टान खड़ा करते रहना अत्यन्त आपत्तिजनक तथा क्षुद्र प्रयत्न है। 'मुसलमानों से दूर रहो' इस प्रयत्न का एक अंग लीग ने वनाया है। श्री जिन्ना को राजी न कर सकने के बाद महात्मा गाँधी ने पाकिस्तान का जो स्पष्ट रूप दिया था, उसे जनता के सम्मुख रखते हुये भी मुसलमानों से उस पर विचार करने का अनुरोध किया, लेकिन जिन्ना साहव ने इस अत्यन्त निर्दोष अनुरोध को अपने विरुद्ध मुसलमानों को उभाड़ने का प्रयत्न बनाया। सन् १९३८ ई० में भी जब काँग्रेस ने मुसलिम जन सम्पर्क कार्य क्रम अपनाया तो लीग के क्रोध का ठिकाना न था, यद्यपि लीग ने श्री जिन्ना के द्वारा अछूतों को हिन्दुओं से अलग होने के लिये और द्रविणों को द्रविड़स्तान की माँग उपस्थित करने के लिये उत्तेजित करने में कोई कसर शेष नहीं रखते हैं। कस्तूरबा गाँधी कोष को लीग ने मुसलिम विरोधी कार्यों में व्यय करने के लिये इकट्ठा किया हुआ धन वताया है। यह सर्व ज्ञात है कि कस्तूरा वा कोष हिन्दुस्तान के गाँव में वसने वाले अशिक्षित स्त्री और बच्चों को विकास और उत्थान देने का एक अत्यन्त साधारण और निर्दोष प्रयत्न है। लेकिन वर्तमान व्यवस्था में लेश मात्र परिवर्तन से भी घबड़ाती हो, और विकास तथा प्रगति शीलता जिसके स्थाई स्वार्थों के लिये खतरा है, वह मुसलिम लीग यदि कस्तूरा वा कोषको मुसलिम विरोधी घोषित कर उसके उद्देश्य और कार्य क्रम के मार्ग में वाधा उपस्थित करने का प्रयत्न करे तो क्या आश्चर्य! सच वात तो यह

है कि अत्यन्त पिछड़ी हुई अविकशित और अशिक्षित अवस्था में ही मुसलिम लीग मुसलमान जनता पर कुछ अंश तक अधिकार जमा कर अपने मतलब के पूरा करने का मार्ग देखती है। यदि जनता प्रगति शीलता की ओर अग्रसर हुई तो लीग के महारथियों के मस्तिष्क में इसमें तनिक भी संदेह नहीं कि उनका अस्तित्व एक दम मिट जायगा।

अनेक शैलियों में मुसलिम लीग ने वृटिश सरकार पर कभी कभी रोब गालिब करने की नीति का भी अनुशरण किया है। कराची में दिसम्बर सन् १९४३ ई० में लीग के ३१ वें अधिवेशन में बोलते हुये उसके अध्यक्ष श्री जिन्ना ने कहा था कि—"काँग्रेस और लीग के साथ एकसा व्यवहार कियां जा रहा है, मुसलिम लीग को भी सरकार गैर कानूनी घोषित करना पसंद करेगी, हम लोग इसके लिये एक दम तय्यार हैं।"

काँग्रेस की समानता का दम भरने वाले हिन्दुस्तान के प्रसिद्ध वकील श्री जिन्ना गैर कानूनी घोषित किये जाने की अनिवार्य परिस्थिति को अच्छी तरह जानते हैं। एक दूसरे अवसर पर लीग अध्यक्ष ने सरकार को चुनौती देते हुये ललकार कर जेल के भीतर बन्द महात्मा गाँधी के लिये कहा था कि यदि गाँधी जी उन्हें पत्र लिख कर उनसे बात चीत करना चाहें, तो कोई शक्ति उस पत्र को उनके पास तक पहुँचने में रोक नहीं सकती थीं; किन्तु सरकार ने सरल और स्पष्ट शब्दों में श्री जिन्ना को केवल सूचित कर दिया कि गाँधी जी ने उनके नाम जेल से पत्र भेजा था, जिसे सरकार ने रोक लिया। अपने सम्मान

की रक्षा के लिये भी सरकार के इस कार्य के विरोध में श्री जिन्ना के मुख से एक शब्द भी न निकला बल्कि उलटे गाँधी जी पर चालाकी का दोष लगा कर उन्होंने संतोष कर लिया। श्री जिन्ना जानते हैं कि ललकारना एक बात है, और उसे कार्य रूप में परिणित करना दूसरी बात है। १७ फरवरी सन् १९४४ ई० को अपने भाषण में असेम्बली में गवर्नर जनरल लार्ड वैवेल ने यह कह कर कि 'हिन्दू मुसलिम अन्तर के सम्बन्ध में मैं यह कह सकता हूँ कि आप भौगोलिक परिवर्तन नहीं कर सकते हैं। देश की रक्षा, वैदेशिक संबन्ध, अन्य अनेक बाहरी तथा भीतरी आर्थिक समस्याओं के दृष्टिकोण से हिन्दुस्तान एक प्राकृतिक इकाई है, मुसलिम लीग के पाकिस्तानी नारे पर प्रबल तथा पूर्ण अधिकार युक्त प्रहार किया, लेकिन श्री जिन्ना और उनकी मुसलिम लीग को गवर्नर जनरल के विरुद्ध कुछ करना तो दूर रहा, कुछ कहने तक का साहस नहीं हुआ। लीग या लीगी मन्त्रि मन्डलों के कार्य क्रम में कोई अन्तर इससे उपस्थित नहीं हुआ। बृटिश सरकार के साथ सहयोग में कोई अन्तर नहीं हुआ। पंजाब मन्त्रि मन्डल से लीगी मन्त्री श्री शौकत हयात खाँ पद च्युत कर दिये गये, और पंजाब के गवर्नर के इस कार्य को श्री जिन्ना ने अवैधानिक भी घोषित किया; किन्तु लीग और लीगी मन्त्रियों को गवर्नरों के अवैधानिक कार्यों को चुपचाप मानते रहने में कभी कोई आपत्ति नहीं हुई।

वह संस्था तथा व्यक्ति एक दम भिन्न तत्त्वों से बने होते

हैं, जो अपने सम्मान तथा उद्देश्य के लिये मोर्चा लेने की क्षमता रखते हैं। मुसलिम लीग की शक्ति के कारण नहीं; बल्कि बृटिश साम्राज्य की अनिवार्य आवश्यकताओं के कारण बृटिश सरकार ने मुसलिम लीग को इसलिये प्रोत्साहन दिया है कि वह जन आन्दोलन के मार्ग में अवरोध उपस्थित करते रहने के लिये शक्ति सम्पन्न बनायी जाय। लेकिन शक्ति संतुलन की नीति को प्रयोग में लाने में दक्ष अंग्रेज भली भाँति समझते हैं कि एक सीमा तक ही लीग को प्रोत्साहन दिया जा सकता है मार्च सन् १९४० ई० में लाहौर के लीग अधिवेशन में अध्यक्ष पद से बोलते हुये श्री जिन्ना ने इस बात को स्वयं स्वीकार किया था :—

"यह स्मरण होगा कि युद्ध घोषित होने के समय तक वायसराय ने मेरा कोई ख्याल नहीं किया था। मैं बहुत दिनों से केन्द्रीय असेम्बली में एक महत्त्वपूर्ण दल का नेता हूँ...किन्तु वायसराय ने इसके पूर्व मेरा कोई ख्याल नहीं किया।"

वास्तविक स्थिति को लीग अच्छी तरह जानती है, वह यह भी जानती है कि सरकार की कृपा से भी यदि यह वंचित हो गयी, तो उसकी स्थिति का आधार ही नष्ट हो जायगा; इसलिये सुविधा की संधि को अपनी ओर से पूर्ण पालन करने के प्रमाण में वह कभी भी कमी नहीं आने देती है। युद्ध छिड़ने के बाद ही जब काँग्रेस ने बृटेन से युद्धोद्देश्य की घोषणा तथा फल स्वरूप हिंदुस्तान के लिये जन तंत्र शासन की घोषणा की माँग उपस्थित की; और इस प्रकार बृटिश साम्राज्य को एक

विकट परिस्थिति का सामना करना पड़ा तो श्री जिन्ना अपनी लीग के साथ अविलम्ब सरकार की सहायता के लिये दौड़ पड़े, और उन्होंने यह घोषित किया कि उनके समर्थन और सहमति के विना यदि वृटिश सरकार ने कोई शासन विधान हिंदुस्तान को दिया, तो मुसलमान उसका पूर्ण विरोध करेंगे। जन तंत्र शासन की माँग को ही पंगु वनाने में श्री जिन्ना ने कोई कमी नहीं होने दी। उन्होंने घोषित किया कि पश्चिमीय जन तंत्र हिंदुस्तान के लिये एक दम अनुपयुक्त है, और उसे हिंदुस्तान पर लादना उसके राजनीतिक शरीर में रोग उत्पन्न करना होगा। लीग के नवें अधिवेशन में लखनऊ में श्री जिन्ना ने स्वयं कहा था :—

"अत्यन्त अनुचित राजनीतिक सिद्धान्त हिंदुस्तान की जनता को वारवार वताये गये हैं।......उदाहरणतः यह कहा जाता है कि 'जन तंत्र शासन पूर्वीय संस्कृति और स्वभाव के विपरीत है।' क्या जन तंत्र हिंदू और मुसलमान के लिये अज्ञात है? तो ग्राम पंचायतें फिर क्या थीं? इस्लाम का शानदार गत इतिहास क्या सिद्ध करता है? संसार का कोई दूसरा राष्ट्र मुसलमानों से वढ़ कर अधिक जन तंत्र की भावना और परम्परा का दावा कदापि नहीं कर सकता है।"*

अपनी इस घोषणा की परवाह न कर समय पड़ने पर श्री जिन्ना वृटिश साम्राज्य के साथ लीग की संधि के अनुसार अपना पार्ट अदा करने के लिये दौड़ पड़े। लीग के कार्य से उस समय

* तारीखे मुसलिम लीग ले० मिर्जा अख्तर हुसेन।

सम्पूर्ण हिंदुस्तान एक दम स्तब्ध हो गया जब वृटेन की साम्राज्य वादी नीति के विरोध में काँग्रेस मन्त्रिमन्डलों के इस्तीफा देने पर लीग अध्यक्ष श्री जिन्ना ने २३ दिसम्बर सन् १९३९ ई० को 'मुक्ति दिवस' मनाने के लिये लीग को आदेश दिया। केवल २७ महीने के जन तंत्र शासन से मुक्ति पाने का त्योहार मनाना सदियों से हिंदुस्तान अंग प्रत्यंग का शोषण तथा दमन करने वाले वृटिश शासन का न केवल पूर्ण समर्थन था; वल्कि उसको यहाँ आराम से टिके रहने का हार्दिक आश्वासन तथा निमन्त्रण भी था। वृटिश सरकार ने काँग्रेस के अगस्त १९४२ के प्रस्ताव को अत्यंत विद्रोहात्मक घोषित किया, और उस प्रस्ताव को वापस न लेने तक काँग्रेस के प्रति अपनी नीति में कुछ भी परिवर्तन करने से अस्वीकार कर दिया। लीग अध्यक्ष ने उस प्रस्वाव को मुसलिम हितों के विरुद्ध घोषित कर वृटिश सरकार की नीति का अधिक बुद्धिमानी के साथ समर्थन किया। डा० पी० सुब्वा राय ने अपने एक वक्तव्य में कहा था :—

"श्री जिन्ना जब यह कहते हैं कि यदि गाँधी जी चाहें तो ८ अगस्त का प्रस्ताव वापस लेकर जेल से मुक्त हो सकते हैं, तो वे केवल एमरी ही की वात दुहराते हैं। प्रस्ताव ने काँग्रेस के लिये नहीं, बल्कि हिंदुस्तानी जनता के लिये शक्ति हस्तान्तरित करने की माँग की थी। जिन्ना जाहे जो भी कहें उसमें मुसलमानों के लिये धमकी का एक भी शब्द नहीं है।"

एक दूसरे अवसर पर लंदन के न्यूज क्रा नकल पत्र के संदा

दाता द्वारा यह सूझ उपस्थित करने पर कि श्री राजगोपाला-चारी द्वारा पाकिस्तान की माँग स्वीकृत कर लिये जाने पर वृटिश सरकार गाँधी जी से समझौते की वात चीत क्यों न आरम्भ करे, श्री जिन्ना ने कहा था :—

"जहाँ तक सरकार का सम्वन्ध है, मैं नहीं जानता इस सम्वन्ध में उसकी नीति क्या है, लेकिन यदि सरकार आपकी सूझ का अनुसरण करती है तो यह इस वात की स्वीकारोक्ति होगी कि काँग्रेस जीत गई और काँग्रेस के विना वृटिश सरकार नहीं चल सकती है।"

वृटिश सरकार के अवाधि गति से चलती रहने की जितनी चिंता और व्यग्रता लीग अध्यक्ष को है, उतनी एक अंग्रेज को नहीं है। लेकिन यह भी उस उद्‌गार के सम्मुख अत्यन्त तुच्छ दीख पड़ेगा, जो श्री जिन्ना ने पाकिस्तान प्रस्ताव पर सितम्वर सन् १९४४ में 'गाँधी जिन्ना' वार्तालाप असफल हो जाने के कुछ दिनों बाद एक विदेशी पत्र के सम्वाद दाता को वक्तव्य देते हुये प्रकट किया था :—

"...आधार भूत सिद्धान्तों के प्रश्न हैं। भला मैं वर्तमान शासन (वृटिश शासन) को हटाने और उसके स्थान पर गाँधी द्वारा प्रस्तावित तुरंत कार्यान्वित होने वाले संयुक्त भारत और पार्लियामेन्टरी शासन विधान वनाने के लिये कैसे सहमत हो सकता था।...क्या आप नहीं देखते हैं कि यदि मैं गाँधी की वात से राजी हो जाता, तो काँग्रेस की माँग को जो पाकिस्तान के विरुद्ध है, स्वीकार करना पड़ता और यदि वृटिश

सरकार भी हार मान गयी तो मुसलिम हिंदुस्तान केवल बहुसंख्यक हिंदू राज्य, वल्कि अंग्रेजों के सहयोग से विजयी हिंदू बहुमत के विरोध में पड़ जायगा। यदि गाँधी सामूहिक सविनय अवज्ञा आन्दोलन का आश्रय नहीं लेना चाहते हैं, तो उनको यह कहना चाहिये, और अगस्त प्रस्ताव वापस लेना चाहिये।"

श्री जिन्ना काँग्रेस से केवल अगस्त प्रस्ताव ही वापस कराना नहीं चाहते हैं; बल्कि स्वतंत्र्य युद्ध और परतंत्रता से मुक्ति पाने का उसके एक मात्र अस्त्र सविनय अवज्ञा आन्दोलन को भी सर्वदा के लिये रख देने का वचन लेना चाहते हैं। वृटिश सरकार ने भी ऐसा दुराग्रह करने का साहस अभी तक नहीं किया है। किसी देश और राष्ट्र से स्वातंत्र्य युद्ध के चुने हुये अत्यन्त विनम्र और शांतिपूर्ण मार्ग तथा साधन तक को भी छोड़ देने के लिये कहना श्री जिन्ना के ही साहस का काम हो सकता है। इसका स्पष्ट अर्थ है गुलामी को स्वेच्छा से कबूल करना। किन्तु इसमें श्री जिन्ना का कोई दोष नहीं। वृटिश सरकार के साथ मुसलिम लीग की जो संधि है, उसका अपना अंश अधिक उत्साह और साहस के साथ पूरा करने के लिये श्री जिन्ना बेहद उतावले हैं। सितम्बर सन् १९४४ ई० में पाकिस्तान के सम्बन्ध में गाँधी जी का समझौते का प्रयत्न असफल हो जाने का कारण बताते हुये लार्ड स्ट्रैल बोल्गी ने कहा था कि श्री जिन्ना के दावा के पीछे वृटिश साम्राज्य का हाथ था।

शिमला सम्मेलन की एक साधारण विवेचना इस बात को स्पष्ट प्रकट करेगी कि मुसलिम लीग न केवल एक अत्यन्त प्रतिक्रियावादी संस्था है, बल्कि वह निश्चित रूप से वर्तमान व्यवस्था कायम रखने के लिये प्रयत्नशील है। देश की स्थिति जिस समय भीषण और विषम थी, वस्त्र और अन्नसंकट कल्पनातीत हो रहा था, चोर बाजार और घूसखोरी का नग्न नृत्य इस देश के जीवन को बेतरह बर्बाद कर रहा था और राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियाँ उस विवशताकी सीमा तक पहुँच चुकी थीं, जब निरंकुश शासन को भी शासित देश के जिम्मेदार व्यक्तियों के परामर्श और सहायता की आवश्यकता टालना असंभव होता है। लार्ड वैवेल ने इसी परिस्थित में शिमला सम्मेलन को बुलाया और काँग्रेस ने भी देश की प्रतिक्षण गिरती हुई अवस्था को कुछ अंश तक सँभाल लेने की आशा से उससे सम्मिलित होना स्वीकार किया। शिमला सम्मेलन की पूर्ण और विशद विवेचना यहाँ आवश्यक नहीं है। इतना मान लेना होगा कि इस देश को एक अत्यन्त मनहूस दशा से ऊपर उठाने का वह प्रयत्न था और यदि उस प्रयत्न का उपयोग कुशलता पूर्वक किया जाता तो गुलामी की जंजीर कुछ ढीली की जा सकती, और इससे तो सन्देह ही नहीं कि तबाह जनता को बहुत कुछ राहत दी जा सकती थी।

काँग्रेस और दूसरी संस्थाओं के साथ मुसलिम लीग भी इस सम्मेलन में सम्मिलित हुई थी, लेकिन जहाँ और संस्थाओं का प्रयत्न सम्मेलन को सफल बनाने का था, वहाँ मुसलिम

लीग उसे किसी प्रकार असफल कर देने की चिन्ता में थी। सम्मेलन के परिणाम स्वरूप जो कैविनेट वनने वाली थी उसके सम्बन्ध में यह निश्चित हो चुका था कि सवर्ण हिन्दू और मुसलमान दोनों का समान अनुपात होगा और उसके अनुसार कैविनेट में ५ सवर्ण हिंदू और ५ मुसलमानों का स्थान मान लिया गया था। मुसलिम लीग और उसके अध्यक्ष श्री जिन्ना ने इस बात को घोषित किया कि कैविनेट के सभी मुसलिम सदस्य मुसलिम लीग द्वारा ही नामजद किये जायेंगे। किसी दूसरी संस्था को एक भी मुसलिम सदस्य नामजद करने का अधिकार देना लीग को मान्य नहीं था। काँग्रेस के समाने देश की दुरवस्था का प्रश्न था, उसने नामजदगी की बात को विवाद का विषय बना देना उचित नहीं समझा और वह इस बात पर सहमत थी कि सम्मेलन में जो प्रतिनिधि सम्मिलित हुये थे, वे मिलकर देश के उपयुक्त व्यक्तियों को चुनें और उन्हें नामजद करें। लेकिन यह लीग को पसन्द नहीं था। जब बातें सुलझती नहीं दीख पड़ीं तो लीग द्वारा ४ सदस्य नामजद करने की बात मान ली गई। पंजाब के प्रधान मंत्री और यूनियनिस्ट दल के नेता श्री खिज्र हयात खाँ कैविनेट में पंजाब का एक प्रतिनिध चाहते थे और अपने प्रांत के अधिकार को लीग के लिये छोड़ने पर तैयार नहीं थे।

लीग की यह अनधिकार चेष्टा थी और सम्मेलन को असफल बना देना उसे अभीष्ट था। जिस समय शिमला सम्मेलन बुलाया गया, लीग एक से अधिक प्रतिनिधि पाने की

अधिकारिणी नहीं थी। किसी भी प्रान्त में लीग का मन्त्रि-मण्डल शेष नहीं था। सीमाप्रांत में अविश्वास के प्रस्ताव के परिणाम स्वरूप लीगी मंत्रिमण्डल को पदच्युत होना पड़ा था और उसके स्थान पर डाक्टर खाँ साहब ने काँग्रेस का मन्त्रिमण्डल बनाया था। पंजाब में यूनियनिस्ट पार्टी का मन्त्रिमण्डल था। बंगालमें भी लीगी मन्त्रिमण्डल अविश्वास के प्रस्ताव से निकाला जा चुका था और वहाँ गवर्नर का शासन था। लार्ड वैवेल ने सर निजामुद्दीन भूतपूर्व लीगी प्रधान मन्त्री को शिमलासम्मेलन में शामिल होने के लिये निमन्त्रित किया था, लेकिन सर निजामुद्दीन और उनके मन्त्रिमण्डल के विरुद्ध अविश्वास का प्रस्ताव पास हो चुका था और वे निकल चुके थे। जिस व्यक्ति और संस्था के प्रति प्रांत ने अविश्वास प्रकट कर दिया था, उसे उस प्रान्त का प्रतिनिधि मान लेना और निमन्त्रित करना सर्वथा अनुचित था। वास्तव में सर निज़ामुद्दीन लार्ड वैवेल के नामज़द किये हुये व्यक्ति थे, प्रान्त के प्रतिनिधित्व के लिये उन्हें कोई अधिकार नहीं था। सिंध और आसाम में जो मन्त्रिमण्डल थे, वे काँग्रेस की कृपा और सहयोग पर टिके थे। इन दोनों मन्त्रिमण्डलों में लीग की प्रधानता अवश्य थी, लेकिन काँग्रेस के साथ एक समझौते के आधार पर ही ये मन्त्रिमण्डल में बने थे। इसलिये उन्हें शुद्ध लीगी मन्त्रिमण्डल कहना अनुचित होगा। सिंध और आसाम के आधार पर लीग शिमला सम्मेलन में कैविनेट में एक या अधिक-से-अधिक दो प्रतिनिधि का तकाजा कर सकती थी, लेकिन इस दशा में जब पूरे हिंदुस्तान भर में उसकी कोई

स्थिति नहीं थी तो सभी स्थानों पर अधिकार प्रकट करना न केवल अनुचित था, बल्कि अत्यन्त धृष्टतापूर्ण था।

लेकिन लीग सभी सदस्यों को भी नामजद करने के लिये उत्सुक नहीं थी, यह तो एक बहाना था। वास्तव में वह सम्मेलन को असफल करने के लिये उत्सुक थी। लीग के अध्यक्ष श्री जिन्ना ने सम्मेलन के समय गाँधी जी को इस बात के लिये निमन्त्रित किया कि सम्मेलन को भंग कर गाँधी जी उनसे पाकिस्तान के मामले पर बातें करें। लीग के एक विश्वासनीय और सम्मानित व्यक्ति श्री हसरत मोहानी ने शिमला से वापस आने पर कानपुर से एक वक्तव्य देते हुये कहा था कि यदि सभी मुसलिम स्थान लीग के नामजद किये हुये सदस्यों को ही मिल जायँ तो भी माना नहीं जा सकता, क्योंकि इससे पाकिस्तान का प्रश्न दूर और अस्पष्ट हो जायेगा। इसके अतिरिक्त सम्मेलन के अवसर पर यह स्पष्ट रूप से देखा गया था कि जहाँ दूसरे दल गुत्थियों के सुलझाने में लगे थे, वहाँ मुसलिम लीग अपने पार्लामेंटरी बोर्ड के कार्यों में और आने वाले निर्वाचनों की तैयारी में लगी थी।

यह बात स्पष्ट थी कि न तो श्री एमरी को पसन्द था और न लीग के लिये वाञ्छनीय था कि हिंदुस्तान के प्रतिनिधियों के हाथ में किसी प्रकार की शक्ति आये। जितना भी सीमित अधिकार मिलता, कुछ अंश तक तो साम्राज्य की शक्ति को कम करता और जो भी कार्य क्रम स्वीकार किया जाता वह हिंदुस्तान के दलों के संयुक्त और सम्मिलित कार्य का विषय था। लीग

प्रगतिशील दलों के साथ कार्य करने से डरती थी। शिमला सम्मेलन के परिणामस्वरूप जो कार्य क्रम अपनाया जाने वाला था, वह यदि उपयुक्त व्यक्तियों द्वारा किया जाता तो वर्तमान परिस्थिति में बहुत अधिक परिवर्तन होने की संभावना थी। लेकिन यही बात लीग को प्रिय नहीं है: अन्यथा काँग्रेस की यह राय कि सभी दल उपयुक्त और योग्य व्यक्तियों को नामज़द करें ठुकरा देने लायक नहीं थी और न दूसरे मुसलमानों को वहिष्कृत कर एक स्थायी वर्ग-मुसलिम लीग-के सदस्यों को नामज़द करने का हठ आवश्यक था।

मुसलिम लीग की राजनीति एक गुलामदेश की विवशताओं का कलुषित चित्रण है। मुसलिम लीग भ्रमात्मक नारों द्वारा एक सम्प्रदाय की भावुकता को उत्तेजित कर स्थायी वर्ग के स्वार्थ की रक्षा का प्रवन्ध कर रही है निश्चय ही विदेशी शासन की गुटवन्दी और कृपा के आधार पर लीग की शक्ति भी आज विशेष रूप से बढ़ गई है। लेकिन लीग के पास न तो कोई कार्य क्रम है और न उसके पीछे कोई विचार धारा है। साधारण जनता के हितों के एकदम विपरीत ही उसका स्वार्थ है। इस दशा में लीग की वढ़ी हुई शक्ति राष्ट्रीयता और प्रगतिशीलता के तीव्र प्रवाह में कव तक ठहर सकेगी, इसका अनुमान राजनीति का प्रत्येक विद्यार्थी कर सकता है। मुसलिम लीग इस देश के मुसलमानों के अतिरिक्त दूसरे देशों के मुसलमानों की दुरवस्था के प्रति वार वार चिन्ता और सहानुभूति में कितना तथ्य है, इस वात की विवेचना से स्पष्ट हो

जायेगा कि बृटिश साम्राज्य के साथ मुसलिम लीग की गुटबन्दी में कितना औचित्य है। अगले परिच्छेद में हम बृटिश साम्राज्य और दूसरे मुसलिम देशों के सम्बन्ध में विचार करने का प्रयत्न करेंगे।

—:०:—

मुसलिम देश और बृटिश साम्राज्य

बृटेन के हिंदुस्तानी साम्राज्य और योरप के बीच स्थित सम्पूर्ण मध्य एशिया मुसलिम देश हैं। बृटेन के पूर्वीय साम्राज्य के व्यापारिक और सैनिक मार्ग भूमध्य सागर हिन्द महासागर और अरब सागर के केन्द्र बिंदुओं पर स्थित मुसलिम देश हैं, और इन्हीं मुसलिम देशों के प्रांगण में साम्राज्य के इस अनिवार्य मार्ग के द्वार जिब्राल्टर और स्वेज खुलते और बन्द होते हैं। पश्चिम के मुसलिम देश उस मार्ग पर स्थित हैं, जिनसे होकर योरप की दूसरी शक्तियों-जर्मन तथा रूस द्वारा बृटेन के पूर्वीय साम्राज्य हिंदुस्तान पर आक्रमण होने का सर्वदा खतरा उपस्थित रहता है। मिश्र, टर्की, अरब, ईराक, ईरान, अफगानिस्तान आदि मुसलिम देशों की भौगोलिक स्थिति उनके दुर्भाग्य का कारण बन गयी। हिंदुस्तानी साम्राज्य बृटेन की पूर्वीय नीति का केन्द्र बिन्दु और धुरी है। मध्य-एशिया के मुसलिम देश जो एक समय अपनी शक्ति और सभ्यता का शानी नहीं रखते थे, विस्तृत मुसलिम साम्राज्य जो लगभग आधे योरप पर शासन करता था, और जो योरप तथा एशिया के मध्य सदियों तक सभ्यता, संस्कृति, शिक्षा और जीवन शैली का महत्व पूर्ण स्थान बना था, इस धुरी की रक्षा, तथा दृढ़ता की अनिवार्य आवश्य-कता के सम्मुख धीरे-धीरे मस्तक झुकाने के लिये विवश होते

गये। जो एक समय संसार को संदेश देने का दावा करते थे, वे आज विवशता और उसके परिणामों के शिकार बने हैं, और उनका केवल अपराध एक यही है कि वे बृटेन के हिन्दुस्तानी साम्राज्य के मार्ग में स्थित हैं। हिंदुस्तान की परतंत्रता का भयंकर अभिशाप मुस्लिम देशों को भुगतना पड़ रहा है, और इस अभिशाप की ज्वाला में उनकी उच्चता, विशालता, और उनका व्यक्तित्व जलकर खाक हो रहा है।

बृटेन के हिंदुस्तानी साम्राज्य पर सब से प्रथम उस समय खतरा उपस्थित हुआ, जब सन् १७९८ ई० में नैपोलियन मिश्र में पहुँचा, और मिश्र का उपयोग कर वह हिन्दुस्तान पर आक्रमण करने का मार्ग प्रशस्त और निश्चित कर लेना चाहता था। मार्ग में पड़ते हुये मिश्र का महत्व नैपोलियन समझता था। स्वेज नहर पर भी अधिकार प्राप्त करने की योजना उसने तय्यार की थी। नैपोलियन अपने प्रयत्न में असफल रहा; लेकिन इस घटना ने अंग्रेजों को उनके पूर्वीय साम्राज्य की रक्षा के लिये सतर्क कर दिया, और मिश्र में किसी दूसरी योरोपीय शक्ति की प्रतिद्वन्दिता भविष्य में स्वीकार और सहन न करने और मिश्र को भी जिब्राल्टर और माल्टा की भाँति हिंदुस्तान के मार्ग पर एक तीसरा दृढ़ आधार बनाने का इंगलैंड ने निश्चय कर लिया। इसके बाद इंगलैंड की १९ वीं शताब्दी की यह नीति अपने उद्देश्य से विचलित नहीं हुई। फ्रान्सीसी सेना को हरा देने के बाद बृटिश सेना मिश्र में टिक गयी, और यद्यपि उसने लगातार घोषणा की, कि वह मिश्र के बादशाह की रक्षा करने के

लिये केवल कुछ दिनों तक अस्थायी रूप से वहाँ टिकी रहेगी: किन्तु वास्तव में वह अपने स्थायी स्थिति को अस्थायी रूपमें परिवर्तित करने के लिये प्रयत्नशील थी। किन्तु बृटिश सेना के मिश्र में आ जाने से मुसलमान इस भावना से क्षुब्ध हो उठे कि काफिर क्रिस्तान मिश्र को आधार बना कर इसलाम के तीन पाक नगरों-मक्का, मदीना और जेरूसलम पर अपना अधिकार स्थापित करेंगे। इसलिये उन्होंने एक बार अपनी पूरी शक्ति का प्रयोग कर सन १८०७ ई० में बृटिश सेना को निकाल बाहर किया। मुहम्मद अली, मिश्र के एक कुशल सेनापति और संगठनकर्त्ता के अतिरिक्त प्रगति शील और सुधारक व्यक्ति थे। वर्तमान मिश्र के निर्माण का श्रेय उन्हें प्राप्त है। उन्होंने सुदान को जीता था। सुधार की भावना और एक उज्ज्वल भविष्य की आकांक्षा से उत्प्रेरित हो निर्बल तुर्की साम्राज्य के पुनर्निमाण, मिश्र में खिलाफत की स्थापना और पश्चिमी एशिया में एक शक्ति सम्पन्न साम्राज्य कायम करने की कल्पना उन्होंने की थी, किन्तु प्रगतिशील और शक्ति सम्पन्न राज्य में पश्चिमी एशिया का परिवर्तित किया जाना इंगलैंड को खतरनाक प्रतीत हुआ। जब कभी भी पूर्व के देशों ने अपने तरीके से अपना निर्माण करने और जीवन को उन्नति तथा विकास के मार्ग पर ले चलने तथा पश्चिम की शक्तियों से रक्षा करने का प्रयत्न करना आरम्भ किया है, तो योरोपीय शक्तियाँ, विशेष रूप से इंगलैंड शांति और रक्षा के नाम पर बीच में कूद पड़ी हैं। तुर्की ने मुहम्मद अली का स्वागत इस्लाम का सबल रक्षक के रूप में किया किन्तु इंगलैंड ने

मुहम्मद अली को उनकी योजना स्थगित करने पर विवश कर दिया, और उस परिस्थिति को उत्पन्न किया, जिसमें सीरिया के लिये मुहम्मद अली और तुर्की में युद्ध छिड़ गया, और अन्त में इंगलैंड के हस्तक्षेप के कारण मुहम्मद अली को अपनी भविष्य की कल्पना को त्याग कर मिश्र की पहले की अवस्था से संतुष्ट रहने के लिये विवश होना पड़ा।

वृटेन के प्रधान मन्त्री डिसरैली के समय में इंगलैंड ने स्वेज नहर को मिश्र से खरीद लिया। इसको डिसरैली के साम्राज्य-वादी नीति का अत्यन्त महत्वपूर्ण कार्य कहा जाता है, जिसके द्वारा स्वेज नहर पर वृटेन का अक्षुण्ण अधिकार स्थापित हो गया। इसने मिश्र की वृटिश अधीनता भी निश्चय कर दी। मिश्र ने इंगलैंड के कुछ कर्ज़े अपने ऊपर कर लिये, और इससे इंगलैंड को मिश्र की आर्थिक अवस्था की जाँच करने का बहाना और अवसर मिला, और इसके लिये इगलैंड ने एक के पश्चात् दूसरा कई कमीशन नियुक्त किया। प्रत्येक कमीशन ऐसी परिस्थिति का निर्माण करता गया, जिसमें मिश्र अधिक से अधिक योरोपीय शक्तियों पर आश्रित होता जाय। मिश्र का आर्थिक परावलम्बन उसकी राजनीति परतंत्रता का कारण हो गया; किन्तु जैसा कि स्वाभाविक था, इस परिस्थिति ने राष्ट्रीय जागृति का जन्म दिया। उस युग के दो व्यक्ति अरबी पाशा और जमालउद्दीन अफगानी ने मिश्र को नवजीवन प्रदान करने में जो योग दिया, वह इतिहास में प्रसिद्ध रहेगा। जमालुद्दीन कुरानशरीफ और इस्लाम के प्रकांड पण्डित थे। उन्होंने विस्तृत

भ्रमण भी किया था। अपने पांडित्य के द्वारा उन्होंने यह सिद्ध किया कि इस्लाम रूढ़िवादी व्यवस्था नहीं है, बल्कि उसमें प्रत्येक युग की मागों और आध्यात्मिक आवश्यकताओं को पूरा करने की क्षमता है। उन्होंने अपनी ओजस्विता, अपना अदम्य साहस, और अपनी व्यापकता के कारण समस्त मिश्र के जीवन में अपनी भावनायें, स्वतंत्रता की अपनी जलन और पूर्व पर योरोपीय आक्रमण का भय उत्पन्न कर दिया। जमालुद्दीन ने निरंकुश शासन की निन्दा की और प्रचार किया कि इस्लाम केवल उस जनतंत्र शासन समर्थन करता है, जो समस्त जनता की वास्तविक इच्छा पर अवलंबित हो। किंतु अंग्रेज सतर्क थे और १८७९ ई० में जब मिश्र पर उनका आर्थिक आधिपत्य भली भाँति दृढ़ हो गया तो वे मिश्र के सुल्तान को जमालुद्दीन जैसे विद्रोही को देश से निकाल देने के लिये विवश किये। सन् १८८२ में मिश्र ने अपने आन्तरिक शासन में सुधार करने का प्रयत्न आरम्भ किया, और अपने देश का बजट स्वयं तय्यार करने का अधिकार प्राप्त करना चाहा, तो योरोपीय शक्तियों ने मिश्र को जबरदस्त धमकी दी। यद्यपि मिश्र केवल आधे बजट पर ही अपना अधिकार चाहता था; किन्तु बृटिश सेना सिकन्द-रिया में पहुँच गयी; और सुधार को स्थगित कर देने पर विवश किया। मिश्र के एक दूसरे नेता अरबी पाशा यद्यपि इस्लाम के प्रबल समर्थक थे, किन्तु अंग्रेजों ने तुर्की के सुल्तान और मिश्र के सुल्तान को इस बात के लिये विवश किया कि वे अरबी पाशा को खिलाफत का विद्रोही घोषित कर दें। ऐसा ही

हुआ और परिणाम स्वरूप अरबी पाशा देश से बाहर निकाल दिये गये। यह मिश्र की राष्ट्रीय जाग्रति का समय था, और यद्यपि देश में पूर्ण शांति और सुव्यवस्था थी, और एक अत्यन्त नरम सुधार योजना को कार्यान्वित कर मिश्र अधिक संगठित जीवन निर्माण करने का प्रयत्न कर रहा था; किंतु अंग्रेजी रिपोर्टें अशांति और अव्यवस्था की रोमांचकारी घटनाओं से भरी प्रकाशित हुईं, और इस प्रकार मिश्र पर पूर्ण सैनिक अधिकार कायम करने का वहाना वनाया गया। इस राष्ट्रीय उत्थान के दमन के तुरन्त पश्चात् इंगलैंड ने लार्ड डफरिन को मिश्र की व्यवस्था ठीक करने के लिये भेजा। परिणाम स्वरूप जो व्यवस्था मिश्र में स्थापित हुई, उसके अनुसार इंगलैंड मिश्र का पूर्ण प्रभु हो गया। लार्ड ग्रैनविल ने सन् १८८४ ई० में अपने वक्तव्य में इस व्यवस्था का ठीक रूप उपस्थित किया है :—

"मिश्र के मन्त्रियों और प्रान्तीय गवर्नरों को यह स्पष्ट हो जाना चाहिये कि जो उत्तरदायित्व इस समय इंगलैंड के ऊपर है, वह सम्राट की सरकार को यह आग्रह करने के लिये विवश कर रहा है कि मिश्र को वही नीति स्वीकार करनी पड़ेगी, जिसे इंगलैंड निश्चित करता है, और यह आवश्यक होगा कि जो मन्त्री और प्रान्तीय गवर्नर उसे नहीं मानेंगे वे पदच्युत कर दिये जायँगे।"

सूडान को मिश्र ने इंगलैंड के संकेत और आदेश पर छोड़ दिया था; किन्तु सन् १८९६ ई० में इंगलैंड फिर सूडान को मिश्र के धन जन से जीतने के लिये प्रयत्न शील हुआ। मिश्र को

केवल सूडान जीतने का खर्च ही नहीं वरदाश्त करना पड़ा, वल्कि उसके वाद सूडान के शासन का भार भी प्रतिवर्ष उसे ही सहना पड़ा। सूडान के युद्ध और उसके परिणाम का कुल घाटा मिश्र की किस्मत में रहा और उसका कुल लाभ वृटेन को प्राप्त हुआ। उस समय के मिश्र के एक प्रगतिशील नेता मुस्तफा कमाल ने इस प्रकार सूडान जीतने का विरोध किया। मुस्तफा कमाल ने मिश्र को वरावर यह चेतावनी दी थी कि इंगलैंड मिश्र को आधार वना कर हेजाज और सीरिया के पवित्र स्थानों पर अधिकार प्राप्त करने का प्रयत्न करेगा। देश के उत्थान के लिये उन्होंने शिक्षा के प्रसार पर जोर दिया, और सन् १९०५ ई० में इसके लिये एक विश्वविद्यालय कायम करने की योजना तय्यार की; किन्तु अंग्रेजों के विरोध के कारण यह योजना भी कार्यान्वित न हो सकी। मिश्र के राष्ट्रीय आन्दोलन ने मज़हव के प्रति यद्यपि उदासीनता दिखलाई थी, किन्तु योरोपीय शक्तियों का विरोध करने के लिये इस्लाम और पान इस्लाम का पूर्ण उपयोग किया था। सन् १९०६ ई० में प्रिन्स आफ वेल्स क्षुब्ध मिश्र देश को शांत करने के उद्देश्य से वहाँ गये तो मिश्र निवासियों ने उनके सम्मुख एक आवेदन पत्र पेश कर उसमें इंगलैंड द्वारा किये गये वादों की चर्चा की और उन वादों को वरावर तोड़ते रहने के लिये इंगलैंड की शिकायत की। सन् १९११ ई० में लार्ड किचनर इंगलैंड के प्रतिनिधि होकर मिश्र में गये। राष्ट्रीय आन्दोलन के दमन में उन्होंने अभूत पूर्व सफलता प्राप्त थी। इस समय तक मिश्र की गरीवी अशिक्षा और नैतिक पतन अपनी

पराकाष्ठा पर पहुँच चुके थे। मिश्र में राष्ट्रीय प्रगति और मुक्ति के मार्ग में निरन्तर आन्तरिक द्वेष, कलह और नेताओं में पारस्परिक विद्रोह तथा ईर्ष्या अभिशाप बनकर उपस्थित थे। इस परिस्थिति का इंगलैंड ने भरपूर लाभ उठाया। कुछ नेताओं को घूस द्वारा और दूसरों को पद और सम्मान का लालच दिखाकर फोड़ने में इंगलैंड सर्वदा सफल होता रहा।

किन्तु गत महायुद्ध (१९१४-१८) के अवसर पर राष्ट्रीय आन्दोलन और जन आवेश वृटिश शासन के लिये खतरनाक हो उठा परिणाम स्वरूप युद्ध छिड़ने के बाद लेजिस्लेटिव असेम्बली स्थगित कर दी गयी, सभा और जुलूस गैर कानूनी करार दे दिये गये। देश भर में मार्शल ला घोषित कर दिया गया, और मिश्र पर इंगलैंड का पूर्ण अधिकार घोषित कर दिया गया। मिश्र को पूर्णतया वश में करने के लिये तथा किसी भी प्रकार के आन्दोलन की सम्भावना का अन्त कर देने के लिये वृटेन ने एक बड़ी सी सेना विशेष रूप से हिन्दुस्तानी सेना मिश्र में भेज दी। बल पूर्वक युद्ध ऋण और चन्दे परिस्थितियों का बिना ख्याल किये वसूल किये गये। दमन और क्रूरता ने मिश्र के सभी वर्गों में एकता का सूत्र स्थापित कर दिया, किन्तु इंगलैंड इससे विचलित नहीं हुआ। युद्ध समाप्त होने के केवल कुछ पूर्व मिश्र में शासन सुधार की योजना पर विचार करने के लिये इंगलैंड ने एक कमीशन नियुक्त किया, लेकिन जैसा कि निश्चित था इस कमीशन की सिफारिशें मिश्र की आकांक्षाओं के एक दम प्रतिकूल प्रकाशित हुईं। उसी समय इंगलैंड ने युद्धोद्देश्य

की घोषणा करते हुये कहा था कि प्रत्येक देश को आत्म निर्णय का अधिकार प्राप्त करना युद्ध का उद्देश्य था और मैसोपोटामिया और सीरिया में जनता की इच्छा के अनुकूल राष्ट्रीय सरकार कायम करने की घोषणा की। लेकिन मिश्र को इस उद्देश्य के लाभ से वंचित रखना सम्भव समझा गया। जगलाल पाशा जो इस समय मिश्र की आकांक्षाओं का प्रतिनिधित्व करते थे, बृटेन से निराश होकर सन् १९१९ ई० में आन्दोलन की एक योजना उपस्थित किये, और बृटिश अधिकार को मानने से अस्वीकार कर दिया, किन्तु बृटिश हाई कमिश्नर ने जगलाल पाशा को अब और आगे न बढ़ने के लिये सचेत करते हुये धमकी दी, और बृटिश पत्रों ने जगलाल पाशा को एक गैर जिम्मेदार व्यक्ति घोषित किया, और यह प्रकट किया की जगलाल पाशा अपने मन का नेता बना था, जनता उसके साथ नहीं थी, यद्यपि जगलाल बृटिश विरोध के अतिरिक्त भी अनेक वार अत्यधिक बहुमत से प्रतिनिधि निर्वाचित हो चुके थे। किन्तु सन् १९२९ ई० में स्थिति की भयंकरता ने इंगलैंड को मिलनर की अध्यक्षता में एक कमीशन नियुक्त करने के लिये विवश किया। कमीशन को यह आदेश मिला कि वह मिश्र के आन्दोलनों के कारण का जाँच कर विदेशी (बृटिश) स्वार्थों की रक्षा का प्रबन्ध करते हुये बृटिश अधिकार के अन्तर्गत शासन सुधार के सम्बन्ध में रिपोर्ट प्रकाशित करे। स्वार्थ की पराकाष्टा का इससे बढ़कर दूसरा उदाहरण मिलना कठिन है। कमीशन में एक भी मिश्र निवासी सम्मिलित नहीं किया गया। मिश्र में

कर्मीशन का प्रचण्ड विरोध हुआ। इस समय बालफोर ने मिश्र की साधारण सभा में घोषणा की कि "मिश्र में वृटेन का प्रभुत्व है, वृटेन के प्रभुत्व की रक्षा निश्चय की जायगी और साम्राज्य की सरकार के इस मुख्य सिद्धांत के सम्बन्ध में मिश्र के भीतर या बाहर किसी व्यक्ति को भ्रम नहीं होना चाहिये।"*

जगलाल पाशा ने इंगलैंड के साथ समझौते का अनवरत प्रयत्न किया। उन्होंने मिश्र की पूर्ण स्वतंत्रता, मार्शल ला और पत्रों के ऊपर लगे प्रतिबन्धों का अन्त तथा इंगलैंड द्वारा नामज़द प्रतिनिधियों को मिश्र के नाम पर इंगलैंड न भेजकर, मिश्र की जनता द्वारा चुने हुये प्रतिनिधियों के साथ सन्धि करने और विधान सम्बन्धी निर्णय करने का प्रस्ताव किया। किन्तु अँग्रेज अपना अधिकार कम करने के स्थान पर उसे और अधिक दृढ़ करने का अवसर ढूँढ़ रहे थे। चर्चिल की उत्प्रेरणा से लायड जार्ज और कर्ज़न ने भीषण साम्राज्यवादी नीति का अनुसरण करना आरम्भ किया। परिणाम स्वरूप मिश्र में राष्ट्रीय आन्दोलन ने उग्र रूप धारण कर लिया। इस परिस्थति ने इंगलैंड को सन् १९२२ ई० में मिश्र की स्वतंत्रता घोषित करने के लिये बाध्य किया, लेकिन यह केवल कागजी घोषणा थी, सभी मुख्य अधिकार इंगलैण्ड के हाथ में सुरक्षित रखे गये और अँग्रेजी सेना मिश्र में अधिकार बनाये रखने के लिये रखी गई। बृटिश नीति ने इस समय फिर मिश्र के विभिन्न वर्गों में मतभेद उत्पन्न करने में सफलता प्राप्त की। धनी वर्ग के लोग तथा देश द्रोही पदलोलुप

* हिस्ट्री आफ नेशनलिजम इनदी ईष्ट में उद्धृत।

व्यक्ति बृटिश सरकार के साथ मिलकर राष्ट्रीय प्रगति के प्रवल शत्रु वन गये। मिश्र में बृटिश कमांडर सर ली० ओ० एफ० स्टाक की हत्या हो गई। सन् १९२४ में इस हत्या को आधार वनाकर बृटिश सरकार ने मिश्र को अल्टिमेटम भेजकर उसके जो कुछ भी शेष अधिकार थे, उन्हें छीन लेने और वहाँ पर बृटेन का अनियंत्रित और पूर्ण प्रभुत्व स्थापित करने का तकाजा किया। मिश्र के प्रधान मन्त्री जगलाल पाशा ने इस अल्टिमेटम का विरोध किया, किन्तु बृटिश सेना की शक्ति के सम्मुख उन्हें झुकना पड़ा और विवश होकर पद त्याग करना पड़ा। इंगलैण्ड ने अपने स्वार्थ के अनुकूल व्यक्ति जिवारपाशा को प्रधान मन्त्री के पद पर आसीन किया और उस समय तक निर्वाचन को स्थगित रखा जव तक निर्वाचन नियम में इस ढङ्ग का परिवर्तन नहीं हो गया जिससे राष्ट्रीय व्यक्ति न चुने जा सकें। अँग्रेज सर्वदा राष्ट्रीय व्यक्तियों को दूर रखकर प्रतिक्रियावादी और बृटिश स्वार्थ के समर्थक पद-लोलुप व्यक्तियों को उत्तरदायित्व के पद पर वैठाकर अपना मतलव पूरा करते हैं। वर्तमान युद्ध के पूर्व मिश्र के प्रधानमन्त्री नहासपाशा एक प्रमुख राष्ट्रीय नेता थे और मिश्र की राष्ट्रीय संस्था 'वापिन्डस्ट दल' का प्रतिनिधित्व करते थे। उन्होंने देश की स्वतंत्रता के लिये प्रयत्न किया और प्रधान मन्त्रित्व काल में अपने उद्देश्य को अधिक-से-अधिक अग्रसर करने के उद्देश्य से देश को संगठित करना आरम्भ किया। 'वापिन्डिस्ट दल' के प्रतिनिधि हिन्दुस्तान की राष्ट्रीय कांग्रेस के अधिवेशनों में सम्मिलित होने लगे और इस प्रकार के सम्पर्कों द्वारा एक विशाल और दृढ़

साम्राज्य विरोधी मोरचे की परिस्थिति उत्पन्न करने लगे। नहासपाशा के प्रयत्न स्वरूप सम्पूर्ण मध्य एशिया के एक ऐसे सूत्र में बँधने के लक्षण दीख पड़ने लगे जो साम्राज्य के लिये आगे चलकर खतरनाक होते। किन्तु मानवता के उच्च आदर्शों के ओत-प्रोत नहासपाशा को बृटिश इच्छा के सम्मुख नतमस्तक हो प्रधान मन्त्रित्व से पदत्याग करना पड़ा। उनके स्थान पर मेहर पाशा प्रधान मन्त्री बनाये गये जिन्होंने पद ग्रहण करते ही पूर्ण शक्ति से बृटेन का साथ देने की घोषणा के साथ बृटिश स्वार्थ का पूर्ण प्रभुत्व स्वीकार किया।

तुर्की का इतिहास भी विचारणीय है। यूरोपीय शक्तियों ने तुर्की साम्राज्य को 'यूरोप का मरीज' काम देकर उसके भिन्न-भिन्न करने की अनेक चेष्टायें की। गत यूरोपीय युद्ध (१९१४-१९१८) के अवसर पर बालकन के वे देश जो तुर्की के आधीन थे, अपनी स्वतंत्रता के लिये प्रयत्नशील हुये। इसे अत्यन्त उपयुक्त अवसर समझ कर यूरोप के इस 'मरीज़' की हत्या कर सर्वदा के लिये अपने पूर्वीय साम्राज्य की स्थिति दृढ़ और निश्चित करने के विचार से इंगलैंड बालकन देशों की सहायता के लिये दौड़ पड़ा। इस समय बृटिश-मन्त्रिमंडल में विन्सटन चर्चिल, लार्ड बर्केनहेड और लायड जार्ज बृटेन की उस पूर्वीय नीति के उत्तरदायी व्यक्ति थे, जो भूमध्य-सागर के एक किनारे मिश्र और दूसरे किनारे कुस्तुन्तुनिया से अरब और फारस को पार करता हुआ हिन्दुस्तान तक फैले हुये मध्य-पूर्वीय साम्राज्य की स्थापना करना चाहते थे। चर्चिल की इस

नीति का घातक प्रभाव मध्य एशिया के देशों की स्वतंत्रता पर पड़ा। पश्चिमीय एशिया में बृटेन के दो प्रतिद्वन्द्वी रूस और जर्मनी थे। लगभग एक सदी से मध्य एशिया और हिन्दुस्तान के मार्ग पर अधिकार प्राप्त करने के लिये बृटिश साम्राज्य रूस से संघर्ष कर रहा था। उसी प्रकार गतयुद्ध (१९१४-१९१८) के पूर्व के वर्षों में जर्मनी बगदाद रेलमार्ग के लिये हिन्दुस्तान के लिये और फारस तथा मेसोपोटैमिया के महत्वपूर्ण तैलकूपों के लिये खतरा उपस्थित कर रहा था। युद्ध के परिणाम स्वरूप सन् १९१८ ई० में ऐसा प्रतीत हुआ कि बृटेन के ये दोनों प्रतिद्वन्द्वी सर्वदा के लिये समाप्त हो गये। गत युद्ध की सफलता से लाभ उठाकर बृटेन ने मध्य और पश्चिमीय एशिया के भूखण्ड को अपने अधिकार में कर अपने पूर्वीय साम्राज्य हिन्दुस्तान को समाजवादी रूस के खतरे से सुरक्षित करने की योजना तैयार की और साथ ही उस सामाजिक क्रांति को जो यूरोप और एशिया दोनों की प्राचीन साम्राज्यवादी व्यवस्था को निर्मूल की धमकी दे रही थी सफलतापूर्वक व्यर्थ बना देने के लिये मध्य और पश्चिमीय एशिया को साम्राज्य के अन्तर्गत सम्मिलित करने का प्रयत्न किया। जैसे पूर्वीय यूरोप में समाजवादी रूसी खतरे से योरोपीय सभ्यता की रक्षा के लिये सीमापर के राज्यों का निर्माण कर एक दीवाल सी खड़ी करने का प्रयत्न किया गया, उसी प्रकार मध्यएशिया को बृटिश अधिकार में कर हिंदुस्तानी साम्राज्य की रक्षा का प्रबन्ध करना अनिवार्य समझा गया। केवल इन्हीं कारणों से बृटेन ने तुर्की के विरुद्ध बालकन प्रदेशों की सहायता करना आरम्भ किया।

कमालपाशा ने तुर्की की आकाँक्षाओं का नेतृत्व अपने हाथ में लिया, सन् १९२० ई० में बृटिश सेना ने कुस्तुन्तुनिया पर अधिकार कर लिया। अँग्रेजों ने प्रमुख तुर्कीराजनीतिज्ञों और पत्रकारों को कैद कर माल्टा टापू भेज दिया। इसके साथ ही फूट उत्पन्न करने की संसार प्रसिद्ध बृटिश नीति का भी प्रयोग आरंभ हो गया। तुर्की के सुल्तान को यह कहकर कि कमालपाशा इत्यादि सुल्तान को पदच्युत करने का षड्यन्त्र कर रहे हैं, देश के नेताओं पर दमन करने के लिये उनको राजी करने में अँग्रेजों को कोई दिक्कत नहीं हुई। मुस्तफा कमालपाशा तथा दूसरे देश भक्तों को अँग्रेजी अखबारों ने डाकू और विद्रोही घोषित किया। अप्रैल सन् १९२० ई० में इंगलैण्ड और इंगलैण्ड के साथियों ने सानरेमों के सम्मेलन में एक सन्धि का प्रस्ताव निश्चित कर तुर्की के सामने पेश किया और तुर्की के सुल्तान से उसे स्वीकार करने का तकाजा किया। यह 'सेवर्स' सन्धि के नाम से प्रसिद्ध है। इसे सन्धि कहना दुःसाहस पूर्ण होगा; यह तुर्की के विनाश की एक विशद योजना थी। योरोपीय तुर्की का वह अंश राजधानी (कुस्तुन्तुनिया) जो राजधानी था, छोड़ दिया गया और शेष सब कुछ तुर्की से इस सन्धि के द्वारा छीन लिया गया। एशियाई तुर्की में से आर्मिनियन और कुर्दिश अलग कर दो नये राज्य स्थापित किये गये। शेष का कुछ यूनान को दे दिया गया और जो बच रहा वह साथियों में बृटिश, फ्रेंच और इटालियन प्रभाव क्षेत्रों में बाँट दिया गया। तुर्की को निरस्त्र कर दिया गया और उसकी आन्तरिक स्वतन्त्रता योरोपीय शक्तियों के अधिकार में

लाकर लूँजी और लँगड़ी बना दी गई। उसके घरेलू प्रबन्ध, न्याय व्यवस्था और आर्थिक जीवन पर योरोपीय शक्तियों का अधिकार नियुक्त किया गया। पहले सुल्तान इस सन्धि पर हस्ताक्षर करने के लिये तैयार नहीं हुये किन्तु जब सन्धि प्रस्ताव के निर्माण-कर्त्ताओं की सैनिक शक्ति ने सुल्तान को विवश कर दिया तो १० अगस्त सन् १९२० ई० को उन्होंने चुप-चाप सन्धि पर अपनी दस्तखत कर दी। किन्तु कमालपाशा के ओजस्वी नेतृत्व ने तुर्की में विद्रोह की आग भड़का दी और अभूतपूर्व शक्ति उत्पन्न कर दी। सम्पूर्ण एशिया बृटिश नीति और खड़यन्त्रों से क्षुब्ध था। सन् १९२१ ई० का वर्ष एशिया इतिहास में जागृति के लिये स्मरणीय रहेगा। हिन्दुस्तान ने तुर्की की सहानुभूति में 'खिलाफत' का भीषण आन्दोलन किया। घटनाओं ने फ्रान्स और अमेरिका को तुर्की के प्रति सहानुभूति रखने के लिये विवश किया। फ्रांस ने सुल्तान की तुर्की नहीं बल्कि विद्रोही कमालपाशा की तुर्की के साथ सन् १९२१ ई० में सन्धि कर ली। रूस ने भी कमालपाशा की तुर्की से सन्धि कर ली, किन्तु बृटेन के ही बल पर यूनान कमालपाशा के विरुद्ध लड़ाई करता रहा। फरवरी सन् १९२२ ई० में यूसुफ कमालपाशा सन्धि का प्रस्ताव लेकर लंडन गये, किंतु वे अपने उद्देश्य में असफल रहे और वहाँ पर बृटिश प्रधानमन्त्री ने तुर्की के पराजय और अपनी निश्चित विजय की आशा प्रकट की। बृटेन के ऐसे रुख के अतिरिक्त भी तुर्की ने फेदीवे को लंडन भेजकर एक बार फिर सन्धि का प्रयत्न किया और इस बार तुर्की अत्यधिक झुककर अपने अनेक अधिकारों को त्याग देने की

तत्परता प्रकट की किंतु किसी बृटिश मन्त्री ने फेदीवे से बात तक नहीं की। उनके सन्धि के प्रस्ताव बृटिश जनता को बतलाये तक नहीं गये बल्कि इसके विपरीत अखबारों ने झूठे प्रचार का युद्ध अवश्य छेड़ दिया। किंतु यहाँ ही से परिस्थिति बदलनी शुरू हुई। निराश तुर्की ने अभूतपूर्व साहस से युद्ध करना आरम्भ किया और शीघ्र ही सफलता भी प्राप्त की। लायडजार्ज और चर्चिल ने परेशान होकर और घबड़ाकर पूर्ण सैनिक शक्ति से आक्रमण करने का प्रयत्न किया, किन्तु बृटिश कमाण्डर और बृटिश जनता के प्रतिरोध के कारण वे सफल न हो सके। उनकी नीति असफल रही और लायडजार्ज-चर्चिल-सरकार को विवश होकर पद त्याग करना पड़ा। 'सेवर्ससन्धि' सर्वदा के लिये दफना दी गई। ११ अक्टूबर सन् १९२२ ई० को दूसरी सन्धि हुई जिससे युद्ध समाप्त हुआ और फिर २४ जुलाई १९२४ ई० को तुर्की के साथ एक ऐसी सन्धि करनी पड़ी जो उसके अनुकूल थी।

इस समय से तुर्की में एक नये जीवन की सृष्टि हुई; तुर्की पहले से भी अधिक शक्ति शाली राष्ट्र के रूप में प्रकट हुआ। सुल्तान मुहम्मद को जो अंग्रेजों के हाथ के खिलौने बने थे और उनके साथ मिल कर देश-द्रोही का काम कर रहे थे. देश छोड़ कर भागना पड़ा। तुर्की की वर्तमान महानता का सम्पूर्ण श्रेय कमाल पाशा को प्राप्त है। कमाल ने तुर्कों का जनतंत्र घोषित किया। शिक्षा की पद्धति में अमूल परिवर्तन किया गया। अरबी के स्थान पर तुर्की भाषा का व्यवहार हुआ और लिपि भी बदल दी गई। स्त्रियों को पूर्ण स्वतंत्रता दी गई। और नारी

जाग्रति आन्दोलन को अधिक से अधिक प्रोत्साहन दिया गया। मजहब की प्रधानता निर्मूल कर दी गई। और वे सरकारी पद जो मजहब के लिये थे, तोड़ दिये गये। खिलाफत उठा दी गई। तुर्की में एक क्रांतिकारी राजनीतिक और सामाजिक परिवर्तन हुआ। मूल से एक दम भिन्न नये वर्तमान और प्रगति शील भविष्य का निर्माण किया गया। मध्य युग के मजहबी शासन के स्थान पर व्यक्ति स्वातन्त्र्य और विचार स्वातन्त्र्य के नये युग का निर्माण हुआ। कुरान, अरबी के स्थान पर तुर्की भाषा में लिखा और पढ़ा जाने लगा। मजहब और इस्लाम के द्योतक चिन्ह और वेश हटाकर आधुनिक रहन-सहन के ढंग अपनाये गये। दिसम्बर सन १९२३ ई० में तीन पत्र सम्पादक इसलिये कैद किये गये और उनके पत्र जब्त कर लिये गये कि उन्होंने हिन्दुस्तान के दो प्रसिद्ध मुस्लिम नेताओं का खुला पत्र प्रकाशित किया था, जिसमें इन मुसलिम धर्माचार्यों ने खिलाफत तोड़ देने के लिये तुर्की सरकार का विरोध किया था और यह दलील उपस्थित की थी कि इस कार्य का प्रभाव मुसलिम संसार पर बहुत ही अप्रिय होगा। वर्तमान और प्रगतिशील तुर्की जो अभी शीघ्र ही मध्य-युग के अन्धकार से बाहर निकला था, वास्तविकता से परिचित था। किन्तु इस समय भी तुर्की दाँतों के बीच जीभ के समान है। साम्राज्यवादी बाज की दृष्टि सर्वदा अवसर की प्रतीक्षा में लगी रहती है।

गत युद्ध के समय अरब संसार की राजनीति में महत्व का केन्द्र बन गया। भूमध्य सागर पर के देशों और हिंदुस्तान के

मध्य में व्यापारी और सैनिक दृष्टि कोण से अरब एक अनिवार्य और महत्व पूर्ण स्थान है। यूरोप और हिंदुस्तान के मध्य में यह स्थल, समुद्र और आकाश मार्ग में आवश्यक स्टेशन पड़ता है। इसी कारण से १९ वीं शताब्दी से ही वृटिश साम्राज्य अरब को अपने अधिकार क्षेत्र में लाने के लिये प्रयत्नशील था। मिश्र से अरब होते हुये फारस की खाड़ी तक वृटिश मार्ग हिंदुस्तान के साथ शीघ्र यातातात का साधन होने के अतिरिक्त मध्य एशिया के दक्षिण सीमा पर स्थित होने से जर्मन तथा रूसी आक्रमण से सुरक्षितभी है। आरम्भ में अरब में वृटिश नीति की दो शाखायें कार्य संचालन करती थीं—एक हिंदुस्तान से और दूसरी मिश्र से हिंदुस्तानी शाखा ने फारस की खाड़ी और अदन के मार्ग से अरब में प्रवेश करने की नीति का अनुसरण किया, और इस प्रकार बसरा के साथ दक्षिणी मैसोपोटामिया पर अधिकार स्थापित कर फारस की खाड़ी में अपना अनियंत्रित प्रभुत्व कायम किया, और फारस के तैल क्षेत्रों को पूर्ण रूप से सुरक्षित करने की योजना तैयार की। मिश्र की शाखा ने लाल सागर और सीरिया को वृटिश अधिकार क्षेत्र में लाकर इस्लाम के तीन पवित्र नगरों-मक्का, मदीना और जेरूसलम पर प्रभुत्व स्थापित करने का प्रयत्न किया। जब चर्चिल वृटेन के उपनिवेश मन्त्री हुये, और मध्य पूर्वीय साम्राज्य की योजना का निर्माण किया तो अरब में वृटिश नीति लंदन के औपनिवेशिक दफ़्तर के निरीक्षण में रख दी गई।

अरब तुर्की साम्राज्य के मातहत था, और वह स्वतंत्र होने

के लिये प्रयत्नशील था। ऐसे अवसर से साम्राज्य वादी बृटेन कभी चूकना नहीं चाहता है। बृटेन तुर्की सहित तुर्की के मातहत देशों पर अधिकार प्राप्त करने के लिये उतावला हो रहा था। इंगलैंड और इंगलैंड के साथियों ने अरब को आपस में बाँट लेने का एक गुप्त समझौता किया, जिसके अनुसार इंगलैंड को मिश्र से आरम्भ कर पूर्व का मार्ग मिला, और सीरिया फ्रान्स के हिस्से में पड़ा। अरब की राष्ट्रीय चेतना इससे क्षुब्ध और चिंतिक हो रही थी। किन्तु कोई चारा नहीं था। बृटेन ने मक्का के शरीफ हुसेन इब्न अली से इसी गुप्त संधि के आधार पर संधि करने का प्रस्ताव किया। सन् १९१५ ई० में बृटिश विमान चालकों ने आकाश से अरब देशों पर पर्चे बरसाये, जिसमें यह कहा गया था कि बृटिश सरकार संधि में यह शर्त स्वीकार कर लेगी कि अरब के पवित्र नगर स्वतंत्र बने रहें और उनकी एक हाथ भूमि भी बृटेन या किसी विदेशी शक्ति के हाथ में न रहे। यह संधि स्वीकार कर लेने के लिये हुसेन इब्न अली को पूरे अरब का बादशाह बनाने का लालच भी दिया गया। हुसेन इस लालच के शिकार हो गये, यद्यपि उनका स्वप्न कभी सत्य न हो सका। मार्च सन् १९१७ ई० में अंग्रेज मक्का पर अधिकार कर लिये, दिसम्बर सन् १९१७ ई० में जेरूसलम भी उनके अधिकार में आ गया। मक्का, मदीना और जेरूसलम पर अधिकार करने की बृटिश योजना पूरी हो गई। सन् १९१६ ई० में बृटिश और फ्रान्सीसियों ने एक संधि की, उसके अनुसार बसरा से बगदाद औररैफा के उत्तर मैसोपोटामियाँ तक बृटेन के

अधिकार क्षेत्र में हुआ और सीरिया तथा उसके समुद्री तट के साथ लिबनान और साइलीसिया फ्रान्स को मिला। पैलेस्टाइन को अन्तर्राष्ट्रीय अधिकार में रखा गया। परराष्ट्र मंत्री बालफोर ने नवम्बर सन् १९१७ ई० में यह घोषणा की कि पैलेस्टाइन में यहूदी लोगों का राष्ट्रीय देश निर्माण किया जायगा।

किन्तु इन बातों की प्रतिक्रिया इतनी अधिक हुई कि अरब में राष्ट्रीय लहर इतनी तीव्र हुई, और उसने अपनी आकांक्षाओं का प्रदर्शन इतनी शक्ति से किया कि अरब को शांत रखने के लिये बृटेन को शासन सुधार की अनेक योजनायें अरब के सामने उपस्थित करनी पड़ीं। किन्तु बृटिश साम्राज्य के स्वभाव के अनुकूल जो भी योजना उपस्थित होती वह बृटिश अधिकार की दृढ़ता को ध्यान में रखकर बनाई जाती। सन् १९२१ ई० में बृटेन के औपनिवेशिक मंत्री ने कैरो में एक सम्मेलन किया; किंतु इस सम्मेलन में अरब तथा मध्य पूर्व की आकांक्षाओं पर कोई ध्यान नहीं दिया गया। और चर्चिल ने अपनी मध्य-पूर्वीय-साम्राज्य नीति का अनुसरण कर अरब में फैजल को मैसोपोटामियाँ का बादशाह बनाकर भेजा। ट्रान्सजार्डन में अब्दुल्ला को भेजा। ये दोनों ही व्यक्ति बृटेन के हिमायती और उसके उम्मीदवार थे। वे सभी बातें जोश प्रभाव और अधिकार को दृढ़ की जा सकती थीं, की गईं। अरब निवासियों की एक दृढ़ अरब संघ स्थापित करने की आकांक्षा का निर्दय हनन किया गया। किंतु अरब का राष्ट्रीय आन्दोलन इन क्रियाओं के परिणाम स्वरूप तीव्रतर हो चला। सन् १९२२ ई० में एक दूसरा

संधि का प्रस्ताव वृटेन ने किया; किन्तु इससे भी अरब की आकांक्षायें पूरी न की जा सकीं, और जब आन्दोलन की उग्रता बढ़ती गयी, तो वृटेन ने कठोरता और दमन का आश्रय लिया। वे अरब के मुसलमान अफ्सर जो राष्ट्रीय विचार के थे, अपने पद से हटा दिये गये, और उनके स्थान पर अंग्रेज नियुक्त किये गये। पत्रों की स्वतंत्रता छीन ली गई, और सभा करने पर रोक लगा दिया गया। हाई कमिश्नर और अंग्रेज अफसरों ने सम्पूर्ण शासन अपने हाथ में कर लिया। अनेक संधियाँ होती रहीं, अनेक योजनायें बनती रहीं, अनेक वादे और लम्बे-लम्बे आश्वासन अरब को दिये गये, राष्ट्र संघ का पूर्ण उपयोग किया गया, लेकिन किसी के द्वारा परिस्थिति में कोई परिवर्तन नहीं हुआ। अरब का भाग्य आज भी संकट पूर्ण है। पैलेस्टाइन एक संसार प्रसिद्ध समस्या है। अरब की आकांक्षायें हिंदुस्तानी साम्राज्य की रक्षा के लिये बलिदान हो रही हैं।

हिंदुस्तान को विजय करने की नैपोलियन-योजना ने मिश्र की भाँति फारस को भी वर्तमान योरोपीय राजनीति में आकर्षण का स्थान प्रदान किया। फ्रांस का सैनिक मिशन फारस में गया और उसके तुरन्त पश्चात् और अंग्रेजी और रूसी सैनिक मिशनों ने भी उसका अनुसरण किया। मध्य एशिया की राजनीति से फ्रांस के एक दम निकल जाने के पश्चात् भी इंगलैंड और रूस के मध्य अनिवार्य स्वार्थ का कारण बना रहा, क्योंकि रूस तुर्कीस्तान और काकोशिया से होकर हिंदुस्तान पर आक्रमण करने के प्रयत्न में था। और इंगलैंड फारस तथा अफगानिस्तान

को रक्षा की दृष्टि से अपने हिंदुस्तानी साम्राज्य की सीमा पर के देश समझता था।

३१ अगस्त सन् १९०७ ई० को वृटेन और रूस की एक संधि प्रकाशित हुई, जिसका उद्देश्य इन दो देशों की एशियाई प्रतिद्वन्द्विता समाप्त करना था और कम से कम एशिया के इस भाग का शान्ति-पूर्ण विभाजन आपस में कर लेना था। फारस तीन क्षेत्रों में विभाजित कर लिया गया, उत्तरी क्षेत्र रूस के अधिकार में दिया गया, दक्षिण-पूर्वी क्षेत्र में वृटेन का प्रभुत्व स्थापित हुआ और दक्षिण-पश्चिम क्षेत्र तटस्थ बनाया गया। इस प्रकार अंग्रेजी और रूसी सेना फारस के भाग्य का निरंतर निर्णय करती रहीं। फारस में वही व्यक्ति मंत्री या अफसर हो सकता था जिसका ये दोनों शक्तियाँ समर्थन करती थीं। जब रूसी क्रांति के परिणाम स्वरूप जार के रूस और सेना का विनाश हो गया और समाजवादी रूस ने एक नयी के अन्तर्गत जीवन आरम्भ किया तो इस अवसर का लाभ उठाकर वृटेन ने सन् १९१८ ई० में उत्तरी फारस पर भी अधिकार कर लिया। फारस में भी भीषण राष्ट्रीय आन्दोलन का सूत्रपात हुआ और फारस के नेताओं ने वृटेन से अनुरोध किया कि वह अपनी सेना फारस की भूमि से हटा कर फारस को स्वतन्त्र शासन के लिये छोड़ दे। किन्तु किसी ने इस अनुरोध पर ध्यान नहीं दिया। क्रांति के पश्चात् रूस में जो समाज वादी सरकार बनी, उसने फारस की स्वतंत्रता घोषित कर दी, रूस के सभी अधिकार और स्वार्थ जो फारस में थे उसे त्याग दिया और जो

कुछ भी फारस का था, उसे फारस को लौटा दिया। फारस पर अधिकार करने के लिये उसने जार की सरकार की निन्दा की और उस अधिकार से भूत या भविष्य में प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से होने वाले लाभों का त्याग कर दिया।

शान्ति के दिनों में फारस अपना शासन कुछ अंश तक अपनी इच्छा के अनुसार करने पाता है, किन्तु विशेष समय में और प्रत्येक आवश्यक अवसर पर साम्राज्यवादी शिकारी अपना पंजा मजबूती से गड़ाता है। वर्तमान युद्ध फारस की स्वतंत्रता के लिये संकटपूर्ण काल है। उसके तैलकूप साम्राज्यवादी शक्तियों के स्वार्थ के साधन और उपकरण हैं। इसमें सबसे अधिक प्रायः कुल स्वार्थ बृटेन का है। फारस की सरकार का बनाना-बिगाड़ना बाहरी शक्तियों विशेष रूप से बृटेन की इच्छा पर निर्भर करता है।

हिन्दुस्तान पर आक्रमण करने की नैपोलियन योजना ने ही अफगानिस्तान को भी योरोपीय राजनीति में स्थान दे दिया। एशियाई रूस और हिन्दुस्तान के मध्य स्थित होने से बृटिश साम्राज्य की रक्षा के लिये अफगानिस्तान आवश्यक प्रदेश प्रतीत हुआ। इसीलिये बृटेन ने अफगानिस्तान की वैदेशिक नीति पर अधिकार प्राप्त किया। और अफगानिस्तान का सभी वैदेशिक सम्बन्ध हिन्दुस्तान के द्वारा ही होना संभव कर दिया गया। किन्तु अफगान एक स्वतंत्रता प्रिय जाति है। उसने पूर्ण स्वतंत्रता प्राप्त करने का दृढ़ संकल्प किया। पान इस्लाम आन्दोलन का अत्यधिक प्रभाव अफगानिस्तान पर पड़ा। गत युद्ध (१९१४-

१९१८) के समय अफगानिस्तान की सहानुभूति तुर्की के साथ थी। सन् १९१९ ई० के पंजाव हत्याकांड ने अफगानिस्तान को भी असहनीय रूप से क्षुब्ध कर दिया और अफगानों की वृटिश विरोधी भावना इस सीमा तक क्षुब्ध हो उठी कि उन्होंने जेहाद की घोषणा कर दी। शाह अमानुल्ला ने अप्रैल १९१९ ई० में अफगानिस्तान की पूर्ण स्वतंत्रता की घोषणा की, परिणाम स्वरूप ८ अगस्त १९१९ ई० को रावलपिंडी में एक संधि हुई जिसके अनुसार वृटिश सरकार को अफगानिस्तान की स्वतंत्रता स्वीकार की। किन्तु यह तो कागज की कार्रवाई हु। अईफगा-निस्तान के मुल्लाओं को उभाड़ कर स्वतंत्रता के पुजारी प्रगति शील शाह अमानुल्ला के विरुद्ध वे भीषण षडयंत्र रचे गये जिसकी कल्पना तक कर सकना कठिन है। इन षड़यंत्रों के परिणाम स्वरूप शाह अमानुल्ला को सर्वदा के लिये अफगा-निस्तान की बादशाहत से हाथ धोना पड़ा। उनके पश्चात् गद्दी पर जो आये वे वृटिश आज्ञा पालक थे। वास्तव में केवल ऐसे ही शासक वहां टिक सकते हैं।

१९ वीं शताब्दी के अन्तिम वर्षों में 'पान इस्लाम' आन्दोलन की लहर दीख पड़ी। 'पान इस्लाम' आन्दोलन तुर्की साम्राज्य की आवश्यकताओं, इस्लाम के पुनुरुद्धार का वहावी दृष्टिकोण और इसाई जाति के उदाहरणों से उत्पन्न हुआ। प्रत्येक दृष्टिकोण से 'पान इस्लाम' आन्दोलन का उद्देश्य और मूलतत्व योरोपीय शक्तियों द्वारा होने वाले आक्रमणों का प्रतिरोध करना और उसे पराजित करना था। १९ वीं शताब्दी के आरम्भ से ही इस्लाम

खतरे में पड़ गया था। एक एक कर एक प्रान्त के पश्चात् दूसरा प्रान्त इसके अधिकार से निकला चला जा रहा था, और ऐसा प्रतीत होने लगा कि कुछ ही दिनों में सभी मुसलिम राज्य क्रिस्तान काफिरों के अधिकार में चले जायँगे। एक अत्यन्त चिंतनीय और भयानक परिस्थिति उत्पन्न हो गयी और इसने मुसलिम देशों तथा इस्लाम को क्षुब्ध और व्यग्र कर दिया। मजहब के नाम पर युद्ध करने के युग का विकास हो रहा था। ईसाई मजहब का आश्रय पकड़ कर योरप तुर्की साम्राज्य से इसाई देशों को मुक्त करने के लिये युद्ध शील हुआ। तुर्की के विरुद्ध बालकन देशों की स्वतंत्रता की लड़ाइयाँ इसी नारे के साथ लड़ी गईं। गोरी जातियों में दूसरों पर विजय प्राप्त करने की भावना दीख पड़ी जिसके मूल में मजहब की दाद थी। योरोपीय अक्रमणों से रक्षा करने के लिये सभी मुसलमानों को एकता के सूत्र में बाँधने का विचार उपयुक्त और अनिवार्य प्रतीत हुआ। परिणाम स्वरूप मजहब के नाम में जो अनरोध किया गया उसने इसलाम को स्फूर्ति सम्पन्न करने की क्षमता प्रदर्शित की। मजहब के नाम में की गई पुकारें जीर्ण शीर्ण शरीर में उत्साह और तेजस्विता का खून प्रवाहित करने लगी और मुसलिम संसार में एक अभूत पूर्व आवेश का संचार हो गया। यद्यपि प्रत्यक्ष रूप से पान इस्लाम एक मजहबी सुधार आन्दोलन सा प्रतीत हुआ, किन्तु वास्तव में इसमें केवल स्वतंत्रता की रक्षा की उत्कृष्ट भावना थी, योरोपीय शक्तियों द्वारा इसलाम को पद दलित और कलंकित न होने देने का प्रयत्न था।

इस्लाम केवल एक मजहब नहीं, बल्कि आरम्भ से ही वह एक राजनीतिक और सामाजिक व्यवस्था है। कुरान में वह मजहबी आचरण के ही आदेश नहीं हैं, बल्कि उसमें व्यक्तिगत और सार्वजनिक नियम के सिद्धान्त हैं। व्यक्तिगत और सार्वजनिक जीवन में मजहबी संसार के सभी व्यवस्थाओं का मूल आधार बना हुआ है। एशिया की तो यह विशेषता अत्यन्त स्पष्ट है। हिन्दू समाज शास्त्रों ने इसी अर्थ में धर्म की व्यवस्था की है जो मनुष्य का मनुष्य के प्रति और मनुष्य का समाज के प्रति कर्तव्य निश्चित करता है। एशिया में धर्म केवल कुछ बाह्य आचरणों से भिन्न और परे है। वह व्यक्तिगत और सामाजिक व्यवस्था है। इस्लाम भी इसी अर्थ में जीवन की एक व्यवस्था है। इस्लाम आरंभ से ही भ्रातृ भावना और एकता का प्रखरतम सन्देश है। इस्लाम के मौलिक सिद्धान्त व्यर्थ की बनावटी बातों और रूढ़ियों से ऊपर हैं। वे विवेक और तर्क का आश्रय ग्रहण करते हैं और उन्हीं के आधार पर अपनी सत्ता बनाये रखने का दावा करते हैं। प्रत्येक वर्ण और जाति में इस्लाम पूर्ण समानता और भ्रातृभावना का समर्थन है और वह रंग, वर्ण या सम्पत्ति के अभिमान से शून्य है। इस्लाम सरल उच्च और पवित्र जीवन का प्रतिपादन करता है, नशा तथा अन्य दूषित कार्यों और व्यवहारों को त्याज्य और मुनाफाखोरी को घृणित और अपवित्र घोषित करता है। इस्लाम सूदखोरी को हराम बताता है। और मुनाफा करने के लिये व्यापारिक योजना को दूषित घोषित करता है। इस्लाम

ने पैगम्बर मोहम्मद के द्वारा अरब की निर्जीव और बिखरी जनता में वहां के निरुद्देश और अव्यवस्थित निवासियों में जीवन की स्फूर्ति उत्पन्न कर दिया, उनमें नैतिकता का संचार कर दिया और उन्हें एक व्यवस्था में संगठित कर दिया।

'पान इसलाम' जागरण और चेतना का एक आन्दोलन था। इसलाम मजहब का उपयोग राजनीतिक अस्त्र के रूप में किया गया। तुर्की साम्राज्य बढ़ती हुई आक्रमणशील योरोपीय शक्तियों के कारण खतरे की स्थिति में पहुँच गया, इसलिये इस खतरे का सामना करने के लिये मुसलिम संसार से इसलाम के नाम पर अनुरोध किया गया। तुर्की के सुलतान खलीफा की उपाधि से विभूषित थे, यहाँ इसलाम मजहब का सबसे उच्च और सम्मान का पद था। खिलाफत पर खतरे की भावना ने मुसलिम संसार को बेचैन कर दिया। सभी देशों के मुसलमान एक विशेष चेतना से प्रभावित हो उठे। योरोपीय शक्तियों ने भी पान इसलाम आन्दोलन में अपने लिये बड़ा खतरा और ललकार अनुभव किया। वृटेन के सर्वदा भक्त रहने वाले आगा खाँ ने भी सन् १९१४ ई० में लिखा था :—

"गत दो वर्षों से हिन्दुस्तानके मुसलमान दूसरे देशों के अपने सहधर्मियों के साथ अत्यंत दुःख पूर्ण परिस्थिति का अनुभव कर रहे हैं। उत्तरी अफ्रीका और बलकान का तुर्की साम्राज्य से निकल जाना, दक्षिणी अफ्रीका में हिन्दुस्तानियों के साथ दुर्व्यवहार और हिन्दुस्तान की कुछ बातों ने हिन्दुस्तानी मुसलमानों को अत्यन्त क्षुब्ध कर दिया है।"*

* History of Nationalism में उद्धृत।

सन् १९२१ ई० का हिन्दुस्तान का खिलाफत आन्दोलन मुसलिम संसार के क्षोभ का ज्वलंत प्रमाण है। अन्य देशों की इस ज्वाला की लपट उतनी ही उग्रता से फैली। योरोपीय शक्तियों के सामने केवल एक या दूसरे देश की सैनिक शक्ति को परास्त करने का प्रश्न नहीं था बल्कि एक जागृति चेतना एक भावना और इसलाम का सामना करने की समस्या थी।

पान इसलाम आन्दोलन कई प्रवृत्तियों का पोषक था। प्राचीन और नये दो युगों की सीमा पर इसका सूत्रपात हुआ। लोगों के मस्तिक पर अभी तक मज़हब का अत्यधिक प्रभाव था, बल्कि यह समय था जब मज़हब में लोगों की श्रद्धा का पुनर्विकास हो रहा था और मज़हब में आवश्यक सुधार कर उसमें पुनरुद्धार का प्रयत्न किया जा रहा था। सभी राजनीतिक क्रियायें और उनमें परिवर्तन मज़हब के नाम पर किये जाते थे। तुर्की के सुल्तान ने इसका उपयोग योरोपीय शक्तियों का विरोध करने के लिये एक राजनीतिक अस्त्र की भाँति किया और साथ ही तुर्की के सुल्तान ने इसका प्रयोग सामाजिक प्रगति को रोकने तथा अपने साम्राज्य और शासन की व्यवस्था को बिना किसी परिवर्तन म[illegible] की भाँति ज्यों की त्यों बनाये रखने के लिये भी किया। सभी प्रकार के राजनीतिक परिवर्तन, तुर्की साम्राज्य के अन्तर्गत अन्य परतंत्र देशों की स्वतंत्रता का आन्दोलन, जनतंत्र के विचारों को रोकने का प्रयत्न 'पान इसलाम' आन्दोलन द्वारा किया गया। मजहब पर अवलम्बित होने के कारण 'पानइसलाम' आन्दोलन का भाष्य करने और उसकी रूप-रेखा

निश्चित करने में मुल्लाओं महत्वपूर्ण स्थान था। इन मुल्लाओं ने भी 'पानइसलाम' आन्दोलन द्वारा सामाजिक प्रगति का प्रबल विरोध किया, नये प्रगतिशील जनतंत्र विचारों पर कुठाराघात किया और तुर्की की तात्कालिक आंतरिक व्यवस्था का समर्थन किया। किन्तु ये सभी प्रयत्न व्यर्थ सिद्ध हुये। 'पानइसलाम' आन्दोलन ने मुसलिम जनता में जागरण और चेतना उत्पन्न करने में सफलता प्राप्त की थी। इसलाम और इसलाम के पवित्र नगरों पर काफिर योरुप ने जो खतरा उपस्थित कर दिया था, उससे मुसलिम संसार में योरोपीय शक्तियों के प्रति घृणा और क्रोध उत्पन्न हो गया था। इस परिस्थिति ने मुसलिम जनता के कर्तव्य को निश्चित कर दिया था। मुसलमान जिस देश में बसते, वहां उन्होंने योरोपीय प्रभुत्व का प्रतिरोध करना आरंभ किया और उसके विरुद्ध आन्दोलन किया। विदेशी सत्ता का अन्त कर देने का उसने संकल्प कर लिया। इस संकल्प और प्रयत्न में उसने पूर्ण स्वच्छन्दता से अपने सभी देश निवासियों से सहयोग की आशा की और योरोपीय प्रभुत्व के अन्तर्गत प्रत्येक देश में जाति वर्ण या मजहब के भेद भाव को ठुकरा कर एक उद्देश्य और आकाँक्षा से साथ-साथ त्याग कष्ट सहन और बलिदान किया। हिन्दुस्तान का 'खिलाफत आन्दोलन इसका ज्वलंत उदाहरण है। चीनका इतिहासभी इसका प्रमाण है। इस प्रकार 'पान इसलाम' विशुद्ध राष्ट्रीय आन्दोलन था, वह राष्ट्रीयता का सन्देश था। वह राष्ट्रीय भावना और विचारों का जन्मदाता था। राष्ट्रीयता ही 'पान इसलाम' आन्दोलन का वास्तविक

रूप था। बाद की घटनाओं ने तो इसे अधिक स्पष्ट और विशद-कर दिया है। तुर्की ने 'खलीफा' और उस पद के देवता तुर्की के बादशाह दोनों का अन्त कर दिया और इस प्रकार 'पानइसलाम' का मूल स्रोत मजहब के नाम पर मुसलिम एकता का चिन्ह ही निर्मूल हो गया। वास्तव में आरंभिक अस्पष्ट श्रेणियों को पार कर 'पान इसलाम' आन्दोलन अपने स्पष्ट और निश्चित रूप पर पहुँच गया। तुर्की के एक नेता हमादुल्ला अंगोरा ने सन् १९२१ ई० कहा था :—

१—"पान इस्लाम अब और अधिक नहीं, एशिया का नया नारा अब राष्ट्रीयता का होगा। हमारा तुर्की का पूर्ण और अवि-भाज्य व्यक्तित्व हमारी प्रथम और सर्वोच्च आकाँक्षा है। हम लोग एक आधुनिक राष्ट्र होना चाहते हैं........। हम एशियाई (एशियाई मुसलमान)* कहला कर सब से अलग नैतिकता की रूढ़ियों में बन्द रहने के लिये उत्सुक नहीं हैं।"†

युद्ध के पश्चात तुर्की ने विशुद्ध राष्ट्रीयता का नारा उपस्थित किया है। आज अरब की समस्याओं में तुर्की की कोई दिलचस्पी नहीं है, और न मिश्र ईराक़ फारस या अफगानिस्तान के लिये वह बेचैन है। प्रत्येक मुसलिम देश की समस्या उसकी अपनी समस्या है और उसे सुलझाने का प्रयत्न केवल उसके अकेले स्वार्थ का प्रश्न है। तुर्की नेताओं ने अत्यन्त स्पष्ट शब्दों में हिंदुस्तानी समस्याओं को हिंदुस्तान की निजी दिलचस्पी का प्रश्न घोषित किया है और यही बात चीन के मुसलिम

* कोष्ट लेखक का। † हिष्ट्री आफ नेशनलिज्म में उद्धृत।

नेताओं ने भी कही है। पान इस्लाम के प्रबल अनुरोध के अतिरिक्त भी न तो आरंभ में और न आज संसार के मुसलिम देश एकता के सूत्र में आबद्ध होकर एक देश, एक राष्ट्र और एक राज्य नहीं बन सके, यद्यपि उनके लगातार सिलसिलेवार बसे होने के कारण इस मार्ग में कोई असाध्य भौगोलिक कठिनाई नहीं थी। कई दृष्टिकोण से उनकी एकता आज पहले से भी अधिक आवश्यक है किन्तु फिर भी वे एक नहीं हो सकते। तुर्की अपनी ही समस्याओं में उलझा है, उसे मिश्र की पराधीनता, अरब, ईराक़ इत्यादि मुसलिम देशों की दुर्दशा को अपनी समझने की गुञ्जायश नहीं है, यद्यपि 'पानइस्लाम' के आरंभिक नारे का यही उद्देश्य था। 'पानइस्लाम' का उद्देश्य चेतना और जागृति उत्पन्न करना था। विकास अनिवार्य गति का अनुसरण कर वह चेतना और जागरण राष्ट्रीयता के रूप में प्रकट हुआ। सन् १९२४ ई० में एक अंग्रेज अफ़सर के इस कथन का कि पैलेस्टाइन एक मुसलिम देश है और वहाँ का शासन मुसलमानों के अधिकार में होना चाहिये, उत्तर देते हुये हाजी एमिनुल हुसेनी ने कहा था :—

"हम लोगों के लिये यह मुसलिम नहीं बल्कि विशुद्ध अरब प्रश्न है। इस देश में रहते हुये आपने (अंग्रेज अफ़सर ने) यह निश्चय ही देखा है कि मुसलिम या इसाई का अरब में कोई भेद-भाव नहीं है। हम लोग इसाइयों को अल्पसंख्यक नहीं बल्कि अरबी समझते हैं।"*

---

* हिष्ट्री आफ नेशनलिज्म में उद्धृत।

'पानइस्लाम' की इस्लाम के आधार पर केवल मुसलिम संसार की एकता की भावना ने वृहत् तथा व्यापक राजनीति और राष्ट्रीयता के आधार पर एशियाई देशों की एकता के प्रयत्न और आकाँक्षा का स्थान ग्रहण कर लिया है। सन् १९२२ ई० में कैरो में 'ओरियंटल लीग' की स्थापना मिश्र के मुसलमान नेताओं ने की। इस लीग के दो मुख्य उद्देश्य निश्चित हुये, (१) सभी प्रकार के सामाजिक विकास और प्रगति के आधार पर वैज्ञानिक ज्ञान का प्रसार करना, (२) सभी पूर्वीय देशों और लोगों में विना जाति और वर्ण के भेद-भाव के भ्रातृ भावना और एकता को संगठित और दृढ़ करना। मध्य एशिया के मुसलिम देशों में मिश्र साम्राज्यवादी षड़यंत्र का सब से अधिक शिकार हो रहा है। इस षड़यंत्र से मुक्ति पाने के लिये मिश्र के राष्ट्रीय नेता नहासपाशा ने प्रयत्न करना आरंभ किया, उन्होंने प्रवल चेष्टा का परिचय दिया, किन्तु इन्हीं अपराधों के कारण उन्हें पदत्याग करने के लिये विवश होना पड़ा। मिश्र साम्राज्य से मुक्ति पाने के लिये सम्पूर्ण एशियाई देशों के सहयोग के लिये प्रयत्नशील है। यह प्रयत्न इस बात का स्पष्ट परिणाम है कि मुसलिम वृत्ति सब से पृथम होकर रहने की ओर नहीं हैं बल्कि एशिया के देशों के संघ की ओर है और जाति, मजहब और वर्ण के अन्तरों को लाँघ कर अधिक व्यापक सम्बन्ध की ओर है। उनकी अवश्यकतायें भी उन्हें उसी दिशा की ओर अग्रसर होने का संकेत करती हैं। मध्य एशिया के देशों के निवासी नम्र सहनशील, बहादुर और प्रिय लोग हैं। हिंदुस्तान

के साथ उनका सांस्कृतिक और आध्यात्मिक एकता, स्वाभाविक गुण और व्योहार बहुत कुछ समान हैं। राजनीतिक परिस्थितियाँ इस प्रकार के संघ की आवश्यकता को अत्यन्त विशदरूप में सामने प्रकट करती हैं। किन्तु साम्राज्यवादी शक्तियाँ अनवरत षड़यंत्रों से, अनेक उपायों से और सब से अधिक सैनिक बल से इस प्रयत्न को व्यर्थ और असफल करते रहने में लगी हैं।

मध्य एशिया के मुसलिम देश विवशता की पीड़ा से कराह रहे हैं। अमेरिका के प्रसिद्ध व्यक्ति स्वर्गीय श्री विंडेल विल्की ने इस युद्ध काल में मध्य एशिया का भ्रमण करते हुये मुसलिम युवकों, पत्रकारों, सैनिकों से बातें कीं; उनकी बेवशी और पीड़ा का एक विशद चित्र उन्होंने उपस्थित किया है :—

"पर्दा, बीमारियाँ, गन्दगी, शिक्षा और आधुनिक उद्योग के विकास की कमी और गवर्नमेंट की निरंकुशता, सब उनके (युवकों, पत्रकारों और सैनिकों के) मस्तिष्क में उलझ कर इस बात को प्रकट करते थे कि उनके समाज की भीतरी शक्तियों और विदेशी प्रभुत्व के स्वार्थों की गुटबन्दी ने विगत युग की व्यवस्था को उन पर बल पूर्वक लाद रखा है। मुझसे लोग बार-बार पूछते थे क्या अमेरिका का उद्देश्य उस व्यवस्था का समर्थन करना है जिसके द्वारा हमारी राजनीति पर विदेशियों का अधिकार और हमारे जीवन पर विदेशियों का प्रभुत्व है और वह इसलिये क्योंकि हम लोग संसार के सैनिक और व्यापारिक केन्द्र विन्दुओं पर स्थित है? या वे दूसरे

ढंग से इस प्रकार पूछते हैं क्यों कि हम लोग सैनिक दृष्टि कोण से महत्वपूर्ण स्थानों पर बसे हैं, इसलिये धुरी राष्ट्रों (जर्मन और इटली) या अन्य दूसरे देशों को इन पर अधिकार करने से रोकने के लिये हम पर विदेशी प्रभुत्व होना ही चाहिये ? क्यों कि हमारी नहरें, हमारे समुद्र और हमारे देश भूमध्य सागर पर अधिकार "वन वर्ल्ड" बनाये रखने के लिये आवश्यक हैं और एशिया के मार्ग में स्थित हैं, इसलिये विदेशियों के शासन में होने ही चाहिये ?"

यह स्पष्ट है कि हिंदुस्तान की गुलामी मध्यपूर्व के मुसलिम देशों की परतंत्रता के लिये उत्तरदायी है। वृटेन अपने हिंदुस्तानी साम्राज्य को सुरक्षित बनाये रखने के लिये मार्ग में स्थिति इन देशों पर अपना अधिकार बनाये रखने के लिये वाध्य है। हिंदुस्तान न केवल अपनी वर्तमान दशा के लिये दोषी है, बल्कि एशिया के एक महत्वपूर्ण भाग, स्वतंत्रता प्रिय और सुन्दर मुसलिम देशों को भी परतंत्र बनाये रखने का अपराधी है। यह परिस्थिति हिंदूस्तान, हिंदुस्तान की प्रत्येक जाति और प्रत्येक मजहब के लिये एक ललकार है, एक चुनौती है। इस देश के प्रत्येक दल, प्रत्येक सम्प्रदाय और प्रत्येक विश्वास के लोगों के सम्मुख यह चुनौती विशाल रूप से उपस्थित है, किन्तु जाति और मजहब की समानता यदि विशेष महत्व का कारण है तो हिंदुस्तान की मुसलिम जाति के लिये यह चुनौती अपना विशेष स्थान रखती है। मुसलिम लीग, जो मुसलिम आकांक्षाओं का प्रतिनिधित्व करने का दावा करती है, जो

मध्य एशिया की दशा के प्रति प्रायः सहानुभूति प्रदर्शित करती है, बृटिश साम्राज्य के साथ सन्धि और गुटबन्दी कर प्रस्ताव में वस्तुस्थिति के एक दम प्रतिकूल काम करती है, वह मध्य एशिया के मुसलिम देशों की परतंत्रता की जंजीर को और अधिक कस कर दृढ़ करती है। यदि कोई मुसलिम दल केवल मुसलिम जाति के दृष्टिकोण से राजनीति पर विचार करता है, यदि वह सब से अलग हो केवल मुसलिम संसार के लिये बेचैनी प्रकट करता है तो उस मुसलिम दल को तो यह अनिवार्य है कि वह हिंदुस्तान से विदेशी प्रभुत्व का सर्वदा के लिये अन्त करने के लिये सब से अधिक प्रयत्नशील हो और इस प्रकार मध्य एशिया के मुसलिम देशों पर विदेशी प्रभुत्व बने रहने के कारण को दूर करें। हिंदुस्तान की परतंत्रता के बन्धन को खोल कर ही मुसलिम मजहब, मुसलिम जाति और मुसलिम देशों को बन्धन मुक्त किया जा सकता है।

—:०:—

साम्प्रदायिक समस्या

दूसरा भाग

हिन्दुत्व

हिन्दू दर्शन मानवजीवन के व्यापक, ग्राह्य दृष्टिकोण और सार्वभौम व्यवस्था के साथ प्रकट हुआ था। मनुष्य का मनुष्य के प्रति और मनुष्य का समाज के प्रति कर्तव्य तथा उत्तरदायित्व की सीमा समाज शास्त्र के विवेक पूर्ण आधार पर निर्धारित थी, जो समय की गति के साथ और उसके प्रत्येक मोड़ पर परिवर्तन की अगाध क्षमता रखती थी। ऐसा प्रतीत होता है कि विश्वबन्धुत्व हिन्दुत्व का केवल आकर्षक और काल्पनिक नारा नहीं था, बल्कि उसकी सामाजिक व्यवस्था का समत्व था जो प्राणीमात्र को अपनी परिधि के अन्तर्गत खपत करने की शक्ति रखता था। प्रभुत्व और शक्ति से उत्प्रेरित हो उस सामाजिक व्यवस्था का निर्माण नहीं हुआ था, बल्कि सम्पूर्ण समाज और उसके प्रत्येक अंग का वास्तविक विकास तथा नित्य-उन्नति उसका मूल सिद्धान्त था। हिंदू दर्शन के सर्व श्रेष्ठ वर्तमान भाष्यकार श्रद्धेय डा० भगवान दास ने वर्णाश्रम व्यवस्था की विवेचना करते हुये कहा है कि स्वभावतः मानव समाज ब्राह्मण क्षत्रिय, वैष्य और श्रमिक इन चार व्यवसायिक भागों में बँट जाता है, और यह बँटवारा प्रत्येक देश तथा

प्रत्येक युग में स्वतः होता रहता है। ज्योंही एक व्यक्ति एक विशेष व्यवसाय में दीक्षित होता है और उसका अनुसरण करने लगता है, वह एक वर्ण का सदस्य हो ही जाता है। हिंदू दर्शन ने केवल इस निश्चित प्राकृतिक सत्य को स्वीकार कर एक सर्वदेशीय तथा सर्वकालीन उपयुक्त समाज-संघटन का अत्यंत वैज्ञानिक आधार निश्चित किया। इस व्यवस्था के अन्तर्गत प्रत्येक वर्ण और वर्ण के प्रत्येक व्यक्ति को पूरे समाज की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये अपने कर्तव्यों को सम्पादित करने का आदर्श था। इसीलिये प्रत्येक के कार्य तथा उसके परिणाम सम्पूर्ण समाज की सम्पत्ति होते थे। यदि ऐसा न होता तो वैश्य वर्ण ही अकेले देश की कुल सम्पत्ति का अधिकारी और स्वामी होता तथा शेष तीनों वर्ण उसके आश्रित और मुहताज होते; लेकिन वर्णाश्रम व्यवस्था में वेतनवृत्ति की कोई गुञ्जायश नहीं दीख पड़ती। यह एक सामाजिक विधान था, जिसमें व्यक्तिगत् या वर्गगत् स्वार्थ का नहीं बल्कि समाज के समान विकास और अधिकार का दृढ़ नियम न था। त्याग, तपस्या और उच्चनैतिक आचरण व्यक्तिगत आचरण के मूलसिद्धांत थे, जिसका एक मात्र उद्देश्य व्यक्तिगत् स्वार्थों के ऊपर समाज के स्वार्थों को प्राधान्य देना था। महात्मा, ऋषि, महामना इत्यादि उपाधियों प्रतिष्ठा और पद की सूचक नहीं, बल्कि त्याग, तपस्या और आचरण तथा सेवा की सूचक थीं। वर्ग संघर्ष तथा श्रेणी विभाजन और व्यक्तिगत् स्वार्थ की खींच-तान तथा छीना-झपटी का कोई स्थान उस सामाजिक

व्यवस्था में संभव नहीं हो सकता था, इसलिये ऊँच-नीच, छोटे-बड़े, स्पृश्य-अस्पृश्य की समस्या भी उस सामाजिक संगठन में अज्ञात थी। यह जीवन का एक भौतिक दृष्टिकोण था, जिसने प्राणीमात्र के सामूहिक जीवन की समान व्यवस्था की चिन्ता की थी। इस व्यवस्था में काम और कमाई दोनों का वैज्ञानिक समाजीकरण था।

किंतु सदियों से दार्शनिक आधारों पर संगठित इस समाज का विद्रूप मात्र और अत्यन्त दूषित रूप हिंदुस्तान में शेष रह गया है, जो वरदान के स्थान पर अभिशाप का भंयकर कारण हो गया है। विश्वबन्धुत्व का स्थान रोमांचकारी संकीर्णता ने ले लिया है और जो सर्वग्राह्य तथा सार्वभौम व्यवस्था होने का दावा रखती थी, उसकी युगों से छीछालेदर मची हुई है; वर्णाश्रम व्यवस्था में निहित सामाजिक उत्तरदायित्व ने सामाजिक अराजकता को स्थान दे दिया है। विज्ञान ने अन्य अन्धविश्वास का रूप धारण कर लिया और वर्ण असंख्य कृत्रिम तथा सत्वहीन जातियों में बदल गये, जिनके बनने या बने रहने का कोई वैज्ञानिक या स्वाभाविक आधार ढूँढ़ने पर भी मिलना असंभव है। जो कर्तव्य और व्यवसाय था, वह अधिकार और सम्मान का साधन बन गया। विभिन्न जातियाँ पारस्परिक स्पर्धा, ईर्ष्या, द्वेष और घृणा का अखाड़ा बन गईं, सहानुभूति और परस्पर उत्थान तथा विकास का तो कोई स्थान ही इन जातियों के अन्तर्गत नहीं रह गया। प्राचीन व्यवस्था का आश्रय लेकर अर्थका अनर्थ कर रस्म-रेवाज

रूढ़ियाँ और बिगत युगों के संस्कार वर्तमान हिंदू सम्प्रदाय के मुख्य आधार बना दिये गये हैं, जिनसे चिपके रहने के कारण उनमें एक ऐसी सड़न उत्पन्न हो गई है जो सम्पूर्ण हिन्दू जीवन को दूषित और हिंदुस्तान की सामाजिक प्रगति को पंगु बना देने के लिये उत्तरदायी हैं।

यह सहज ही दीख पड़ेगा कि वर्तमान हिन्दूसम्प्रदाय ने अस्वाभाविक श्रेणी भेद को उत्पन्न किया है, मनुष्य मनुष्य में अनन्त भेदों का पोषण इस सम्प्रदाय के द्वारा हो रहा है। हिंदू धर्म और संस्कृत के नाम भेद छूत-अछूत, ऊँच-नीच, धार्मिक-अधार्मिक अनेक ढोंग इतने हठ के साथ उपस्थित किये जाते हैं कि उनकी आलोचना-प्रत्यालोचना की भी कोई गुन्जाइश नहीं होती, आचरण की नैतिकता नहीं किन्तु कुछ अत्यन्त अर्थ हीन रश्म रिवाजों का पालन करना हिन्दू धर्म का आदर्श बना हुआ है। रामलीला का त्योहार हिन्दुस्तान भर में विशेषतया उत्तरी हिन्दुस्तान में एक धार्मिक कृत्य है। इन कृत्यों के मनाने के ढंग और जुलूस निकालने के स्थान और समय निश्चित हो गये हैं। अनेक नगरों और कस्बों में ये कृत्य मुख्य सड़कों के चौराहों पर मनाये जाते हैं और चाहे जैसी भी परिस्थिति हो ये कृत्य इन्ही निश्चित स्थानों पर मनाये जायेंगे। घंटों यातायात के मार्ग रुक जाते हैं, नागरिक जीवन अव्यवस्थित और स्थगित हो जाता है। यदि कोई व्यक्ति केवल सुविधा की दृष्टि से अधिक सुविधाजनक स्थानों, जुलूसके मार्गों और समयों में परिवर्तन की सूझ उपस्थित करने का साहस करे तो यदि वह

हिन्दू हुआ तो सम्प्रदाय के अखंण्ड क्रोध और अभिशाप की उस पर वर्षा होगी और यदि किसी अन्य सम्प्रदाय का हुआ तो सम्प्रदायिक दंगे फिर टल नहीं सकते। यों तो युगों से होने वाले ये तमाशे आज किसी के जीवन में कोई क्रियात्मक भाव और शक्ति उत्पन्न करने की क्षमता नहीं रखते, किंतु ईंट, पत्थर, लाठी और गालियों का चलना इन अवसरों के साधारण नियम बन गये हैं। साम्प्रदायिक दंगे होते-होते बचे तो साम्प्रदायिक तना-तनी और क्षोभ तो अवश्य ही होगा। पुलिस तथा सरकारी संरक्षता में इन मजहवी कृत्यों को होते हुये देख कर लज्जा से मस्तक झुक जाता है। प्रत्येक बड़े-बड़े नगरों और कस्वों में राम-लीला कमेटियाँ बनी हुई हैं, जो वहाँ के रईसों और धनिकों के संकेत और धन की आश्रित होती हैं। इन कमेटियों के द्वारा साधारण जनता के युगों के संस्कारों को उत्तेजित कर चित्र-विचित्र मजहवी कृत्य सम्पादित किये जाते हैं और इस प्रकार कुछ रईसों और धनिकों के नेतृत्व, यश और व्यापार के लिये सर्वदा अवसर उपस्थित होता रहता है। यदि इन अवसरों पर होने वाले साम्प्रदायिक दंगों का विश्लेषण किया जाय, तो उनके मूल में केवल उपरोक्त कारण की ही सत्यता प्रमाणित होगी। यह विष शहरों से देहातों में फैल रहा है, किंतु इसका उद्भव तथा प्रेरणात्मक स्थान बड़े शहर और कस्बे हैं, जहाँ मध्य वर्ग के पूँजी वादी लोग बसते हैं।

गोरक्षा के एक-दूसरे प्रश्न ने हिन्दुत्व की रक्षा करने वालों के लिये आवश्यक सामान उपस्थित कर दिया है। पशुधन प्रत्येक

देश की सम्पत्ति होता है। इस धन का अनवरत ह्रास समस्त हिंदुस्तान के लिये चिन्ता का कारण बना है और यह स्पष्ट है कि अन्य विफलताओं के कारण हमारे इस धन के ह्रास का मूल कारण हिंदुस्तान की परतंत्रता है। किंतु हिंदुत्व के अधिकारियों ने इस प्रश्न को एक विचित्र धार्मिक रूप दे डाला है। गोरक्षा में इन अधिकारियों की कितनी गंभीरता और ईमानदारी है, इसकी परीक्षा तो इस सम्बन्ध में किये गये इनके एकमात्र उद्योग तथा रचनात्मक कार्य के उदाहरण कुछ टूटे-फूटे गोशालों के निरीक्षण से की जा सकती है। पशुपोषण की तनिक भी क्षमता शेष न रह जाने के कारण विशाल हिंदू समाज के घरों में प्रति दिन जो पशुदौर्बल्य तथा पशु ह्रास होता जा रहा है, उसकी ओर इन अधिकारियों का ध्यान जाना तो दूर रहा, गोरों द्वारा जो रोमांचकारी क्षति पहुँचायी जा रही है, उसने हिंदुत्व के रक्षकों को किंचितमात्र भी विचलित नहीं किया है। पूर्णतया स्वस्थ्य और एकदम नई उमर की गायें और बछड़े गोरों और अमेरिकनों के मुख्य खाद्य हैं। सर्वदा ही इन पशुओं की बहुत ही बड़ी संख्या का वध गोरों की आवश्यकता को पूरा करने के लिये किया जाता है, किंतु वर्तमान युद्ध में इस वध की संख्या में रोमांचकारी वृद्धि हुई है। प्रति दिन वध होने वाले पशुओं की संख्या का अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि गौओं के देश हिंदुस्तान में खेती के लिये आज साधारणतया बैल सुलभ नहीं हैं और गायों तथा बैलों का मूल्य १५ गुना से २० गुना तक बढ़ गया है। पशुवध की यह अवस्था हिंदुस्तान के प्रत्येक व्यक्ति

को मालूम है। इसकी भीषणता से स्वयं घबड़ाकर बृटिश सरकार ने उन पशुओं के वध पर प्रतिबन्ध लगाने का कानून बनाया है जो बच्चे पैदा करने की उमर के हैं। किंतु गो-रक्षा के नाम पर मर मिटने वाले हिंदुत्व के रक्षकों की ओर से इसका एक साधारण प्रतिरोध भी नहीं हुआ, बल्कि विचित्रता यह है कि हिन्दू धर्म के सभी रूढ़िवादी कट्टर वर्ग इन गोरों के राज्य के प्रबल समर्थक हैं। केवल मुसलिम सम्प्रदाय हिंदुत्व के प्रचण्ड क्रोध का लक्ष्य बना है। मुसलिम जाति निर्धन है और अधिक अच्छे मांस के अभाव में प्रायः बुड्ढे तथा निर्बल पशुओं का बध नगण्यप्राय मात्रा में करती है। यदि पशु विकास की साधारण प्रगति में दूसरे कारणों से बाधा न पड़ती होती तो मुसलमानों द्वारा होने वाले गोवध ध्यान में लाये जाने योग्य भी न होते। किंतु धार्मिक आवेश ने जितना उग्ररूप मुसलिम सम्प्रदाय के विरुद्ध इस प्रश्न को लेकर धारण किया है, वह वर्णनातीत है। वर्षों से गोवध के बदले हिंदुस्तान में स्थान-स्थान पर नरवध के दृश्य उपस्थित होते हैं। हिंदुस्तान जैसे देश में गोवध केवल अनुचित तथा आपत्तिजनक ही नहीं, पापमय भी है और उसके विरोध में धार्मिक आवेश का उग्ररूप धारण करना स्वाभाविक है। किंतु हिंदूहित के नाम पर चलने वाली सभी गोरक्षा कमेटियाँ मध्यम वर्ग पूँजी पति वर्ग के इशारे और धन पर चलती हैं।

यह आवेश क्यों मुसलिम सम्प्रदाय के विरुद्ध ही उत्तेजित किया जाता है, जिसके द्वारा गोवध नाममात्र ही होता है? क्यों

वही धार्मिक आवेश, क्रोध की वही उग्रता, हिंदुत्व की वही भावना गोरों के विरुद्ध उत्तेजित नहीं होती, जब उनके द्वारा गोधन और पशुधन के समूल नाश का खतरा-सा उपस्थित दीख पड़ता है ? यदि गो रक्षा के लिये हिंदुत्व के समर्थकों में गम्भीरता और ईमानदारी है, तो उनका भीषण संघर्ष गोरों के साथ होना चाहिये और आज की परिस्थिति में, जब सेना को खिलाने के लिए पशुधन अत्यधिक रूप में हो रहा है, अकेले एक यही प्रश्न गोरों को हिंदुस्तान से निकाल देने के लिये हिन्दू हित के समर्थकों के लिये पर्याप्त होना चाहिये। किन्तु आज ये हिन्दू-हित-रक्षक ही बृटिश सरकार के समर्थक हैं। इस प्रवृत्ति का विश्लेषण केवल एक अनिवार्य दिशा की ओर ले जाता है। केवल कुछ लोग, एक वर्ग विशेष के लोग व्यक्तिगत स्वार्थ के लिये इस प्रश्न को अपने उद्देश्य की पूर्ति का साधन बना लिये हैं। अँग्रेजों के साथ संघर्ष करने में जिस बलिदान, त्याग, कष्ट सहन और दमन की चक्की में पिसना होगा, उसकी कल्पना भी इन गोरक्षकों के लिये असंभव है। धर्म और हिन्दुत्व के नाम पर एक नारा का आश्रय ले सस्ता नेतृत्व अवश्य प्राप्त किया जा सकता है, हिन्दू-मुस्लिम प्रश्न को छेड़कर बृटिश सरकार से हस्तक्षेप करने के लिये अनुरोध किया जा सकता है और इस प्रकार बृटिश सरकार के साथ गुटबन्दी कर व्यक्तिगत स्वार्थों और सम्मान की रक्षा का समुचित प्रबन्ध किया जा सकता है। इस तुच्छ प्रवृत्ति के कारण गोरक्षा के उद्देश्य को केवल हानि ही पहुँची है और देश भर में स्थान-स्थान पर रक्तपात होते रहने के अतिरिक्त हिंदुस्तान का

सामाजिक जीवन अत्यन्त क्षुब्ध और कलुषित हुआ है, जिसके परिणाम स्वरूप हिन्दुस्तान की दयनीय दशा प्रतिदिन अधिकाधिक निम्नतर होती जा रही है, किन्तु शिकारी को शिकार की पीड़ा नहीं दीख पड़ती, उसकी दृष्टि अपने खाद्य सामग्री पर होती है।

हिन्दुस्तान भर में मठों और मन्दिरों का जाल-सा बुना हुआ है। इनकी संख्या अत्यधिक है और इनका अस्तित्व हिंदू धर्म की आध्यात्मिकता और दार्शनिकता पर अवलम्बित है। इतने उच्च स्थान पर आसीन होने के कारण इनकी उपयोगिता और गतिविधि के सम्बन्ध में कोई शंका या आपत्ति करना निन्दनीय होते हुये विवर्जित है। प्रयत्न, सावधानी और सतर्कता के साथ साधारण जनता में इनकी लौकिक तथा पारलौकिक महत्ता की भावना का पूर्ण प्रचार होता रहता है, और इस प्रकार इस संस्था ने हिन्दू सम्प्रदाय को अपने पंजे में मजबूती के साथ जकड़ रखने की व्यवस्था बना रखी है।

किन्तु इनकी स्थिति और इनके संगठन की एक साधारण विवेचना से स्पष्ट हो जायेगा कि इनका एक वर्ग है जो अपने स्वार्थों की रक्षा के लिये वैसे ही प्रयत्नशील है जैसे दूसरे सत्ताधारी वर्ग अपने स्वार्थों की रक्षा के कौशल में संलग्न हैं। मठ वह संस्था थे, जो दार्शनिक तथा आध्यात्मिक शिक्षा का प्रसार करते थे और मठ सम्बन्धी सम्पत्ति इस शिक्षा प्रसार में व्यय होती थी, किन्तु युगों से, सदियों से मठ कुछ व्यक्तियों के व्यवसाय के साधन हो गये हैं। इन मठों और मन्दिरों में कोई शिक्षा नहीं

होती है। इनके पास अतुल सम्पत्ति है और भोग-विलास के सभी सम्पन्न-साधन इन्हें उपलब्ध हैं। ऐसे अनेक मठ-मन्दिर हैं जो बड़ी-बड़ी देशी रियासतों और ताल्लुकदारियों से बहुत बड़ी हैं। इसमें तो किसी को सन्देह करने की गुञ्जाइश ही नहीं कि इनके ऐश्वर्य और ठाट-बाट और इनकी राजसी शान बड़े-से-बड़े श्रीमानों के लिये ईर्ष्या के कारण हैं। अदालती कागजातों की साधारण छान-बीन से यह मालूम होगा कि इन मठ-मन्दिरों के मुकदमों का इतिहास बृटिश राज्य की मुकद्दमेबाजी का एक प्रमुख अँग है। इन मठ तथा मन्दिरों के अधिकारियों के ऊपर समाज का कोई भी उत्तरदायित्व नहीं है; स्वयं इन्हें बिना कुछ किये इनकी आमदनी का स्रोत निश्चित है।

यह वर्ग अपने स्वार्थ की रक्षा के लिये पूर्ण सचेष्ट है। जन-साधारण की बढ़ती हुई शक्ति से यह वर्ग सशंक होने के कारण बृटिश सरकार के साथ गुटबन्दी कर जनजागृति और जन-आन्दोलन का अन्त करने के लिये प्रयत्नशील है। बृटिशराज्य की प्रशंसा तथा उसकी कुशलता के लिये प्रार्थना करना और इसके विपरीत हिन्दुस्तान को परतंत्रता के बन्धन से मुक्त करने के लिये जनता द्वारा किये जानेवाले आन्दोलनों तथा राष्ट्रीय नेताओं की निन्दा करना, उन्हें धर्मद्रोही बनाना इस वर्ग का एक महत्वपूर्ण कार्य बन गया है। ज्यों-ज्यों हिन्दुस्तान का जन आन्दोलन उग्र-तर होता जा रहा है और पूँजी तथा सत्ता के लिये खतरा अधिकाधिक बढ़ रहा है, इस सत्ताधारी वर्ग की कृपाशीलता भी विस्मृत होती जाती है। यह वर्ग जन प्रचार में दिलचस्पी लेने

लगा है। 'वर्णाश्रम स्वराज्य संघ', 'धर्म संघ' 'भारत धर्म महा-मंडल' इत्यादि नाम की संस्थाओं और व्यक्तिगत प्रचारकों के द्वारा आन्दोलन की निन्दा की जा रही है और धर्म के नाम पर प्रति-क्रियावादिता का पोषण किया जा रहा है। यह परिच्छेद लिखते समय इसी काशी नगर में एक महायज्ञ हो रहा है। उस यज्ञ के सम्बन्ध में स्थानीय दैनिक 'पत्र' 'आज' के दिल्ली स्थित प्रति-निधि की एक सूचना वास्तविकता को स्पष्ट करने में अधिक सहायक है :—

कहा जाता है कि इधर कुछ दिनों से हिन्दू धर्म की आड़ में काँग्रेस और राष्ट्रीय-विचार-धारा-विरोधी काम करने वाले एक रूढ़िवादी हिन्दू सन्यासी को भारत सरकार विशेषरूप से प्रोत्सा-हन देने लगी है। दिल्ली और कानपुर ऐसे स्थान में सामूहिक यज्ञ समारोह का आयोजन करनेवाले उक्त सन्यासी सज्जन आज-कल काशी में यज्ञ करा रहे हैं।......यह खबर सुनकर कि भारत सरकार हिन्दू कोड बिल वापस लेना चाहती है, उक्त सन्यासी ने सरकार के पास आवेदन किया है कि काशी में हिन्दू-कोड विरोधी समाप्त होने और उसके विरोध में प्रस्ताव स्वीकृत होने के बाद ही सरकार बिल वापस करने की घोषणा करे जिससे जनता पर यह असर पड़े कि इस आन्दोलन का गहरा प्रभाव पड़ा है।"

बृटिश सरकार और हिंदुत्व की गुटबन्दी की थोड़ी-सी विवेचना अनिवार्य है। काशी के यज्ञ में कहा जाता है कि कई लाख रुपये, कई हजार मन अन्न, अत्यधिक ईंधन, घी इत्यादि

हवन किया जा रहा है। हिंदुत्व के रक्षक भली भाँति जानते हैं कि यज्ञ के लिये शास्त्र प्रणीत देश-काल की परिस्थिति हिंदुस्तान में इस समय नहीं है, बल्कि परिस्थिति इसके एकदम प्रतिकूल है। लाखों व्यक्ति एक-एक कण अन्न के अभाव में जब प्रतिदिन प्राण गवाँ रहे हैं तो उस समय कुछ व्यक्तियों की प्राणरक्षा का साधन छीनकर अग्नि में झोंक देना परिस्थिति के एकदम प्रतिकूल है। बृटिश सरकार ने इस युद्धकाल में एक-एक वस्तु पर भीषण प्रतिबन्ध लगा रखा है। अन्न तथा दूसरे खाद्य वस्तुओं पर तो इस प्रकार प्रतिबन्ध लगा है कि कई गुना अधिक खर्च करने पर भी लोगों का काम चलना कठिन हो गया है। किंतु ऐसे कठिन प्रतिबन्ध के शासन काल में और ऐसे दुर्भिक्ष के दिनों में भी हजारों मन अन्न, घी, लकड़ी को आग में झोंक देने के लिये बृटिश सरकार सामान देती है। इस दुर्दिन में यह घटना एक बार नहीं कई बार दिल्ली, कानपुर इत्यादि स्थानों पर घट रही है। इसमें तो किसी को सन्देह नहीं कि हिंदू धर्म या यज्ञ में विदेशी सरकार की कोई आस्था नहीं है और यदि होती भी तो वह देश-कालकी परिस्थिति का ध्यान रखती, किंतु उसे जन आन्दोलन और क्षुधा पीड़ित हिंदुस्तान के रोष को धर्म के नाम पर शान्त रखना इष्ट है, काँग्रेस तथा अन्य प्रगतिशील संस्थाओं का प्रभाव कम करना और उनके विरुद्ध दूसरे वर्गों सत्ताधारी वर्गों-को खड़ा करना आवश्यक है। इसीलिये बृटिश सरकार की ओर से इन यज्ञों का खूब प्रचार किया जा रहा है। विदेशों में तो प्रचार के लिये ये यज्ञ बहुत ही सहायक सिद्ध हो

रहे हैं। इन यज्ञों का उदाहरण उपस्थित कर बृटिश सरकार वड़ी सरलता से यह सिद्ध कर रही है कि प्रथम यह समाचार असत्य है कि हिंदुस्तान में लोग सामान की कमी से भूखों मर रहे हैं और इसमें कुछ सत्यता है भी तो हिंदुस्तानी अभी इतने बर्वर, असभ्य और ना समझ हैं कि ऐसे समय में खाद्य पदार्थों को आग में जला रहे हैं, और यह हिंदुओं का धार्मिक कृत्य होने से धार्मिक मामलों में हस्तक्षेप न करने के लिये प्रतिज्ञा बद्ध बृटिश सरकार रोक सकने में असमर्थ है। यह प्रचार खूब हो रहा है और संभवतः इन यज्ञों की फिल्म भी तैयार करके उनका प्रदर्शन विदेशों में किया जा रहा है। जनता के विरोध करते रहने पर भी मुनाफाखोरी और चोर बाजार से धनराशि इकट्ठा करता हुआ पूंजीवादी वर्ग इन यज्ञों के लिये आवश्यक सामान तथा धन इकट्ठा कर देता है। हिंदुत्व और बृटिश सरकार की गुटबन्दी हिंदुस्तान की प्रगति की ज्वाला और तीव्रता को रोक कर स्थायी स्वार्थों की रक्षा के लिये प्रयत्नशील है और धर्म इसके लिये अमोघ अस्त्र समझा गया है। यह सूचना निराधार नहीं है कि दिल्ली के यज्ञ में उच्च अंग्रेज पदाधिकारी सम्मिलित हुये थे और यज्ञ की ओर से बृटिश शासन के कल्याण की प्रार्थना की गई और जनतन्त्र शासन तथा राष्ट्रीय आन्दोलन की निन्दा की गई। कानपुर और बनारस में यज्ञ के साथ जो समारोह हुये हैं, उनमें आध्यात्मिक भाषण नहीं के बराबर होते हैं, किंतु बृटिश शासन के प्रति शुभ कामना प्रकट किये जाते हैं और स्वातन्त्र्य युद्ध को अभिशाप दिये जाते हैं।

धर्म के नाम पर चलने वाली सभी संस्थाओं के मूल में सत्ताधारी वर्ग का स्वार्थ है। इस साम्राज्यवादी काल ने जैसे सभी सत्ताधारी वर्ग छीना-झपटी के व्यवसाय में लगे हैं, उसी प्रकार मठ- मंदिर तथा इस प्रकार की दूसरी संस्थायें भी एक वर्ग के व्यवसाय मात्र हैं और वह वर्ग अपने इस व्यवसाय की रक्षा के लिये सचेष्ट है। ये संस्थायें हिंदू-मुसलिम, छूत-अछूत अनेक उपद्रवों के अशान्त अखाड़े बन गये हैं और साधारण जनता के युगों के संस्कार को उत्तेजित कर प्रत्येक प्रगतिशील कार्यक्रम का विरोध करना इनकी नीति बन गई है। बृटिश सरकार इन परिस्थितियों से लाभ उठाना खूब जानती है।

हिंदुत्व की असीम उग्रता ने एक अत्यन्त विकट 'अछूत' समस्या हिंदुस्तान के सामाजिक जीवन में उत्पन्न कर दी है। हिंदू जाति का एक महत्व-पूर्ण अंग अस्पृश्य है, जिसे छूने मात्र से मनुष्य अपवित्र हो जाता है। इस अंग को सर्व साधारण कुओं और तालावों से पानी भरने का अधिकार नहीं है, देव दर्शन तथा मंदिर प्रवेश उनके लिये वर्जित है। दक्षिण में सर्व साधारण मार्गों पर भी उन्हें चलने का अधिकार नहीं है। वे हिंदू कहे जाते हैं किंतु पशु का जीवन भी उनसे कहीं अधिक उत्तम तथा वाच्छनीय है। हिंदू धर्म के अनुसार इस वर्ग को विद्याध्ययन का भी अधिकार प्राप्त नहीं है।

वास्तव में सवर्ण हिंदू इन अछूत कहे जाने वाले लोगों पर अपना साम्राज्य स्थापित किये हुये हैं। साम्राज्य की दृढ़ता के लिये सर्व श्रेष्ठ नीति शासित को अशिक्षित रखने में सिद्ध हुई,

यही नीति सवर्ण हिंदुओं ने अछूतों के सम्बन्ध में अपनाया है। अछूत लोगों के पास भूमि नहीं, व्यापार नहीं, नौकरियों का कोई पद नहीं, सम्पत्ति नाम की कोई भी वस्तु नहीं है। मजदूरी का पेशा एक मात्र इनकी जीविका का आधार है। सवर्ण हिंदू समझता है कि मजदूरों की इस जाति में यदि चेतना आ गई, तो उनके साम्राज्य की नींव ढह जायेगी। एक वर्ग की सेवा तथा मजदूरी करने के लिये एक दूसरे वर्ग का ठोस बना रहना सम्पत्ति तथा ऐश्वर्य उपभोग का दृढ़ साधन है, और इस साधन को सुरक्षित रखने के लिये धर्म का शक्तिशाली अस्त्र प्रयोग किया जाता है, प्रत्येक प्रगति शील कार्य का प्रबल विरोध किया जाता है और अछूतों को दुरवस्था से ऊपर उठाने के प्रयत्न को धर्म द्रोही कहा जाता है। यदि इस वर्ग-स्वार्थ का प्रश्न न हो तो 'अछूत समस्या' का अस्तित्व क्षणभर भी न ठहर सकेगा।

किंतु इस सवर्ण हिंदू साम्राज्य के ऊपर इससे बहुत बड़ा बृटिश साम्राज्य है जो सवर्ण हिंदूओं का शोषण कर पनप रहा है। सवर्ण हिंदू यदि इस शोषण से मुक्ति पाने का प्रयत्न करता है तो बृटिश साम्राज्य समस्त हिंदू सम्प्रदाय को कई भागों में विभाजित कर एक दूसरे के विरुद्ध खड़ा कर देता है। 'अछूत' कहे जाने वाले लोगों की बृटिश सरकार ने एक स्पष्ट तालिका निश्चित कर दी है, जो सवर्ण हिंदू के विरुद्ध दृढ़ चट्टान के रूप में खड़े रहने लिये प्रोत्साहित किये जाते हैं। सवर्ण हिंदू अपने ही बुने जालों में उलझा हुआ है। गोरे और काले का वर्ण भेद जब प्रत्येक हिंदुस्तानी को पद-पद पर अपमानित करता है, तो

कराहने की चीख सुनाई देती है; किंतु अपने ही देश वासियों को युगों से आसाधारण ढंग से अपमानित करते रहने में हिंदुत्व को कोई कष्ट नहीं होता। श्री रामजे मैंकडानल्ड के साम्प्रदायिक निर्णय द्वारा हिंदू सम्प्रदाय से अछूत कहे जाने वाले लोगों की एक बड़ी संख्या को पृथक करने के निर्णय की प्राणों की बाजी लगा कर महात्मा ने जब रद्द कराया तो उसके लिये तो उन्हें हिंदुत्व ने स्वर्ग का सिंहासन प्रदान नहीं किया, किन्तु अछूत को छूत और मनुष्य का स्थान देने के लिये 'हरिजन' आन्दोलन के कारण धर्मपुरी काशी में उनके ऊपर पत्थर फेंके गये हैं; उन्हें काले झंडे दिखाये गये हैं, और उन्हें अपशब्द सुनने पड़े हैं। प्रगति शीलता का विरोध करने का यह भीषण हठ वर्ग स्वार्थ का अनिवार्य परिणाम है। सम्पत्ति हीन अछूत वर्ग का श्रम-शोषण स्थायी रूप से सवर्ण शोषक वर्ग हिंदुत्व के नाम पर अपने अधिकार में रखने के लिये सचेष्ट है। अछूतों की साम्प्रदायिक समस्या प्रतिदिन उग्ररूप धारण करती जा रही है और ऐसा प्रतीत होता है कि निकट भविष्य में अछूत प्रश्न, हिंदू-मुसलिम प्रश्न से कम संकट पूर्ण नहीं रहेगा। सवर्ण हिंदुओं के व्यवहार को प्रतिक्रिया के फलस्वरूप 'अछूतिस्तान' निश्चित है।

हिंदू-मुसलिम प्रश्न को जटिल बनाने में हिंदुत्व का जबर-दस्त हाथ है। वृटिश शासन के पूर्व हिंदू-मुसलिम जैसा प्रश्न उपस्थित होने की कोई परिस्थिति नहीं थी, किन्तु ईष्ट इन्डिया कम्पनी का राज्य आरम्भ होने के साथ अनेक विषमतायें उत्पन्न होने लगीं। अंग्रेजी राज्य को सर्वप्रथम बंगाल में मुसलिम

प्रतिरोध का सामना करना पड़ा था, इस कारण अंग्रेज व्यापारी हिन्दू व्यवसायियों के साथ अधिक सम्पर्क रखने लगे और उन्हें अधिक सुविधा देने लगे। अंग्रेज तथा हिन्दू व्यवसायियों का आरम्भ में एक गुट हो गया। बंगाल की मुसलिम सामन्त शाही का अन्त करने के लिये वहाँ के व्यवसायी पूँजी पति हिन्दुओं का अंग्रेजों ने पूर्ण उपयोग किया। इस देश में बृटिश शासन स्थापित करने में हिन्दुस्तान के जैन और हिन्दू व्यापारियों में होड़-सी लगी थी। श्री शेजवाल्कर ने अपनी पुस्तक में 'नेटिव सपोर्ट आवदि बृटिश डोमिनियन इन इंडिया' में प्रमाणों द्वारा इस परिस्थिति का विशद वर्णन किया है। हम लोगों ने पूर्व परिच्छेद में देखा है कि लगभग एक सदी तक मुसलमानों का भीषण दमन होता रहा और अपेक्षाकृत हिन्दुओं को सुविधायें मिलीं। यह परिस्थिति मुसलमानों की भयंकर आर्थिक तथा सामाजिक दुरा-वस्था और हिन्दू तथा मुसलिम आर्थिक विषमता के लिये बहुत कुछ उत्तरदायी है। इसकी एक स्वाभाविक प्रतिक्रिया अवश्य-म्भावी थी और यह प्रतिक्रिया साधारण परिस्थिति में हिन्दुओं और अंग्रेजों दोनों के विरुद्ध होती, किन्तु प्रभुशक्ति की स्थिति और कौशल तथा हिन्दुत्व की रूढ़िवादिता ने हिन्दू-मुस्लिम द्वेष की ही अधिक स्पष्ट करने में सहायक हुई। हमने पूर्व परिच्छेद में देखा है कि बृटिश शासन ने साम्राज्यवादी शोषण की स्वच्छ-न्दता के लिये हिन्दुस्तान की विभिन्न जातियों को वैधानिक स्वीकृत देकर स्थायी बना दिया। ये जातियाँ प्राचीन लीक पीटनेवाली विगत युग की अवशेष अनुपयोगी रूढ़िवादी संस्थायें

रह गईं और इस परिस्थिति में जैसा स्वाभाविक था छूआ-छूत, ऊँच-नीच, पवित्र अपवित्र की क्रित्यन्त संकुचित भावनायें और संकीर्ण विचार इन जातियों की विशेषतायें तथा चिन्ह स्वरूप शेष रह गये। विस्तृत और व्यापक क्षेत्र से जब मनुष्य बंचित हो जाता है तो वह उसकी संकीर्ण और संकुचित परिधि से चिपके रहना चाहता है किंतु उसके समूल पर ही खतरा आ जाता है तो उसकी रूप-रेखा की रक्षा किसी भी मूल्य पर करना चाहता है। वृटिश शासन ने इन जातियों की वर्तमान प्रति-क्रियावादी अवस्था बनाये रखने का सतत् प्रयत्न किया है। हिन्दुत्व ने बिना माँगे इस वृटिश नीति में सहायता की है। वर्तमान हिन्दू जातियों का सामाजिक व्यवहार तथा आचरण, यद्यपि अनेक अस्वाभाविक और विवशतापूर्ण परिस्थितियों के परिणाम हैं, किन्तु दूसरी जातियों तथा सम्प्रदायों के लिये अत्यन्त उत्तेजक और द्वेष तथा घृणा उत्पन्न करनेवाले हैं। पहले से ही पीड़ित तथा अपमानित और आर्थिक और शिक्षा के क्षेत्र में पिछड़ी मुसलमान जाति को हिन्दू जाति के व्यवहार से जो ठेस लगी है, उसके सम्बन्ध में एक फहरार नेता का उद्गार उल्लेखनीय है :—

"आर्य जाति के मुसलमान, सूफीमत के मुसलमान, ऊँचे खान्दान के मुसलमान, उच्च शिक्षा प्राप्त मुसलमान सभी हिन्दुओं द्वारा एक-सा समझे गये और उनके साथ अछूतों सा व्यवहार किया गया। आप पक्के राष्ट्रीय तथा गाँधीवादी हो सकते हैं, किन्तु ज्योंही आप एक हिंदू से अपने को मुसलमान बतलायेंगे

आपके साथ अछूत-सा व्यवहार किया जायेगा। हिन्दू अपने को चाहे जितना भी न्याय संगत समझते हों और अपने व्यवहार को चाहे जितना निर्दोष बताते हों, किन्तु मुसलमान यदि उनसे द्वेष करें तो उन्हें वे न्यायतः दोषी नहीं ठहरा सकते हैं।"*

बाहर से आनेवाले मुसलमान प्रायः आर्य जाति के थे, शेष परिस्थितियों के कारण हिन्दू से मुसलमान हो गये। हिन्दुओं का उनके साथ अछूत-सा व्यवहार उन्हें सह्य नहीं था। इसकी भीषण प्रतिक्रिया हुई। पाकिस्तान की माँग इस प्रतिक्रिया का ही परिणाम है।

हिन्दू-पुनरुद्धार आन्दोलन पहले आरम्भ हुआ, उसके बाद मुसलिमपुनरुद्धार आन्दोलन ने भी उसका अनुसरण किया। इन आन्दोलनों की प्रतिक्रिया ने एक ओर अधिक प्रगतिशील और विस्तृत कार्यक्रम का मार्ग प्रशस्त किया और दूसरी ओर कट्टरपंथी रूढ़िवादिता को संगठित रूप दे दिया। आर्यसमाज, ब्रह्मसमाज इत्यादि के आन्दोलन के कारण हिन्दू जाति में जागृति और चेतना उत्पन्न हुई और वह चेतना राष्ट्रीयता की ओर मुड़कर आगे बढ़ गई। इन संस्थाओं ने जो वातावरण उत्पन्न किया वह समय की प्रत्येक लहर के साथ प्रगतिशील और उग्र होता गया, किन्तु संस्थायें स्वयं धार्मिक सुधार और साम्प्रदायिकता के दल-दल में फँस गईं और अत्यंत कट्टर बन गईं। यह प्रबुद्ध कट्टरता अत्यधिक खतरनाक हो गई, इसका प्रभाव क्षेत्र बेहद बढ़ गया।

* पाकिस्तान और अनटचेबेलटी, ले० चौधरी अफज़ल हक कम्यूलन टेंगिल में उद्धृत।

मुसलिम सुधारवाद आंदोलन की भी यही दशा हुई। देश की आर्थिक सामाजिक अवस्था जो अधिक व्यापक, क्रियात्मक, प्रगतिशील और दूसरे देशों की प्रतिद्वन्द्विता के परिणाम स्वरूप सम्मिलित गम्भीर चिन्तन और कार्य के लिये सतत् अवसर उपस्थित करते हैं, विदेशी सरकार के हाथ में थी और विदेशी सरकार प्रगतिशील क्रियाशीलता का प्रत्येक मार्ग बन्द करने में अपना कल्याण समझती है। ऐसी परिस्थिति में गर्म करने के लिये, अपना कहने के लिये और सब से अधिक कार्यशील बने रहने के लिये केवल साम्प्रदायिक क्षेत्र ही आधार हो सकते थे। हिन्दू और मुसलिम पुनरुद्धार-आन्दोलन के परिणाम स्वरूप दो समानान्तर कट्टरपंथी संस्थायें हिंदू तथा मुसलिम विचारधारा की प्रतिनिधि बनकर एक दूसरे के सामने खड़ी हो गईं। हिन्दू अपनी पवित्रता को दूसरों के स्पर्श से दूषित होने देने के विरुद्ध थे; मुसलिम अभिमान ने भी ठीक ऐसी ही परिस्थिति उत्पन्न करने का प्रयत्न किया। मुसलमान वेद, पुराण और तीर्थों को अपना नहीं सकता था, इसलिये वह दूसरे मुसलिम देशों के साहित्य में, काबा और मक्का के पवित्र तीर्थ स्थानों में गर्व करने लगा। एक दूसरे के बहिष्कार और एक दूसरे से अलग रहने की प्रवृत्ति में उन्नति होती गई। बृटिश शासन के कारण जैसे-जैसे लोगों का जीवन निरूपाय और बेकार होता गया, साम्प्रदायिकता क्रियाशीलता का एकमात्र आधार बन गई।

बृटिश शासन की प्रतिक्रिया २० वीं शताब्दी के आरम्भ होने के साथ स्पष्ट होने लगी। राष्ट्रीय आन्दोलन और जन-

जागृति का एक प्रवाह तीव्रतर होता गया, साम्प्रदायिकता की दूसरी धारा की प्रचण्डरूप धारण करती गई। २० वीं शताब्दी के आरम्भ से ही ऐंग्लो मुसलिम गुटबन्दी का सूत्रपात हुआ। सन् १९०९ ई० में मार्ले मिंटो शासन सुधार योजना का मुसलिम साम्प्रदायिकता ने अपनी सफलता के रूप में स्वागत किया और हिंदू साम्प्रदायिकता ने हिंदू-हित के नाम पर इसका विरोध किया। हिंदू साम्प्रदायिकता संगठित रूप से इस समय से मुसलिम विरोध करने लगी। हिंदुत्व और हिंदू हित की अनेक कल्पनायें अनेक रूप में की जाने लगीं। हिन्दी भाषा और साहित्य को संस्कृत शब्दों द्वारा प्रभावित करने तथा प्रचलित उर्दू और फारसी के शब्दों को एकदम निकाल देने पर जोर दिया जाने लगा। हिन्दू संस्कृत की रक्षा और विकास के लिये हिन्दू विश्वविद्यालय बनारस की स्थापना हुई। मुस्लिम विद्यार्थियों के लिये इस संस्था में कोई स्थान नहीं। इस प्रान्त, बल्कि हिन्दुस्तान की सबसे बड़ी इस शिक्षा संस्था में दो-चार से अधिक मुस्लिम विद्यार्थी नहीं मिलेंगे, ये दो-चार भी खुशी से नहीं अपनी परिस्थिति की विवशता से इसमें रहते हैं। वे विश्वविद्यालय की सब प्रकार की सुविधाओं से वञ्चित हैं। गवर्नमेंट स्कूलों, कालेजों और विश्वविद्यालयों में जहाँ सभी सम्प्रदाय के विद्यार्थी अबाधगति से प्रवेश और शिक्षा पाते हैं, वहाँ हिन्दू विश्वविद्यालय बनारस और देश भर में बिखरे अनेक हिन्दू शिक्षा संस्थाओं में मुसलमान विद्यार्थियों के लिये स्थान और सुविधा नहीं है। यह असहनीय परिस्थिति है, हिन्दुत्व के रक्षकों ने मुसलिम जाति का

जबरदस्ती बहिष्कार किया है। मुसलमान आर्थिक दृष्टि से पिछड़े थे ही, शिक्षा से भी वञ्चित किये गये, परिणाम स्वरूप रूढ़िवादी होने के साथ उनकी चिढ़ भी बढ़ती गई। इस परिस्थिति ने हिन्दुस्तान के सम्मिलित तथा प्रगतिशील जीवन के विकास में बहुत अधिक हानि पहुँचाई है। यह पथ परतंत्रता का है, देश की उन्नति और परतंत्रता का मार्ग इससे भिन्न है। स्वर्गीय श्री विंडेल-विल्की का लेख विचारणीय है :—

"हमारा राष्ट्र (अमेरिका) एक जाति, एक महजब या एक संस्कृतिक विकास से नहीं बना है। यह लगभग ३० ऐसी जातियों का संघ है जो भिन्न-भिन्न मजहबों और दर्शनों में विश्वास करते हैं और प्रत्येक की अपनी अलग ऐतिहासिक पृष्ठभूमि है।......मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि हमारी सभ्यता की उच्चता हमारी असेम्बली के ढंग या दूसरे वैज्ञानिक विकासों के कारण संभव नहीं हुई है बल्कि अनेक भिन्न-भिन्न मतों के मानने वाले लोगों तथा भिन्न-भिन्न जातियों और उपजातियों की सम्मिलित समझदारी, एक दूसरे का सम्मान और सहायता करने की आकांक्षा से संयुक्त राज्य अमेरिका में साथ-साथ रहने की क्षमता और योग्यता के कारण संभव हुई है।"*

हिंदुस्तान के पहले सम्मिलित जीवन को बृटिश शासन ने छिन्न-भिन्न कर डाला था, किंतु बृटिश नीति से उत्पन्न हुये वातावरण और सामाजिक स्थिति के जाल में फँस जाने के परिणाम तथा उत्तरदायित्व से अस्वीकार नहीं किया जा

* 'वेनपर्ल्ड'।

सकता। हिंदुत्व के रक्षक न केवल फँस गये, वल्कि स्वयं उधेड़बुनके कार्य में लग गये। हिंदू प्रति क्रियावादिता सन १९०९ से उग्र होती गई। राष्ट्रीयता का क्षीण प्रवाह इसे प्रभावित करने में असमर्थ था। गत योरोपीय युद्ध और सन १९२१ ई० के राष्ट्रीय आन्दोलन के वाद देश में भीषण शिथिलता और निराशा स्थिति उत्पन्न हो गई। हिंदुत्व ने जोर पकड़ा और इसी वातावरणमें सन् १९२३ ई० में हिन्दू महासभा का प्रथम अधिवेवन वनारस में पं० मदन-मोहन मालवीय की अध्यक्षता में हुआ। प्रान्तीय तथा जिला शाखा सभाओं का कार्य आरंभ हुआ। हिन्दू महासभा की स्थापना की आवश्यकता वताते हुये मालवीय जी ने महासभा के दूसरे अधिवेशन वेल गाँव में कहा था कि "काँग्रेस राजनीतिक संस्था होने के कारण अनेक सम्प्रदायों की सामाजिक तथा राजनीतिक समस्याओं का हल नहीं कर सकती।" मालवीय जी ने हिंदू महासभा को विशुद्ध सांस्कृतिक आन्दोलन वताया और यह स्पष्ट कहा कि राजनीतिक क्षेत्र में यह काँग्रेस की प्रति द्वंदी नहीं वल्कि उसकी पूरक थी। किंतु उसी सभा में एक प्रस्ताव द्वारा निश्चित हुआ कि महासभा 'राजनीतिक संस्थाओं पर भी हिंदुओं की राय व्यक्त करेगी। आरंभ से ही महासभा की गतिविधि ने यह गुप्त नहीं रहने दिया कि वह सांस्कृतिक आन्दोलन नहीं, वल्कि विशुद्ध साम्प्रदायिक संस्था है। सांस्कृतिक और सामाजिक विषय भिन्न नहीं होते और महासभा ने इस शब्दजाल तथा भ्रम को अधिक देर तक ससन्देह नहीं रहने दिया।

सन् १९२५ ई० में सर प्रफुल्ल चन्द्र राय ने हिंदू महासभा को कलकत्ता अधिवेशन के अवसर पर चेतावनी देते हुये कहा था कि महासभा आन्तरिक दोषों के सुधार और हिंदू सम्प्रदाय की विभिन्न जातियों को संगठित करने से अपनी क्रियाशीलता सीमित रखे। लाला लाजपत राय ने भी हिंदू महासभा को काँग्रेस के अधिकार में अति क्रमण न कर विशुद्ध साम्प्रदायिक समस्यायों से ही सम्बन्ध रखने का अनुरोध किया था, किंतु यह असंभव मार्ग था। हिंदू हित या मुसलिम हित की एक पक्षीय नीति राष्ट्रीय नीति नहीं हो सकती। साम्प्रदायिक प्रश्नों पर काँग्रेस का जो दृष्टिकोण था, वह केवल एक सम्प्रदाय के लिये प्रतिज्ञावद्ध संस्था का दृष्टिकोण नहीं हो सकता था। इसलिये जब काँग्रेस ने असहयोग की नीति का त्याग कर स्वराज्य पार्टी स्थापित कर कौंसिल प्रवेश का निर्णय किया तो हिंदू महासभा ने भी हिंदूहित की रक्षा के लिये कौंसिल के लिये अपने उम्मेदवार खड़ा करने का निश्चय किया। स्पष्ट रूप से काँग्रेस के विरोध में हिंदू महासभा खड़ी हो गई। आरंभ के दिनों में हिंदू महासभा ने अपने वास्तविक रूप पर पर्दा डालने का प्रयत्न किया, और स्वराज्य के मार्ग में कोई रुकावट न डालने का आश्वासन दिया, किंतु संगठन के मूल में जो दोष था, इसकी स्थापना के साथ जो आकांक्षा थी, वह राष्ट्रीयता विरोधी थी। साइमन कमीशन के विरोध तथा सन् १९३० ई० और १९३२ ई० के देश व्यापी आन्दोलनों के कारण साम्प्रदायिकता का मस्तक इतना दब गया था कि उसके अस्तित्व का पता लगना

कठिन था। किंतु गोलमेज कान्फ्रेंस ने साम्प्रदायिक संस्थाओं को केवल पुनर्जीवित ही नहीं किया, उन्हें पर्याप्त शक्ति भी प्रदान की। हिंदू महासभा हिंदुस्तान के राजनीतिक क्षेत्र में पूर्ण प्रतिक्रिया के वादी नीति के साथ उत्तरी और काँग्रेस के प्रबल प्रतिरोध का मार्ग ग्रहण किया। सन् १९३० और १९३२ के आन्दोलन काँग्रेस को एक क्रांतिकारिणी संस्था के रूपमें परिवर्तित होने का परिचय दे चुके थे। कराची काँग्रेस का आर्थिक निर्णय सत्ताधारियों और पूँजीपतियों के स्वार्थ के विरुद्ध स्पष्ट घोषणा थी, इसलिये हिंदू महासभा स्थायी स्वार्थों की एक सुसंगठित शक्ति के साथ हिंदूहित के नाम काँग्रेस के विरुद्ध बृटिश सरकार के साथ खड़ी हुई। सन् १९३३ ई० के अधिवेशन में अध्यक्ष पद से बोलते हुये भाई परमानन्द ने कहा था :—

"यदि हिंदुस्तान की राजनीतिक संस्थाओं में हिंदू प्रधान सम्प्रदाय की हैसियत से स्वीकार कर लिये जायँ तो मैं अपने में इस प्रेरणा का अनुभव करता हूँ कि हिंदू ग्रेट बृटेन के साथ उत्सुकता पूर्वक सहयोग करेंगे।"

अपनी इस माँग को बृटिश सरकार से स्वीकृत कराने के लिये भाई परमानन्द ने संगठन आन्दोलन को शक्तिशाली बनाने पर जोर दिया। इस अधिवेशन में काँग्रेस की कड़ी निन्दा की गई और हिंदुओं की दुर्दशा का कारण काँग्रेस की नीति बताई गई और हिंदुओं से अनुरोध किया गया कि वे काँग्रेस से सम्बन्ध विच्छेद कर अलग हो जायं। ध्यान देने योग्य बात यह है कि हिंदू महासभा के अध्यक्ष ने बृटेन की काँग्रेस और

राष्ट्रीय आन्दोलन का विरोध करने का निमंत्रण दिया और उसे अपनी सहायता का आश्वासन दिया। हिंदुस्तान की सत्ताधारी शक्तियों ने अपने स्वार्थ की रक्षा के लिये बृटिश सरकार का साथ पकड़ा है। मुसलिम लीग ने भी इसी नीति का अनुसरण किया है और हिंदू महासभा की भाँति उसने भी प्रधान और एक मात्र संस्था होने का दावा किया है।

सन् १९३७ ई० के अधिवेशन में श्री सावरकर ने हिंदू महासभा के उद्देश्य की व्यख्या करते हुये कहा था :—

"हिंदू जाति, संस्कृत, हिंदू सभ्यता का पोषण, रक्षा तथा विकास और हिंदू राष्ट्र के गौरव का उत्थान और इन्हें प्राप्त करने के लिये वैधानिक उपायों द्वारा पूर्ण स्वराज्य अर्थात् हिंदुस्तान के लिये पूर्ण राजनीतिक स्वतंत्रता की प्राप्ति।"

महासभा का यह अधिवेशन राष्ट्रीयता सम्बन्धी अनुसंधान के लिये इतिहास में सब से अधिक स्मरणीय रहेगा। अध्यक्ष सावरकर ने पाण्डित्य पूर्ण गर्व के साथ कहा था, 'हिंदुस्तान आज एक राष्ट्र नहीं माना जा सकता है, बल्कि इसके विपरीत यहाँ हिंदू और मुसलमान दो राष्ट्र हैं।"

श्री सावरकर का यह अनुसंधान अनुकरणीय था और मुसलिम लीग ने इस अनुसंधान के सिद्धांत को व्यवहार में ला देने का प्रयत्न किया है। दूसरे अधिवेशन में अपने इस नये अनुसंधान को व्यवहार में लानेके उपाय बताते हुये श्री सावरकर ने कहा था, 'आज से हमारी राजनीति विशुद्ध हिंदू राजनीति होगी, उसकी उपयोगिता की परीक्षा हिंदूहित की कसौटी पर

इस प्रकार की जायेगी जो हमारे हिंदू राष्ट्र की दृढ़ता, स्वतंत्रता और विकास में और सहायता करेगी।"

इस लक्ष्य को प्राप्त करने की सावरकर की सूझ भी उल्लेखनीय है। हिंदुओं को उन्होंने काँग्रेस से शक्ति छीनने के लिये उत्तेजित किया और कहा कि हिंदुत्व अपना उच्च आसन काँग्रेस को पराजित कर के ही प्राप्त कर सकता है। काँग्रेस से शक्ति छीनने के लिये श्री सावरकर ने काँग्रेस का बहिष्कार, काँग्रेस उम्मेदवारों को वोट न देना और हिंदू महासभा द्वारा प्रमाणित योग्य राष्ट्रीय हिंदुओं को वोट देने का आदेश दिया।

काँग्रेस की निन्दा करने के साधारण नियम का पालन कर लेने के पश्चात् हिंदूराष्ट्र और हिंदुत्व के आवेश पूर्ण अपने अनुसंधान को फिर श्री सावरकर ने दूसरे अधिवेशन में कलकत्ता में विशद रूप से वर्णन किया। 'हिंदू' की परिभाषा आपने संस्कृत के एक सुन्दर श्लोक में की :—

आसिन्धु सिन्धु पर्यन्त यस्य भारत भूमिका,
पितृभूः पुण्यभूश्चैव सवै हिंदुरिति स्मृतः।"

हिंदूमहासभा के अध्यक्ष के अनुसन्धान की परीक्षा उनकी प्रयोग शाला में तो हो नहीं सकी, किन्तु मुसलिम लीग ने अपनी प्रयोग शाला का प्रयोग अविलम्ब किया और 'पुण्यभूः शीघ्र ही लीग की प्रयोगशाला से 'पाकिस्तान' बन कर निकला। इसे अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि 'मुसलिमराष्ट्र' और 'पाकिस्तान' हिंदू महासभा के अनुकरणीय आविष्कार 'हिंदू-राष्ट्र' और 'पुण्यभूः' की स्पष्ट और प्रत्यक्ष प्रतिक्रिया हैं।

यह उस पौराणिक कथा का स्मरण दिलाता है जिस में शंकरजी से वरदान प्राप्त कर भस्मासुर ने पार्वती पर मोहित हो उन्हे अपना लेने के लिये शंकर जी को ही भस्म कर डालने की ठान ली और इसके लिये उसी वरदान का उपयोग किया जो उसे शंकर से प्राप्त थी। शंकर को जान बचाना कठिन हो गया। किंतु हिंदुत्व के आवेश में इन अत्यन्त प्रचलित और महत्वपूर्ण पौराणिक उपदेश पर ध्यान देने के लिये हिन्दू-हित रक्षकों को कहां अवसर था। जो शक्तिहीन और पराक्रम विहीन होता है, वह लम्बी-लम्बी डींगे हाँकता है, वास्तविक शक्ति से सामना करने का साहस उसमें नहीं होता। इस परिस्थिति में वह उस शक्ति की निन्दा करता है जो सामना करने की क्षमता रखती है और अपना रोब बनाये रखने के लिये आकर्षक शब्द जालों और जँचने वाले नारों का प्रयोग करता है और इस प्रकार निम्नतर जन-आवेश उभाड़कर अपना अस्तित्व बचाने का प्रयत्न करता है। किन्तु दुर्भाग्य से इस प्रयत्न में जो जाल वह बुनता है, उसमें वह स्वयं अपने ही फँसता है। हिन्दू महासभा की निःसहित और निष्क्रियता के कारण उसके लिये कोई स्थान कभी नहीं था वह जनशक्ति-सम्पन्न कांग्रेस का विरोध कर और ऊँची-ऊँची बातें बना कर ही टिक सकने की आशा कर सकती थी। पैर के नीचे की सरकती हुई पृथ्वी को किसी प्रकार बचाये रखने की व्यग्रता और उतावली में 'हिन्दू राष्ट्र' और 'आर्यभूः' नारों की सृष्टि हुई। किन्तु प्रत्येक अवसर की घात में लगी हुई बृटिश

सरकार कभी चूकती नहीं हैं। अत्यन्त आवश्यक और नाजुक समय में महासभा के अध्यक्ष के आविष्कार ने वृटिश सरकार को अवसर प्रदान किया। एडवर्ड थाम्पसन ने लिखा है, "गत शरद अर्थात (अगस्त-सितम्बर १९३९ ई०) में मुझे यह जान कर अत्यन्त आश्चर्य हुआ कि कुछ सरकारी अफ्सर पाकिस्तान के प्रश्न में बड़ी दिलचस्पी ले रहे थे" यदि वृटिश शासन के चालाक अफ्सरों ने हिन्दू महासभा के आविष्कार का सूत्र पकड़ कर मुसलिम लीग द्वारा मार्च सन् १९४० ई० में पाकिस्तान का प्रस्ताव पास करने के पहले ही पाकिस्तान के लिये धरातल तैयार कर दिया था तो इससे आश्चर्य की कोई बात नहीं है, वल्कि परिस्थितियों में यही संभव है। पाकिस्तान जैसा शब्द हिन्दुस्तान में पहले भी दो-एक बार अवश्य सुना गया था, किन्तु भिन्न राष्ट्र के आधार पर पृथक मुसलिम राज्य की माँग हिन्दू महासभा के प्रसिद्ध आविष्कार हिन्दू राष्ट्र और पुराभूः के वाद दिया जाना महत्वपूर्ण है। हिन्दू राष्ट्र के नारे का अर्थ था हिन्दुस्तान के अन्तर्गत अनेक राष्ट्रों की सृष्टि का निमंत्रण। गम्भीर तथा वास्तविक राजनीति के लिये नारे व्यर्थ और सराहीन अवश्य हैं। किन्तु साम्राज्य संचालन की नीति में पटु वृटिश अधिकारियों के हाथ में ये ही नारे शक्तिशाली अस्त्र हो जाते हैं। घटनाओं के क्रम एक दूसरे से इस प्रकार निकट हैं कि यदि अपने ही स्वार्थ के प्रतिकूल न होता तो महासभा के वीर अध्यक्ष अपने आविष्कार पर स्वयं गर्व करते और स्वयं

उसका प्रचार करते, किन्तु दुर्भाग्य से उन्हीं का आविष्कार उनका शत्रु बन गया।

प्रतिवर्ष हिन्दू महासभा का अधिवेशन नियम पूर्वक होता है. काँग्रेस की निन्दा, हिन्दुओं से काँग्रेस का वहिष्कार करने और हिन्दू महासभा का संगठन दृढ़ करने का अनुरोध और पाकिस्तान का विरोध हिन्दू महासभा के अधिवेशनों की मुख्य विशेषतायें हैं। इन अधिवेशनों में पाकिस्तात की उत्पत्ति और उसके विशाल रूप धारण करते जाने का कुल उत्तरदायित्व कांग्रेस के सर मढ़ा जाता है। किन्तु हिन्दुस्तान के राजनीतिक और सामाजिक जीवन के भविष्य की लेशमात्र की चिन्ता न कर अत्यन्त उच्छृङ्खल, अनुत्तरदायित्वपूर्ण और उत्तेजक बातें हिन्दू महासभा के मंच से कही जाती हैं। दिसम्बर सन् १९३८ ई० में नागपुर के अधिवेशन में अध्यक्षपद से भाषण करते हुये श्री सावरकर ने कहा था :—

"जब हम बदला लेने की स्थिति में होंगे और जब बदला चुकायेंगे तो मुसलमानों की अक्ल एक दिन में ठिकाने आ जायेगी। हम लोग केवल हिन्दू प्रान्तों में ही हिन्दूस्वार्थों की रक्षा नहीं करेंगे, वल्कि उन प्रान्तों में जहाँ हिन्दू अल्पसंख्यक हैं, उन पर अत्याचार करने का प्रत्येक प्रयत्न मुसलमानों के लिये अभिशाप होगा और कई गुना अधिक बल के साथ उनके सर पड़ेगा। उनकी प्रतिक्रिया मुसलिम स्वार्थों के लिये इतनी अहित-कर होगी कि मुसलमान भले लड़कों की भाँति व्यवहार करना सीख जायेंगे।"

हिन्दू महासभा के एक दूसरे महारथी डा० मुंजे काशीयज्ञ में सम्मिलित होने बनारस नवम्बर १९४४ ई० में आये। उन्होंने काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के छात्रों के सामने भाषण देते हुये कहा कि हिन्दुस्तान हिन्दुओं का है; वह कदापि मुसलमानों और दूसरों का नहीं हो सकता है। दुर्भाग्यवश डा० मुंजे का भाषण छात्रों को प्रिय नहीं लगा और भाषण आरम्भ करते ही भाषण स्थगित कर देना पड़ा। इसके कुछ दिन पूर्व श्री मुंजे ने कहा था कि 'हिन्दुस्तान हिंदुओं का देश है और सिख, मुसलमान तथा ईसाई सभी हिंदू हैं।' अर्थात् हिंदुस्तान में दूसरी जातियाँ अपनी संस्कृत, अपनी सभ्यता, अपनी परम्परा और अपनी भाषा तथा साहित्य के साथ नहीं रह सकती हैं; यदि वे अपनी जातीय विशेषताओं को छोड़ने में असमर्थ हों तो उन्हें हिन्दुस्तान में स्थान नहीं है, उन्हें किसी अन्य मार्ग का आश्रय लेना पड़ेगा। हिंदुत्व के इस ईर्ष्यालु नेता ने अपने भरसक पाकिस्तान से कम की गुञ्जाइश शेष नहीं छोड़ी है।

राजनीतिक चाल-ढाल में हिंदू महासभा ने शक्ति तथा सम्मान बनाये रखने के लिये मुसलिम लीग का अनुसरण किया है। हिंदुओं के विरुद्ध अत्याचार का नारा लगाया गया और अप्रमाणित तथा जानबूझ कर असत्य बातों को सर्व साधारण में प्रचार करने में तनिक भी संकोच नहीं किया जाता है। काँग्रेस मंत्रिमंडलों की निन्दा यह कहकर की गई कि उसके शासनकाल से हिंदुओं की दशा पहले से और अधिक गिर गई और इसलिये भी की गई कि काँग्रेस हिंदुओं का पक्ष नहीं लेती, बल्कि मुसल-

मानो को प्रसन्न और सन्तुष्ट रखने में व्यस्त रहती है। सन् १९३७ ई० में करांची में भाषण करते हुये भाई परमानन्द ने कहा था :—

"६ हिंदू प्रान्तों में काँग्रेस मंत्रिमंडल काम कर रहे हैं और शेष ४, ५ प्रांतों में मुसलिम मंत्रिमंडल का शासन है। हिंदू प्रांतों में काँग्रेस का रुख मुझे बड़ा उलझनपूर्ण प्रतीत होता है, जब कि मुसलिम मंत्रिमंडल स्वच्छन्दता पूर्वक काँग्रेस या हिंदुओं का कोई ख्याल किये विना मुसलमानों के स्वार्थ पर ध्यान दे रहे हैं। काँग्रेस मंत्रिमंडल मुसलमानों को प्रसन्न करने वाले कार्यक्रम से बँधे हैं और मुसलमानों की अनन्त अशान्त साम्प्रदायिक प्यास को संतुष्ट करने में लगे हैं। किसी भी निष्पक्ष व्यक्ति के लिये यह स्पष्ट है कि यदि मुसलिम प्रान्तों के हिन्दू अपने स्वार्थों की रक्षा करना चाहते हैं और आत्मसम्मान तथा इज्जत के साथ रहना चाहते हैं तो उन्हें हिन्दू दल के झंडे के नीचे संगठित होना पड़ेगा।"

देशी रियासतों के सम्बन्ध में काँग्रेस की नीति का महासभा ने प्रबल विरोध किया है और रियासतों में शासन सुधार तथा जनतंत्र संस्था की माँग की निन्दा करते हुये काँग्रेस पर हिन्दू विरोधी होने का दोष लगाया है। देशी रियासतें इस २० वीं शताब्दी में भी अत्यंत निरंकुश शासन के उदाहरण हैं। यदि वृटिश सासन अपने साम्राज्य के स्वार्थ के लिये बलपूर्वक उनकी स्थिति ज्यों की त्यों बनाये न रखता तो बहुत पहले ही इन रियासतों का चिन्ह तक मिट गया होता। संसार में शायद ही

ऐसे मध्यकालीन शासन कहीं और मिलें। किंतु विगतयुग के इन अवशेष कलंकों को, वृटिश साम्राज्य के इन शक्तिशाली अड्डों के विरुद्ध जन आन्दोलन का प्रवाह जब उग्ररूप धारण करने लगा और उसे काँग्रेस का समर्थन जब पास होने लगा तो हिंदू महासभा की व्यग्रता असीम रूप से बढ़ गई और जो अब तक देशी रियासतों के प्रति एकदम उदासीन और चुप थी, बड़े रोष से गर्ज उठी। सन् १९३८ ई० में नागपुर के अधिवेशन में हिंदू महासभा ने यह प्रस्ताव पास किया।

"हिंदू महासभा घोषित करती है उत्तरदायी सरकार के नारे के बहाने देशी रियासतों के प्रबन्ध में हस्तक्षेप करने और देशी रियासतों को तंग करने की काँग्रेस की नीति उचित नहीं है और काँग्रेस की यह क्रियाशीलता केवल हिन्दू रियासतों में ही सीमित है और केन्द्रित है। इस नीति की व्यवहारिक क्रियाशीलता से मुस्लिम रियासतें उदाहरणतः हैदराबाद; भोपाल, भावलपुर, रामपुर, मालर कोटला इत्यादि अछूती हैं, इसलिये यह सभा घोषित करती है कि कांग्रेस की यह नीति और व्यवहार केवल अपनी शक्ति का अनुचित लाभ उठाकर हिंदू रियासतों, विशेष कर ट्रावनकोर, मैसूर और बड़ौदा जैसी उन्नतिशील रियासतों को परेशान करना चाहती है।"

उन रियासतों में जहाँ हिन्दू बहुसंख्यक हैं किन्तु शासक मुसलमान हैं, उदाहरणतः हैदराबाद और भोपाल में किसी भी आन्दोलन को हिन्दू महासभा का समर्थन प्राप्त होता है। यह समर्थन जनहित और जन-अधिकार तथा जनतंत्र के लिये नहीं

दिया जाता है, बल्कि हिन्दू महासभा हिन्दू-हित का श्रेय चाहती है और इस श्रेय को प्राप्त करने के लिये हिन्दू महासभा के महारथी किस सीमा तक असत्य और अप्रमाणित बातों का प्रचार कर सकते हैं। जयपुर रियासत की एक निकट की घटना से अनुमान किया जा सकता है। सर इस्माइल जयपुर रियासत के दीवान नियुक्त हुये। एक हिन्दू रियासत में मुसलमान दीवान की नियुक्ति हिन्दू महासभा को अच्छी नहीं लगी। प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्षरूप से महासभा ने अपने इस असन्तोष को प्रकट तो किया किन्तु यह पर्याप्त नहीं था, किसी और अधिक आकर्षक विषय का आश्रय ग्रहण करना आवश्यक प्रतीत हुआ। हिन्दी ने इस आवश्यकता की पूर्ति की। सर इस्माइल पर इस बात का अभियोग लगाया गया कि जयपुर रियासत की परम्परा के प्रतिकूल उन्होंने वहाँ उर्दू की न केवल पढ़ाई अनिवार्य कर दी है बल्कि सरकारी कारबार की लिपि और भाषा उर्दू कर दी है। यह अभियोग न केवल निराधार था, बल्कि संयुक्त प्रान्त के भूतपूर्व शिक्षामन्त्री श्री सम्पूर्णानन्द जी ने इसे एकदम असत्य बताया। उन्होंने कहा था कि जयपुर रियासत का कारबार उर्दू में पहले से ही होता था और सर इस्माइल ने रियासत में कोई भी नई बात कम-से-कम लिपि या भाषा सम्बन्धी नहीं की*। इस प्रकार के अनर्गल और असत्य प्रचार से किसी भी शिष्ट तथा सभ्य व्यक्ति का मस्तक लज्जा से झुक जायेगा, किन्तु

* साप्ताहिक 'आज' उर्दू के ग्रीष्म सन् १९४४ के लेखक के प्रमाण पर।

केवल प्रचार आधार पर स्वार्थ पोषण करने वाले व्यक्ति या संस्था में यदि अप्रतिभ हुआ करे तो उनका अस्तित्व ही खतरे में पड़ जायेगा।

हिन्दुत्व तथा हिन्दू-हित की रक्षा का दावा करने वाली हिन्दू महासभा और दूसरी सभी रूढ़िवादी संस्थाओं की ईमानदारी तथा गम्भीरता केवल उत्तेजनापूर्ण भाषण तक और प्रचारों तक ही सीमित है। यदि विश्लेषण की आवश्यकता हो तो कुछ घटनाओं पर प्रकाश डालना पर्याप्त होगा। गोलमेज के परिणाम स्वरूप श्री रामजे मैकडानल्ड के साम्प्रदायिक निर्णय ने हिन्दू सम्प्रदाय को सवर्ण तथा अछूत दो अलग-अलग सम्प्रदायों में बाँट दिया। यह अवसर था जब हिन्दुत्व के रक्षक भाषणों के अतिरिक्त वास्तविक बलिदान और सक्रिय कार्य द्वारा इस अनर्थ का प्रतिकार करते किन्तु महासभा की व्याख्या के अनुसार हिन्दू-हित-द्रोही महात्मा गाँधी इस साम्प्रदायिक निर्णय को रद्द कराने के लिये जब अपने प्राणों की बाजी लगा दिये थे तो महासभा चैन की नींद सो रही थी।

हिन्दू महासभा के मदुरा सम्मेलन में वृटिश सरकार के विरुद्ध सक्रिय रूप से प्रत्यक्ष कार्य करने का प्रस्ताव उपस्थित हुआ, किन्तु लम्बे वाद-विवाद के बाद वह प्रस्ताव गिर गया। वृटिश सरकार के विरुद्ध प्रत्यक्ष कार्य करने का प्रश्न महासभा में केवल एक ही बार उपस्थित हुआ, किन्तु वह भी महासभा के मंच पर ही समाप्त हो गया। सक्रिय कार्य करने की क्षमता महासभा से भिन्न जैसी संस्थाओं में हुआ करती है।

अभी पंजाब की उस दिन की घटना एकदम ताजी है जब पंजाब सरकार की आज्ञा से डा० श्यामाप्रसाद मुकर्जी के सभापतित्व में होने वाले अधिवेशन का जुलूस अकारण ही डंडे के बल से तितर-वितर कर दिया गया। हमें डा० मुकर्जी की यह घोषणा भी अभी नहीं भूली है, जब उन्होंने कहा कि पंजाब सरकार के उस अनुचित कार्य के विरुद्ध यदि आन्दोलन किया जावे तो वे सर्वप्रथम उस आन्दोलन में सम्मिलित होंगे। इस घोषणा के पश्चात भी पंजाब सरकार के निन्दनीय व्यवहार के विरोध में हिन्दू महासभा ने कोई प्रत्यक्ष कार्य करने का साहस नहीं किया। हिन्दुस्तान के लोगों को वह घटना और घोषणा अभी निश्चय ही भूली ही न होगी, किन्तु महासभा अब शायद प्रयत्न करने पर भी उसे याद न कर पाती होगी।

इससे भी ताजी घटना सिंध की है। सिन्ध सरकार ने सत्यार्थ प्रकाश के एक सम्मुल्लास पर प्रतिबन्ध लगा दिया है। हिन्दू-महासभा ने अखबारों में और वक्तव्यों में उछल कूद तो बहुत की किन्तु इससे आगे बढ़ना उसके धर्म के बिरुद्ध होने से कुछ नहीं किया जा सका। जिस सिन्ध सरकार ने यह प्रतिबन्ध लगाने का आदेश दिया ' उस में हिन्दू मंत्री भी थे ' जिन्हें महासभा अपना मंत्री होने का दावा करती है। किन्तु महासभा के तक़ाजा करने पर भी प्रतिबन्ध के निरोध में पदत्याग करना महासभा के हिन्दू मत्रियों को मंजूर न था। हिन्दू हित और हिन्दुत्व की रक्षा का इस से बढ़ कर प्रमाण कहाँ मिल सकता है।

अपने जीवन के लम्बे इतिहास में हिन्दू महासभा ने बृटिश

सरकार या मुसलिम लीग के विरुद्ध कोई प्रत्यक्ष कार्य क्यों नहीं किया ? इस परतन्त्र और पद दलित देश में प्रत्येक अवसर पर और प्रतिक्षण प्रत्येक वर्ग और प्रत्येक व्यक्ति का अपमान और दमन हो रहा है, तो भी महासभा या हिंदुत्व की रक्षक अन्य संस्थायें एक बार भी वास्तविक क्रियाशीलता और विरोध का साहस क्यों नहीं करतीं ? क्या यह निरीभावुकता है या एक मात्र उसी का उत्तरदायित्व है जिससे काँग्रेस अकेले ही वर्षों से अत्याचार और अपमान के विरुद्ध कष्ट सहन और वलिदान के विकट और संकट पूर्ण मार्ग का अनुसरण कर रही है ? विरोध करना तो दूर रहा हिन्दू महासभा प्रसन्नता पूर्वक सरलता के साथ मुसलिम लीग के साथ सहयोग करती है और अवसर प्राप्त होने पर उसके साथ मिलकर काम करती है। सिन्ध, सीमाप्रांत, और आसाम के लीग मंत्रिमण्डलों के साथ हिन्दू महासभा केवल सहयोग ही नहीं करती है बल्कि इन प्रांतों के लीग मंत्रिमण्डलों में महासभा के सदस्य मंत्रीपद पर काम कर रहे हैं। हिन्दुओं पर अन्य अनेक असहनीय अत्याचारों के अतिरिक्त सिन्ध की लीगी सरकार द्वारा हिन्दू सम्प्रदाय के एक विशिष्ट वर्ग के धार्मिक ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश पर प्रतिवन्ध लगाने और पंजाव सरकार द्वारा हिन्दू जुलूस पर अकारण लाठी वर्षा कर उसे तितर-वितर करने के पश्चात भी लीग मंत्रिमण्डलों के साथ सहयोग का सम्वन्ध अक्षुण्ण वनाये रखने में हिन्दू सभा और उसके मंत्रियों को न तो कोई दिक्कत मालूम होती है और न हिंदूहित की रक्षा के उद्देश्य में कोई

अन्तर उपस्थित होता दीख पड़ता है। २७ महीने के शासन के पश्चात् युद्ध सम्बन्धी बृटिश नीति के विरोध में कांग्रेस मंत्रि-मण्डलों के इस्तीफा देने के पश्चात् मुसलिम लीग के साथ हिंदू महासभा ने भी 'मुक्ति दिवस' मनाया था। सन् १९४२ के आन्दोलन का उत्तरदायित्व काँग्रेस के सर मढ़ते हुये लीग और महासभा दोनों ही ने काँग्रेस की कड़ी आलोचना और निन्दा की। आगा खाँ महल में नज़रबन्द महात्मा गाँधी के उपवास के समय सरकार की नीति से असहमत हो गवर्नर जनरल की कौंसिल से हिंदू सदस्यों ने जब पद त्याग करना निश्चित किया तो हिंदू महासभा के अध्यक्ष ने इस निश्चय का विरोध किया जिसके परिणाम स्वरूप सर ज्वालाप्रसाद अपने स्थान पर पूर्ववत् बने रहे। 'कस्तूर वा फण्ड' के सम्बन्ध में लीग का रुख यह है कि वह उनके विरुद्ध भीषण षड़यन्त्र है और कुल धन उनके विरुद्ध प्रचार करने में व्यय होगा। महासभा के अध्यक्ष ने लीग का साथ और अधिक निर्भीकता के साथ दिया है। 'कस्तूरा वा फण्ड' को हिंदूहित विरोधी कार्यों में खर्च किये जाने का कारण बताते हुये उसमें एक पाई भी न देने के लिये हिंदुओं को आदेश दिया।

स्वयं तो हिंदू महासभा ने कार्य क्षेत्र में मुसलिम लीग के साथ इस प्रकार सहयोग और घनिष्टता का परिचय दिया है, किंतु काँग्रेस और महात्मा गाँधी पर इस बात का दोष लगाया जाता है कि दोनों ने मुसलिम लीग को बराबर दाद देकर उसे बढ़ा दिया है और उन्हीं के व्यवहार तथा नीति के कारण

मुसलिम लीग वर्तमान परिस्थिति में पहुँच गई है जिसके कारण सर्वत्र हिंदूहित का हवन हो रहा है। सितम्बर सन् १९४४ ई० में गाँधी-जिन्ना वार्तालाप असफल हो जाने के बाद अखण्ड हिंदुस्तान सम्मेलन के समर्थन के लिये अनुरोध करते हुये अपने एक वक्तव्य में श्री सावरकर ने कहा था, "भारतीय राष्ट्रीय काँग्रेस हिंदुस्तानी राष्ट्रीयता की इकाई के टुकड़े करने के लिये ऐसे देश द्रोही षड़यंत्रों में प्रवेश कर रही है, जिससे संसार के नक्शे से हिंदुस्तान का नाम ही मिट जाना चाहता है।"

कार्य क्षेत्र में लीग के साथ सहयोग करने वाली महासभा ने काँग्रेस पर दोषारोपण करने के साथ ही व्याख्यान के रंग-मंच से मुसलिम लीग के विरोध में संसार प्रसिद्ध सेना नायकों की तेजस्विता और प्रवृत्ति का परिचय दिया है, और हिंदुस्तानी राष्ट्रीयता की रक्षा के लिये चिन्तित श्री सावरकर ने स्वयं सर्व प्रथम हिंदुस्तान के अन्तर्गत हिंदू और मुसलिम दो राष्ट्रों का आविष्कार किया था।

इस विचित्र गतिविधि को देखकर बुद्धि एक बार स्तब्ध-सी हो जाती है और हिंदुस्तान की राजनीति में इतनी अव्यवस्था, इतनी उलझनें, और ऐसे झमेले देखकर सत्य-असत्य तथा वास्तविक-अवास्तविक निर्णय असंभव प्रतीत होने लगता है। किन्तु परिस्थितियों की साधारण विवेचना भ्रम का पर्दा हटा कर स्पष्ट चित्र सामने उपस्थित कर देगी। हिंदू महासभा सत्ता-धारी वर्ग का प्रतिनिधित्व करती है। इस संस्था में राजा, रईस,

ताल्लुकेदार, बड़े-बड़े ज़मींदार और उच्च पदाधिकारी हैं। और महासभा उन अवसर वादियों का एक गुट है जो पद तथा सम्मान और सस्ते नेतृत्व के लोभ से इस संस्था से सम्बन्धित हैं। इनके अतिरिक्त सन् १९३५ ई० के पश्चात् अल्पसंख्यक हिंदू प्रांतों में उच्च वर्ग के वे शिक्षित लोग हिंदू महासभा में अत्यधिक दिलचस्पी लेने लगे हैं जो नये शासन विधान के कार्यान्वित होने के पूर्व तक अपनी विशेष स्थिति के कारण उन प्रान्तों की राजनीति और शासन में महत्वपूर्ण अधिकार तथा प्रभाव रखते थे। सन् १९३५ के शासन विधान ने वृटिश हिंदुस्तान का राजनीतिक ढाँचा एक दम बदल दिया। प्रान्तों में सुसज्जित पार्लामेंटरी शासन व्यवस्था उस अधिकार तथा सम्मान के साथ काम करने लगी, जिसकी पूर्व व्यवस्था से कोई तुलना नहीं थी। राजनीतिक प्रभुत्व अब तक जिन लोगों के हाथ में रहता आया था, वे स्वभावतः इस आकर्षक व्यवस्था को भी अपना ही उत्तराधिकार समझे, लेकिन नये शासन विधान के विस्मृत मताधिकार के कारण (इस विधान के अनुसार प्रत्येक १०० बालिग स्त्री-पुरुषों में २७-४३ को वोट का अधिकार प्राप्त हुआ और यह संख्या पहले से बहुत अधिक है) अनेक प्रतिबन्धों के होने पर भी शक्ति इस वर्ग विशेष के हाथ से निकल कर प्रान्तों के बहुसंख्यक सम्प्रदाय के हाथ में आ गई। पद तथा सम्मान के आकर्षक शान से वञ्चित होने के अतिरिक्त इस नई परिस्थिति के कारण इस वर्ग के स्थायी स्वार्थ के मूल पर ही आघात होता दीख पड़ा। झुंझलाहट तथा निराशा में

हिंदू-महासभा का आश्रय लेना ही इस वर्ग को युक्तिसंगत दीख पड़ा। बंगाल और पंजाब में हिंदू महासभा का इस समय इसीलिये विशेष प्रभाव दीख पड़ता है।

इन स्थिर स्वार्थों की प्रतिनिधि संस्था हिंदू महासभा के लिये हिंदुस्तान की वर्तमान राजनीतिक सामाजिक तथा आर्थिक व्यवस्था को जिस प्रकार भी संभव हो सके ज्यों की त्यों बने रहने में सहायता देने का प्रयत्न करते रहना श्रेयस्कर है। सन् १९२१ ई० के उग्र जन आन्दोलन के शिथिल पड़ते ही इस संस्था ने नियमित जीवन आरंभ किया। सन् १९३० तथा १९३२ ई० के काँग्रेस आन्दोलनों की व्यापकता और तीव्रता ने इन स्थिर स्वार्थ वर्गों को भली-भाँति संगठित हो जाने के लिये सचेत कर दिया। इसके पश्चात् ही गोलमेज सम्मेलन के समय से हिंदू महासभा की बढ़ी हुई क्रियाशीलता का कारण स्पष्ट है। सन् १९३५ ई० के शासन विधान के पश्चात् काँग्रेस सरकारों द्वारा कराँची काँग्रेस बल्कि कई अंशों में उससे भी उग्र आर्थिक नीति कार्यान्वित होना इन वर्गों के लिये एक बेचैन चेतावनी थी। किंतु इस उग्रता का यहीं अन्त भी नहीं था। हिंदू महासभा इस बात को समझने में किसी से पीछे नहीं थी कि जन शक्ति जितनी तीव्रता से बढ़ रही है, और उसकी आकाँक्षायें जिस सीमा तक पहुँच रही हैं, उसका एक अंशमात्र भी काँग्रेस सरकार पूरा करने से असमर्थ हो रही थी। हिंदू महासभा आरंभ ही से परिस्थिति का अध्ययन सतर्कता के साथ कर रही थी, वह प्रत्येक दल और संस्था की

नीति शक्ति और उद्देश्य को पहचान रही थी और इसलिये वह समझती थी कि अपने स्थिर स्वार्थों की रक्षा के लिये किसका साथ देना होगा, और किस मार्ग का अनुशरण करना होगा।

इसी दृष्टिकोण के अनुसार महासभा के चित्रित जीवन में जन-आंदोलन तथा आकाँक्षाओं की प्रतिनिधि संस्था काँग्रेस का नियमित तथा दृढ़ विरोध और परस्पर विरोधी किंतु काँग्रेस विरोधी सभी संस्थाओं के साथ कार्य क्षेत्र में नियमित सहयोग, ये दो बातें निश्चित तथा स्पष्ट दीख पड़ेंगी। इस नीति के अनुसार धर्मसंघ के साथ हिंदू महासभा का मेल बैठ सकता है, रूढ़ि बन्दी और भीषण प्रतिक्रियावादी सन्यासियों के यज्ञों को जिसे बृटिश सरकार की कृपा प्राप्त हो और जिसमें बृटिश सरकार के लिये शुभ कामना और काँग्रेस तथा प्रत्येक प्रगतिशील कार्य (बनारस के यज्ञ के अवसर पर वर्धा वुनियादी शिक्षा का प्रहसन करते हुये कहा गया था कि इस शिक्षा पद्धति से 'वर्धा' अर्थात् बैल ही तो पैदा होंगे) की जाती हो हिंदू महासभा का समर्थन प्राप्त हो सकता है और इसी नीति के अनुसार मुसलिम लीग के साथ सहयोग करने में भी महासभा के मार्ग में कोई अड़चन नहीं उपस्थित होती है। अपने स्वार्थ तथा दृष्टिकोण के अनुकूल ही हिंदू महासभा ने उन प्रत्येक उपायों को उलझन पूर्ण तथा विवाद ग्रस्त बना देने का प्रयत्न किया है, जिसके व्यवहार में आ जाने से वर्तमान व्यवस्था में प्रगतिशील परिवर्तन की आशंका थी। सभी वर्ग

तथा सम्प्रदायों को दृष्टि में रख कर हिंदुस्तान का शासन विधान बालिगमताधिकार द्वारा नियुक्त विधान सम्मेलन द्वारा तैयार किये जाने की सूझ पं० जवाहर लाल ने उपस्थित की। विधान तैयार करने की यह साधारण लोकतंत्र प्रणाली है। किंतु हिंदू महासभा को यह सूझ अव्यवहारिक प्रतीत हुई और इसके स्थान पर उसने हिंदुस्तान के सम्राट से विधान बनाने का अनुरोध किया। महासभा अपने इस प्रहसनीय अनुरोध का ठीक अर्थ समझ रही थी, किंतु उसका उद्देश्य विधान सम्मेलन का प्रश्न झमेले में डाल कर उससे उत्पन्न होने वाले परिणाम को निश्चित रूप से असंभव बना देना था। हिंदू-मुसलिम एकता के प्रश्न पर भी महासभा का रुख आरंभ से स्पष्ट था। हिंदू-मुसलिम एकता का निश्चित अर्थ इस देश की राजनीतिक उन्नति और प्रगति के मार्ग से एक बड़ी रुकावट दूर कर वर्तमान व्यवस्था में मौलिक और उन्नति शील परिवर्तन के लिये मार्ग प्रसस्त करना है। हिंदू महासभा ने इस आशंका पर सर्वदा सतर्क दृष्टि रखी है और काँग्रेस के हिंदू-मुसलिम समझौते के सभी प्रयत्नों को व्यर्थ कर देने में हिंदू महासभा ने महत्व पूर्ण कार्य किया है। गोलमेज सम्मेलन के अवसर पर इंगलैंड में हिंदुस्तान के सभी प्रतिनिधि एक सम्प्रदायिक निर्णय पर पहुँचने के लिये प्रयत्नशील हुये और यह प्रयत्न सफलता की अत्यन्त निकट सीमा तक पहुँच गया। पंजाब असेम्वली में केवल एक स्थान का अन्तर था; मुसलमान पंजाब में एक स्थान और चाहते थे। यदि यह

स्थान अत्यन्त साधारण माँग स्वीकृति कर ली गई होती तो स्वराज्य जैसी वस्तु शक्ति और साहस के साथ माँगी जा सकती थी और इस माँग के पीछे अभूत पूर्व नैतिक बल होता, किंतु यही वस्तु थी जो महासभा के स्वार्थ के विरुद्ध थी। इसलिये उसने हठ पूर्वक एक स्थान की मुसलिम माँग को अस्वीकृत कर हिंदू-मुसलिम अन्तर को सर्वदा की भाँति बनाये रखने में सफलता प्राप्त की। गोल मेज सम्मेलन तथा साम्प्रदायिक निर्णय के पश्चात् काँग्रेस अध्यक्ष डा० राजेन्द्रप्रसाद और लीग अध्यक्ष श्री जिन्ना में हिंदू-मुसलिम समझौते की कुछ शर्तें निश्चित हुईं। श्री जिन्ना इस समझौते की अन्तिम मान्यता के लिये काँग्रेस तथा लीग के अतिरिक्त हिंदू महासभा की भी सहमति और स्वीकृति होने के लिये हठ कर गये। किन्तु हिन्दू महासभा की स्वीकृति प्राप्त करना असंभव होने से वह प्रयत्न भी व्यर्थ हो गया। जेल से बाहर आने के पश्चात् देश की दयनीय परिस्थिति से ऊब कर महात्मा गांधी ने सितम्बर सन् १९४४ ई० में हिन्दू-मुसलिम प्रश्नों को सुलझाने का एक महान प्रयत्न किया। समझौता का आधार तो दूर रहा, इस दिशा में गाँधी जी का प्रयत्न ही हिन्दू महासभा-अध्यक्ष को अप्रिय लगा। महासभा अध्यक्ष श्री सावरकर ने यह घोषणा करते हुये कि हिन्दू-मुसलिम समझौता हो जाने पर भी बृटिश सरकार शक्ति हस्तान्तरित नहीं करेगी, गांधी जी के प्रयत्न को व्यर्थ बतलाया और गान्धी जी द्वारा पाकिस्तान की माँग को सिद्धांत रूप में स्वीकृत कर लेने को देश के लिये अत्यन्त घातक

घोषित करते हुये अखण्ड हिन्दुस्तान आंदोलन को सफल बनाने के लिये पूर्ण रूप से संगठित हो जाने पर ज़ोर दिया।

कांग्रेस की बढ़ती हुई शक्ति और युद्ध से पैदा हुई परिस्थिति ने बृटिश सरकार को हिन्दूमहासभा के साथ विशेष सहानुभूति रखने के लिये विवश किया। वर्तमान भीषण युद्ध के पूर्ववातावरण में कांग्रेस सरकारें स्थापित हो जाने के साथ ही बृटिश सरकार ने अविलम्ब हिन्दू महासभा और मुसलिम लीग दोनों को प्रोत्साहित करना आरंभ किया। जनशक्ति का प्रतिरोध बराबर करते रहने के लिये इन दोनों संस्थाओं को आवश्यक सुविधायें और क्षमता प्रदान किया गया। बृटिश सरकार कीदाद के कारण युद्ध काल में महासभा की जो शक्ति बढ़ी है उसे महासभा ने केवल प्रसन्नता पूर्वक स्वीकार ही नहीं किया है, बल्कि उसका हार्दिक स्वागत भी किया है। दिसम्बर सन् १९४० ई० में मदुरा अधिवेशन में अध्यक्ष पद से भाषण करते हुये श्री सावरकरने कहा था कि "किस प्रकार युद्ध के कारण बृटिश सरकार को पहले की भिन्न कि काँग्रेस-लीग हिन्दुस्तान की जनता के बराबर हैं। भूलना पड़ा है और अब नई भिन्न हिन्दू महासभा लीग और काँग्रेस तीनों मिलकर हिंदुस्तान का पूर्ण प्रति निधित्व करती हैं सीखनी पड़ी है।" नवम्बर सन् १९४४ ई० में थक जाने के कारण हिन्दूमहासभा का सभापतित्व आगे के लिये ग्रहण करने से असमर्थता और अनिच्छा प्रकट करते हुये श्री सावरकर ने अपने एक वक्तव्य मे कहा था :—

"हिन्दू बालू की भाँति अब बिखरे नहीं रह गये हैं। इन

सात वर्षों के अथक परिश्रम के कारण हिन्दू महासभा हिन्दू शक्ति का गढ़ बन गई है। सभी तूफानों के विरोध में अपने विश्वास के कारण ही खड़ी रह कर यह हिन्दूहित की रक्षक एक मात्र मान्य संस्था हो गई है।"

जिन सात वर्षों में हिन्दू महासभा इतनी उन्नति कर गई है, वे युद्ध के वर्ष हैं। युद्धकाल में हिन्दू महासभा और मुसलिम लीग दोनों ने हिन्दुस्तान के राजनीतिक रंगमंच पर मन मानी उछल कूद की है। हिन्दू महासभा के अध्यक्ष के इन स्पष्ट उद्‌गारों से महासभा के इस उद्देश्य में कोई सन्देह नहीं रह जाता है कि वह बृटिश मंत्री का न केवल स्वागत करती है, बल्कि अपने अस्तित्व और उत्थान के लिये उसकी आवश्यकता का पूर्ण अनुभव करती है। जिन स्थिर स्वार्थी और अवसरवादी गुटों का वह प्रतिनिधित्व करती है, वे बृटिश साम्राज्य के दृढ़ स्तंभ हैं और बृटिश साम्राज्य उनके अस्तित्व का मूल आधार है। इस आधार से चिपके रहना और उसे दृढ़ बनाना हिन्दू महासभा का एकमात्र लक्ष्य है। हिन्दू-मुसलिम समझौते को असंभव बना कर पहले हिंदू और मुस्लिम दो राष्ट्रों की सृष्टि की गई, किन्तु अब पृथक मुसलिम राष्ट्र और उसके आधार पर की जाने वाली माँग पाकिस्तान का प्रबल विरोध कर अखण्ड हिन्दुस्तान का समर्थन किया जा रहा है और उसके लिये जो आन्दोलन चलाया जा रहा है, उसे और भी भीषण बनाने की धमकी दी जा रही है। इस प्रकार सर्वदा परस्पर विरोधी परिस्थितियों की सृष्टि कर

हिन्दुस्तान में वृटिश साम्राज्य के बने रहने की अत्यन्त अनुकूल परिस्थिति उत्पन्न की गई है।

इस साधारण विवेचना से यह स्पष्ट है कि हिंदू महासभा एक विशुद्ध राजनीतिक संस्था है। हिंदू हित और हिंदुत्व उसके लक्ष्य की पूर्ति के साधन और वहाना मात्र है। अनेक प्रकार से साम्प्रदायिकता की आग प्रज्वलित करने का प्रयत्न हिंदुत्व के रक्षकों ने किया है। शुद्धि और संगठन के परिणाम स्वरूप-तब लीग और तन्जीम का आन्दोलन शुरू हुआ और यह स्वाभाविक भी था। ऐसा कोई अवसर नहीं है और न कोई ऐसी परिस्थिति है जब हिन्दुत्व के रक्षकों की ओर से साम्प्रदायिक खींच-तान शुरू न की जाती हो। 'हिन्दूहित' 'हिन्दुत्व' और 'हिन्दू सम्प्रदाय खतरे में के नारे से जनता की निम्नतर भावुकता को उत्तेजित कर इस वर्ग ने हिन्दुस्तान की राजनीति में सर्वथा ऐसी स्थिति और उलझन पूर्ण परिस्थिति पैदा करने का प्रयत्न किया है जिससे वास्तविक प्रश्न मुख्य स्थान न प्राप्त कर सके और झमेले में पड़ी रहे। मठ, मंदिर, संन्यासी इत्यादि सत्ताधारी व्यवसायिक संस्थायें हैं जो धर्म में व्यवसाय करती हैं। ये वर्ग स्वार्थ को भली भाँति पहचानती हैं और उसी की रक्षा के लिये हिंदुस्तानी जनता की प्रगति के विरुद्ध विदेशी शक्ति के साथ इनकी गुटवन्दी है। मठाधीश संन्यासी आज राजनीति के अखाड़े में उतर आये हैं और पहले के जमे विश्वास तथा श्रद्धा का लाभ उठा कर एक ऐसी परिस्थिति पैदा कर देना चाहते हैं, जिसमे हम आगे बढ़ सकने में असमर्थ बने रहें। यज्ञ इत्यादि का प्रदर्शन उसी उद्देश्य

का साधन है। हिंदू महासभा और धर्म संघ का आज चोली दामन का साथ है और यद्यपि धर्म जैसी वस्तु में इनमें से किसी को भी कोई दिलचस्पी नहीं है, लेकिन धर्म का नगारा पीट कर स्वार्थ साधन के लिये जो भी किया जा सकता है, किया जाता है। जीवन के अनेक व्यवसायों में धर्म भी एक व्यवसाय है और इसमें सन्देह नहीं कि इस व्यवसाय के द्वारा एक वर्ग अत्यन्त सुरक्षित और सुविधाजक जीवन व्यतीत करता चला आ रहा है। वर्ग स्वार्थ इतना स्पष्ट है कि हिंदुत्व हिंदूहित का नारा उस पर सफल पर्दा डाल सकने में असमर्थ है। जन-आन्दोलन जितना ही तीव्र होता जायेगा बातें उसी अंश में साफ होती जायेंगी। नारों और अनर्गल सिद्धांतों का प्रचार केवल इसी लिये किया जाता है कि एक वर्ग का स्थायी स्वार्थ बना रहे और केवल कुछ हिन्दू बहुसंख्यक हिन्दू सम्प्रदाय का सुख लूटते रहें। दो राष्ट्रों के सिद्धान्त का प्रतिपादन इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिये किया गया है। अगले परिच्छेद में हम दो राष्ट्रों के प्रश्न पर विशद विवेचना करने का प्रयत्न करेंगे।

—:o:—

राष्ट्रीय तथा अल्पसंख्यक समस्यायें

राष्ट्रीयता सम्बन्धी प्रश्न अल्पसंख्यक सम्प्रदायों की समस्यायें जो हिन्दुस्तान में नई, विचित्र तथा अत्यन्त उलझनपूर्ण दीख पड़ रही हैं, संसार के इतिहास में नई नहीं है। दूसरे अनेक देशों की राजनीतिक नाट्यशाला में इन समस्याओं का अभिनय विभिन्न रूप से बहुत पहले आरम्भ हुआ और अनेक देशों में इनकी तीव्रता और उग्रता आज भी ज्यों की त्यों बनी है। हिन्दुस्तान संसार का एक अंगमात्र है, यहाँ जो कुछ हो रहा है, वह विश्व इतिहास के क्रम की अनिवार्य तथा निश्चित घटना है। प्राचीन संसार के समाप्त हो जाने के बाद वर्तमान संसार योरुप की राजनीति से और सामाजिक व्यवस्थाओं से इस प्रकार प्रभावित हुआ है कि प्रत्येक देश वहाँ की राजनीतिक और सामाजिक व्यवस्था, उसकी नीति और गतिविधि का नमूना-सा बन गया है, या बनने के लिये विवश हुआ है। संसार की वर्तमान परिस्थिति, सभ्यता, संस्कृति और आर्थिक, सामाजिक तथा राजनीतिक ढाँचा उस व्यवस्था की उपज हैं जिसका आधार पूँजी और साम्राज्य है। सन् १९१७ ई० की रूसी समाजवादी क्रान्ति के पहले इस व्यवस्था का कोई सफल प्रतिद्वंद्वी नहीं था, परिणाम स्वरूप पहले योरुप में और फिर वहाँ से संसार के विभिन्न भागों में इस एक व्यवस्था का प्रचार और

विस्तार अबाधगति से हुआ है। पूंजी और साम्राज्य के आधार पर खड़ी इस व्यवस्था के निर्माण, प्रसार और क्रियाशीलता में सबसे बड़ा साम्राज्य होने के कारण वृटेन का महत्वपूर्ण भाग है। सदियों से हिन्दुस्तान वृटिश प्रभुत्व का सबल और विस्तृत क्षेत्र बना है, इस कारण साम्राज्यवादी व्यवस्था की अनेक और विभिन्न क्रिया तथा प्रतिक्रिया से वंचित रहना इसके लिये असंभव है। इसलिये राष्ट्रीय और अल्पसंख्यक समस्याओं को ठीक-ठीक जानने के लिये इस व्यवस्था की व्याख्या अनिवार्य है।

सन् १७८९ ई० की फ्रांस की क्रान्ति ने अनेक प्रगतिशील सिद्धान्तों और विश्वासों का जन्म दिया। राष्ट्र का बिचार और उसका स्पष्ट रूप भी इस क्रान्ति के गर्भ से ही उत्पन्न हुआ। फ्रान्स की क्रान्ति का नेतृत्व जब नैपोलियन ने स्वीकार किया तो राष्ट्रीयता का प्रतीक कहकर उसका स्वागत हुआ। समस्त योरोपीय देशों में उत्साह और आशा की एक लहर दौड़ गई और नैपोलिन उनका प्रतिरूप दीख पड़ने लगा। नैपोलियन की आरम्भिक सफलताओं का बहुत बड़ा कारण उसकी यह लोक प्रियता थी। राष्ट्रीय भावना और उद्देश्य को शक्तिशाली बनाने वाले नैपोलियन के झंडे के नीचे इकट्ठे होकर सब प्रकार का बलिदान करने में फ्रान्स की जनता को कोई आपत्ति नहीं थी। लेकिन जब नैपोलियन स्वयं अपने को सम्राट घोषित कर राष्ट्रीय आकाँक्षाओं का हनन करने लगा तो वहीं से उसका पतन भी आरम्भ हो गया। नैपोलियन का पतन और सर्वनाश हो गया, लेकिन जिस राष्ट्रीयता के उत्थान और विकास में उसने

महत्वपूर्ण भाग लिया, वह न केवल एक स्थायी वस्तु बन गई, बल्कि तीव्रता से उसकी शक्ति बढ़ती गई।

फ्रान्स की क्रान्ति सामन्तराज तंत्र के विरुद्ध एक भयंकर क्रांति थी। उस युग में सामन्तवर्ग के लोग जो युद्ध या दूसरी परिस्थितियों के कारण युगों से विशाल भूखण्डों के मालिक बन बैठे थे, अपने राज्य की समस्त जनता पर अनियंत्रित, निरंकुश और एकतंत्र शासन कर रहे थे। शासक की इच्छा ही शासन की व्यवस्था थी और उसके ऐश्वर्य, शान और विलास की आवश्यकताओं की पूर्ति राज्य का आर्थिक उद्देश्य था। सन्धि या युद्ध एकमात्र शासक की इच्छा और सुविधा का प्रश्न था। जनवर्ग आपस में असम्बद्ध और बिखरा हुआ था, वह शासक का दास था और उससे शासक के प्रति असंदिग्ध और अविभाज्य भक्ति का तक़ाज़ा था। वह व्यवस्था अबाधगति से चली आ रही थी, लेकिन किसान और शिक्षा के विकास ने एक नई और प्रगतिशील परिस्थिति उत्पन्न कर दी। मशीन युग का आरंभ हुआ और उसने उत्पादन की एक नई प्रणाली का जन्म दिया। मशीनों द्वारा इस नई उत्पादन प्रणाली से पूँजीपतियों का एक नया वर्ग पैदा हुआ। इस प्रणाली ने विशाल नगरों की सृष्टि बड़ी संख्या में करना आरम्भ किया, मशीनों के बड़े-बड़े कारखाने बड़ी आबादी के कारण बन गये। जनवर्ग के जीवन की गति गाँवों से शहरों की ओर मुड़ पड़ी। देश भर में कल कारखाना वाले शहरों का जाल-सा बिछ गया, जहाँ पर गाँवों में उत्पन्न होनेवाली वस्तुयें जिनकी अब तक कोई पूछ नहीं थी

और इसलिये जिनका बाजार में कोई मूल्य नहीं था, अब लाभ का सौदा बन गईं। इस परिस्थिति के परिणाम स्वरूप गाँव के अब तक के निरूपाय किसानों की दशा में प्रिय तथा वाञ्छनीय परिवर्तन आ गया और गाँव के बेकार लोगों को शहर के कारखानों में काम मिलने लगा। इस प्रकार शहर और गाँव में एक संबन्ध स्थापित हो गया, अब तक की असम्बन्ध और बिखरी हुई जनता में सम्बन्ध स्थापित हो गया। कारखाना ने पूँजीपतियों का एक नया वर्ग पैदा किया। पूँजीपति और साधारण जनता जीवन की एक नई गति के सूत्र में आबद्ध हो गई। इस परिस्थिति को शिक्षा से एक दूसरी प्रेरणा मिली। विज्ञान, कला, साहित्य और राजनीति के उन्नतिशील विचारों ने नयें पूँजीपति वर्ग में, जीवन का एक भिन्न दृष्टिकोण, सम्मान, शक्ति और अधिकार की उच्च आकांक्षायें, व्यक्तित्व की चाह, प्रतिद्वंद्विता की प्रवृत्ति, देश और जातीयता के प्रति अभिमान और आत्मगौरव इत्यादि भावनाओं की सृष्टि की। नये वर्ग में स्वतंत्र विचारों की एक नई लहर दौड़ गई और वह एक नये समाज के निर्माण के लिये, नयी शासन और आर्थिक व्यवस्था के लिये बेचैन हो उठा। सामंत वर्ग का अनियंत्रित और निरंकुश शासन इस नये पूँजीपति वर्ग के लिये न केवल असहनीय प्रतीत हुआ, बल्कि उसके आर्थिक और औद्योगिक विकास के मार्ग में सब से बड़ी रुकावट दीख पड़ा। इस वर्ग ने अनुभव किया कि उसके पूर्ण विकास के लिये ऐसी शासन व्यवस्था होनी चाहिये जिससे उस वर्ग के प्रति-

निधियों का हाथ हो और जो उसके उद्योग तथा व्यक्तित्व के विकास के लिये कानून बनाने में समर्थ हो। परिणामस्वरूप सामन्तवर्ग और शहरों के इस नये पूँजी पतिवर्ग में संघर्ष अनिवार्य हो गया। पूँजीपतिवर्ग ने स्वतंत्रता, समानता और बन्धुत्व का आदर्श स्थापित करने के लिये देश की समस्त साधारण जनता से सामन्त शासन के विरुद्ध युद्ध में सम्मिलित होने के लिये अनुरोध किया। निरंकुश, अनियंत्रित और एकतंत्र सामंत शासन द्वारा उत्पीड़ित और शोषित किसान तथा मजदूर जो अनेक रूप से पूँजी पतिवर्ग से सम्बन्धित हो चुके थे और जो इस वर्ग द्वारा शासन के उत्पीड़न से मुक्ति की आशा रखते थे, इस अनुरोध से प्रभावित हुये और पूँजी पतिवर्ग के नेतृत्व में सामंत शासन का सर्वदा के लिये अन्त कर देने के लिये उठ खड़े हुये। इन्हीं उद्देश्यों के साथ फ्राँस की क्रांति हुई। और इस क्रांति के परिणामस्वरूप जो प्रगतिशील शक्तियाँ उन्मुक्त हुईं उनसे पहले से भिन्न समाज की सृष्टि हुई।

स्वतंत्रता, समानता और बन्धुत्व के जिस भावना और और आकांक्षा के साथ एक देश की समस्त जनता अत्याचार और उत्पीड़न के बन्धन को छिन्न-भिन्न कर डालने के लिये और समस्त देशवासियों के सामाजिक और राजनीतिक सम्बन्ध को एक भिन्न दृष्टिकोण के आधार पर आयोजित करने के उद्देश्य से उत्प्रेरित हो एकता के सूत्र में आबद्ध हो गई, उसी में राष्ट्रीयता की भावना निहित थी। देश की समस्त जनता में समानता, सजीयता, अपनापन, देश के उत्थान और गौरव के

प्रति प्रत्येक देशवासी के उत्तरदायित्व की जिस भावना ने उस देश के जनवर्ग को एक दिशा में मोड़ कर प्रगतिशीलता की ओर संचालित किया, वह राष्ट्र की कल्पना थी, और इसी भावना के कारण एक देश राष्ट्र की उपाधि से सम्बोधित किया गया। इंगलैंड, फ्रांस, और जर्मनी में कल कारखानों का पहले विकास हुआ, इसीलिये इन देशों में राष्ट्रीयता की भावना पहले उत्पन्न हुई। इन देशों में बसने वाले सभी लोग चाहे वे जिस मत या जाति के रहे हों, ऐतिहासिक विकास के क्रम में अपने-अपने देश के राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक उत्थान-पतन में, रहन-सहन में, भाषा और व्यवहार में एक-सी गति में मुड़ गये। अपने देश की समस्यायों पर विचार करने की उनकी एक-सी मनोवृत्ति बन गई। फ्रांस, इंगलैंड, जर्मनी और इटली की भौगोलिक सीमाओं के अन्तर्गत प्रत्येक देश के निवासी इतिहास के क्रम को समान रूप से पार कर, समान सुविधा और असुविधा के शिकार होकर अपनी अपनी केन्द्रीय सरकार स्थापित किये थे, और एक अपनी केन्द्रीय सरकार के अन्तर्गत शासित थे, पश्चिमीय योरुप के ये देश विशुद्ध और आदर्श राष्ट्र के उदाहरण थे। इन देशों में परस्पर विरोधी राष्ट्रीय और अल्पसंख्यक प्रश्न नहीं थे। इन देशों में इन प्रश्नों के होने की गुंजाइश नहीं थी।

किंतु पूर्वीय योरूप की परिस्थिति भिन्न थी। यहाँ राष्ट्रों के निर्माण और राष्ट्रीयता के विकास की वे ही सुविधायें सुलभ नहीं थीं, जो पश्चिमीय योरुप में थीं। पूर्वीय योरुप का उद्योगी

करण पश्चिमीय योरुप से बहुत बाद को आरंभ हुआ। इसलिये कल-कारखानों के विकास से जो परिस्थितियाँ पश्चिमीय योरुप में उत्पन्न हुईं, वे पूर्वीय योरुप में उत्पन्न न हो सकीं। पूर्वीय योरुप सामंत वर्ग के शासन में इस परिणाम के साथ पड़ा रहा कि यहाँ पर प्रत्येक देश में अपनी केन्द्रीय सरकार स्थापित करने की क्षमता नहीं उत्पन्न हो सकी। यह तभी संभव था जब उद्योग के कारण नये पूँजीपति वर्ग का निर्माण होता और एक नयी सामाजिक स्थिति उत्पन्न होती जिसके कारण देश सामंत शाही का नाश कर केन्द्रीय शासन स्थापित करता। पूर्वीय योरुप में अनेक देश और अनेक राष्ट्रीय जातियाँ बड़े-बड़े राज्यों के अन्तर्गत थीं। बड़े-बड़े राज्यों के अन्तर्गत जो अनेक राष्ट्रीय जातियाँ थीं, वे उन राज्यों के सामंत शासकों की दासता में विवशता से बँधी थीं। एक राज्य में होते हुये भी विभिन्न राष्ट्रीय जातियाँ परस्पर असम्बद्ध थीं, एक दूसरे में कोई पारस्परिक सहानुभूति नहीं और न उनमें सामाजिक, राजनीतिक या व्यवहारिक कोई सम्बन्ध था, प्रत्येक की मनोवृत्ति, रहन-सहन भाषा और व्यवहार दूसरे से भिन्न थी। एक शासक की वे सभी प्रजा थीं और शासन के सैनिक बल से एक राज्य के अन्तर्गत पड़े रहने के लिये विवश थीं, केवल इतना ही उनका पारस्परिक सम्बन्ध था। आस्ट्रिया और रूस साम्राज्य में पूर्वीय मध्य योरुप के अनेक देश और अनेक भिन्न-भिन्न राष्ट्रीय जातियाँ पड़ी थीं। तुर्की साम्राज्य में बालकन प्रदेशों की इसाई जातियाँ पड़ी थीं।

यह कहने की आवश्यकता नहीं कि आरंभ में यह परिस्थिति कारगर थी और इन बड़े-बड़े राज्यों में साम्राज्य विस्तार के अतिरिक्त कोई राष्ट्रीय आन्दोलन का भय नहीं था। किंतु कल कारखानों की स्थापना, यातायात के साधन, शिक्षा और नये राजनीतिक विचारों की व्यापकता और पश्चिमीय योरुप के उदाहरणों ने पूर्वीय योरूप में भी राष्ट्रीय मुक्ति का आवेश और उत्साह उत्पन्न कर दिया। पूर्वीय योरुप में भी उद्योग के विकास के साथ पूँजीपति और शिथिल वर्ग उत्पन्न हुये, जिन्होंने राष्ट्रीय जागृति का प्रयत्न किया और परिस्थितियों में जैसा संभव है था। जनता इस अनुरोध के आकर्षण के आकर्षण को टाल नहीं सकती थी। पूर्व में भी राष्ट्रीयता की जागृत शक्ति इतनी तीव्र हुई कि १९ वीं शताब्दी के योरुप के अनेक युद्ध केवल राष्ट्रीय मुक्ति के लिये लड़े गये। अनेक युद्धों और राष्ट्रीय आन्दोलनों के परिणाम स्वरूप सामन्त शाही का अन्त हुआ, लेकिन इसके पश्चात जो परिस्थिति उत्पन्न हुई, वह ऐसी नहीं थी कि प्रत्येक मुक्त राष्ट्र पश्चिमीय राष्ट्रों की भाँति अपना केन्द्रीय शासन स्थापित कर सके। युद्ध और रक्षा के प्रश्न उनके सामने इतने विकट थे कि अकेले प्रत्येक को अलग राष्ट्रीय राज्य स्थापित कर उनकी रक्षा कर लेना न केवल कठिन, बल्कि असंभव प्रतीत हुआ। यहाँ यह ध्यान में रखने योग्य है कि सामंत शाही का अन्त प्रत्येक देश में एक ही समय नहीं हुआ। यदि एक साथ सभी देशों में सामंत शाही का अन्त होता तो प्रत्येक देश में राष्ट्रीय सरकार स्पापित होने की संभावना बहुत अधिक

होती। किंतु जो परिस्थिति थी उसमें अनेक राष्ट्रों की सम्मिलित सरकार स्थापित होना संभव और सुविधाजनक था। अतएव पूर्वीय योरुप में पश्चिम की भाँति विशुद्ध राष्ट्रीय राज्य न स्थापित होकर अनेक राष्ट्रों के सम्मिलित राज्य स्थापित हुये।

आस्ट्रिया, हंगरी और रूस सम्मिलित राष्ट्रों के राज्य बने यह ध्यान रखने योग्य है कि सम्मिलित राज्य भी राष्ट्रों की स्वेच्छा से नहीं बनते थे। वहां भी विवशता और दूसरी परिस्थितियों का प्रभुत्व था। रूस-तुर्की युद्ध के परिणामस्वरूप बालकन प्रदेश के बहुत-से देश तुर्की साम्राज्य के चंगुल से निकल गये। बलगेरिया स्वतंत्र होगया और बालकन प्रदेश में रूस का प्रभाव बहुत अधिक बढ़ गया, लेकिन रूस का बढ़ा हुआ प्रभुत्व इंगलैंड के पूर्वीय साम्राज्य के लिये खतरे का कारण दीख पड़ा, इसलिये इगलैंड की इच्छा अनुसार बालकन प्रदेशों का नक्शा सन् १८७८ ई० में तोड़-मोड़ कर फिर से बनाया गया। बलगेरिया की सीमा घटा दी गयी और वह योरोपीय शक्तियों के प्रभुत्व में रख दिया गया। उस देश का निकला हुआ अंश दूसरे देशों में सम्मिलित कर दिया गया। मैसोडोनिया, जो तुर्की साम्राज्य से मुक्त हुआ था, फिर तुर्की को लौटा दिया गया और बोसनिया तथा हरजैगोविना को तुर्की साम्राज्य के प्रभुत्व में रख कर आस्ट्रिया को शासन करने के लिये दे दिया गया। एक राष्ट्र को न केवल दूसरे देश के शासन में रहने के लिये विवश किया गया, बल्कि एक राष्ट्र को टुकड़े-टुकड़े बाँट कर इधर-उधर बिखेर दिया गया। इस निरंकुश व्यवस्था के परि-

णाम का अनुमान सरलता पूर्वक किया जा सकता है। मैसे-डोनिया, जो बल पूर्वक तुर्की साम्रज्य में फिर सम्मिलित कर दिया गया, एक असाध्य रोग सिद्ध हुआ। उसका राष्ट्रीय आन्दोलन वालकन इतिहास का महत्वपूर्ण अंग है। बोसनिया और हरजेगोविना सर्विया के अंग थे, भाषा और रहन-सहन में सर्व जाति के थे; इन प्रान्तों को सर्विया से अलग कर आष्ट्रिया के शासन में रहने के लिये विवश करना राष्ट्रीय आन्दोलन और दूसरे अनेक उपद्रवों का कारण हुआ। सर्वियन जनता में क्रोध की आग भड़क उठी, उनकी राष्ट्रीय भावना को गहरी चोट लगी। बलगेरिया की राष्ट्रीय भावना इस प्रकार जागृत और उत्तेजित थी कि योरोपीय शक्तियों का प्रभुत्व स्वीकार करना उसके लिये असंभव था, अतएव उसने अपनी तंत्रा की घोषणा कर दी। इन देशों में राष्ट्रीयता और स्वतंत्रता की जो आग जल रही थी, वह केवल अपनी राष्ट्रीय सरकार में शान्त होती, किन्तु साम्राज्यों का स्वार्थ उनके मार्ग में चट्टान उपस्थित करने पर तुला था, इन देशों के टुकड़े कर और उन्हें अलग-अलग शासकों के अन्तर्गत रखकर वह इस आग को शान्त करना चाहता था। दूसरी परिस्थितियों से विवश होकर आस्ट्रिया में पोलिश और जेक लोगों को सम्मिलित होना पड़ा, क्रोट इत्यादि हंगरी में और लेट, लुथानियन, यूक्रेनियन, जार्जियन, आमेनियन इत्यादि लोगों को रूस में शामिल होना पड़ा। पश्चिम में भी इंगलैंड में आयलैंड शामिल था, जो अपना एक पृथक अस्तित्व रखता था, किन्तु जिसे अपने पृथक राष्ट्रीय राज्य का अधिकार नहीं था।

विभिन्न राष्ट्रीय जातियों के ये सम्मिलित राज्य राष्ट्रीय और अल्पसंख्यक समस्याओं के अड्डे बन गये। राष्ट्रीय चेतना जैसे-जैसे तीव्र होती गई, राष्ट्रीय आन्दोलन उग्र होता गया। एक राज्य के अन्तर्गत जब कई राष्ट्रीय जातियाँ सम्मिलित थीं तो इन सम्मिलित राष्ट्रीय राज्यों में शासनाधिकार एक ही राष्ट्रीय जाति के अधिकार में था। इस परिस्थिति ने अन्य राष्ट्रीय जातियों को, जो बलपूर्वक एक राज्य में पड़े रहने लिये विवश किये गये थे, निकल जाने के लिये आन्दोलन करने पर विवश किया। पश्चिम में आयर्लैंड ने अपनी राष्ट्रीयता का आन्दोलन आरम्भ किया। पूर्वीय योरुप के विभिन्न देशों में भी राष्ट्रीय आन्दोलन की लहर दौड़ गई। इन राष्ट्रीय संघर्षों के रूप स्पष्ट थे। सम्मिलित राज्यों के अन्तर्गत शासक राष्ट्रीय जाति से स्वतंत्र होने के लिये शासित राष्ट्रीय जाति संघर्ष के मार्ग पर चल पड़ी। इंगलैंड में इंगलिश शासक थे और आयरिश पर उनका प्रभुत्व था। आयरिश जनता मुक्ति के लिये प्रयत्नशील हुई। इस संघर्ष का दूसरा रूप भी था, जो अल्पसंख्यक प्रश्न को स्पष्ट करने में सहायक होगा। पूर्वीय योरुप के अनेक सम्मिलित राष्ट्रीय राज्यों में बहुत-सी छोटी-छोटी राष्ट्रीय जातियाँ सम्मिलित थीं, किन्तु शासनाधिकार किसी एक ही बड़ी और शक्तिशाली राष्ट्रीय जाति के हाथ में था। जो अपनी ही शक्ति, सम्मान और स्वार्थ के लिये सभी दूसरी राष्ट्रीय जातियों का शोषण और उत्पीड़न करती थी। वहाँ पर उत्पीड़ित और शोषित जातियाँ उत्पीड़न और शोषण के विरुद्ध आन्दोलन करती थी। उनके

आन्दोलन का उद्देश्य शासन में समान अधिकार प्राप्त करना था। और रूस में रूसी लोगों के हाथ में शासन का अधिकार था, वे लोग पोलिश, लुथानियन और यूक्रेनियन इत्यादि अल्प-संख्यक राष्ट्रीय जातियों के रहन-सहन की परवाह न कर उन्हें रूसी ढाँचे में ढालने की नीति का अनुसरण करते थे, और उनकी आर्थिक उन्नति की परवाह न कर उनका शोषण करते थे और केवल रूसियों का पूर्ण प्राधान्य बनाये रखने की चिंता और षड़यत्र में रहते थे। इसलिये रूस की अनेक अल्पसंख्यक राष्ट्रीय जातियाँ शासकों की नीति और व्यवहार के विरुद्ध समान अधिकार के लिये आन्दोलन करती थीं। इसी प्रकार जर्मन राज्य के अन्तर्गत जेक लोग थे। जर्मन शासक जाति थी। शासक जाति के पूंजी पतियों द्वारा जेक जाति का शोषण होता था, इसलिये वहाँ जेक आन्दोलन जर्मन जाति के शोषण के विरुद्ध शासन में समान अधिकार के लिए था। पोलैंड में भी यूक्रेन लोगों का आन्दोलन इसी ढंग का था। राज्य में शासक राष्ट्र द्वारा शासित राष्ट्र का उत्पीड़न और शोषण राष्ट्रीय आन्दोलनों का मुख्य कारण था। यदि एक सम्मिलित राष्ट्रीय राज्य के अन्तर्गत दूसरा पूरा देश सम्मिलित था, तो वहाँ पृथक स्वतंत्र राज्य स्थापित करने के लिये राष्ट्रीय संघर्ष था, और यदि एक राज्य में सम्मिलित राष्ट्रीय जातियाँ भौगो-लिक कारणों से और संख्या की दृष्टि से पृथक राज्य कायम करने की स्थिति में नहीं थीं, तो वहाँ पर शासक राष्ट्र के प्रभुत्व और शोषण के विरुद्ध शासन में समान

अधिकार के लिये आन्दोलन था और यह उस राज्य में अल्प-संख्यक प्रश्न था।

पूर्वीय योरुप, बालकन प्रदेश और एशिया के विभिन्न देशों में राष्ट्रीय आन्दोलन सन् १९०५ ई० से आरम्भ हुये कहे जा सकते हैं। पूर्वीय योरप की राष्ट्रीय और अल्पसंख्यक समस्यायें गत योरुपीय युद्ध (१९१४-१९१८) के परिणाम में स्पष्ट और दीख पड़ेंगी। उस भयंकर युद्ध की भीषणता में रूस, जर्मनी और आस्ट्रेया हंगरी की पुरानी बादशाहत का अन्त हो गया। सन्धि के अनुसार योरोपीय नक्शे का पुनः निर्माण हुआ। पोलैंड, जेकोस्लोवेकिया रूमानिया, यूगोस्लेविया और ग्रीस-ये पाँच एक दम नये राज्य युद्ध के पश्चात स्थापित हो गये। इस पाँचों नये राज्यों में प्रत्येक नष्ट हुये और बिखरे पुराने राज्यों में से बना था। इन पाँचों में से कोई भी सबल और शक्तिशाली राज्य नहीं था, किन्तु योरोपीय शक्तियों द्वारा जो राष्ट्र टुकड़े-टुकड़े करके दूसरों के शासन में रखे गये थे और कभी इस राज्य में और कभी उस राज्य में रहने के लिये विवश किये जाते थे, वे अपनी राष्ट्रीय आकाँक्षाओं को पूरा करने का अवसर मिलते ही अलग अलग राज्य स्थापित कर लिये। विजयी राष्ट्रनायक, जो सन्धि की कल्पना के अनुसार योरुप का नक्शा बनाने के लिये इकट्ठे हुये थे, उन्हें इन पाँच नये राष्ट्रों का अलग-अलग राज्य स्थापित करना अच्छा नहीं लगा, किन्तु इसे रोकना भी असम्भव था, क्योंकि इसे रोकने के लिये दूसरे युद्ध की आवश्यकता थी, और अब इसके लिये किसी में सैनिक शक्ति शेष नहीं थी।

फिर भी योरोपीय देशों का जो बँटवारा हुआ, उसमें विभिन्न राष्ट्रीय जातियाँ अपने देश से अलग दूसरे राष्ट्रों के राज्यों में शामिल कर दी गईं। हँगरी में से स्लोवेकिया निकालकर जेक को दे दिया गया, उसी का ट्रैंसिलवानिया को रूमानिया ने जीत लिया और क्रोटिया अब हंगरी के अतिरिक्त यूगोस्लेविया का एक भाग बन गया। लगभग साठ लाख मगयर राष्ट्रीय जाति के स्त्री-पुरुष और ४५ लाख आस्ट्रिया के लोगों को विदेशी शासन में रहना पड़ा। लगभग दो लाख तीस हजार जर्मन और १३ लाख यूगोस्लेव इटली से शासन में रखे गये। दूसरी अनेक राष्ट्रीय जातियाँ दूसरे राष्ट्रों के राज्यों में रहने के लिये विवश की गईं। दूसरे राज्यों में इन अल्पसंख्यक बाहरी राष्ट्रीय जातियों के साथ विदेशी-सा व्यवहार था और इन अल्पसंख्यक जातियों को नये शासकों के चंगुल में असुविधाजनक, अपरिचित और निश्चय ही बहिष्कृत जाति की भाँति जीवन बिताना पड़ा। ये उन राज्यों में अनेक प्रकार के शोषण और प्रभुत्व के साधन बन गये। सन्धि द्वारा राष्ट्रसंघ की स्थापना हुई, जो अल्पसंख्यक प्रश्नों और राष्ट्रीय हितों की रक्षा में पूर्ण सतर्कता के लिये प्रतिज्ञाबद्ध थी। लेकिन जिस परिस्थिति में और जिन कारणों से योरुप में अल्पसंख्यक और राष्ट्रीय प्रश्न पैदा हुये थे, उनका सन्तोषप्रद निपटारा सरल नहीं था और किसी से यह छिपा नहीं है कि समस्यायें राष्ट्रसंघ के भीषण सर दर्द का बराबर कारण बनी रहीं।

सम्मिलित राष्ट्रों के राज्य का प्रश्न केवल योरप ही तक

सीमित नहीं था। औद्योगिक विकास ने राष्ट्रीय राज्यों को साम्राज्य के रूप में बदल दिया। इस बात की विवेचना हमने की है कि राष्ट्रीयता पूँजीपतिवर्ग की उपज थी। जहाँ एक राष्ट्र दूसरे देश की परतंत्रता में था, वहाँ राष्ट्रीय आन्दोलन परतंत्रता के बन्धन से मुक्ति पाने के लिये पूँजीपति वर्ग के नेतृत्व में हुआ, लेकिन जहाँ जहाँ ऐसी परिस्थिति नहीं थी बल्कि इटली फ्रांस इंगलैंड की भाँति जहाँ पूर्ण विकसित विशुद्ध राष्ट्रीय राज्य थे, वहाँ पूँजीपतिवर्ग ने बाजारों की खोज में साम्राज्य का निर्माण किया और इस प्रकार एक साम्राज्य के अन्तर्गत अनेक भिन्न-भिन्न राष्ट्र शामिल कर लिये गये। इटली, फ्रांस और अँग्रेज भी साम्राज्य के विस्तार के कारण सम्मिलित राष्ट्रों के राज्य बन गये। आयलैंड, मिश्र, हिन्दुस्तान, आस्ट्रेलिया, कनाडा और दूसरे अनेक उपनिवेश सभी एक दूसरे से भिन्न पृथक-पृथक राष्ट्र बृटिश साम्राज्य के शासन के अन्तर्गत इकट्ठे कर दिये गये। यह लिखने की आवश्यकता नहीं कि एक शासन के अन्तर्गत विभिन्न राष्ट्रों का सम्मेलन स्वेच्छा से और पारस्परिक सुविधा की दृष्टिकोण से नहीं हुआ, बल्कि विवशता के कारण हुआ। साम्राज्य के सैनिक बल ने विभिन्न राष्ट्रों को एक राष्ट्र का शासन स्वीकार करने के लिये विवश किया। बृटिश साम्राज्य में शासन-शक्ति बृटेन के हाथ में है, शासक जाति बृटिश हैं दूसरे राष्ट्र आयलैंड, हिन्दुस्तान; मिश्र इत्यादि शासित हैं। जैसे पूर्वीय योरुप में हमने देखा है, उसी भाँति साम्राज्यों के अन्तर्गत भी शासक राष्ट्र द्वारा शासित राष्ट्रों का उत्पीड़न और शोषण

होता है। हमने पूर्व परिच्छेद में देखा है और हमारे लिये यह प्रतिदिन के अनुभव की बात है कि किस प्रकार शासक बृटिश राष्ट्र द्वारा शासित हिन्दुस्तान का उत्पीड़न और शोषण हो रहा है। कुछ कम अधिक मात्रा में यही दशा में साम्राज्य के अन्तर्गत दूसरे राष्ट्रों की भी है। शासक राष्ट्र के उत्पीड़न और शोषण से मुक्ति पाने के लिये और अपना स्वतंत्र राज्य स्थापित करने के लिये शासित राष्ट्रों में राष्ट्रीय आन्दोलनों और क्रांतियों का ताँता-सा लगा हुआ है। आयर्लैंड ने अनेक राष्ट्रीय आन्दोलनों के द्वारा इंगलैंड से अलग होने का लगातार प्रयत्न किया। मिश्र भी अपने पृथक और स्वतंत्र अस्तित्व के लिये भी प्रयत्नशील है। हिन्दुस्तान भी शासक बृटिश राष्ट्र के उत्पीड़न को समाप्त करने के लिये दूसरों की भाँति संघर्ष के मार्ग पर है। सन् १८५७ ई० में हिन्दुस्तान ने प्रथम बार विदेशी प्रभुत्व को समाप्त करने का प्रयत्न किया। सन् १९२१ ई० में इसने दूसरा प्रयत्न किया और यह संघर्ष बराबर चल रहा है और जब तक शासक तथा शासित का अन्तर मिट नहीं जायेगा, इस संघर्ष की उग्रता बढ़ती जायेगी।

संयुक्त राज्य अमेरिका में निग्रो का प्रश्न है। अमेरिकन गोरे हैं और निग्रो काले हैं। दोनों दो पृथक जातियाँ हैं। दोनों का सम्पर्क सर्वदा भिन्न श्रेणी पर रहा है। दोनों की भिन्न-भिन्न मनोवृत्ति है। अमेरिकन शासक राष्ट्र हैं और शासन का अधिकार उनके हाथ में है; निग्रो अमेरिकन राज्य में शासित और उत्पीड़ित हैं। निग्रो अमेरिकन प्रभुत्व और

शोषण के साधन मात्र हैं; वे कुली और रियाया हैं। स्वभावतः निग्रो इस परिस्थिति को असहनीय समझते हैं और अपने मानवोचित अस्तित्व के लिये अमेरिकन शासन के विरुद्ध संघर्ष कर रहे हैं। दक्षिण अफ्रीका में गोरों और हिन्दुस्तानियों का प्रश्न है। गोरे तो गोरे हैं ही; हिन्दुस्तानी काले हैं। दोनों दो देश के निवासी हैं और उनको भिन्न-भिन्न राष्ट्रीयता है। दक्षिण अफ्रीका के शासन में प्रभुशक्ति गोरों के हाथ में है और उनके द्वारा हिन्दुस्तानियों का वहाँ उत्पीड़न और शोषण हो रहा है। इसलिये दक्षिण अफ्रीका राज्य में हिन्दुस्तानी राष्ट्रीयता का आन्दोलन समान अधिकार और जीवन के समान साधन के लिये हो रहा है।

इतिहास की इस साधारण विवेचना से यह स्पष्ट है कि राष्ट्रीय और अल्पसंख्यक समस्यायें केवल राजनीतिक प्रभुत्व और आर्थिक शोषण की समस्यायें हैं। एक राष्ट्र का दूसरे राष्ट्र द्वारा शोषण और शासन रोग का मूल है। यदि उत्पीड़ित राष्ट्र भौगोलिक दृष्टिकोण से सिलसिलेवार बसा हुआ ठोस विशाल भूखण्ड और विशाल संख्या है तो वह अपना पृथक राज्य कायम करने का संघर्ष करता है और उसका यह प्रयत्न राष्ट्रीय समस्या है, लेकिन यदि शोषित राष्ट्र एक छोटी सी टुकड़ी है और बिखरी हुई जनसंख्या है तो वह शासन में समान अधिकार के लिये प्रयत्न करता है और यह प्रयत्न अल्पसंख्यक प्रश्न है। हमने इस बात को देखा है कि राष्ट्रीय आन्दोलन का सूत्र और नेतृत्व राष्ट्र के केवल एक वर्ग-पूँजीपति वर्ग के हाथ में

होता है। शासित राष्ट्र का पूँजीपति वर्ग शासक राष्ट्र के प्रभुत्व और शोषण का अन्त कर इसलिये स्वतंत्र राज्य कायम करने के लिये उत्सुक होता है कि उसकी पूँजी बढ़ने और फैलने के लिये राज्य का पूरा बाजार उसके अधिकार में आजाय और यदि सम्भव हो तो दूसरे देशों के बाजार पर भी अधिकार स्थापित कर वह भी साम्राज्य का निर्माण करे। प्रभुराष्ट्र का पूँजीपति शासित राष्ट्र के पूँजीपति के मार्ग में बहुत बड़ी बाधा होता है, केवल बाधा ही नहीं होता, बल्कि उसको चूसता रहता है। इसलिये शासित राष्ट्र का पूँजीपति अपने राष्ट्र की जनता से प्रभुराष्ट्र के विरुद्ध विद्रोह करने के लिये अनुरोध करता है। स्वभावत: आन्दोलन की सफलता के परिणाम स्वरूप जो राष्ट्रीय राज्य स्थापित होता है, उसको पूँजीपति वर्ग अपने अधिकार में रखने का प्रयत्न करता है, वह अधिक-से-अधिक प्रगतिशील होने का प्रयत्न करता है, किन्तु अपनी ही सुविधा के अनुसार शासन-व्यवस्था का निर्माण करता है। अपने राष्ट्र के भीतर ही पूँजीपति वर्ग अपने माल की खपत के लिये बाजार बनाता है और इस परिस्थिति को स्थायी और निश्चित करने के लिये राज्य के भीतर विभिन्न श्रेणियों का निर्माण करता है, बहुसंख्यक और अल्पसंख्यक समस्यायें उत्पन्न करता है। इंगलैंड से संघर्ष करने के पश्चात् सन् १७८७ ई० में संयुक्त राज्य अमेरिका ने राज्य व्यवस्था बनायी, यह प्रगतिशील होते हुये भी वहाँ के पूँजीपति वर्ग की ही सुविधा और लाभ के अनुसार बनी। अमेरिका में केवल कुछ ही लोगों का, जो सब से बड़े पूँजीपति

हैं, शासन में प्रभुत्व है। यह प्रभुत्व अनेक उपायों से और अनेक उपायों से अनेक पेंचीदगियाँ पैदाकर कायम रखा जाता है। पूँजी और शोषण का स्वभाव ही पेंचीदगियाँ और अनेक उलझनपूर्ण समस्यायें पैदा करना है।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि विशुद्ध राष्ट्रीय राज्य या सम्मिलित राष्ट्रीय राज्य की विशेषता यह होती है कि वह शोषण के आधार पर खड़ा ही होता है। यह शोषण विशुद्ध जन आन्दोलन का कारण होता है और जन क्रान्ति के परिणामस्वरूप जो शासन व्यवस्था बनती है, वह शोषण के विपरीत आर्थिक, राजनीतिक और सामाजिक समानता के आधार पर होती है। प्रभुत्व और शोषण का अन्त हो जाता है और इसलिये राष्ट्रीय और अल्प-संख्यक समस्याओं का भी अन्त हो जाता है और वे विगत इतिहास की घटनायें मात्र रह जाती हैं। रूस इसका उदाहरण है। गत् योरोपीय महायुद्ध के मध्य में सन् १९१७ ई० में रूस में भीषण जन क्रान्ति हुई। परिणाम स्वरूप रूस में पूर्ण जनतंत्र शासन स्थापित हुआ और जो रूस १९१७ ई० के पहले राष्ट्रीय उत्पीड़न का रोमाञ्चकारी अड्डा था, वह अब संसार के पीड़ित राष्ट्रों और अल्पसंख्यक राष्ट्रीय जातियों की आकांक्षाओं का आदर्श बन गया है रूस में मंगोल, टारटार, मुसलमान, यूजबेक, यूक्रेनियन, जेक, पोल, रूसी इत्यादि लगभग १८० जातियाँ हैं, लेकिन क्रान्ति के बाद सभी लोग रूस में अब मनुष्य और नागरिक का जीवन व्यतीत करते हैं; सभी को समान सुविधा और समान अधिकार है। रूसी संघशासन में कोई शोषक या

शोषित नहीं है। रूसी संघ निवासियों की स्वच्छन्द इच्छा पर निर्भर है। किसी को किसी से शिकायत नहीं, किसी का किसी पर प्रभुत्व नहीं और किसी का किसी के द्वारा उत्पीड़न नही। जहाँ आर्थिक शोषण नहीं वहाँ पर किसी ऐसे प्रश्न के उठने की सम्भावना नहीं। राष्ट्रीय और अल्पसंख्यक समस्याओं के सम्बन्ध में रूसी व्यवस्था ने एक भिन्न आदर्श और दृष्टिकोण उपस्थित किया है जो वास्तव में इन समस्याओं के अस्तित्व को ही मिटा देते हैं।

इन विवेचनाओं के प्रकाश में हिन्दुस्तान की राष्ट्रीय और अल्पसंख्यक समस्यायें विचारणीय हैं। हमने देखा है कि हिंदू महासभा और मुसलिमलीग के अध्यक्षों ने कुछ वर्षों से यह कहना आरम्भ किया है कि हिन्दुस्तान एक राष्ट्र नहीं है। उनका कहना है कि इस विशाल देश में हिन्दू राष्ट्र और मुसलिम राष्ट्र अलग-अलग दो राष्ट्र हैं। डा० अम्बेडकर ने भी इस मत का समर्थन किया है और इस सम्बन्ध में एक पुस्तक भी लिखा है। कुछ उत्साही बृटिश राजनीतिज्ञों ने भी इन उद्‌गारों में अपनी आवाज़ मिलाने का प्रयत्न किया है। इन कतिपय व्यक्तियों के अतिरिक्त हिन्दुस्तान की विशाल जनता, दूसरी संस्थायें और विभिन्न वर्ग हिन्दुस्तान को एक राष्ट्र मानते हैं। साम्प्रदायिक समस्या की विवेचना करते हुये इस बात पर भी मत स्थिर कर लेना आवश्यक है कि क्या हिन्दू और मुसलिम दो भिन्न-भिन्न राष्ट्र हैं? और क्या इनमें से एक राष्ट्र दूसरे के द्वारा उत्पीड़ित है? हिन्दू मुसलिम प्रश्न के अतिरिक्त क्या अल्पसंख्यक समस्यायें हैं?

हमने अब तक केवल राष्ट्र और राष्ट्रीयता की चर्चा की है, लेकिन राष्ट्र क्या है और उनकी क्या विशेषतायें हैं इसकी छान-बीन नहीं की है। नपे-तुले शब्दों में या किसी निश्चित माप-दण्ड से राष्ट्र की व्याख्या कर देना संभव नहीं है। फिर भी उसकी रूपरेखा का अधिक से अधिक स्पष्ट चित्र उपस्थित करने का प्रयत्न तो करना ही पड़ेगा, जिससे हम जान सकें कि किन आधारों पर एक देश राष्ट्र की उपाधि से संबोधित किया जा सकता है और निश्चित कर सकें कि उसके अनुसार हिन्दुस्तान किस परिस्थिति में है।

कुछ लोगों की प्रायः यह धारणा बन गई है कि राष्ट्र एक वंश या एक उत्पत्ति का विस्तार और विकास मात्र है। यह कहा जाता है कि और दूसरे प्रकार के सम्बन्ध तथा पारस्परिक बन्धन छिन्न-भिन्न हो जाते हैं किन्तु वंश या मूल उत्पत्ति का बन्धन निश्चित और स्थिर होता है और इस सिद्धात के अनुसार एक वंश के लोगों को अपने वंश के तमाम बिखरे हुये लोगों को एकत्र करने और उन्हें एक राज्य में सम्बन्धित करने का पूरा अधिकार है। जर्मनी का उदाहरण इस सम्बन्ध में उपस्थित किया जा सकता है। इतिहास के एक साधारण विद्यार्थी को भी ज्ञात है कि जर्मनी को अपने आर्यवंश सबसे अधिक अभिमान है और वंश सिद्धान्त का वह सबसे बड़ा समर्थक है। इस सिद्धान्त के अनुसार जर्मनी का दावा रहा है कि उन प्रदेशों पर, जिनमें जर्मन लोग बसते हैं, जर्मनी का निश्चित आधिपत्य होना ही चाहिये, चाहे उन प्रदेशोंपर वहाँ

के जर्मन निवासियों का अधिकार हो न हो जर्मनी ने सर्वदा इस सिद्धान्त का समर्थन पूरे बल के साथ किया है। किन्तु ये विचार सदियों पुराने हो चुके हैं और इतिहास के परिणामों ने यह सिद्ध कर दिया है कि यह सिद्धान्त केवल प्रहसनीय और उन्माद पूर्ण है और जर्मन इस उन्माद में बर्बाद हो चुके हैं। आज का संसार इस वंश सिद्धान्त के आधार पर राष्ट्र का विचार भी नहीं करना चाहता है। फिर जर्मन राष्ट्र क्या अमिश्रित जर्मन वंश है? क्या वह मिला-जुला नहीं है? जर्मनी में केल्टिक और स्लाव दो प्रमुख वंश मिश्रित हैं। दक्षिण जर्मनी में गाल और पूर्व में स्लाव थे। जो कुछ आज का जर्मन है, वह इन और इनके अतिरिक्त दूसरे कई वंशों का भी सम्मिश्रण है। वंश के आधार पर आज का कोई राष्ट्र नहीं है, उसकी कल्पना भी दुःसाहसपूर्ण है। फ्रांसीसी राष्ट्र का निर्माण गाल, रोमन, स्यूटन, बृटेन इत्यादि से हुआ। आज का जो फ्रांस है उनमें इन मूल वंशों की गंध भी शेष नहीं है। इटली राष्ट्र में अनेक मूलवंशों का इस प्रकार सम्मिश्रण हुआ है कि उनका विवरण प्राप्त करना कठिन है। इटली राष्ट्र रोमन स्यूटन, इट्रस्कन, ग्रीक और अरब इत्यादि के सम्मिश्रण और विकास का परिणाम है। इंगलिश राष्ट्र का निर्माण ऐंग्लिकन, सैक्सन, नारमन, केल्टिक, जर्मन इत्यादि वंशों के मिश्रण से हुआ। अमेरिका के सम्बन्ध में यह बात और अधिक स्पष्ट है। अमेरिकन राष्ट्र का निर्माण इंगलिश, फ्रांसीसी, जर्मन, स्पैनिश, इटैलियन इत्यादि प्रायः ३० ऐसी विभिन्न जातियों से हुआ है

जो स्वयं मिश्रित थीं। इन वंशों का मिश्रण इतना अधिक और इस प्रकार हुआ है कि उनके अनुपात का कोई हिसाब नहीं लगाया जा सकता है। विकास विज्ञान के अनुसंधानों ने इसे स्पष्ट कर दिया है कि वंश बनता और बिगड़ता रहता है। इसका कोई स्थायी अस्तित्व नहीं है। एक ही वंश के लोग सदियों तक एक-दूसरे से अलग रहने के बाद पारस्परिक समानता का लोप कर एक-दूसरे से एकदम भिन्न हो गये और उतने ही समय में दूसरे वंश के लोगों के साथ रहकर सभी प्रकार उनमें हिलमिल कर उनके समान बन गये। आज का प्रत्येक राष्ट्र इसी प्रकार इतिहास के क्रम में भिन्न-भिन्न प्रकार के लोगों के मिश्रण का परिणाम है। आज के मनुष्य का आकर्षण वंश परम्परा नहीं है, बल्कि वह अधिक मानवोचित प्रवृत्तियों से प्रभावित है। सम्पर्क और सम्मिश्रण का उसका दृष्टि कोण अधिक उदार और विस्तृत है। उसके स्वार्थ और दिलचस्पियों की परिधि नित्य अधिक चौड़ी होती जा रही है।

वंश के अतिरिक्त भाषा की एकता का दूसरा प्रश्न राष्ट्र के लक्षणों में एक महत्व पूर्ण लक्षण कहा जाता है। इसमें सन्देह नहीं कि भाषा की एकता मनुष्य के घनिष्ट सम्पर्क और समानता का एक मुख्य आधार है। इसकी विशेषता और इसके महत्व को स्वीकार करते हुये भी यह निश्चय पूर्वक मानना पड़ेगा कि भाषा की एकता राष्ट्रीयता का अनिवार्य चिन्ह नहीं है। अमेरिका और इंगलैंड की एक भाषा होते हुये भी वे दोनों दो पृथक राष्ट्र हैं। इसके विपरीत स्विटज़रलैंड में तीन-चार

भाषायें होते हुये भी, वह एक ठोस राष्ट्र है। मनुष्य में मनुष्य की इच्छा जैसी एक वस्तु होती है, जो भाषा से ऊपर है। मनुष्य की विशालता, व्यापकता, इच्छा और विचार भाषा की सीमा में संकुचित नहीं रहना चाहते है। विभिन्न भाषा-भाषियों के साथ रहने की इच्छा भाषा की एकता और समानता से अधिक महत्वपूर्ण है। भाषा की एकता वलपूर्वक भी उत्पन्न की जा सकती है और इतिहास ऐसी घटनाओं से शून्य नहीं है। संसार के विभिन्न देशों की आरंभिक भाषाओं में इतना अधिक रूपांतर और परिवर्तन हुआ है कि उसका सही विवरण प्राप्त करना आज सरल नहीं होगा। एक ही मूल उत्पत्ति और वंश के लोग जिनकी एक ही भाषा भी थी, अलग-अलग देशों में वस जाने के कारण युगों से भिन्न-भिन्न भाषा बोलते हैं। रूस में लगभग १४५ भाषायें बोली जाती हैं, लेकिन इससे उनके एक राष्ट्रीयता के एक सूत्र में बँधने से बाधा नहीं पड़ती है। केवल भाषा की एकता की सीमा में बाँध कर आज की राष्ट्रीयता का रूप पहचानना असंभव होगा।

मजहब राष्ट्रीयता का आधार कहा जाता हैं। आज से १०० वर्ष पूर्व या ५० वर्ष पूर्व मजहब का जो महत्व राज्य और राष्ट्र के निर्माण में था वह आज नहीं है। मजहब आज व्यक्तिगत विश्वास की वात है। केवल कुछ वर्ष पूर्व इंगलैंड में राज्य की ओर से जनता को एक मजहब का आचरण करने की घोषणा होती थी, लेकिन आज एक अंग्रेज प्रोटेस्टैंट, या कैथोलिक, ईश्वर वादी या अनीश्वरवादी चाहे जो भी रह सकता है, उसकी

राष्ट्रीयता में इसके कारण कोई अन्तर उपस्थित नहीं होगा। समस्त योरुप ईसाई मजहव को मानता है, अमेरिका भी ईसाई मजहव का अनुयायी है, लेकिन वे सभी एक राष्ट्र नहीं है। वर्मा, जापान और चीन बुद्ध मत को मानने वाले हैं किन्तु वे एक राष्ट्र नहीं हैं। मजहव व्यक्तिगत आचरण की वात है। मजहवी रस्म रवाज की समानता का कोई मूल्य नहीं है। एक ही मजहव के मानने वाले लोगों के विभिन्न परिवारों में भिन्न-भिन्न मजहवी रस्म रवाज होते हैं और आज जो समानता है, कुछ दिनों के पश्चात् उसके वैसे ही वने रहने का कोई निश्चय नहीं है, वल्कि उसमें परिवर्तन हो जाना ही निश्चय है। ईसाई मजहव मानने वाले लोग मत परिवर्तन कर एक ही क्षण में बौद्धमतावलम्वी हो सकते हैं। शुद्धी द्वारा सैकड़ों हिन्दू मुसलमान और ईसाई और मुसलमान ईसाई तथा हिन्दू होते रहते हैं। रस्म-रेवाज इत्यादि ऊपरी वातें राष्ट्रीयता का मापदण्ड वनने में समर्थ नहीं हैं।

आर्थिक स्वार्थ की समानता निश्चय ही एक शक्तिशाली वंधन है और किसी भी राष्ट्र के निर्माण में उसका असीमित प्रभाव है। किन्तु इस वात को भी पूर्ण मान लेने से काम नहीं चलता। एक राष्ट्र में कई आर्थिक स्वार्थ के वर्ग होते हैं। पूँजी पति वर्ग का आर्थिक स्वार्थ सर्व साधारण जनता का स्वार्थ नहीं हो सकता है। पूँजी पतिवर्ग का राष्ट्र के निर्माण में निर्णयात्म हाथ होता है, किन्तु अपने स्वार्थ की रक्षा के लिये पूँजी पति वर्ग अपने ही राष्ट्र की साधारण जनता के स्वार्थों

के विरुद्ध दूसरे राष्ट्र के साथ व्यापारिक सन्धि कर सकता है और करता भी है। राष्ट्रीयता में भावुकता का जो अंश है, वह केवल आर्थिक स्वार्थ से निश्चय ही ऊपर है।

भूगोल ने निश्चय ही राष्ट्र के निर्माण में अकथनीय योग प्रदान किया है। भूगोल इतिहास का एक अभिन्न भाग है और इसलिये भौगोलिक परिस्थितियाँ पहाड़, नदी इत्यादि मनुष्य जाति के विकास में असाधारण स्थान रखती हैं। राष्ट्रों की सीमा के निश्चय में भूगोल का विशेष स्थान है, किन्तु नक्शे पर रेखायें खींचकर किसी राष्ट्र का निर्णय भी करना खतरे से खाली नहीं है।

लार्ड ब्राइस ने राष्ट्र की परिभाषा करने में अपनी असमर्थता प्रकट करते हुये कहा है कि 'जब आप उसे देखेंगे तो पहचान सकते हैं। ई० रेनान ने कई दृष्टि कोण से राष्ट्र को समझने का प्रयत्न किया है। राष्ट्र की व्याख्या करते हुये कहा :—

"राष्ट्र एक आत्मा है और एक आध्यात्मिक सिद्धान्त है। दो वस्तुयें, जो वास्तव में एक ही वस्तु हैं, इस आत्मा और आध्यात्मिक सिद्धांत का निर्माण करती हैं। इनमें से एक का अस्तित्व भूतकाल और दूसरी का अस्तित्व वर्तमान काल में होता है। एक गौरवपूर्ण प्राचीन स्मृतियों का साझीदार की सम्पत्ति है और दूसरी वास्तविक प्रतिज्ञा, एक साथ रहने की इच्छा और अधिक से अधिक उन विभूतियों को उत्पन्न करते रहने की आकांक्षा जो सबके साझे का उत्तराधिकार हो।...... एक व्यक्ति की भाँति राष्ट्र परिश्रम, त्याग और तपस्या में बीते

लम्बे गतयुगों का परिणाम है।......गत दिनों के गौरव का साझीदार होना और वर्तमान में एक ही प्रकार की आकाक्षायें रखना; भूतकाल में साथ-साथ महान कार्य किये होना और अब और अधिक करने की इच्छा रखना—ये ही राष्ट्र के अस्तित्व के मुख्य आधार हैं।......भूतकाल के गौरव, कष्टों और दुःखों का उत्तरधिकार और भविष्य में प्राप्त करने का एक उद्देश्य, साथ-साथ दुःख झेलते आना, खुशियाँ मनाते आना और एक आशा तथा उद्देश्य के साथ आगे बढ़ते रहना—ये बातें हैं जो अत्यधिक महत्वपूर्ण हैं।...राष्ट्रीय स्मृतियों में विजय से अधिक मूल्यवान कष्ट होते हैं, क्योंकि वे कर्तव्य का भार सौंपते हैं और सम्मिलित प्रयत्न का तकाजा करते हैं।*

जिन लोगों ने प्रसन्नता में और शोक में, विजय और पराजय में, कठिनाइयों को सरल बनाने में, जीवन की अनेक समस्यायों को सुलझाने में और अनेक दुःसाध्य तथा विभिन्न परिस्थियों में साथ-साथ समय विताया है; जिनके सहयोग और संघर्ष, जिनकी विषमतायें और विभिन्नतायें तथा जिनकी एकता और अनैक्यता पारस्परिक जीनव के प्रवाह में हिल-मिल कर इस प्रकार एक हो गई हैं कि एक को दूसरे से अलग करना असंभव हो गया है और इस प्रकार एक लम्बे समय में जिन्होंने एक संयुक्त इतिहास का निर्माण किया है, वे लोग एक राष्ट्र का निर्माण करते हैं। इतिहास के क्रम में राष्ट्र का निर्माण होता है। प्रत्येक राष्ट्र की अपनी एक विशेषता, अपनी एक मनोवृत्ति

---

* माडर्न पोलिटिकल डाक्ट्रन एलफ्रेड जिमरिन द्वारा सम्पादित।

और अपनी मनोदशा होती है। भौगोलिक स्थिति, आर्थिक स्वार्थ, और भाषा जिन पूर्वजों से उत्पत्ति हुई है, उनके संयुक्त होने से ऊपर सबकी संयुक्त इच्छा और विचार की समानता से जो वातावरण उत्पन्न होता है, वह राष्ट्र का वास्तविक ढाँचा स्थिर करता है।

राष्ट्र के रूप का एक अनुमान निश्चित कर लेने के बाद हिंदुस्तान के सम्बन्ध में विचार करना उपयुक्त होगा। पहले ही परिच्छेद में इस देश के संयुक्त जीवन के विषय में हमने विचार किया है। आर्य, हूण, सिथियन, मंगोल, अरब, ईरानी, मुगल इत्यादि विभिन्न प्रकार के लोग इस देश में आये और इतिहास के लम्बे समय में उन सब के पृथक अस्तित्व का लोप हो गया। उनमें से आज एक भी ऐसा नहीं है जो अपने को समूह में से अलग कर सके और अपने वंशक्रम की एक विशद रेखा खींच कर अपनी अमिश्रित मूल उत्पत्ति बता सके। यह एकदम असंभव है और हिंदुस्तान के ऐतिहासिक विकास के सर्वदा विपरीत है। वर्तमान हिंदुस्तान उन सब की सम्मिलित संतान है और जो आरंभ में यहाँ जीवन आरंभ किये, वे आज के सम्पूर्ण हिंदुस्तान के सम्मिलित पूर्वज हैं। हिंदुस्तान में आज कई करोड़ मुसलमान हैं। वे क्या सभी अरब या मंगोल की संतान होने का दावा कर सकेंगे? क्या एक भी मुसलमान अमिश्रित मूल उत्पत्ति का दावा कर सकेगा? फिर क्या अरब और मंगोल की मूल उत्पत्ति एक है? क्या वे एक-दूसरे से भिन्न नहीं थे? यह एक स्वीकृत और मान्य ऐतिहासिक घटना

है कि करोड़ों मुसलमान केवल मत परिवर्तन के कारण हिंदू के स्थान पर मुसलमान कहे जाते हैं। अप्रैल सन १९४० ई० में 'आजाद मुसलिम कांन्फ्रेंस के अधिवेशन में अध्यक्ष पद से वोलते हुये स्वर्गीय श्री अल्लाबख्श ने कहा था, 'हिंदुस्तान के ९ करोड़ मुसलमानों की अधिक संख्या हिंदुस्तान के पूर्वजों की संतान हैं और वे भारत माँ के पुत्रों के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं हैं।' हिंदुओं का सम्मिश्रण भी उसी प्रकार स्पष्ट है। आर्य जाति की शुद्ध संतान होने का दावा करना केवल उन्माद है। हिंदू, मुसलमान, इसाई, पारसी इत्यादि एक दूसरे से इस प्रकार मिश्रित और सम्मिलित हैं कि इस मिश्रण के अनुपात का अनुमान करना भी दुःसाहस है। यदि हिंदुस्तानी अपना संयुक्त पूर्वज मानने से अस्वीकार करते हैं तो वे न केवल ऐतिहासिक सत्य की हत्या करते हैं, वल्कि अपनी वर्तमान उत्पत्ति पर सन्देह करते हैं और उसका अपमान करते हैं। सदियों नहीं वल्कि एक हजार से भी अधिक वर्षों का वर्तमान हिंदुस्तान का सम्मिलित जीवन है। हिंदू-हिंदू, हिंदू-मुसलमान और मुसल-मुसलमान आपस में भीषण संघर्ष किये हैं और बाहरी आक्रमणों से रक्षा के लिये संयुक्त मोर्चा भी लिये हैं जीवन की कठिनाइयों को सुलझाने के लिये साथ-साथ अथक परिश्रम, बलिदान और तपस्या किये हैं, एक साथ उन्होंने वस्तियाँ बसायी हैं, महल वनाये हैं और जंगलों को साफ किया है। देश के एक-एक कोने में प्रत्येक के जीवन की छाप है। हिंदुस्तान का कोई ऐसा भाग नहीं है जहाँ दोनों की ऐतिहासिक

स्मृतियों के चिन्ह और स्तू ुगों से साथ-साथ एक दूसरे की बगल में न खड़े हों। इन स्म के द्वारा उन्होंने भूतकाल के एक संयुक्त इतिहास की रचना की है और संयुक्त भविष्य का निर्माण किया है। हिंदुस्तान के कोने-कोने में प्रत्येक एक दूसरे के पड़ोस में सदियों से इस प्रकार बसे हुये हैं कि एक ऐसा जाल बुन गया है कि समस्त जाल को नष्ट किये बिना एक को दूसरे से अलग नहीं किया जा सकता है और तब भी एक को दूसरे से पहचानने के लिये कोई विशेषता नहीं लाई जा सकती है। इतिहास के लम्बे वर्षों के अत्यन्त घनिष्ट सम्पर्क से भाषा, काव्य, कला, साहित्य, संगीत और न जाने कितनी दूसरी बातों का जो संयुक्त निमाण हुआ है, उसकी विवेचना हम पहले परिच्छेद में कर चुके हैं।

संयुक्त भूत के साथ हिंदुस्तान का संयुक्त वर्तमान और संयुक्त भविष्य भी है। लगभग दो सौ वर्षों से सम्पूर्ण हिंदुस्तान विना किसी भेद-भाव के एक विदेशी प्रभुराष्ट्र बृटेन द्वारा शासित और उत्पीड़ित है। इन दो सौ वर्षों से हिंदुस्तान की सम्पूर्ण जन संख्या साथ-साथ अनेक प्रकार की यातना, कष्ट और शोषण को सहन कर रही है। हमने देखा है कि प्रभुराष्ट्र के इस उत्पीड़त और शोषण से मुक्ति पाने के लिये इन दो सौ वर्षों में हिंदुस्तान की जनता ने साथ-साथ प्रयत्न किया है और और अनेक विद्रोह तथा आन्दोलन उसने सम्मिलित त्याग, कष्ट सहन और मुक्ति की इच्छा की एकमात्र गाथा हैं। विवशता, बन्धन की पीड़ा और सब के शोषण की एक-सी

गति ने हिंदुस्तान की एक आत्मा उसके हृदय की एकता को अत्यन्त स्पष्ट रूप से प्रकट कर दिया है। इस परिस्थिति का अन्तकर अपनी दशा बदलने के लिये अधिक-से-अधिक बलिदान करने की इच्छा और स्वतंत्र, समृद्धिशाली तथा उज्ज्वल भविष्य की आकांक्षा अविभाज्य और निर्विवाद है। और यह प्रतिदिन बदलती रहने वाली बहुत-सी ऊपरी विभिन्नताओं से अत्यन्त अधिक महत्व पूर्ण है।

हिंदुस्तान की भौगोलिग स्थिति और आर्थिक स्वार्थ इस विशाल देश को केवल एक राष्ट्र होने का संकेत करते हैं। इस की न तो अधिक व्याख्या की आवश्यकता है और न हिंदुस्तान की एकता की ये विशेषतायें विवादग्रस्त हो सकती हैं। १७ फरवरी सन् १९४४ई० को हिन्दुस्तान की केन्द्रीय व्यवस्थापिका सभा में भाषण करते हुये गवर्नर जनरल लार्ड वावेल ने इस सम्बन्ध में कहा था:—

"आप भूगोल में परिवर्तन नहीं कर सकते हैं। रक्षा, वैदेशिक सम्बन्ध, अनेक आन्तारिक और बाहरी आर्थिक समस्याओं के दृष्टिकोण से हिंदुस्तान एक प्राकृतिक इकाई है।"

किन्तु श्री जिन्ना का संसार भिन्न है। आप गाँधी-जिन्ना-वार्ता के समय गाँधी जी को १७ सितम्बर १९४४ के पत्र में लिखते हैं :—

"हम लोगों का १० करोड़ का एक राष्ट्र है; और इतना ही नहीं हम लोग अपनी विशेष संस्कृति और सभ्यता, भाषा और साहित्य, कला और शिल्पकला, नाम और मूल्य तथा अनुपात

का विचार, कानून और नैतिक मर्यादा, रेवाज और महीना और तिथियाँ, इतिहास और परम्परा, क्षमता और आकांक्षाओं के कारण एक राष्ट्र है। थोड़े में हम लोगों के जीवन का अपना एक विशेष दृष्टि कोण है। अन्तराष्ट्रीय विधान के प्रत्येक नियम के अनुसार हम लोग एक राष्ट्र हैं।"

श्री जिन्ना के अनुसार जन गणना की एक संख्या और देश की विस्तृत भूमि पर फैली हुई जनता के कुछ वाहरी रिवाज जो विकास की प्रत्येक गति के साथ, बल्कि प्रत्येक दिन और प्रत्येक क्षण बदलते रहते हैं, राष्ट्रीयता के मापदण्ड हैं। इतिहास, राजनीति और समाजशास्त्र के विद्यार्थी के लिये यह एक नयी सूचना है। जिस १० करोड़ के राष्ट्र की विशेष संस्कृत, सभ्यता, रिवाज और परम्परा के एक मात्र प्रतिनिधि होने का दावा करने वाले श्री जिन्ना के सम्बन्ध में मुसलिम मजलिस के अध्यक्ष श्री ए० एम० ख्वाजा के वक्तव्य का एक अंश उद्धृत करना पर्याप्त होगा :—

"मैं इस वात पर अत्यधिक जोर देता रहा हूँ कि श्री जिन्ना मुसलमामों के न तो प्रतिनिधि हैं और न होने की क्षमता रखते हैं। मैं एक अँग्रेजी दैनिक पत्र के प्रथम पृष्ठ पर दो चित्र एक हिंदू या हिन्दुस्तानी संस्कृति के प्रतिनिधि के रूप में महात्मा गान्धी और दूसरे उत्कृष्ट योरोपियन वेष में, दाढ़ी-मूँछ घुँटी हुई हरदम साफ, रमजान के पवित्र महीने में जिसे उपवास का महीना होने से एक अमुसलिम भी पवित्र जानता है, खुलकर सिगरेट पीते हुये श्री जिन्ना को देखकर लज्जित हो गया। इससे भी बदतर यह

था कि उसी पृष्ठ पर उनके राष्ट्र के नाम ईद का सन्देश था। एक मुसलमान पाक कुरान की इस आयत को याद करने से अपने को रोक नहीं सकता था, , ओ तुम जो इस्लाम में यकीन रखने का दावा करते हो, क्यों ऐसी बातें करते हो, जो तुम खुद नहीं करते हो।"

वक्तव्य के इस अंश को उद्धृत करने का केवल इतना ही तात्पर्य है कि १० करोड़ मुसलमानों के 'राष्ट्र' का प्रतिनिधित्व करने का दावा करने वाला व्यक्ति जिन परम्पराओं, संस्कृति इत्यादि का आचरण स्वयं नहीं करता है, उसका कोई मूल्य नहीं है। हिन्दुस्तान एक विस्तृत देश है और १० करोड़ मुसलमान इस देश के एक-एक कोने में गाँव-गाँव और छोटे-छोटे झोंपड़ों के समूह में फैले हुये हैं। जैन, फारसी, बौद्ध, ईसाई, सनातनी, आर्यसमाजी, ब्रह्मसमाजी, सिख, मुसलमान केवल मत के प्रश्न हैं। यह मत व्यक्तियों की इच्छा पर परिवर्तित होता रहता है।

इस विशाल देश में फैले हुये न तो हिन्दुओं में एक प्रकार का रवाज मिल सकता है, न मुसलमानों में और न अन्य किसी सम्प्रदाय में। वास्तव में अनेक रस्मरवाजों में और भेष और रहन-सहन के ढङ्ग में तो हिंदू और मुसलमान में इतनी समानता है कि अन्तर ढूँढ़ निकालने का प्रयत्न दुःसाहसपूर्ण है। नाम और वेश में जो अन्तर है वे इस विशाल भूखण्ड में अनिवार्य हैं। बङ्गाल में रहने वाला मुसलमान वही बङ्गाली भाषा बोलता है जो बङ्गाली हिंदू बोलता है। बङ्गाल का मुसलमान पंजाब, सीमाप्रान्त या युक्तप्रान्त के मुसलमान से सभी बातों में, रहन-

सहन, वेश, भाषा, रस्म-रवाज, खाने-पीने की आदतों में भिन्न है। उसका सामीप्य और समता बँगाल के हिंदू से है। मद्रास के मुसलमान और हिंदू एक भाषा बोलते हैं और एक-से रहते हैं। मद्रास के मुसलमान और हिंदू दोनों ही पंजाब, बङ्गाल या किसी भी दूसरे प्रान्त के हिंदू और मुसलमान से भिन्न हैं। बम्बई, बङ्गाल, सीमाप्रान्त, पञ्जाब, सिंध संयुक्त प्रान्त, मद्रास, विहार, आसाम इत्यादि के मुसलमानों के रस्म-रवाज, भाषा और वेश में एक-दूसरे से परस्पर उतना ही अन्तर है जितना बङ्गाल के मुसलमान और पञ्जाब के हिंदू में अन्तर बताने का प्रयत्न किया जा सकता है। नाम का प्रश्न भी वैसा ही है। मद्रासी हिंदू का नाम संयुक्त प्रान्त के हिंदू से भिन्न है, बङ्गाली का उससे भिन्न है और गुजराती तथा महाराष्ट्री भी भिन्न-भिन्न ढङ्ग के हैं। मध्य युग में स्त्री और पुरुषों के नाम के जो ढङ्ग थे, वे आज बहुत कुछ बदले हैं। राजपूतों पठानों, मराठों और मारवाड़ियों के नाम अपनी-अपनी एक परिचित विशेषता रखते हैं। बङ्गाली हिन्दुओं के नाम का ढङ्ग ऐसा है जो शेष हिंदुस्तान से सरलतापूर्वक पहचाना जा सकता है। साधू समाज का नाम रखने का अपना एक भिन्न ढङ्ग है। कोई भी ऐसा ढङ्ग नहीं है जो हिंदुओं का मुसलमानों ने और मुसलमानों का हिन्दुओं ने अपनाया न हो। दाढ़ी रखना, मुर्दा गाड़ना, कपड़े पहनना, त्योहार मनाने के ढँग सब के एक दूसरे-से मिले-जुले हैं। वास्तव में मुसलमानों की बहुत बड़ी संख्या कुछ ही पीढ़ी पूर्व हिन्दू थी। रवाज तो कुछ ही मील की

दूरी पर बदलते रहते हैं। ब्राह्मण, क्षत्री, कायस्थ, अग्रवाल, जैन, पारसी इत्यादि के भिन्न-भिन्न रस्म हैं। यदि प्रत्येक प्रान्त और उसके सभी निवासी कुछ अपनी अपनी विशेषताओं के कारण दूसरे से अपने को भिन्न और अलग कहें तो बात कुछ अंश तक समझ में आ सकती है, किन्तु इस बात की कल्पना तो प्रयत्न करने पर भी नहीं की जा सकती है कि मद्रास से लेकर काश्मीर और सीमाप्रान्त से लेकर आसाम के मुसलमानों की भाषा, वेश, रस्म-रवाज, रहन-सहन, शकल-सूरत और हिंदुस्तान के शेष लोगों से वे भिन्न हैं।

८ वीं शताब्दी से जब से इस्लाम मजहब में विश्वास करने वाले विभिन्न फिरकों का हिंदुस्तान से सम्पर्क होना आरम्भ हुआ, आज तक हिंदू मुसलमान और यहाँ के दूसरे निवासियों का इतिहास एक है। हिन्दुस्तान के इतिहास से मुसलमानों का इतिहास भिन्न बता कर श्री जिन्ना ने इतिहास के सम्बन्ध में केवल अपने अज्ञान का परिचय दिया है। अन्तर-राष्ट्रीय संसार में सभी हिंदुस्तानी बिना किसी भेद के गुलाम माने जाते हैं और आज इस गुलामी के बन्धन से मुक्ति पाने की एक मुसलमान की आकांक्षा और एक हिंदू की आकांक्षा में कोई अन्तर नहीं है। मुसलमानों की भिन्न संस्कृति और सभ्यता की दलील को व्यर्थ प्रमाणित करने के लिये ए० ए० ख्वाजा के वक्तव्य के उपर्युक्त अंश के अतिरिक्त श्री जिन्ना से शिष्टता के साथ पूछा जा सकता है कि उनकी संस्कृति और सभ्यता में और एक मुसलमान जुलाहा की संस्कृत और सभ्यता में समानता है?

या एक मुसलमान जुलाहा और हिंदू बुनकर में समानता है ? श्री जिन्ना की संस्कृति और सभ्यता की समता पर सरकावस जी जहाँगीर, सर शीतलवाड, सर महाराजसिंह, युक्त प्रांत के गवर्नर मारिस हैलेट इत्यादि वैभव की राशि पर जीवन विताने वाले लोगों की संस्कृति और सभ्यता से है या उनके महल के नीचे झोंपड़े में वसने वाले एक मुसलमान कुली, मजदूर और किसान की संस्कृति और सभ्यता से है ? हिंदुस्तान के कारखानों में काम करनेवाले लाखों मजदूरों की संस्कृति और सभ्यता श्री जिन्ना की संस्कृति उनमें आपस में समानता रखती है या उनमें से मुसलमान जाति पूछ-पूछकर कुछ मजदूरों को अलग कर देने पर उनकी संस्कृति और सभ्यता श्री जिन्ना की संस्कृत और सभ्यता से मिलने लगेगी ? हिंदुस्तान के स्टेशनों पर काम करने वाले कुलियों की भीड़ में से मुसलमान कुलियों को छाँटकर उनकी संस्कृति और सभ्यता के साथ अपनी संस्कृति और सभ्यता की तुलना करने का साहस श्री जिन्ना करेंगे ? हिंदुस्तान की विस्तृत भूमि पर काम करने वाले हिंदू और मुसलमान किसानों की संस्कृति और सभ्यता में कौन-सा अन्तर बताया जा सकता है ? सभी समान रूप-से एक ही प्रकार का औजार लेकर खेतों पर जाते हैं, किसानों के समान नियमों का पालन करते हैं; ओला, बाढ़, अकाल इत्यादि से रक्षा के लिये आकाश की ओर देखते हैं और किसी दैवी शक्ति पर आश्रित रहते हैं। अनेक व्याधियों से बचने के लिये दोनों ब्रह्म या सैयद या प्रायः ब्रह्म और सैयद दोनों ही की मिन्नते मानते हैं। दोनों साथ-साथ काम करते हैं, दोनों की एक-सी मनोवृत्ति

है और अपनी वर्तमान, असहाय और दयनीय दशा में परिवर्तन की दोनों समान अकांक्षा रखते हैं। मोलवर्न की पहाड़ी पर ऐश्वर्य के संसार में रहने वाले श्री जिन्ना, जिन्हें किसानों की परिस्थिति का परिचय नहीं है, उनकी संस्कृति और सभ्यता में आने का खतरा उठाना चाहेंगे? संस्कृत और सभ्यता जीवन की महत्वपूर्ण विशेषतायें हैं किंतु इनके अर्थ आज इतने स्पष्ट हो चुके हैं कि उनका प्रयोग कर भ्रम उत्पन्न करना सरल नहीं है। आज हिंदुस्तान में, बल्कि संसार में केवल दो संस्कृतियाँ और सभ्यतायें स्पष्टतया दीख पड़ती हैं—एक पूँजीपतियों की और दूसरी निर्धनों की। हिन्दुस्तान के किसान, मजदूर कुली और गरीबों का जीवन का एक दृष्टिकोण है और इन्हें शोषित करनेवाले पूँजीपति वर्ग का दूसरा दृष्टिकोण है।

यदि एक हिन्दू चोटी कटाकर दाढ़ी रख ले या एक इसाई, बौद्ध, पारसी, जैन या कोई दूसरा व्यक्ति मसजिद में कलमा पढ़कर इस्लाम मजहब स्वीकार ले तो तुरन्त उसी क्षण उसकी राष्ट्रीयता भिन्न हो जाती है, यह विचित्र दलील है। गत जनगणना के अवसर पर यह देखा गया कि हिन्दू और मुसलमान जिस किसी प्रकार भी अपने-अपने सम्प्रदाय की जनसंख्या बढ़ाने के लिये प्रयत्नशील थे। १० करोड़ की संख्या मत परिवर्तन और जनगणना की धाँधली, इन दोनों परिस्थितियों का परिणाम है। यह विचित्र-सी बात है कि ऐसी १० करोड़ की संख्या शेष हिन्दुस्तान से भिन्न है। यदि इस्लाम मजहब मानना वास्तविक कसौटी है तो क्या इस्लाम मजहब मानने वाले अरब लोग

और हिन्दुस्तान के मुसलमान एक राष्ट्र के हैं? इस्लाम मजहब मानने वाले मिश्र निवासी हिन्दुस्तानी मुसलमानों के साथ क्या राष्ट्रीयता की एकता स्वीकार करेंगे? तुर्की, ईरानी, या फारस के मुसलमान हिन्दुस्तानी मुसलमानों को अपने-अपने राष्ट्र का सदस्य मानने को तैयार होंगे? या वे मुसलिम देश सब एक राष्ट्र हैं? चीन के मुसलमान और रूस के मुसलमान दोनों एक मजहब इस्लाम को मानते हैं, लेकिन उनकी अलग-अलग राष्ट्रीयता क्यों है? मत परिवर्तन कर और कुछ भिन्न रवाज के आधार पर अलग राष्ट्रीयता का दावा करना प्रहसनीय है।

हिन्दुस्तान जैसे विशाल देश में विभिन्न मत, अनेक प्रकार के रस्मरवाज, वेश, रहने का ढंग का होना अनिवार्य है और सम्भवतः ये विभिन्नतायें एक देश के सौंदर्य का कारण भी हो सकती हैं। जनवरी सन् १९४४ में उसमानिया विश्वविद्यालय में दीक्षांत भाषण करते हुये श्री राजगोपालाचारी ने उपयुक्त शब्दों में इस परिस्थिति का चित्र खींचा है :—

"अनेक विभिन्नताओं के साथ हिन्दुस्तान की संस्कृति एक है। जैसे अनेक विभिन्नताओं के साथ हिन्दुस्तान का जल-वायु एक है, वैसे ही यहाँ की संस्कृत भी एक अविभाज्य है। यह अँग्रेजी संस्कृत जैसी ही पुरानी है और इसकी विशेषता पहचानी जा सकती है। आप मोर पक्षी या चित्रित हरिण या रँग-बिरँगे चीते के विभिन्न रँगों की व्याख्या नहीं करते हैं, बल्कि उन्हें एक मानते और जानते हैं। इसे आप अनेक अलग-अलग रँगों का वेमेल संयोग नहीं समझते हैं।"

यह एक सुन्दर-सी विवेचना है, हिन्दुस्तान को देखने का यह एक प्रिय ढँग है। किन्तु यदि आप केवल विभिन्नतायें ढूँढ़ने निकले और संसार के किसी भी शहर में चले जायँ और सुवह से शाम तक और शाम से सुवह तक लोगों की दिनचर्य्या की छान-बीन करें तो केवल एक ही शहर की विभिन्नतायें एक मोटी-सी पुस्तक तैयार कर सकती हैं।

पहले परिच्छेद में हमने अँग्रेजी राज्य के पूर्व के हिन्दुस्तान की परिस्थिति की विवेचना की है। यदि अँग्रेज यहाँ न आये होते तो कटु और प्रवल संघर्षों को स्वाभाविक गति से पार कर हिन्दुस्तान रूस जैसा, यदि नहीं तो कम-से-कम अमेरिका जैसा और वहुत सम्भव है उससे कहीं अधिक वढ़कर एक शक्ति-शाली राष्ट्र हुआ होता। किन्तु वृटिश सरकार की निश्चित और परीक्षित "फूट पैदा करके शासन करो" की नीति ने आज इस देश को विचित्र उलझन पूर्ण दशा में पहुँचा दिया है। किन-किन साधनों और उपायों का प्रयोग कर स्तब्ध कर देने वाली और दम घुटा देने वाली समस्यायें यहाँ पैदा की गई हैं, इनका साधारण संकेत पूर्व परिच्छेदों में हमने किया है। हिन्दुस्तान की अनेक समस्यायें वृटिश शासन की देन हैं। वृटिश साम्राज्य की देन केवल हिंदुस्तान को अकेले ही नहीं नसीव हुई है; यदि ऐसा होता तो सम्भवतः यह भ्रम होता कि इन समस्याओं में वास्तविकता का अंश है, लेकिन कनाडा, आयलैंड, अरव इत्यादि भी साम्राज्य की देन को कम अधिक मात्रा में प्राप्त कर चुके हैं।

कनाडा, अमेरिका महाद्वीप का एक भाग है। अमेरिका की

ही भाँति वहाँ भी अंग्रेज, फ्रांसीसी, जर्मन, स्पैनिश इत्यादि बसे और जैसे अमेरिका में वैसे ही यहाँ भी कैथेलिक और प्रोटेस्टैंट इत्यादि भिन्न-भिन्न मत के मानने वाले लोग थे। किन्तु सौभाग्य से अमेरिका बृटिश प्रभुत्व से मुक्त होकर संसार का अग्रगण्य राष्ट्र बन गया और सभी देश उसके उत्थान और उन्नति को ईर्ष्या की दृष्टि से देखते हैं। लेकिन दुर्भाग्यवश कनाडा बृटिश साम्राज्य की परतंत्रता से मुक्त न हो सका। वहाँ के अंग्रेज, फ्रांसीसी, जर्मन इत्यादि निवासी उदार और ईमानदार बृटिश साम्राज्य के सतत् प्रयत्न के अतिरिक्त भी अपने अन्तर अबतक दूर न कर सके। कहा जाता है कि कनाडा की एकता में वहाँ के विभिन्न सम्प्रदाय और मजहब भीषण रूप से बाधक हैं। साम्प्रदायिक और मजहबी कटुता प्रायः तीव्र और तीक्ष्ण हो जाया करती है। क्वेबेक, उत्तरी-न्यूब्रन्सविक और उत्तरी-पूर्वीय ओन्टोरियो में फ्राँसीसी कैथोलिक बहुसंख्यक हैं और ओन्टोरियो बृटिश कोलम्बिया और नोवास्कोटिया में प्रोटेस्टैंट अंग्रेज बहु-संख्यक हैं और दूसरे तीन प्रांतों के अंग्रेज, जर्मन, स्कैन्डिने-वियन इत्यादि की अनेक सम्मिलित गुटबन्दियाँ हैं। इस प्रकार कनाडा के प्रत्येक प्राँत में किसी न किसी सम्प्रदाय का स्पष्ट बहुमत है और हमारे न्यायप्रिय बृटिश साम्राज्य के उद्योग से वहाँ प्राँतीय साम्प्रदायिकता इतनी उग्र है कि उसमें सम्पूर्ण कनाडा का हित नगण्य है। सन् १८६७ ई० के 'बृटिश नार्थ अमेरिका' विधान के अनुसार कनाडा के संघ शासन और प्राँतीय शासनों के अधिकार क्षेत्र विभाजित कर दिये गये हैं। लेकिन यह बिभाजन

अस्पष्ट होने के कारण संघ और प्रांतीय शासनों के अधिकार के सम्बन्ध में प्रायः विवाद उठा करते हैं जिनका निर्णय कनाडा के 'सुप्रीमकोर्ट' या इंगलैंड की 'प्रीवीकौंसिल' के द्वारा होता है। ये दोनों अदालतें अपने अधिकार और प्रभुत्व का प्रयोग करने में अत्यन्त उत्सुक और सजग रहा करती हैं। यह भी ध्यान देने योग्य है कि इन अदालतों के निर्माण में कनाडा का नहीं बल्कि इंगलैंड का हाथ है। परिणाम की कल्पना की जा सकती है।

"कनाडा संघ के विधान का उद्देश्य यह था कि राष्ट्रीय महत्व के विषयों में उपनिवेश एकता रखेगा और वह एकता सर्वदा उन्नति करती जायेगी। किन्तु कनाडा की साम्प्रदायिकता और अंग्रेजी अदालती फैसलों के द्वारा इस उद्देश्य का नाश कर डाला गया। आर्थिक संकटों के दिनों में कनाडा की एकता में जो अन्तर उपस्थित हुये, वे राष्ट्रीय दृष्टि कोणसे राष्ट्रीय समस्याओं को सुलझाने में वहाँ की सरकार की असमर्थता के कारण हुये।"❀

कनाडा की, राजनीतिक संस्थायें साम्प्रदायिकता और प्रांतीयता के रंग में डूबी हुई हैं। इस प्रकार कनाडा के राजनीतिज्ञ दो प्रकार के हैं—एक जो साम्प्रदायिक और प्रांतीय स्वार्थों का प्रतिनिधित्व करते हैं और इन्हीं का महत्व है और दूसरे राष्ट्रीय दृष्टिकोण के हैं जो विभिन्न सम्प्रदायों, दलों

❀ आक्सफोर्ड पैम्फलेट आनवर्ल्ड अफेयर्स नं० ४३ ले० ग्राहम स्प्रे।

और प्रान्तीयता के अन्तर को कम और शान्त करने में लगे रहते हैं। इनका काम बहुत ही कठिन है।

कनाडा के शासन की समस्या मुख्यतः कनाडा की एकता की समस्या है। राष्ट्रीय एकता, पारस्परिक उत्तेजना और क्षोभ को शान्त करना, पारस्परिक प्रतिद्वंद्विता और एक दूसरे की शिकायतों को जो संघ से प्राँतों के संबन्ध विच्छेद की धमकी देती रहती हैं, दूर करने का प्रयत्न करना और आपस में लड़ते हुये विभिन्न आर्थिक दलों में समझौता कराना, कनाडा के किसी भी प्रधान मंत्री की मुख्य समस्या होती है। उन्नति केवल सबकी रजामन्दी से की जा सकती है। और वह रजामन्दी केवल बहुमत की नहीं, लेकिन प्रत्येक मुख्यदल की अनिवार्य है।"*

किसी विशेष परिस्थिति के अवसर पर इंगलिश कनैडियन इंगलैंड की ओर और फ्राँसीसी कनैडियन फ्राँस की ओर और इसी प्रकार दूसरे भी अपने मूल देश की ओर देखते हैं। रूढ़िवादी सम्प्रदाय प्रत्येक अपनी-अपनी साम्प्रदायिकता से चिपके रहने का प्रयत्न करता है।

"प्रत्येक सम्प्रदाय दूसरे में अपना प्रतिद्वंद्वी देखता है और यदि अपने व्यक्तित्व और इकाई को खतरे में नहीं समझता है तो भी अरक्षा की भावना से भयभीत है। भीषण साम्प्रदायिक उपद्रवों की आग प्रायः भड़क उठती है।"†

---

* आक्सफोर्ड पैम्फलेट आनवर्ल्ड अफेयर्स ले० ग्राहम स्प्रे।

† उपर्युक्त पुस्तक।

सन् १८३९ ई० में लार्ड डरहम ने कनाडा के सम्बन्ध में एक रिपोर्ट तैयार की थी। उसमें उन्होंने कनाडा में आकर बसनेवाले मूल फ्रान्सीसियों की संतानों और अंग्रेजों की सन्तानों के द्वेष और संघर्ष के सम्बन्ध में लिखा था 'एक राज्य के अन्तर्गत दो राष्ट्र युद्ध करते रहते हैं।' "किन्तु लार्ड डरहम का दाँव लगा नहीं। वहाँ की बढ़ती हुई राष्ट्रीयता एकता और साम्राज्य विरोधी भावना ने दो राष्ट्रों' की चाल को कारगर नहीं होने दिया। कनाडा और संयुक्त राज्य अमेरिका दोनों ही अमेरिकन महाद्वीप के अंग हैं और दोनों एक-दूसरे से सटे बसे हैं।" दोनों ही में योरुप के विभिन्न देशों से लोग आकर बसे, किन्तु एक बृटिश साम्राज्य के बन्धन से मुक्त होते ही विकास और उन्नति के मार्ग पर बढ़ा और आज अमेरिकन राष्ट्र ब्रिटेन के अस्तित्व का रक्षक है, संसार का सबसे अधिक सम्पत्ति शाली देश है। उसके वैज्ञानिक अनुसंधान अपरिमित ऐश्वर्य, सामाजिक और राजनीतिक प्रगतिशीलता जहाँ दूसरे राष्ट्रों और देशों के लिये ईष्या का कारण हो रही हैं, वहाँ उसका पड़ोसी कनाडा साम्प्रदायिकता और प्रांतीयता का अड्डा बना बताया जाता है। यदि तुलना की जाय तो पड़ोसी और दूसरे दृष्टिकोण से भी समान होने पर अमेरिका, कनाडा से भिन्न है और दूर तथा प्रत्येक भाँति विषम होने पर भी हिन्दुस्तान की परिस्थितियाँ उसके समान हैं। धन्यवाद है बृटिश साम्राज्य को जो अपनी छत्रछाया में रखकर संसार के सुदूर भागों में समानता बनाये रखने में प्रयत्नशील है।

आयर्लैंड का दूसरा उदाहरण साम्राज्य की उदार देन का परिचायक है। आयर्लैंड, इङ्गलैंड के पड़ोस में है। इंगलैंड, वेल्स और स्काटलैंड में कभी भीषण संघर्ष और युद्ध होते थे, किन्तु स्वतंत्र होने के कारण जब राष्ट्रीय भावनायें जागृत हुईं और विकास की प्रगति अग्रसर हुई तो इंगलिश राष्ट्र ऐसा महान हुआ जिसकी केवल कल्पना की जा सकती है। आयर्लैंड में भी राष्ट्रीय लहरें दूसरे देशों की भाँति ही प्रबल हुईं किन्तु बृटिश साम्राज्य के षड़यंत्र के परिणाम स्वरूप आयर्लैंड दो भागों में बाँट दिया गया और आयर्लैंड के इस बँटवारे की कहानी संसार को सुनाते हुये १७ फरवरी सन् १९४४ ई० को केन्द्रीय असेम्बली के अपने भाषण में लार्ड वावेल ने कहा था, 'आयर्लैंड के विरोधी दल अभी तक एकता कायम करने में असफल हो चुके हैं और आयर्लैंड में एक प्रकार का पाकिस्तान है।' इतिहास का साधारण जानकार भली भाँति जानता है कि आयर्लैंड में पाकिस्तान की सृष्टि बृटेन द्वारा किन-किन उपायों द्वारा की गई है।

स्पष्ट है हिंदुस्तान की परिस्थिति बृटिश साम्राज्य के साधारण नियम का परिणाम है। सदियों से हिंदुस्तान के लोग साथ-साथ रहते आ रहे थे, वे कभी दो राष्ट्र की कल्पना नहीं कर सके। बृटिश साम्राज्य के अन्तर्गत् भी लगभग दो सौ वर्षों से हिंदुस्तानी गुलाम और उत्पीड़ित जाति का जीवन बिता रहे थे, किंतु वे दो राष्ट्र हैं यह उन्हें स्वप्न और कल्पना में भी मालूम न था। साम्राज्य के प्रयत्न से २० वीं शताब्दी के आरम्भ के

साथ साम्प्रदायिक समस्यायें उत्पन्न हुईं और इन समस्याओं की उग्रता के अतिरिक्त भी हिंदू-मुसलिम प्रश्न केवल बहुसंख्यक और अल्पसंख्यक प्रश्न तक ही सीमित था, लेकिन सन् १९३७ ई० में दो व्यक्ति बिस्तर से प्रातःकाल उठे और एक प्रातः एक ने 'हिंदू राष्ट्र' तथा दूसरे प्रातः दूसरे ने 'मुसलिम राष्ट्र' की सहसा घोषणा की। इन दो व्यक्तियों को सहसा जो इलहाम हुआ, उस पर किसी ने ध्यान नहीं दिया। श्री सावरकर तो अपने इस इलहाम को दो-एक बार ही दुहरा कर चुप रह गये, लेकिन मुसलिम राष्ट्र के इलहाम ने बृटिश साम्राज्य की उदारता से मार्च सन् १९४० ई० में 'पाकिस्तान' का जामा पहन लिया। हिंदुस्तान आश्चर्य से स्तब्ध रह गया और सभी ने पूर्णशक्ति से इसका विरोध किया किन्तु जनमत (डेमोक्रैसी) के सिद्धांत की सबसे बड़ी और संसार प्रसिद्ध रक्षक बृटिश सरकार हिन्दुस्तान में अल्पगत के ही समर्थन के लिये प्रतिज्ञाबद्ध है। इस प्रकार दो व्यक्तियों के इलहाम मात्र से सहसा राष्ट्रों की सृष्टि होने का इतिहास में पहला और शायद अन्तिम उदाहरण होगा। लेकिन धन्यवाद है बृटिश साम्राज्य को जिसकी छत्र-छाया में कुछ भी असंभव नहीं है।

हम लोगों ने देखा है कि दो राष्ट्रों का संघर्ष शासक और शासित के मध्य होता है। शासित राष्ट्र प्रभुराष्ट्र के शोषण और उत्पीड़न से मुक्त होने के लिये आन्दोलन और संघर्ष करता है। हिन्दुस्तान के सम्बन्ध में यह प्रश्न एकदम स्पष्ट है। यहां प्रभुराष्ट्र इंगलिश राष्ट्र है। हिन्दुस्तान में चाहे जितने भी

राष्ट्र मान लिये जायँ, सभी इस इंगलिश प्रभुराष्ट्र द्वारा शोषित और उत्पीड़ित हैं। मुसलिम राष्ट्र, हिन्दू राष्ट्र, सिख, अछूत इत्यादि जितनी भी राष्ट्रीय या अल्पसंख्यक समस्यायें हैं, वे स्वभावतः प्रभुराष्ट्र की मरजी पर अवलम्बित हैं। हिन्दुस्तान की भौगोलिक सीमा के भीतर शासक जाति केवल एक है और वह है बृटिश राष्ट्र। शेष सभी लोग शासित जाति के हैं। हिन्दू-अत्याचार, या मुसलिम अत्याचार के नारे निरर्थक हैं। यदि कोई किसी पर अत्याचार करता है तो इसलिये कि शासक राष्ट्र उससे वैसा ही कराना चाहता है, अन्यथा उसकी इच्छा के विरुद्ध कोई कृपा संभव नहीं है। हिन्दुस्तान के भीतर किसी भी राष्ट्रीय आन्दोलन का अर्थ प्रभुराष्ट्र से संघर्ष करना है, क्योंकि उसी के शासन का अन्त कर राष्ट्रीय उत्पीड़न और शोषण का अन्त किया जाना संभव है। यदि हिन्दुस्तान में कई राष्ट्र हैं तो भी वर्तमान परिस्थिति में उनका आपस में संघर्ष संभव नहीं है, क्योंकि वे सभी समानरूप से एक ही शासक से उत्पीड़ित और शोषित हैं। मुसलिम लीग यदि हिंदुस्तान के एक विशेष भाग में स्वतंत्र राज्य चाहती है, तो वह भाग भी प्रभुराष्ट्र के ही शासन में है और उसे मुक्त करने के लिये उस प्रभुराष्ट्र के ही विरुद्ध संघर्ष करना पड़ेगा। यह संघर्ष शेष हिन्दुस्तान के साथ मिलकर किया जा सकता है और अकेले भी किया जा सकता है, लेकिन प्रत्येक परिस्थिति में वह संघर्ष केवल शासक राष्ट्र के ही विरुद्ध होगा। शोषण और उत्पीड़न से मुक्त होने के लिये राष्ट्रीय संघर्ष की किसी भी ऐसी अवस्था की कल्पना भी नहीं की जा

सकती है, जो शासक राष्ट्र के विरुद्ध न होकर उसके साथ संघर्ष करे जो स्वयं राष्ट्रीय उत्पीड़न का अन्त करने के लिये प्रभुराष्ट्र से युद्ध कर रहा हो। वल्कि इसके विपरीत संभव यह है कि प्रभुराष्ट्र के विरुद्ध एक देश के भीतर जितने भी राष्ट्रीय आन्दोलन होंगे, वे अनिवार्य रूप से एक-दूसरे के साथ हो जायेंगे और प्रभुराष्ट्र के शोषण और उत्पीड़न के विरुद्ध संघर्ष का समय जितना ही लम्बा होगा, विभिन्न राष्ट्रीय आन्दोलनों का सम्मिलित प्रयत्न और सम्पर्क उतना ही अधिक, विकट और घनिष्ट होगा। इस प्रकार अनेक राष्ट्रीय आन्दोलन एक विशाल राष्ट्रीय आन्दोलन का रूप धारण कर लेंगे और समय वीतने के साथ उनके मध्य के अन्तर का अस्तित्व मिट जायेगा। वर्तमान युद्ध में संकट की पराकाष्ठा के समय और उस समय जब जर्मन सेना ने फ्रांस और इंगलैंड के स्वतंत्र अस्तित्व के लिये असंदिग्ध खतरा पैदा कर दिया था, वृटेन के प्रधान मन्त्री श्री चर्चिल ने फ्रांस और इंगलैंड की एक राष्ट्रीयता स्वीकार कर दोनों देशों के निवासियों को एक-दूसरे का नागरिक अधिकार देने का प्रस्ताव किया था। फ्रांस के शीघ्र ही पतन हो जाने के कारण प्रस्ताव कारगर नहीं हो सका, लेकिन यह घटना इस सत्य का निर्विवाद प्रमाण है कि एक ही उत्पीड़क के विरुद्ध संघर्ष करने वाले सम्मिलित जीवन का विकास करेंगे और उनके प्रयत्न की सफलता सम्मिलित सम्पत्ति होगी। हिन्दुस्तान जहाँ एक शासन है, जहाँ सभी का समान रूप से उत्पीड़न और शोषण है और जहाँ सव लोग साथ-साथ

कष्ट सहन कर रहे हैं, वहाँ उस उत्पीड़न से मुक्त होने के लिये केवल एक राष्ट्रीय शक्ति का विकसित होना संभव है। मुसलिम लीग और हिन्दू महासभा मुसलिम राष्ट्र और हिन्दूराष्ट्र के नारों का चाहे जितना भी प्रयोग करें, जिस समय वे प्रभुराष्ट्र की विरोधी संस्था काँग्रेस के विरुद्ध संघर्ष में उतर पड़ीं, वे राष्ट्रीयता के स्तर से गिर कर उत्पीड़क और शोषक प्रभुराष्ट्र की केवल दलाल मात्र रह गईं।

हमने वहुसंख्यक और अल्पसंख्यक समस्या पर विचार करते हुये देखा है कि योरुप की अनेक राष्ट्रीय जातियों को बल पूर्वक दूसरे राष्ट्रों के शासन के अन्तर्गत कर देने से अल्पसंख्यक राष्ट्रीय उत्पीड़न का प्रश्न उठा। हमने यह देखा है कि योरुप की अल्पसंख्यक राष्ट्रीय जातियाँ एक स्थिति में स्थिर नहीं रह पाईं। कभी एक और कभी दूसरे प्रभुराष्ट्र के शासन में मारी-मारी फिरती रहीं और इस प्रकार अल्पसंख्यक प्रश्न संसार के इतिहास का अत्यन्त विकट प्रश्न हो गया। लेकिन हिन्दुस्तान में भी स्थिति क्या ऐसी ही है? निश्चय ही इस स्थिति की इस देश में कल्पना भी नहीं की जा सकती है। इस देश में भिन्न-भिन्न राष्ट्रीय जातियाँ नहीं हैं। यहाँ जो कुछ अन्तर है; जो कुछ भेद-भाव है, वह धनी और गरीब का, पूँजीपति और पूँजीहीन का है। एक ओर कुछ लोगों को समाज और राज्य में सुविधा और सम्मान प्राप्त है और शेष लोग इससे वंचित हैं, कुछ लोग भूमि और सम्पत्ति के स्वामी हैं और बहुत लोग इनसे एकदम रहित हैं; एक ओर सत्ताधारी वर्ग है और दूसरी ओर

सत्ताहीन जनसमूह है। अछूत कहे जानेवाले लोगों का प्रश्न केवल आर्थिक और सामाजिक प्रश्न है, वे उन सभी सुविधाओं और साधनों से वंचित किये गये हैं जिनसे उच्च वर्ग के लोग सम्पन्न हैं। मोमीन मुसलमान सम्पत्ति से वंचित हैं और शीया को सामाजिक अधिकार की शिकायतें हैं। इनमें से प्रत्येक को सुविधा प्राप्त लोगों के प्रति असन्तोष है। इसलिये यह स्पष्ट दीख पड़ेगा कि चाहे जिस भाषा में भी व्यक्त किया जाय हिंदुस्तान में जो प्रश्न है वह समान सुविधा, सम्पत्ति और अधिकार का प्रश्न है। यह प्रश्न प्रत्येक पूँजीवादी देश और समाज में में उपस्थित है। विभिन्न राष्ट्रीयता से इसका कोई सम्बन्ध नहीं है।

राष्ट्रीय आन्दोलन इस प्रश्न के सुलझाने में क्या बाधक है? आज जो परिस्थिति है और जनता का जितना भी उत्पीड़न और शोषण है, वह उस व्यवस्था के कारण है जो पूँजीवाद और साम्राज्यवाद की उपज है। इस व्यवस्था ने हिन्दुस्तान में ही नहीं बल्कि सम्पूर्ण संसार में अविश्वास, छीना-झपटी, शंका, भय, अरक्षा की भावना और प्रत्येक भाँति के अनाचार और अत्याचार का वातावरण, उपस्थित किया है। इस व्यवस्था के अन्त होने पर किसी ऐसी परिस्थिति की कल्पना नहीं की जा सकती है जो मनुष्य का इससे भी अधिक दमन करने की क्षमता रखती हो। इस व्यवस्था का अन्त किये बिना वर्तमान परिस्थिति में परिवर्तन की आशा नहीं की जा सकती है। हमने देखा है कि राष्ट्रीय आन्दोलन पूँजीपति आन्दोलन होता है। प्रभुराष्ट्र के

शासन का अन्तकर शासित राष्ट्र का पूँजीपति अपना शासन स्थापित करना चाहता है और वह अपने लिये स्वच्छन्द बाजार की सुविधा उत्पन्न करता है। इस प्रकार राष्ट्रीय आन्दोलन के परिणाम स्वरूप विदेशी पूँजीपति के स्थान पर अपने ही देश का पूँजीपति शोषक और उत्पीड़क बन जाता है। किंतु साम्राज्य-वाद उत्पीड़न और शोषण की चरम सीमा है, राष्ट्रीय सङ्घर्ष उस उत्पीड़न के अन्तिम विनाश का अनिवार्य पहला कदम है।

किन्तु हिन्दुस्तान का राष्ट्रीय आन्दोलन जो काँग्रेस द्वारा अपनी गति-विधि और उद्देश्य को व्यक्त कर रहा है, वह एक सर्वाङ्ग जनसङ्घर्ष है, जिसका अन्त वास्तविक जनतन्त्र व्यवस्था में ही सम्भव है। काँग्रेस जिस साम्राज्यवादी व्यवस्था के विरुद्ध युद्ध कर रही है, उस व्यवस्था का सफल प्रतिद्वंद्वी समाजवाद सन् १९१७ ई० में रूस की क्रान्ति के परिणाम स्वरूप उत्पन्न हुआ। समाजवाद, साम्राज्यवाद के विरुद्ध एक सफल ललकार है जिसमें शोषण और उत्पीड़न, शासक राष्ट्र और शासित राष्ट्र, पूँजीपति और पूँजीहीन का स्थान नहीं है। इसमें न तो किसी को विशेष सुविधा है और न कोई सुविधा से बंचित है। यद्यपि यह क्रान्ति रूस में हुई, लेकिन जिस व्यवस्था को इसने जन्म दिया है, उसने समस्त संसार के सामने साम्राज्यवाद की अब तक की मान्य और प्रचलित व्यवस्था से एकदम भिन्न दृष्टिकोण उपस्थित किया है, और साथ ही जिन शक्तियों को उन्मुक्त किया है, वे सम्पूर्ण संसार में पूँजीवाद के लिये खतरा पैदाकर दिये हैं। हिन्दुस्तान का राष्ट्रीय आन्दोलन जिस युग में शक्ति प्राप्त

कर रहा है, वह सम्राज्यवाद का सब से बड़ा गढ़ है, उस गढ़ के नाश का अर्थ उत्पीड़न और शोषण की चरमावस्था का अन्त करना है। वास्तव में हिन्दुस्तान के राष्ट्रीय आन्दोलन का विश्लेषण करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि यहाँ प्रभुराष्ट्र ब्रिटेन और उत्पीड़ित राष्ट्र हिन्दुस्तान के सङ्घर्ष में राष्ट्रीय पूँजीपति का कोई महत्व नहीं है। हिन्दुस्तान में पूँजीपति वर्ग का विकास नहीं हो पाया। उन्मुक्त और स्वच्छंद औद्योगिक विकास से ही सबल पूँजीपति वर्ग का निर्माण होता है, लेकिन प्रभुराष्ट्र के स्वार्थ के लिये अहितकर होने से हिंदुस्तान में उद्योग पनपने नहीं पाया। यहाँ जो कुछ भी नाममात्र उद्योग है उसमें प्रायः प्रभुराष्ट्र की ही पूँजी लगी है और जो थोड़े-से इस देश के पूँजीपति हैं, वे शक्तिहीन और प्रभुराष्ट्र के आश्रित हैं। आरम्भ में हिंदुस्तानी पूँजीपतियों की सहानुभूति और सहयोग राष्ट्रीय आन्दोलन को अवश्य मिला, लेकिन जैसे-जैसे आन्दोलन उग्र होता गया, वे इससे अलग होते गये और आन्दोलन जब क्रांतिकारी सीमा में प्रवेश कर चुका, तो वे अपने स्वार्थों की रक्षा के लिये चिन्तित हैं। वे प्रभुराष्ट्र के बल पर अपनी रक्षा की आशा करते हैं और प्रभुराष्ट्र उनके द्वारा राष्ट्रीय आन्दोलन को दबाये रखने का साहस करता है। इस प्रकार हिंदुस्तान का राष्ट्रीय आन्दोलन केवल प्रभुराष्ट्र के शोषण और उत्पीड़न का अन्त करने की क्षमता नहीं रखता है, बल्कि किसी प्रकार के भी जनशोषण और उत्पीड़न समाप्त करने का दावा करता है।

विश्व के रङ्गमञ्च पर आज जो दो व्यवस्थायें साम्राज्यवाद

और समाजवाद दीख रही हैं, उनमें समाजवाद ने संसार की वर्तमान दुरवस्था, अनेक पेंचीदी समस्याओं और ऐतिहासिक द्वंद्वों के मूलकारण की चिन्ता की है। साम्राज्यवाद की परिस्थितियों के सङ्घर्ष से समाजवाद व्यवस्था का जन्म हुआ और इसके साथ ही संसार में एक नये युग का पदार्पण हुआ है। यह बात अवश्य है कि पूँजीवाद और साम्राज्यवाद अपनी प्रभुता और पूरीशक्ति के साथ अपने अस्तित्व की रक्षा के लिये प्रयत्नशील है, लेकिन संसार अब पीछे नहीं लौट सकता है, वह नित्य आगे की ओर बढ़ता है। पूँजीवाद और साम्राज्यवाद विगत संसार की व्यवस्था हैं, समाजवाद नये संसार का निर्माण कर रहा है। आज प्रति क्रियावादिता की चाहे जितनी अधिक शक्ति और उग्रता दीख पड़ती हो, वह ढहती हुई इमारत की गरगराहट है। हिन्दुस्तान की शोषित और पीड़ित जनता इस शक्ति को देखकर भ्रम में पड़ सकती है, वास्तव में वह भ्रम में है भी कि विदेशी प्रभुराष्ट्र के हटने के बाद देशी पूँजीपति उसका स्थान ग्रहण कर लेगा और फिर तब वह भी उसी पुराने मार्ग का अनुसरण करेगा। लेकिन जैसा कि हमने देखा है कि हिन्दुस्तान का राष्ट्रीय संग्राम जिस लक्ष्य पर पहुँच रहा है, वह पुराने ढंग की संकुचित और सीमित राष्ट्रीयता नहीं है। वास्तव में उस प्रकार की राष्ट्रीयता आज एकदम असम्भव है; उसका अन्त सन् १९१७ ई० की समाजवादी क्रान्ति के साथ ही होगा। हिन्दुस्तान का राष्ट्रीय संग्राम संसार की सब से बड़ी प्रतिगामी शक्ति को समाप्त कर उस अन्तर्राष्ट्रीयता का

निर्माण कर रहा है, जिसमें एक या दूसरे दल की सुविधानुसार शोषण के लिये राजनीतिक सीमा न होगी हिन्दुस्तान की राष्ट्रीयता हिन्दुस्तान में ही नहीं, बल्कि संसार भर के शोषण और उत्पीड़न का अन्त करने की प्रथम और अनिवार्य अवस्था है। भ्रम, शंसय, शंका, और अविश्वास की अवस्था में निष्क्रिय और निश्चेष्ट पड़े रहने से विरोधी शक्ति को लम्बा अवसर मिलता जाता है, बल्कि वह शक्ति जनता की ऐसी ही दुर्बलताओं के आधार पर खड़ी है और इन्हीं दुर्बलताओं का लाभ उठाकर उन्हें अनेक रूप से विभाजित कर वह पनपती और फूलती है। इस दृष्टिकोण से हिन्दुस्तान के राष्ट्रीय संग्राम को जनता का जितना हीं अधिक सहयोग प्राप्त होगा, वह उतना ही विशद, व्यापक और सर्वग्राह्य होगा और जितना शीघ्र वह सहयोग दिया जायगा, उतना ही निकट मुक्ति का समय होगा। इस देश की समस्यायों का एकमात्र हल हिन्दुस्तान के राष्ट्रीय संग्राम की चरम सफलता है।

—:०:—

पाकिस्तान

मार्च सन् १९४० ई० में मुसलिम लीग के लाहौर अधिवेशन में बंगाल के तत्कालीन प्रधान मंत्री श्री फजलुलहक का एक प्रस्ताव पास हुआ जो इस प्रकार है :—

"अखिल भारतीय मुसलिम लीग की कौंसिल और कार्य समिति के २७ अगस्त, १७ और १८ दिसम्बर और २२ अक्टूबर सन् १९३९ ई० और ३ फरवरी सन् १९४० ई० के विधान सम्बन्धी कार्यों का समर्थन करते हुये मुसलिम लीग का यह अधिवेशन जोरदार शब्दों में अपनी यह राय व्यक्त करता है कि सन् १९३५ ई० के शासन विधान के अनुसार बनी संघ योजना इस देश की विशेष परिस्थिति में सर्वथा अनुपयुक्त और अव्यवहारिक है और मुसलिम हिन्दुस्तान को एक दम अमान्य है।

"यह अधिवेशन अपनी इस राय को भी जोरदार शब्दों में प्रकट करता है कि यद्यपि सम्राट की सरकार की ओर से वायसराय की १८ अक्टूबर सन् १९३९ ई० की घोषणा कि १९३५ ई० के विधान की योजना पर हिन्दुस्तान के विभिन्न दलों, स्वार्थों और सम्प्रदायों की राय के अनुसार फिर से विचार किया जायेगा कुछ अंश में संतोषप्रद है, लेकिन मुसलिम हिन्दुस्तान तब तक संतुष्ट नहीं होगा जब तक सम्पूर्ण वैधानिक योजना पर फिर आमूल विचार नहीं किया जाता है और कोई भी ऐसी

संशोधित योजना मुसलमानों को मान्य नहीं होगी जब तक वह उनकी राय और समर्थन से नहीं बनायी जाती।

"निश्चित हुआ कि अखिल भारतीय मुसलिम लीग के इस अधिवेशन की भली भाँति विचार की हुई यह राय है कि कोई वैधानिक योजना न इस देश में कारगर हो सकती है और न मुसलमानों को मान्य हो सकती है। यदि वह नीचे लिखे सिद्धांतों के आधार पर नहीं बनायी जाती है, भौगोलिक दृष्टि कोण से लगातार बसी हुई इकाइयों को प्रान्तों में सीमाबद्ध कर दिया जाय और आवश्यक प्रादेशिक हेर-फेर के साथ उनका इस प्रकार गठन किया जाय कि वे क्षेत्र जैसे हिन्दुस्तान के उत्तर-पश्चिम और पूर्व दिशाओं में, जिसमें मुसलमान बहुसंख्यक हैं, ऐसे स्वतंत्र राज्यों में एकत्र कर दिये जायँ जिनकी इकाइयाँ स्वशासित और प्रभुराज्य हों।

"शासन विधान में इकाइयों और प्रान्तों के अल्पसंख्यकों को मजहबी, सांस्कृतिक, आर्थिक, राजनीतिक, शासन सम्बन्धी और दूसरे अधिकारों और स्वार्थों की रक्षा के लिये उनकी राय से उन्हें उचित, प्रभाव शाली और अनिवार्य संरक्षण विशेष रूप से दिये जायँगे। हिन्दुस्तान के दूसरे भागों में, जहाँ मुसलमान अल्पसख्यक हैं, उनके और दूसरे अल्पसंख्यकों के मजहबी, सांस्कृतिक, आर्थिक राजनीति, शासन सम्बन्धी और दूसरे अधिकारों और स्वार्थों की रक्षा के लिये उनकी राय से विधान में उचित, प्रभावशाली और अनिवार्य संरक्षण विशेष रूप से होंगे।

"यह अधिवेशन कार्य-समिति को अधिकार देता है कि वह इन मुख्य सिद्धांतों के अनुसार विधान की एक योजना तैयार करे जिसमें प्रांतों द्वारा रक्षा, वैदेशिक विषय, यातायात, चुंगी और ऐसे ही अन्य आवश्यक विषयों का अधिकार अन्तिम रूप से प्राप्त करने की व्यवस्था हो।"

इस प्रस्ताव में जिन स्वतंत्र और प्रभु मुसलिम राज्यों की कल्पना की गई, उनके संघ को पाकिस्तान का नाम दिया गया। लाहौर अधिवेशन ने मुसलिम लीग की कार्य समिति को प्रस्ताव में बताये गये मुख्य सिद्धान्तों के आधार पर विधान की योजना तैयार करने का अधिकार दिया, लेकिन लीग कार्यसमिति ने विधान बनाने का कोई प्रयत्न नहीं किया। प्रस्ताव के आरम्भिक अंश से मालूम होगा कि वैधानिक सिद्धांत को स्थिर करने के पूर्व कुछ समय से मुसलिम लीग कौंसिल और कार्य समिति वैधानिक खोज में प्रयत्नशील थी। इन प्रयत्नों का भी कोई विवरण लोगों के सामने कभी नहीं आया। बार-बार तकाज़ा करने पर भी मुसलिम लीग ने कोई स्पष्ट रूप-रेखा अब तक हिन्दुस्तान के सम्मुख रख कर लीगी नेताओं के अनेक भाषण, लेखों इत्यादि की ओर इसे समझने के लिये संकेत किया है। सन् १९३७ ई० के निर्वाचन के बाद विशुद्ध काँग्रेस मंत्रिमंडलों के निर्माण से निराश होकर और चिढ़कर लीग किसी नये विधान की खोज में लगी। दूसरे कुछ लोगों ने भी कई योजनायें तैयार कीं। उनमें दो का साधारण रूप देख लेने से हमें इस कल्पना के

अन्तर में काम करती हुई भावना को समझने में कुछ सहायता मिल सकती है।

हैदराबाद के डा० अब्दुललतीफ की योजना* बहुत प्रसिद्ध है। उन्होंने हिन्दुस्तान को सांस्कृतिक प्रदेशों में बाँट कर, उन्हें संघ के रूप में संगठित करने की योजना तैयार की। सांस्कृतिक प्रदेशों को समान बनाने के लिये वे जन संख्या को बड़े परिणाम में एक प्रदेश से दूसरे प्रदेश में बदलने का विचार रखते हैं। उनकी योजना के अनुसार हिन्दुस्तान में पाँच मुसलिम राज्य होंगे। हिन्दुस्तान के उत्तर-पश्चिम और पूर्व दिशाओं में दो राज्य होंगे। युक्तप्रांत और बिहार में उनके अनुसार १ करोड़ २० लाख मुसलमान रामपुर को घेरते हुये पटियाला से लखनऊ तक फैले हुये पूर्वीय किनारे की भूमि में इकट्ठे किये जा सकते हैं और यह लखनऊ-दिल्ली राज्य होगा विन्ध्याचल और सतपुरा के नीचे मुसलमान सम्पूर्ण दक्षिण में फैले हुये हैं और डा० लतीफ के अनुसार इनकी संख्या १ करोड़ २० लाख से अधिक है, इनके लिये भी एक प्रदेश बनाना पड़ेगा, यह प्रदेश हैदराबाद और बरार की रियासतों से प्राप्त किया जा सकता है; करनूल और कुदाप्पा होते हुये मद्रास शहर तक यदि एक पतला किनारा मिल जाय तो भी डा० लतीफ के अनुसार काम चल सकता है; बीजापुर से होते हुये पश्चिमीय किनारे तक फैला हुआ प्रदेश यदि मिल जाय तो मालाबार और कोरोमंडल तट पर बसे हुये मुसलिम व्यापारियों की आवश्यकता पूरी हो सकती है। उनके

* डा० लतीफ द्वारा लिखित पुस्तक 'मुसलिम प्राब्लेम्स इन इंडिया'।

अनुसार १ करोड़ २० लाख मुसलमानों के लिये दक्षिण में बड़े प्रदेश की इसलिये आवश्यकता है कि निकट के वर्षों में दक्षिणी मुसलमानों की जन संख्या बहुत अधिक बढ़ गई है और वह बराबर बढ़ भी रही है; इस लिये उनके भावी विस्तार का ध्यान रखना आवश्यक है। इसके अतिरिक्त उत्तर-पूर्व और दिल्ली-लखनऊ के सँकड़े मुसलिम राज्यों के वर्तमान मुसलमानों की अधिक संख्या और उनकी भावी संतान को भी फैलने का स्थान दक्षिण में ही मिलेगा।

अलीगढ़ के प्रोफेसर सैयद जफरूल हसन और मुहम्मद अफजल हुसेन कादिरी ने भी एक योजना तैयार कि थी। इन दो प्रोफेसरों ने भी उत्तर-पश्चिम और पूर्व हिन्दुस्तान में मुसलिम-राज्यों के अतिरिक्त दक्षिण में विस्तृत हैदराबाद और बरार को जिसमें कर्नाटक भी सम्मिलित होगा, स्वतंत्र मुसलिम राज्य की माँग की थी।

एक व्यक्ति जो अपना वास्तविक नाम गुप्त रखकर अपने को पंजाबी कहते हैं, एक योजना उपस्थित करते हुये कहते हैं कि दो राष्ट्रों, तीन भाषाओं और ५ संघों का विचार कौतूहल पूर्ण और इतिहास में अभूतपूर्व हो सकता है, लेकिन यह अव्यवहारिक नहीं है। उनका कहना है कि उनकी योजना के अनुसरण हिन्दू और मुसलमान की शक्ति समान होने से दोनों की रक्षा निश्चित रहेगी। उनके अनुसार उत्तर-पश्चिम संघ के अल्पसंख्यक हिन्दू, काश्मीर रियासत के बहुसंख्यक मुसलमान और काश्मीर के हिन्दू राजा एक ओर और हिन्दुस्तान के

अल्पसंख्यक मुसलमान, हैदराबाद रियासत के बहुसंख्यक हिन्दू और हैदराबाद के मुसलमान नवाब दूसरी ओर एक-दूसरे के सम्मुख इस प्रकार समान शक्ति होंगे कि न तो हिन्दू मुसलमानों का और न मुसलमान हिन्दुओं का दमन कर सकेंगे इस योजना के अनुसार परस्पर अरक्षा की भावना का कोई स्थान न होगा। पंजाबी साहब ने परस्पर विरोधी संघों की स्थापना की योजना तैयार की है। जो सर्वदा एक दूसरे के मुकाबिले में युद्ध के लिये तैयार की हालत में खड़े रहेंगे।

मुसलिम लीग स्वयं विधान की खोज में भटकती रही, लेकिन न किसी स्पष्ट योजना का निर्माण न कर सकी और मार्च सन् १९४० ई० में एक अज्ञात और अस्पष्ट कल्पना को लाहौर प्रस्ताव में व्यक्त किया। अनेक योजनायें जिनकी चर्चा ऊपर की गई है, उनमें किसी को भी लीग ने पूर्णतया नहीं अपनाया। लाहौर प्रस्ताव द्वारा हिन्दुस्तान के पश्चिम-उत्तर और पूर्व दिशाओं में उन क्षेत्रों को जिनमें मुसलमान बहुसंख्यक हैं, सीमाबद्ध कर देने और उन्हें स्वतंत्र राज्य का पद प्राप्त होने की माँग की गई, साथ ही इस प्रकार बने मुसलिम राज्यों के संघ और शेष हिन्दुस्तान के अल्पसंख्यकों को उनके 'मजहबी, सांस्कृतिक, आर्थिक, राजनीतिक, शासन सम्बन्धी और उनके दूसरे अधिकारों और स्वार्थों की रक्षा के लिये उनकी राय से उचित, प्रभाव शाली और अनिवार्य संरक्षण विशेष रूप से विधान में देने की बात कही गई। इस प्रस्ताव से इतना अवश्य स्पष्ट हुआ कि मुसलिम लीग हिन्दुस्तान से अलग स्वतंत्र मुसलिम

राज्यों का संघ बनाने की माँग कर रही है, लेकिन वह विभाजन किस प्रकार होगा, किस प्रकार और किस आधार पर बहुसंख्यक मुसलिम क्षेत्र सीमाबद्ध होंगे, अलग होने की अवस्था में असंख्य राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक प्रश्नों के निपटारे की क्या योजना होगी, अलग की जाने वाली जनता के मत के सम्बन्ध में क्या होगा, अल्पसंख्यकों की रक्षा के लिये किस प्रकार संरक्षण होंगे, इत्यादि प्रश्नों को स्पर्श नहीं किया गया। यद्यपि लीग की कार्य समिति को विधान की योजना बनाने के लिये लीग अधिवेशन ने स्पष्ट आदेश दिया, किन्तु उसने इस सम्बन्ध में कोई प्रयत्न कभी नहीं किया।

हिन्दुस्तान से अलग होने की इच्छा का द्योतक मात्र प्रस्ताव और उसका नाम 'पाकिस्तान' भाव वाचक संज्ञा इस देश के राजनीतिक जीवन के विकट प्रश्न का रूप धारण कर लिये। यह तो मानना ही पड़ेगा कि ज्ञात और अज्ञात, स्पष्ट और अस्पष्ट वस्तुओं में बड़ा अन्तर होता है और ज्ञात तथा स्पष्ट जहाँ मनुष्य की शक्ति के भीतर हो सकता है, वहाँ अज्ञात और अस्पष्ट केवल उसकी परेशानी का कारण बन सकता है। मुसलिम लीग से निराश होकर दूसरे कई व्यक्तियों ने लाहौर प्रस्ताव की कल्पना को स्पष्ट रूप देने का प्रयत्न किया। सर स्टैफर्ड क्रिप्स अपने साथ जो योजना लाये थे, उसमें पाकिस्तान की कल्पना का भी विचार था। उस योजना का आवश्यक अंश इस प्रकार था :—

(अ) युद्ध समाप्त होते ही हिन्दुस्तान का विधान तैयार करने के लिये विधान समिति निर्वाचित होगी।

(ब) विधान समिति में देशी रियासतों के शामिल होने की गुंजायश की जायगी।

(स) विधान समिति द्वारा तैयार विधान को नीचे की शर्तों के साथ स्वीकार करने और कारगर करने का उत्तरदायित्व सम्राट की सरकार स्वीकार करती है :—

(१) यदि वृटिश हिन्दुस्तान का कोई प्रांत विधान समिति द्वारा तैयार विधान स्वीकार न कर अलग रहना चाहता है तो उसे अपनी वर्तमान व्यवस्था वनाये रखने का अधिकार होगा और यदि वह कभी वाद में शामिल होने का निश्चय करेगा तो उसके सम्मिलित करने की भी गुञ्जायश होगी।

यदि अलग रहने वाले प्रांत अपने लिये कोई दूसरा नया विधान तैयार करना चाहेंगे तो सम्राट की सरकार उसके लिये सहमत होगी और इसमें भी प्रान्त को वह पद प्राप्त होगा जो हिन्दुस्तानी संघ को प्राप्त रहेगा।

(२) विधान समिति और सम्राट की सरकार में एक सन्धि होगी जो वृटेन से हिन्दुस्तान के हाथ में उत्तरदायित्व हस्तांतरित करने के परिणाम स्वरूप' उठने वाले आवश्यक विषयों का निपटारा करेगी। यह सन्धि जातीय और मजहबी अल्पसंख्यकों की रक्षा की व्यवस्था करेगी।

वृटिश हिन्दुस्तान का कोई प्रान्त यदि अलग रहना चाहेगा तो उसके इस अधिकार के प्रयोग के ढंग को वताते हुये सर स्टैफोर्ड क्रिप्स के सेक्रेट्री ने लीग अध्यक्ष श्री जिन्ना के नाम एक पत्र लिखा था। उसमें उन्होंने कहा था :—

"एक प्रान्त इस प्रकार निर्णय करेगा कि उस प्रान्त की असेम्बली में यह प्रस्ताव उपस्थित होगा कि वह प्रान्त हिन्दुस्तानी सङ्घ में सम्मिलित रहना चाहता है। यदि इस प्रस्ताव के पक्ष में ६० प्रतिशत से कम वोट आये तो, अल्पमत वालों को यह अधिकार होगा कि वे प्रान्त के सभी बालिग निवासियों का मत अलग होने के प्रश्न पर लिये जाने की माँग करें।"

यह बात स्पष्ट कर दी गई थी कि इस बालिग मत गणना में साधारण बहुमत मान्य होगा। किन्तु मुसलिम लीग को यह योजना मान्य नहीं हुई और उसने इसे अस्वीकृति कर दिया। पाकिस्तान की रूप-रेखा अस्पष्ट रह गई। इसी समय सर स्टैफोर्ड क्रिप्स से समझौता की बाते चलाते समय काँग्रेस कार्य समिति ने दिल्ली में एक प्रस्ताव पास किया जिसमें कहा गया था :—"कार्य समिति किसी इकाई को, उसकी प्रकट, निश्चित और स्पष्ट घोषित इच्छा के विरुद्ध हिन्दुस्तानी सन्घ में रहने के लिये विवश करने की बात सोच भी नहीं सकती है।" यह एक स्पष्ट घोषणा थी, लेकिन इसका भी कोई प्रभाव नहीं हुआ। परिस्थितियों से ऊब कर मई सन् १९४४ ई० में राष्ट्रीय मुसलमान दिल्ली में एकत्र हुये और एक वैधानिक योजना तैयार किये। उसे देश के सामने रखते हुये राष्ट्रीय मुसलमानों ने आशा की कि, 'सभी दलों के लिये साम्प्रदायिक समस्या का सन्तोषप्रद हल नीचे लिखी मुख्य शर्तों के आधार पर प्राप्त किया जा सकता है और इस प्रकार का हल हिन्दुस्तान के मुसलमानों की आवश्यकता और आकांक्षा

को पूरा करेगा।' उन्होंने जो सूझ उपस्थित की वह इस प्रकार है :—

(१) हिन्दुस्तान एक इकाई होगा।

(२) हिन्दुस्तान का विधान हिन्दुस्तान के ही लोगों द्वारा तैयार किया जायेगा। (३) सर्व भारतीय सङ्घ होना चाहिये। (४) सङ्घ की इकाइयाँ पूर्ण स्वशासित हों, और सभी विशेषाधिकार उन्हीं को प्राप्त हों। (५) सङ्घ की प्रत्येक इकाई को उसके बालिक निवासियों के वोट के परिणाम स्वरूप सङ्घ से सम्बन्ध विच्छेद करने का अधिकार प्राप्त होना चाहिए और (६) अल्पसंख्यकों के मजहबी, आर्थिक और सांस्कृतिक अधिकारों की रक्षा संयुक्त समझौते के द्वारा भलि भाँति होनी चाहिये।"

किन्तु मुसलिम लीग की आवश्यकता और आकांक्षा इस हल से भी सन्तुष्ट नहीं हुई। श्री राजगोपालाचारी ने लीग के लाहौर प्रस्ताव का सूत्र पकड़ कर एक योजना तैयार की और महात्मा गाँधी की सम्मति प्राप्त कर लेने पर श्री जिन्ना के सामने उपस्थित की। राजा जी की योजना इस प्रकार है :—

(१) स्वतंत्र हिन्दुस्तान के विधान के सम्बन्ध में नीची लिखी शर्तों के अनुसार मुसलिम लीग हिन्दुस्तान की स्वतंत्रता की माँग को स्वीकार करती है और संक्रमण काल के लिये काँग्रेस से साथ अस्थायी सरकार बनाने में सहयोग करेगी।

(२) युद्ध के बाद एक कमीशन नियुक्त होगा जो हिन्दुस्तान के उत्तर-पश्चिम और पूर्व में ऐसे लगातार जिलों को सीमाबद्ध करेगा जिनमें मुसलमान स्पष्ट रूप से बहुसंख्यक हैं। इस प्रकार

सीमाबद्ध हुये क्षेत्रों के सभी निवासियों के बालिगमताधिकार या किसी दूसरे व्यवहारिक आधार पर वोट द्वारा इस प्रश्न का निर्णय होगा कि उन क्षेत्रों के लोग हिन्दुस्तान से अलग होना चाहते हैं या नहीं। यदि बहुमत का निर्णय हिन्दुस्तान से अलग स्वतंत्र राज्य का निर्माण करने के पक्ष में होता है तो इस निर्णय का पालन होगा। सीमा पर के जिलों को स्वेच्छा से राज्य में सम्मिलित होने की स्वतंत्रता होगी।

(३) वोट होने के पूर्व अपनी-अपनी राय व्यक्त करने और उसकी दलील उपस्थित करने का अधिकार प्रत्येक दल को प्राप्त होगा।

(४) अलग होने की अवस्था में रक्षा, व्यापार, यातायात और दूसरे मुख्य उद्देश्यों के सम्बन्ध में पारस्परिक सन्धि होगी।

(५) आबादी का परिवर्तन स्वेच्छा से ही हो सकेगा।

(६) ये शर्तें उसी अवस्था में लागू होंगी। जब ब्रृटेन हिन्दुस्तान के शासन की पूर्ण शक्ति और उत्तरदायित्व हिन्दुस्तान को हस्तांतरित करेगी।

राजा जी के इस प्रस्ताव को लेकर गाँधी जी बम्बई में श्री जिन्ना के निवास स्थान पर स्वयं गये और ९ सितम्बर से २८ सितम्बर १९४४ तक उनसे पाकिस्तान पर बातचीत करते रहे। इस बात-चीत के मध्य में श्री राजगोपालाचारी के प्रस्ताव को श्री जिन्ना की कल्पना के लिये अपर्याप्त समझकर गाँधी जी ने उस बात-चीत के सम्बन्ध में होने वाले पत्र व्यवहार में २४ सितम्बर १९४४ के अपने पत्र में श्री जिन्ना के सामने एक सूक्ष्म

उपस्थित की :—"काँग्रेस और लीग द्वारा नियुक्त कमीशन क्षेत्रों को सीमाबद्ध करेगा। ऐसे सीमाबद्ध क्षेत्रों के निवासियों की इच्छा का निर्णय उन क्षेत्रों के रहने वालों के बालिग मत या अन्य समान उपाय द्वारा होगा। यदि वोट अलग होने के पक्ष में हुआ तो यह स्वीकृत हो जायेगा कि विदेशी शासन से हिन्दुस्तान के स्वतंत्र हो जाने के बाद जितना शीघ्र संभव हो सकेगा, वे क्षेत्र अलग राज्य कायम करेंगे और इसलिये दो स्वतंत्र प्रभुराज्यों का निर्माण हो सकेगा।

"सम्बन्ध विच्छेद की एक सन्धि होगी, जो वैदेशिक विषय, रक्षा, आंतरिक यातायात, चुंगी, व्यापार और इसी प्रकार के दूसरे मामलों के उपयुक्त और संतोषप्रद प्रबन्ध की भी व्यवस्था करेगी। ये मामले सन्धि करने वाले दलों के मध्य निश्चय रूप से सम्मिलित प्रबन्ध के विषय होंगे। सन्धि में दोनों राज्यों के अल्पसंख्यकों की रक्षा की शर्तें भी रहेंगी।

इस योजना को काँग्रेस और लीग द्वारा स्वीकृत हो जाने के तुरन्त पश्चात् दोनों संस्थायें हिन्दुस्तान की स्वतंत्रता प्राप्त करने के लिये संयुक्त मार्ग का निर्णय करेंगी। किन्तु लीग, काँग्रेस के किसी प्रत्यक्ष कार्य से जिसमें वह भाग लेना न चाहती हो, अलग रहने को स्वतंत्र होगी।"

किन्तु इससे भी लाहौर प्रस्ताव का उद्देश्य पूरा न हो सका। महात्मा गाँधी ने मुसलिम लीग के अध्यक्ष से अनुरोध किया कि वे लाहौर प्रस्ताव को समझने के लिये उनके पास जिज्ञासु रूप में गये थे और पाकिस्तान का ठोस रूप जानने के लिये

उत्सुक थे। गाँधी जी १९ दिन तक बराबर इस उद्देश्य से श्री जिन्ना के पास जाते रहे, दोनों व्यक्तियों में लम्बा प्त्र-व्यवहार भी इस सम्बन्ध में होता रहा। लेकिन इस अवसर पर भी लाहौर प्रस्ताव की कोई निश्चित रूप-रेखा नहीं बताई गई। लम्बे पत्र व्यवहार में यह बात देखकर आश्चर्य होता है कि जिज्ञासु गाँधी को पाकिस्तान की स्पष्ट योजना न बता कर श्री जिन्ना ने उनकी बातों के खण्डन और उनकी अलोचना में ही अपना कर्तव्य पूरा होना समझा। लाहौर प्रस्ताव के सम्बन्ध में गाँधी जी द्वारा किये गये अनेक आवश्यक प्रश्नों का उत्तर श्री जिन्ना ने यह कह कर देने से अस्वीकार किया कि वे प्रश्न लाहौर प्रस्ताव के सम्बन्ध में पैदा नहीं होते। केवल कुछ ही प्रश्नों का उन्होंने उत्तर दिया, लेकिन वे इतने गोलमोल हैं कि उनसे कुछ निश्चित जाना नहीं जा सकता है। लाहौर प्रस्ताव का स्पष्ट रूप जानने का गाँधी जी का सितम्बर सन् १९४४ ई० का प्रयत्न सफल न हो सका, लेकिन लम्बे पत्र व्यवहार से और गाँधी जी की बात-चीत की प्रतिक्रिया स्वरूप श्री जिन्ना ने पत्रों को जो वक्तव्य दिया उससे, कुछ अनुमान लगाया जा सकता है। गाँधी जी द्वारा उपस्थित की हुई सूझ की अलोचना करते हुये श्री जिन्ना २५ सितम्बर के अपने पत्र में गाँधी जी को लिखते हैं :—

"यदि ये शर्तें मान ली जाँय और कार्यान्वित की जाँय तो, इन प्रान्तों की वर्तमान सीमा इस प्रकार छिन्न-भिन्न और निकम्मी कर दी जायेगी कि यह क्षति किसी प्रकार भी पूर्ण न हो

सकेगी। और हम लोगों के लिये केवल भूसीमात्र बच जायेंगी और यह लाहौर प्रस्ताव के विरुद्ध है।

"इस प्रकार छिन्न-भिन्न और निकम्मे किये हुये क्षेत्रों में भी केवल मुसलमान ही आत्मनिर्णय के अधिकारी नहीं रह जाते हैं, बल्कि उन क्षेत्रों के सभी निवासियों को यह अधिकार दिया जा रहा है। यह भी लाहौर प्रस्ताव के सिद्धान्त के विरुद्ध है।"

अपने इसी पत्र में श्री जिन्ना ने यह भी लिखा था कि स्वतंत्रता मिल जाने के बाद नहीं, बल्कि इसी समय हम अलग हो जाना चाहते हैं और वैदेशिक विषय, रक्षा, आन्तरिक यातायात, चुंगी, व्यापार इत्यादि भी यदि संयुक्त प्रबन्ध के विषय रहेंगे तो पाकिस्तान का प्राण ही निकल जायेगा।

सितम्बर की बात-चीत समाप्त हो जाने के बाद अक्टूबर में एक विदेशी पत्र प्रतिनिधि को वक्तव्य देते हुये श्री जिन्ना ने कहा था :—

"यह हिन्दुस्तान को दो पूर्ण स्वतंत्र प्रभु राज्यों में पाकिस्तान और हिंदुस्तान में इस प्रकार विभाजित करना है कि सम्पूर्ण उत्तर-पश्चिमीय सीमाप्रान्त, बलूचिस्तान, सिंध, पंजाब, बंगाल और आसाम अपनी वर्तमान अवस्था में मुसलिम प्रभुराज्य के प्रान्त मान लिये जायँ और हम दोनों में से प्रत्येक पाकिस्तान में हिंदू अल्पसंख्यकों और हिंदुस्तान में मुसलिम अल्पसंख्यकों के साथ उचित व्यवहार करने के लिये एक-दूसरे का विश्वास करें। यदि वे हम पर विश्वास करें तो हम लोग ढाई करोड़ मुसलमानों को उनके विश्वास पर छोड़ने के लिये तैयार हैं।"

लाहौर प्रस्ताव में बहुसंख्यक मुसलिम क्षेत्रों को सीमाबद्ध करने की बात कही गई थी, किंतु अपने २५ सितम्बर के पत्र द्वारा गाँधी जी को हिंदुस्तान को तथा उपर्युक्त वक्तव्य द्वारा हिंदुस्तान के बाहर के लोगों को श्री जिन्ना ने सूचित किया कि सीमाप्रान्त, बिलूचिस्तान, पंजाब, सिंध, बंगाल और आसाम की वर्तमान सीमा स्वीकार करना पड़ेगा। यह स्पष्ट है कि इन सभी प्रान्तों की वर्तमान सीमा लाहौर प्रस्ताव पास होने के बहुत पहले से निश्चित है, फिर लाहौर प्रस्ताव में सीमाबद्ध करने की बात क्यों कही गई ? यदि प्रस्ताव इन्हीं प्रान्तों को दृष्टि कोण में रख कर बनाया गया था तो एक टेढ़ी और लम्बी भाषा के स्थान पर सरलता पूर्वक इसे व्यक्त किया जा सकता था और उसी समय इन प्रान्तों की वर्तमान सीमा की बात कही जा सकती थी। इतना ही नहीं मुसलिम लीग की कार्य समिति ने, जिसके अध्यक्ष श्री जिन्ना थे, हिंदुस्तान के प्रान्तों की वर्तमान सीमा को अस्वाभाविक और तर्कहीन बताते हुये विदेशी शासन और प्रभुत्व की सुविधाओं का परिणाम कहा है। क्रिप्स प्रस्ताव को अस्वीकार करते हुये मुसलिम लीग ने श्री जिन्ना की अध्यक्षता में ११ अप्रैल सन् १९४२ को एक प्रस्ताव पास किया। उस प्रस्ताव में क्रिप्स प्रस्ताव को ठुकराये जाने के कारण बताये हुये कारण नं० ३ में लीग की कार्य समिति ने कहा था :—

"क्रिप्स प्रस्ताव में प्रान्तों के अलग रहने का जो अधिकार है, वह स्पष्टतया मुसलिम लीग के हिंदुस्तान के विभाजन के लगातार तकाज़े का परिणाम है। लेकिन उसके लिये जो नियम

और ढंग निश्चित किये गये हैं, वे उस उद्देश्य को बेकार बना देने वाले हैं। क्योंकि क्रिप्स प्रस्ताव में अलग होने का अधिकार वर्तमान प्रान्तों को जो समय-समय पर शासन की सुविधाओं के अनुसार और अस्वाभाविक तथा तर्कहीन आधारों पर बनाये गये हैं, दिया है।"*

वर्तमान प्रान्तों की सीमा की इतनी कड़ी अलोचना शायद ही किसी दूसरे ने की है और इस आधार पर क्रिप्स प्रस्ताव को ठुकराने का श्रेय भी श्री जिन्ना की मुसलिम लीग को ही प्राप्त है, किन्तु उस समय आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहता है जब लीग के अध्यक्ष श्री जिन्ना स्वयं सन् १९४४ ई० में गाँधी जी को वर्तमान प्रान्तों की सीमा को 'छिन्न-भिन्न और निकम्मी' करने के लिये बे तरह कोसते हैं। और वर्तमान प्रान्तों की सीमा को ही न मान लेने के लिये गाँधी जी के प्रस्ताव को ठुकरा देते हैं।

श्री जिन्ना ने अल्पसंख्यकों का प्रश्न पाकिस्तान और हिंदुस्तान के परस्पर विश्वास और सौजन्य पर छोड़ दिया है, लेकिन लाहौर प्रस्ताव में अल्पसंख्यकों की, 'मजहबी, सांस्कृतिक, आर्थिक, राजनीतिक, शासन सम्बन्धी और दूसरे अधिकारों और स्वार्थों की रक्षा के लिये उनकी राय से विधान में विशेष रूप से उचित, प्रभाव, शाली और अनिवार्य संरक्षण की बात कही गई थी। अल्पसंख्यकों के अधिकार और रक्षा का प्रश्न बहुसंख्यकों के विश्वास और सौजन्य पर छोड़ने की सूझ विचित्र

---

* रेखायें मेरी हैं।

होते हुये भी यह पूछा जा सकता है कि फिर लाहौर प्रस्ताव में उनके अधिकारों को विधान में विशेष रूप से स्थान पाने की बात क्या बेकार ही कही गई थी ? यदि विश्वास और सौजन्य ही आधार हैं तो वर्तमान हिंदुस्तान और विभाजित हिंदुस्तान में क्यों और क्या अन्तर हो जायेगा ? वही विश्वास सम्पूर्ण हिंदुस्तान के लिये क्यों उपयुक्त नहीं है ?

श्री जिन्ना किसी विधान के सम्बन्ध में बात-चीत नहीं करना चाहते हैं; वे केवल हिन्दुस्तान को दो भागों में बाँट देने की स्वीकृति मात्र चाहते हैं और उनके अनुसार दोनों भाग अलग-अलग अपना विधान स्वयं बनायेंगे। लाहौर प्रस्ताव में इसके विपरीत बात कही गई है। उस प्रस्ताव में कहा गया है कि, 'कोई वैधानिक योजना यदि वह नीचे सिद्धांतों के आधार पर नहीं बनाई जाती है, तो न वह इस देश में कारगर हो सकती है और न मुसलमानों द्वारा मान्य हो सकती है।' इसके बाद ही प्रस्ताव में वे सिद्धान्त बतलाये गये हैं जिनके आधार पर हिन्दुस्तानी का विधान तैयार करने को कहा गया है। प्रस्ताव के बीच वाले अंश में कहा गया है कि, 'मुसलिम हिंदुस्तान तब तक सन्तुष्ट नहीं होगा, जब तक सम्पूर्ण वैधानिक योजना पर फिर आमूल विचार नहीं किया जाता है और कोई भी ऐसी सन्शोधित योजना मुसलमानों को मान्य नहीं होगी, जब तक वह उनकी राय और समर्थन से नहीं बनायी जाती है।' यह स्पष्ट है कि लाहौर प्रस्ताव में हिन्दुस्तान को दो भागों में बाँट कर उन्हें अलग-अलग विधान बनाने की कल्पना नहीं की गई

है, बल्कि इसके विपरीत ऐसे विधान के निर्माण की कल्पना की गई है, जो मुसलिम हिन्दुस्तान की राय और समर्थन से उनके निर्देश किये गये सिद्धान्तों के अनुसार बनाया जायेगा।

लाहौर प्रस्ताव के अनुसार विधान की यदि कोई स्पष्ट योजना, उसकी एक निश्चित रूप-रेखा उसी समय या इस समय ही तैयार कर देश के सामने रखी जाती तो अनेक परेशानियाँ मिट जातीं और एक वास्तविक वस्तुस्थिति सुलझाने का ठोस प्रयत्न संभव होता। श्री जिन्ना या मुसलिम लीग के दूसरे व्यक्तियों के बिखरे हुये वक्तव्यों से कभी एक और कभी दूसरा अनुमान विधान सम्बन्धी प्रश्नों के सम्बन्ध में होता रहता है। श्री जिन्ना के स्थान पर यदि लीग का अध्यक्ष कोई दूसरा व्यक्ति चुना जाये तो लोगों को फिर उस व्यक्ति के वक्तव्यों और रुख पर आश्रित रहना पड़ेगा और इस परिस्थिति में वे लोग, जो हिन्दुस्तान की परिस्थिति से ऊबे हैं और इसमें परिवर्तन लाने के लिये चिन्ताशील हैं, अनुमान का सूत्र पकड़ कर अनेक योजनायें तैयार करते जा सकते हैं और उनमें एक भी लाहौर प्रस्ताव के अनुकूल नहीं हो सकती है। विधान के सम्बंध में यह विचित्र परिस्थिति है और संसार के इतिहास में नई भी है।

फिर भी लाहौर प्रस्ताव पाकिस्तान के आकर्षक नाम से अत्यन्त प्रसिद्ध हुआ है और मुसलिम जनता की भावना और भावुकता पर अधिकार स्थापित करने, उसकी आँखों के सामने चकाचौंध उपस्थित करने में कुछ अंश तक कारगर हुआ है।

पाकिस्तान क्या है? पाकिस्तान और 'पुण्यभू'* उस सुन्दर कल्पना के प्रतीक-से प्रतीत होते हैं। जिसके वास्तविक स्वरूप को प्राप्त करने के लिये मनुष्य लालायित है। पाकिस्तान और पुण्यभू: पाक देश को कहेंगे। किसी देश के पाक बनने के क्या अनिवार्य उपकरण हैं? किन लक्षणों से कोई देश या भूखण्ड पाक बनने की योग्यता रखता है? यह निर्विवाद और स्वीकृत बात है कि पाक या नापाक किसी देश की सीमा से सम्बन्ध नहीं रखता है, कोई भी भूखण्ड स्वयं सर्वदा पाक है। पाक या नापाक मनुष्य और समाज की व्यवस्था का परिणाम है। सन् १९१७ ई० की क्रांति ने जार की नापाक साम्राज्यवादी व्यवस्था का अन्त कर समाजवाद की पाक व्यवस्था स्थापित की। जार का नापाक रूस अब एक पाक देश है। समाज की पाक व्यवस्था के कारण रूस अब पुण्यभू: या पाकिस्तान है। पाक वह है जहाँ किसी का शोषण और उत्पीड़न नहीं होता है, जहाँ समाज का एक वर्ग शेष पर प्रभुत्व और शासन नहीं करता है, जहाँ स्वार्थों की विषमता नहीं होती है और इसलिये विषम स्वार्थों के कारण उत्पन्न होने वाले वर्ग संघर्ष और रात-दिन चलने वाले षड़यंत्रों की गुञ्जाइश नहीं होती है, जहाँ वर्ण भेद और जाति भेद के कारण आर्थिक राजनीतिक, और सामाजिक भेद नहीं होते हैं, जहाँ टुकड़े-टुकड़े अन्न-वस्त्र के लिये लोग एक ओर तड़प-तड़प कर नहीं मरते हैं और न दूसरी ओर अत्यधिक विलास और वैभव के जीवन बीतते हैं; जहाँ

दमन, चोरबाजार, मुनाफाखोरी, छीना-झपटी और भीषण प्रतिद्वंद्विता नहीं होती है और न जहाँ विचारों की स्वतंत्रता रूढ़ियों के रेगिस्तान में नष्ट होती रहती है। पाक देश वह है, जहाँ पूँजी और साम्राज्य की व्यवस्था का जिसमें नापाक परिस्थियों का पोषण होता है, अन्त कर वर्ग हीन समाज वास्तविक और क्रियात्मक सहानुभूति और सहयोग के जीवन की सृष्टि करता है।

लाहौर प्रस्ताव क्या इस अर्थ में पाकिस्तान की कल्पना करता है? यदि नहीं करता है तो उसे पाकिस्तान के आकर्षक नाम से सम्बोधित करना क्या साम्राज्यवादी व्यवस्था की उस नीतिका अनुसरण मात्र है, जो जन हित का दमन करते हुये भी जनतंत्र की डींग हाँकती है, शान्ति के नाम पर युद्धों की विभीषिका की नित्य सृष्टि करती रहती है, सुव्यवस्था के नाम पर छीना-झपटी और अराजकता को व्यवस्थित रूप देती है और जो भारत रक्षा कानून के बहाने भारत के स्वार्थों और आकांक्षाओं का हनन करती रहती है? यदि यह आकर्षक नाम केवल प्रचार का साधन है तो उसके अंतर में कौन-सा उद्देश्य छिपा है? लाहौर प्रस्ताव के सम्बन्ध में ऐसे अनेक प्रश्न उत्पन्न होते हैं और एक विशद योजना की अनुपस्थिति में हम उन पर विचार करने का प्रयत्न करेंगे।

लाहौर प्रस्ताव मुसलिम लीग की मांग है, लेकिन वह उस समाज-व्यवस्था की कल्पना नहीं करती है जो किसी भूखण्ड को पाकिस्तान का सम्बोधन देने की क्षमता रखती है। मुसलिम

लीग के प्रमुख व्यक्तियों के वक्तव्यों से इस बात के स्पष्ट होने में कोई सन्देह नहीं रह गया है कि उनके मस्तिष्क में किसी भी प्रगतिशील सामाजिक व्यवस्था के लिये स्थान नहीं है। मुसलिम लीग के अध्यक्ष ने यह कहने में कोई संकोच नहीं किया है कि जन तंत्र इस देश के लिये सर्वथा अनुपयुक्त है। यदि जनतंत्र शासन इस देश में अनुपयुक्त है तो लीग 'पाकिस्तान' में किस प्रकार की शासन व्यवस्था कायम करना चाहती है, यह विचारणीय है। शासन पद्धति की कुछ जानी हुई व्यवस्थायें इस प्रकार हैं :—

(१) एक राजा का अनियंत्रित शासन ;

(२) एक राजा का अनियंत्रित उदार शासन ;

(३) एक राजा का प्रजा में से नामजद किये हुये लोगों की सलाह से शासन ;

(४) एक राजा का प्रजा द्वारा नामजद लोगों की सलाह से शासन ;

(५) प्रजा द्वारा चुने हुये प्रतिनिधियों का शासन; पश्चिमीय डेमोक्रेसी

(६) फासिस्ट शासन ;

(७) जनतंत्र शासन।

समय की प्रगति के साथ संसार के राज्य एक-एक को अस्वीकृत कर दूसरे को अपनाते गये और आज का प्रगतिशील संसार पहले चार प्रकार शासनों की कल्पना भी नहीं करता है। वर्तमान युग में प्रजाद्वारा चुने प्रतिनिधियों के शासन

और जनतंत्र शासन में संघर्ष है। प्रजाद्वारा चुने प्रतिनिधियों की शासन व्यवस्था पश्चिमीय योरुप, विशेष कर इंगलैंड और अमेरिका में हैं। यह व्यवस्था भी जनतन्त्र होने का दम भरती है और अपने को इसी नाम से पुकारती भी है, लेकिन इसमें केवल पूँजीपति और सत्ताधारी शासन के अधिकारी होते हैं और शेष प्रजा उनकी इच्छाओं और स्वार्थों की साधन होती है। इसलिये इस प्रकार के नामधारी जनतन्त्र को वास्तविक जनतन्त्र के रूप में बदल देने के लिये संसार के देश आज प्रयत्नशील हैं। इस वास्तविक जनतन्त्र का उदाहरण आज का रूस है। यह स्पष्ट है कि वर्तमान संसार की आकाँक्षा का केन्द्र विन्दु जनतन्त्र है। हिन्दुस्तान भी संसार का एक अङ्गमात्र है और संसार की क्रियायों तथा प्रतिक्रियायों से वह भी प्रभावित है लेकिन इस सत्य की परवाह न कर मुस्लिम लीग ने 'जनतन्त्र-शासन' को इस देश के लिये सर्वथा अनुपयुक्त घोषित किया है।

फासिस्ट शासन पूँजीवाद और साम्राज्यवाद की अतृप्त और अधकचरी लालसा की उग्र और अत्यन्त उद्दण्ड प्रतिक्रिया है। प्रथम योरपीय महायुद्ध (१९१४-१९१८) के बाद पूँजीवादी इटली दो परस्पर विरोधी शक्तियों के मध्य कुचल जाने की स्थिति में पहुँच गया, बाहरी प्रतिद्वंद्विता और षड़यन्त्रों के कारण उसके विस्तार की आकाँक्षा पर प्रबल आघात हुआ और भीतरी समाजवादी क्राँति की तीव्रता से उसके एकदम निर्मूल हो जाने की स्थिति उत्पन्न हो गई। इस अवस्था से निराश, क्षुब्ध और क्रुद्ध पूँजीपति इटली अपने अस्तित्व की रक्षा के अन्तिम प्रयास

में वह नग्न नृत्य करने पर तुल गया, जिसमें कुछ भी असम्भव और अनुचित नहीं होता है। फासिस्ट शासन इसी अधमतर साम्राज्यवादी मनोवृत्ति की उपज है। यह एक निरंकुश, स्वेच्छाचारी शासन है जो क्रूर हिंसा और सभी प्रकार के अनाचार के द्वारा जनता और उसकी आकाँक्षाओं का भीषण दमन कर सभी सम्भव साधनों द्वारा सत्ताधारी, अवसरवादी और शक्ति के लोलुप वर्ग का पोषण करता है। युद्ध की खुली ललकार इसकी एक विशेषता है, क्योंकि युद्ध में ही उसे अपनी अतृप्त लालसा के पूरा होने का अवसर दीखता है। इटली और उसके तानाशाह मुसोलिनी इस शासन के स्पष्ट उदाहरण है, लेकिन वर्तमान संसार में इस प्रकार का शासन और जनता की आकाँक्षाओं की उद्दण्ड अवहेलना असम्भव है। फासिस्ट शासन और उसके तानाशाह मुसोलिनी का दयनीय अन्त ससार के सामने है। प्रहसनीय यह है कि इतना घोर प्रतिक्रियावादी होते हुये भी फासिस्ट शासन अपने को रिपब्लिकन (लोकतन्त्र) नाम से सम्बोधित करता था।

क्या मुसलिम लीग पाकिस्तान के नाम में फासिस्ट मनोवृति का पोषण करती है? किसी स्पष्ट योजना की अनुपस्थिति में लीग के ढंग और व्यवहार इसी परिणाम पर पहुँचने के लिये विवश करते हैं। मुसलिम लीग, जैसा कि एक पिछले परिच्छेद में हमने देखा है, सत्ताधारी, अवसरवादी और शक्ति-लोलुप स्वार्थों का प्रतिनिधित्व करती है। उसने दूसरे सभी लोगों की इच्छा और राय की निष्ठुर अवहेलना कर उन पर अपना

निर्णय साहस और हठ के साथ लादने का रूख ग्रहण किया है और उसका निर्णय स्वीकार न करने पर भीषण परिणामों की धमकी दी है। जिन प्रान्तों का मुसलिम राज्य बनेगा उनके निवासियों के मत लिये जाने की माँग पर लीग विचार भी करना पसन्द नहीं करती है। मुसलमानों की जिस १० करोड़ की संख्या के आधार पर लीग अलग राज्य का दावा करती है, उसकी राय की परवाह करना भी वह अपना कर्तव्य नहीं समझती है। अखिल भारतीय शीया कान्फ्रेंस के अध्यक्ष से मुसलिम राज्य में शीया मुसलमानों के अधिकार को स्पष्ट करने की प्रार्थना करते हुये कुछ अपनी माँगे उपस्थित कीं, लेकिन लीग अध्यक्ष ने उसे संस्था मानने से अस्वीकार करते हुये उसकी माँगों को ठुकरा दिया और यह घोषित किया कि मुसलिम लीग के अतिरिक्त किसी भी दूसरी संस्था को मुसलमान के नाम कुछ बोलने, सोचने, या माँग करने का अधिकार नहीं है एक दूसरे के अवसर पर मुसलिम लीग के अध्यक्ष का अधिकार प्रयोग विशेष रूप से उल्लेखनीय है। हिंदुस्तान के भावी विधान के सम्बन्ध में कोई मार्ग ढूँढ़ने के लिये निर्दल सम्मेलन ने सर तेज बहादुर सप्रू की अध्यक्षता में एक समिति नियुक्त की, जिससे हिंदू-मुसलमान सभी अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त कानून के पंडित, विद्वान, कई हाईकोर्टों के अवसर प्राप्त जज इत्यादि शामिल थे। सम्पूर्ण हिंदुस्तान ने इस समिति का स्वागत किया। पाकिस्तान सम्बन्धी कुछ प्रश्नों को स्पष्ट करने के उद्देश्य से कमेटी के अध्यक्ष ने मुसलिम लीग के अध्यक्ष श्री जिन्ना से

मिलने की प्रार्थना करते हुये १० दिसम्बर १९४४ को एक पत्र लिखा :—

"कमेटी का मुख्य कार्य खोज करना है। यह व्यक्ति गत सम्पर्क और दूसरे उपायों द्वारा हिन्दुस्तान के भावी विधान के आधारभूत सिद्धान्तों के सम्बन्ध में मुख्य राजनीतिक दलों का दृष्टिकोण निश्चित करने का प्रयत्न करेगी। यह मुसलिमलीग के पाकिस्तान सम्बन्धित प्रस्तावों के उद्देश्यों और साथ ही गाँधी-जिन्ना बातचीत के अवसर पर दिये गये महात्मा गाँधी और राजगोपालाचारी के प्रस्तावों की उपयोगिता का पूर्ण अध्ययन करेगी। उतने ही ध्यान के साथ हिन्दू महासभा, सिख, अछूत और दूसरे महत्वपूर्ण वर्गों की माँगों का भी यह अध्ययन करेगी।.........इसलिये मैं समिति की और अपनी ओर ईमानदारी के साथ प्रार्थना करता हूँ कि आप मुझे और दो-एक सदस्यों को मिलने की आज्ञा दें।"

श्री जिन्ना ने २४ दिसम्बर सन् १९४४ ई० के पत्र द्वारा श्री सप्रू को इस प्रकार उत्तर दिया :—

"मुझे खेद है कि मैं निर्दल सम्मेलन या उसकी स्थायी समिति को स्वीकार नहीं करता हूँ,* इसलिये इसका अर्थ यह है कि निर्दल सम्मेलन की स्थायी समिति द्वारा हाल में नियुक्त हुई समिति को भी स्वीकार नहीं कर सकता हूँ। इसलिये आपकी प्रार्थना पूरा करने से मैं विवश हूँ।"

यह एक फैसिस्ट अधिनायक का स्वर और भाषा है। अपने

* रेखायें मेरी हैं।

अतिरिक्त और किसी के अस्तित्व को स्वीकार न करना फैसिस्ट विशेषता है। एक व्यक्ति की आज्ञा का सर्वाधिकार और पूर्ण प्रभुत्व फासिस्ट व्यवस्था का मूल सिद्धान्त है। न तो किसी वर्ग विशेष, सम्प्रदाय या दल को अपने अधिकार के सम्बन्ध में लीग अध्यक्ष के सामने कोई मार्ग या सूझ उपस्थित करने का अधिकार है और न किसी को विधान सम्बन्धी कोई मार्ग ढूँढ़ने के प्रयत्न करने का अधिकार है। मुसलिमलीग ने शासन-विधान के सम्बन्ध में जो सिद्धान्त स्थिर कर रखा है, उसमें लेशमात्र भी हेरफेर करने की न गुञ्जाइश है और न किसी को अधिकार। गान्धी-जिन्ना बात-चीत के अवसर पर २६ सितम्बर के पत्र में लीग अध्यक्ष श्री जिन्ना ने गान्धी जी को लिखा था, 'यदि बात-चीत भंग होती है तो उसका कारण यह होगा कि आप लाहौर प्रस्ताव के मूल तत्वों के सम्बन्ध में मुझे संतुष्ट करने में सफल नहीं हुये हैं।' श्री जिन्ना के सन्तोष के अतिरिक्त किसी दूसरे की इच्छा और सन्तोष की कोई गुञ्जाइश नहीं है। लाहौर प्रस्ताव भी क्या है, इसे भी जानते रहने के लिये लोगों को लीग अध्यक्ष द्वारा समय-समय पर की जानेवाली व्याख्या पर निर्भर रहना पड़ेगा। लाहौर प्रस्ताव की स्पष्ट व्याख्या कर न तो लीग के अध्यक्ष सम्पूर्ण हिन्दुस्तान की उत्सुकता और जिज्ञासा की इज्जत करने की परवाह करने की आवश्यकता समझते हैं और न दूसरों को उसे समझने का प्रयत्न करने की स्वीकृति देना चाहते हैं। इस प्रकार सब के विचारों और आकांक्षाओं का भीषण दमन कर सब के ऊपर बलपूर्वक

केवल अपना निर्णय लादने का हठ फैसिस्ट इटली और उसके अधिनायक मुसोलनी के अधिकारों को मात करना प्रतीत होता है।

यदि 'पाकिस्तान' की उत्पत्ति की तुलना फासिस्ट इटली की उत्पत्ति से की जाय, दोनों में बहुत अधिक समता मिलेगी। फासिस्ट इटली की भाँति पाकिस्तान भी दो परस्पर विरोधी परिस्थितियों की उपज है। मुसलिमलीग के राजे और नवाबों का यह स्वप्न अभी नहीं टूटा था कि यदि अँग्रेज न आये होते तो वे हिंदुस्तान के प्रभु और शासक होते, लेकिन सन् १९३५ ई० के शासन विधान द्वारा जब नाममात्र का अधिकार मिलता दीख पड़ा तो जनशक्ति के सामने उन्हें बेतरह मुंहकी खानी पड़ी और जो भी शक्ति थी उस पर जनता के प्रतिनिधियों का अधिकार हुआ। इस परिस्थिति से लीग के सामतों की कुचली हुई आकांक्षा और अरमान को जो ठेस लगी, उससे चिढ़कर और बढ़ती हुई जनशक्ति की तीव्रता से घबड़ाकर अपनी स्वार्थ रक्षा के अन्तिम प्रयत्न में विचित्र राजनीतिक सिद्धान्तों का प्रति पादन करना आरम्भ किया। जिस युग में लीग ने पृथक राष्ट्रीयता और पृथक राज्य की नीति अपनायी, वह योरुप में फासिस्ट युग की चरमावस्था थी। लीग और उसके अध्यक्ष ने योरुप की फासिस्ट गतिविधि का पूर्ण और व्यौरेवार अनुकरण करने का प्रयत्न किया। पृथक मुसलिम राज्य स्थापित करने के हठ में खुले युद्ध की ललकार की फासिस्ट विशेषता भी स्पष्ट है। ऐतिहासिक घटनाओं का यह निश्चित निष्कर्ष है कि राजनीतिक सीमा के

बँटवारे की समस्या युद्ध का निमन्त्रण और अनिवार्य प्रथम अवस्था हैं। सर तेज बहादुर सप्रू की अध्यक्षता में नियुक्त समिति का विरोध करते हुये लीग के प्रमुख व्यक्ति चौधरी खलीकुज्जमा ने कहा था, 'रूस और पोलैंड की सीमा समस्या का निपटारा करने के लिये कानूनी पण्डितों की कोई समिति क्यों नहीं नियुक्त की जाती है? हमारा प्रश्न राजनीतिक है, और उसका निपटारा भी राजनीतिक ढंग से किया जा सकता है।" इसमें सन्देह नहीं कि राजनीतिक प्रश्नों का निपटारा किसी समिति या युद्ध दो ही मार्गों से हुआ करता है। चौधरी खलीकुज्जमा साहब ने समिति की उपयोगिता को अस्वीकार कर क्या युद्ध की ओर संकेत नहीं किया है? पाकिस्तान की सीमा का प्रश्न एक भीषण जटिल प्रश्न बन गया है और इसके नित्य परिवर्तन में फासिस्ट राजनीति का ही ढँग दीख पड़ता है। पाकिस्तान की निश्चिति सीमा जानने के लिये महात्मा गाँधी ने गाँधी-जिन्ना बात-चीत के अवसर पर सितम्बर १९४४ के अपने एक पत्र में लीग अध्यक्ष से पूछा था, लाहौर प्रस्ताव में 'पाकिस्तान' नाम नहीं आया है, क्या इसका वही आरम्भिक अर्थ है जिससे पंजाब, अफगानिस्तान, काश्मीर, सिंध और बिलोचिस्तान का बोध होता है?' इस प्रश्न का उत्तर देते हुये श्री जिन्ना ने गाँधी जी को लिखा, 'हाँ; लाहौर प्रस्ताव में 'पाकिस्तान' शब्द नहीं आया है और इसका अर्थ वह नहीं है जो आरम्भ में था। अब यह शब्द लाहौर प्रस्ताव का पर्यायवाचक नाम हो गया है।' इससे स्पष्ट है कि आरम्भ में पाकिस्तान की जो सीमा

थी, वह लाहौर प्रस्ताव के द्वारा बढ़ गई। आरम्भ में पाकिस्तान की सीमा केवल हिन्दुस्तान की उत्तर पश्चिम दिशा में ही सीमित थी, लेकिन लाहौर प्रस्ताव में हिन्दुस्तान की पूर्व दिशा भी सम्मिलित हो गई। लाहौर प्रस्ताव में उत्तर पश्चिम और उत्तर पूर्व दिशाओं में उन मुसलिम प्रदेशों को सीमाबद्ध करने की बात कही गई थी, जिनमें मुसलमान निश्चित रूप से बहुसंख्यक हैं। श्री राजगोपालाचारी ने इसी आधार का सूत्र पकड़ कर अपनी योजना तैयार की और सन् १९४२ ई० तक लीग अध्यक्ष भी पाकिस्तान की यही सीमा निश्चित किये थे। राजा महेश्वर दयाल ने अपने एक वक्तव्य द्वारा यह बतलाया है कि श्री जिन्ना ने इसी सीमा के आधार पर हिन्दुस्तान के बँटवारे की योजना का एक प्रस्ताव सन् १९४२ ई० में उन्हें दिया था। बम्बई के भूतपूर्व मन्त्री श्री के० एम० मुन्शी ने २७ दिसम्बर सन् १९४४ ई० के 'लीडर' के एक लेख में लिखा था।' अक्टूबर सन् १९४२ ई० में श्री जिन्ना के नाम में मुसलिम लीग के नेता ने इसी प्रकार (राजा जी सा) एक प्रस्ताव राजा महेश्वर दयाल को दिया और हम लोगों में से कुछ लोग इस पर विचार करने के लिये दिल्ली में अक्टूबर सन् १९४२ ई० में आपस में मिले; सिख नेता, जो उस समय उपस्थित थे, इसी आधार पर 'आजाद पंजाब योजना' का निर्माण कर डाले।' किन्तु राजा जी और गाँधी जी द्वारा इस सीमा को मान लेने पर सितम्बर सन् १९४४ ई० में यह सीमा भी बदल गई और अब वह बढ़कर वर्तमान सीमाप्रान्त, बलूचिस्तान, सिन्ध, पंजाब,

बंगाल, और आसाम प्रान्तों में परिवर्तित हो गई है। फासिस्ट शैली के सब से बड़े अधिनायक हर हिटलर ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'मीनकैम्पू' में लिखा है।

"जहाँ तक सम्भव होगा एक चतुर विजेता अपनी माँगों को किस्तवार बढ़ाता जायेगा।"*

पाकिस्तान की सीमा को बराबर किस्तवार बढ़ाते रहकर मुसलिम लीग के अध्यक्ष ने क्या इस फासिस्ट नीति का अक्षरशः अनुकरण नहीं किया है ?

राज्य के बँटवारे और राजनीतिक सीमा की समस्या और माँगों में केवल शासन और शोषण का उद्देश्य और स्वार्थ छिपा है। प्रयत्न करने पर भी इसके अतिरिक्त दूसरा अर्थ समझ सकना असम्भव है। युक्तप्रांत मुसलिम विद्यर्थी संघ का अधिवेशन इलाहाबाद में मुसलिम लीग के एक महत्वपूर्ण व्यक्ति राजा महमूदाबाद की अध्यक्षता में दिसम्बर सन् १९४४ ई० में हुआ। इस अधिवेशन के एक प्रस्ताव में कहा गया कि 'हिंदुस्तान' के सभी मुसलमान और मुसलिम रियासतें पृथक राष्ट्र की भाँति रहने के लिये और अपने दृष्टिकोण और आदर्श के अनुसार शासन करने के लिये दृढ़ निश्चय हैं।' राजा महमूदाबाद ने अपने भाषण में इस अधिवेशन में कहा था कि, मुसलिम लीग एक ऐसा पाकिस्तान प्राप्त करने पर ही सहमत हो सकती है जो कुरान के नियमों के अनुसार ही पूर्णतया शासित होगा।

* आक्सफोर्ड पैम्फलेट्स आनवर्ल्ड अफेयर्स ले० आर० सी० के० इन्सन में उद्धृत।

राजा महमूदाबाद के कथन का अर्थ स्पष्ट है। राजाओं और नवाबों की बनी मुसलिम लीग 'पाकिस्तान' में उस शासन व्यवस्था को कायम करने के लिये दृढ़ निश्चय है जिसमें राजाओं और नवाबों की वह हस्ती बनी रहे, जो अपनी रियासत में इस समय राजा महमूदाबाद की है, और शेष लोग राजा महमूदाबाद की रियासत की रियाया की वह जिन्दगी बिताने के लिये विवश होंगे जो सदियों पीछे छूट गई है, और जिससे मुक्ति पाने के लिये राजा महमूदाबाद की रियाया प्रतिक्षण छटपटा रही है। मुसलिमलीग के अध्यक्ष ने देशी रियासतों की मुसलिम जनता के लिये 'पाकिस्तान' अवाञ्छनीय घोषित करते हुये रियासती शासन का समर्थन किया है, और केवल बृटिश हिन्दुस्तान के मुसलमानों के लिये 'पाकिस्तान' अनिवार्य बताया है। इसका स्पष्ट अर्थ यह है कि बृटिश हिंदुस्तान में भी यदि देशी रियासतों के समान शासन हो तो पाकिस्तान की आवश्यकता न होगी। लेकिन संभवतः हिन्दुस्तान को जनतन्त्र की ओर बढ़ते हुये देखकर उसके एक भाग में पाकिस्तान के नाम में रियासती शासन कायम करने का प्रयत्न किया जा रहा है। अल्पसंख्यकों को उस शासन व्यवस्था में, जैसा कि लीग अध्यक्ष के वक्तव्य से स्पष्ट है, पाकिस्तान के इन राजा शासको की कृपा पर आश्रित रहना पड़ेगा। कुरान का अर्थ भी वही होगा जो मुसलिम लीग के ये राजा और नवाब लगायेंगे। काँग्रेस अध्यक्ष मौलाना अबुल कलाम आज़ाद कुरान के अन्तर्राष्ट्रीय ख्यातिप्राप्त भाष्यकार हैं, लेकिन वे हिंदुस्तान की मुसलिम रियासतों के शासन को

कुरान के नियमों के विरुद्ध समझते हैं और कुरान के ही सिद्धान्त के आधार पर हिंदुस्तान के लिये उस जनतंन्त्र शासन व्यवस्था के प्रवल समर्थक और प्रयत्नशील हैं। जिसका मुसलिम लीग कट्टर विरोधी है। खाँ अब्दुल गफ्फार खाँ, मुसलिम मजलिस के अध्यक्ष ए० एम० ख्वाजा इत्यादि कुरान के अनेक जानकार व्यक्तियों के अतिरिक्त हिंदुस्तान में जमैयतुल उलमाये हिंद नाम की हिंदुस्तान के उलेमाओं की एक प्रसिद्ध जमात ही है जो कुरान का अर्थ मुसलिम लीग से भिन्न समझती है; खाकसार पठान, मोमीन, अहरारपार्टी के लोग और अनेक मुसलिम संस्थायें भी कुरान का उपदेश लीग से भिन्न मानती और जानती हैं। सन्देह इस बात में है कि राजा महमूदाबाद को मुसलिम लीग में कुरान को ठीक समझने वाला एक भी व्यक्ति है या नहीं, लेकिन फिर भी 'पाकिस्तान' में कुरान का वही अर्थ सबको मानना पड़ेगा, जो अर्थ मुसलिम लीग के राजा और नवाबों को मान्य होगा, और वे ही नियम कुरान के अनुकूल समझने पड़ेंगे, जो उनके द्वारा प्रतिपादित होंगे। मुसलिम लीग के अर्थ से सहमत न होने वाले मुसलमानों पर और दूसरे सम्प्रदायों के लोगों पर जो कुरान के नियम और कानून में विश्वास नहीं करते क्या गुजरेगी, इसकी केवल कल्पना की जा सकती है। १६ वीं शताब्दी का वह इंगलैंड स्मरण हो आता है, जब एलिजाबेथ और मेरी के शासन काल में मजहब के नाम पर कैथलिक और प्रोटेस्टैंट लोगों के ऊपर भयंकर जुल्म किये जाते थे। क्या बीता हुआ वैसा ही जमाना हिंदुस्तान के एक

२७

भाग 'पाकिस्तान' में लाया जायेगा ? यह एक अत्यन्त निरकुंश और स्वेच्छाचारी शासन की कल्पना है।..........मुसलिम लीग दो भिन्न राष्ट्र मुसलिम राष्ट्र और हिंदू राष्ट्र में विश्वास करती है। इस सिद्धान्त के अनुसार यह स्पष्ट है कि 'पाकिस्तान' मुसलिम और हिंदू दो भिन्न राष्ट्रों का सम्मिलित राष्ट्रीय राज्य होगा, जिसमें मुसलिम प्रभु और शासक 'राष्ट्र' होगा और हिंदू शासित 'राष्ट्र' होगा । पिछले परिच्छेद में हमने सम्मिलित राष्ट्रीय राज्यों की चर्चा की है और साधारणतया यह जानने का प्रयत्न किया है कि शासक और शासित राष्ट्रों के सम्बन्ध के कारण उन सभी समस्यायों और युद्धों का जन्म हुआ जो वर्तमान संसार के भयंकर अभिशाप हैं। प्रभु शासक राष्ट्र द्वारा शासित राष्ट्र का शोषण, उत्पीड़न और दमन इतिहास की रोमांचकारी घटनायें हैं। पृथक राज्य की माँग में शासन और शोषण की सुविधायें प्राप्त करने की आकांक्षा निहित है।*

लेकिन मान लिया जाय कि मुसलिम लीग के 'पाकिस्तान' की माँग के सम्बन्ध में उपर्युक्ति कल्पनायें निराधार हैं और वह ऐसी भावनाओं से प्रभावित नहीं है; बल्कि वह ईमानदारी से विश्वास करती है कि मुसलमान एक राष्ट्र हैं, जिनका स्वतन्त्र विकास हिंदुस्तान में समुचित रूप से होना असम्भव है और वह हिंदुओं की मनोवृति से, हिंदुस्तान की दम घुटा देने वाली उलझन पूर्ण समस्यायों से ऊब गई है, इसलिये वह हिन्दुस्तान

* काश्मीर रियासत की मुसलिम सभा में श्री जिन्ना का व्याख्यान ग्रीष्म १९४४

का प्रादेशिक विभाजन कर उलझन पूर्ण जीवन से अलग हो शुद्ध, अमिश्रित राष्ट्रीयता का जीवन बिताना चाहती है। वह आत्मनिर्णय का अधिकार चाहती है, जो अत्यन्त औचित्यपूर्ण अधिकार है। इन विचारों के प्रकाश में मुसलिम लीग की प्रादेशिक विभाजन की माँग को विवेचना करना उपयुक्त होगा।

हिंदुस्तान के प्रादेशिक विभाजन की कई योजनायें प्रकाशित हुई हैं। डा० लतीफ, प्रोफेसर कूपलैंड, सर स्टेफर्ड क्रिप्स, श्री राजगोपालाचारी और श्री जिन्ना ने प्रादेशिक विभाजन के आधार पर अलग-अलग योजनायें उपस्थित की हैं। गाँधी-जिन्ना बात-चीत के अवसर पर लीग के अध्यक्ष ने हिंदुस्तान के प्रादेशिक विभाजन का जो नक्शा उपस्थित किया, उसमें सीमाप्रान्त, बलूचिस्तान और सिंध पूर्ण रूप से बहुसंख्यक मुसलिम प्रान्त हैं। इन तीनों प्रान्तों में सर्वत्र मुसलिम बाहुल्य और प्रभुत्व है। पंजाब, बंगाल और आसाम की परिस्थिति इससे भिन्न है। पंजाब में ४३ प्रतिशत अमुसलिम हैं जो हिंदू हैं। बंगाल प्रान्त में ४५ २७ प्रतिशत हिंदू हैं। आसाम में केवल सिलहट जिले में ६० प्रतिशत मुसलमान बसते हैं, यदि इस जिले को आसाम से अलग कर दिया जाय तो शेष आसाम में हिंदुओं की संख्या ७५ प्रतिशत हो जायगी। पंजाब और बंगाल, इन दोनों प्रान्तों में सर्वत्र मुसलमानों का बाहुल्य और प्रभुत्व नहीं है, बल्कि इनमें मुसलमान और हिंदू इस प्रकार बसे हुये हैं कि इनमें प्रत्येक प्रान्त का स्पष्ट विभाजन मसलिम क्षेत्र में किया जा सकता है। वास्तव में इन प्रान्तों में मुसलिम क्षेत्र और हिंदू

क्षेत्र अलग-अलग वसे ही हैं। पंजाब ३० जिलों में विभाजित हैं, जिनमें पश्चिम के १७ जिले मुसलिम क्षेत्र हैं। इन १७ जिलों में मुसलमानों का निश्चित बाहुल्य है। पूर्व के १३ जिले हिंदू क्षेत्र हैं, इनमें हिंदुओं का निश्चित बाहुल्य है। कांगरा जिले में ९३ प्रतिशत हिंदू और ५ प्रतिशत मुसलमान हैं। अम्बाला कमिश्नरी के जिलों में हिंदू ६६ प्रतिशत और मुसलमान २८ प्रतिशत है। अन्य जिलों में हिंदू और सिखों का स्पष्ट बहुमत है। बंगाल में कुल २९ जिले हैं, इनमें उत्तर पूर्व बंगाल के १७ जिले मुसलिम बहुसंख्यक जिले हैं और पश्चिम के १२ जिले हिंदू बहु संख्यक जिले हैं। पंजाब और बंगाल दोनों प्रान्तों में मुसलिम क्षेत्र और हिंदू क्षेत्र निश्चित रूप से अलग किये जा सकते हैं। और यदि विशुद्ध साम्प्रदायिक आधार पर प्रान्तों का निर्माण किया जाय तो पूर्वीय पंजाब और पश्चिमीय बंगाल हिंदू प्रान्त होंगे। पश्चिमीय बंगाल में बाँकुरा जिले में केवल ४ ५९ प्रतिशत मुसललान हैं, मिदनापुर में ७·५९ प्रतिशत, हुगली में १६ १७ प्रतिशत हावड़ा में २६·२७ प्रतिशत, वर्दवान में १८ प्रतिशत, २४ परगना में ३३ ६६ प्रतिशत, खुलना में ४९ प्रतिशत, कलकत्ता में २६ प्रतिशत, वीर भूमि में २८ प्रतिशत, जलपाई गुड़ी में २३ प्रतिशत और दारजिलंग में केवल ३ प्रतिशत मुसलमान हैं। आसाम में ६६·२८ प्रतिशत हिन्दू हैं, यदि सिलहट जिला, जिसमें ६० प्रतिशत मुसलमान बसते हैं हैं, पूर्वीय बंगाल के मुसलिम क्षेत्रों में मिला दिया जाय तो शेष आसाम में हिन्दुओं की संख्या ७५ प्रतिशत हो जायेगी। इस दृष्टिकोण से हिन्दुस्तान के उत्तर-

पश्चिम और पूर्व दिशाओं में लगातार बसे हुये मुसलिम क्षेत्र इस प्रकार होंगे।

उत्तर पश्चिम दिशा में :—

१ सीमाप्रान्त, २ बलूचिस्तान, ३ सिंध और ४ पश्चिम पंजाब के १७ जिले;

पूर्व दिशा में :—

५ पूर्वीय बंगाल के १७ जिले और आसाम का सिलहट जिला;

(सिलहट पूर्वीय बंगाल से लगा है)

ये उपर्युक्त क्षेत्र मुसलिम इकाई का निर्माण करेंगे जिसकी जनसंख्या ६.८२ करोड़ होगी, जिसमें ४.९५ करोड़ या ७४ प्रतिशत मुसलमान होंगे और १.७० करोड़ या २४ प्रतिशत हिन्दू होंगे। शेष हिन्दुस्तान एक हिन्दू इकाई होगा, जिसमें पंजाब, बंगाल और आसाम प्रान्तों के हिन्दू क्षेत्र सम्मिलित होंगे।

साम्प्रदायिकता के आधार पर हिन्दू क्षेत्र और मुसलिम क्षेत्र का यह नक्शा साफ है। अब यह स्पष्ट दीख पड़ेगा कि मुसलिम लीग के अध्यक्ष मुसलिम इकाई में तीन हिन्दू प्रदेश सम्मिलित करने का हठ करते हैं। श्री जिन्ना का नक्शा इस प्रकार है :—

मुसलिम इकाई	हिन्दू इकाई में से निकालकर मुसलिम इकाई में जो शामिल होंगे।
१— सीमा प्रान्त	

२—बलूचिस्तान

३—सिन्ध

४—पश्चिम पंजाब के १७ जिले + हिन्दू इकाई में से पूर्वीय पंजाब के १३ हिन्दू जिले।

५—पूर्वीय बंगाल के १७ जिले और आसाम का सिलहट जिला } हिन्दू इकाई में से पश्चिमीय बंगाल के १२ हिन्दू जिले, और सिलहट को छोड़ कर सम्पूर्ण आसाम प्रांत।

श्री जिन्ना के इस प्रादेशिक विभाजन में मुसलमानों की संख्या ५·८६ करोड़ होगी और हिन्दुओं की संख्या ४·१० करोड़ होगी और दूसरे लोग ४५ लाख होंगे। मसलमान हिन्दुओं से केवल १·२१ करोड़ अधिक होंगे।

निश्चय ही यह विभाजन सिद्धांत और सुविधा दोनों ही दृष्टि कोण से अनुचित और अनुपयुक्त है। इससे न तो वर्तमान दिक्कतें और उलझनें हल होती हैं और न परस्पर न्याय होगा। प्रादेशिक विभाजन की माँग पृथक राष्ट्रीयता के आधार पर की जा रही है और पृथक राष्ट्र के सिद्धांत के आधार ही पर मुस्लिम लीग उन सिलसिलेवार बसे हुये क्षेत्रों का अलग राज्य कायम करना चाहती है, जिनमें मुसलमान बहुसंख्यक हैं। निश्चय ही इस सिद्धांत का जो लाभ मुस्लिमलीग मुसलमानों के लिये चाहती है, वही लाभ हिन्दू हिन्दुओं के लिये चाहेंगे और उन सभी क्षेत्रों को जो सिलसिलेवार भी हैं और जिनमें

हिन्दू बहुसंख्यक भी हैं, एक इकाई में सुरक्षित करना चाहेंगे। राष्ट्रीयता के सिद्धांत पर प्रादेशिक विभाजन का औचित्य पूर्ण तया विशुद्ध मुस्लिम इकाई और हिन्दू इकाई में ही हो सकता है। पूर्व पंजाब के १३ हिन्दू जिले पश्चिम पंजाब के १७ मुस्लिम जिलों से और पश्चिम बंगाल के १२ हिन्दू जिले पूर्व बंगाल के १७ मुस्लिम जिलों से बहुत अधिक सम्पन्न हैं; दूसरे दृष्टिकोण से भी ये प्रगतिशील और उन्नतिशील हैं, और अपने-अपने क्षेत्र के शासन सम्बन्धी प्रबन्ध और व्यय का बोझ बरदास्त करने की क्षमता रखते हैं, फिर इन सम्पन्न हिन्दू क्षेत्रों को श्री जिन्ना के मुस्लिम राष्ट्र में शामिल होने के लिये किस आधार पर कहा जाता है? आसाम का एक सिलहट मुस्लिम जिला पूरे आसाम के शेष १४ हिन्दू जिलों में शामिल कर यदि हिन्दू क्षेत्र नहीं बनाया जा सकता, तो १४ हिन्दू जिलों को एक सिलहट के मुस्लिम जिले में शामिल कर समूचे प्रांत को मुस्लिम क्षेत्र के निर्माण की माँग किस आधार पर की जाती है? हिन्दुस्तान के उत्तर पश्चिम और पूर्व दिशाओं के मुस्लिम क्षेत्रों के मध्य में सम्पूर्ण बिहार, युक्त प्रांत और पूर्व पंजाब के १३ जिले पड़ते हैं, किन्तु इतने लम्बे अन्तर पर स्थित प्रदेशों को हिन्दुस्तान की इकाई से अलग कर उन्हें मुस्लिम इकाई में एकत्र करने का हठ करने वाले लीग अध्यक्ष उन हिन्दू प्रदेशों को जो हिन्दू इकाई के सिलसिले में बसे हैं, क्यों और किस सिद्धान्त के अनुसार अलग करना चाहते हैं? यदि लीग के अनुसार हिन्दू और मुसलमान दो राष्ट्र हैं, तो एक राष्ट्रीय इकाई के कुछ

क्षेत्रों को निकाल कर दूसरी राष्ट्रीय इकाई में शामिल करने की योजना स्वेच्छाचार पूर्ण और दूसरे का देश और भूमि जीतने की लालसा है, और इसलिये उन परिस्थितियों को उत्पन्न करना है, जिनमें राष्ट्रीय सीमा और राष्ट्रीय मुक्ति के प्रश्न दो राष्ट्रों हिन्दू और मुस्लिम के मध्य युद्ध का सतत और अत्यन्त उत्कट कारण बने रहें। गत् परिच्छेद में हमने इस बात की विवेचना की है कि योरुप में राष्ट्रीय सीमा और राष्ट्रीय मुक्ति के प्रश्न उन भीषण और भयंकर युद्धों के कारण हैं, जिनका ताँता कभी टूट ही नहीं पाया। पोलिश राष्ट्र का मनमाना और स्वेच्छाचार पूर्ण बँटवारा शदियों से योरुप का असाध्य रोग बना हुआ है और उसने योरुप में भीषण उपद्रवों और युद्धों को जन्म दिया है। मध्य योरुप में जेकोस्लोवेकिया का जर्मन सुडेटेनलैंड वर्तमान युद्ध के समय तक उन सभी छीछा लेदरों का स्थल बना था, जिसकी कल्पना भी रोमान्च-कारी है। लीग अध्यक्ष के प्रादेशिक विभाजन की योजना राष्ट्रीय सीमा, राष्ट्रीय दमन और राष्ट्रीय मुक्ति की रोमाञ्च-कारी समस्याओं और परिस्थितियों को हिन्दुस्तान के जीवन में प्रवेश कराने का द्वार खोल रही है। लीग अध्यक्ष की योजना की सीमा में मुसलमानों की संख्या हिन्दुओं से केवल १ करोड़ २१ लाख अधिक है; लेकिन हिन्दू बहुत अधिक सम्पन्न और उन्नतिशील हैं, उनमें मार्शल रेस (लड़ाकू वर्ग) के सिख और राजपूत सबल और शक्तिशाली भी हैं। यदि मुसलमान और हिन्दू राष्ट्र दो पृथक-पृथक हैं, तो इस

सम्पन्न उन्नतिशील और शक्तिशाली हिन्दू राष्ट्र से मुस्लिम राष्ट्र का प्रभुत्व, शासन, कुरान का नियम चुप चाप सहन करने की आशा नहीं की जा सकती है। यह हम स्पष्ट देख रहे हैं कि श्री जिन्ना की योजना की मुस्लिम इकाई सम्मिलित राष्ट्रीय राज्य होगा, जिसमें मुसलमान राष्ट्र प्रभु और शासक होगा और हिन्दू राष्ट्र शासित होगा। शासित राष्ट्र प्रभुराष्ट्र के शासन और शोषण से मुक्त होने के लिये संघर्ष करेगा और स्वभावतः वह हिन्दू इकाई में, जिसका वह अपने को प्राकृतिक अंग समझेगा, सम्मिलित होने के लिये युद्ध आरंभ कर देगा। उसके अनुरोध पर हिन्दू इकाई भी ऐसे युद्ध में शामिल हो सकता है और मुस्लिम इकाई में शामिल हिन्दू क्षेत्रों को मुक्त कर अपने में मिलाने का प्रयत्न कर सकता है। वे सभी बातें जो योरुप की राजनीति में अब तक होती आई हैं, हिन्दुस्तान में हो सकती हैं और हिंदुस्तान हिन्दू और मुस्लिम राष्ट्रीय राज्यों के भीषण युद्ध का स्थल बन सकता है।

यह समझना असंभव है कि लीग अध्यक्ष अपनी प्रादेशिक विभाजन की योजना में हिन्दू-मुस्लिम समस्याओं के अन्त होने के क्या लक्षण देखते हैं। हिन्दुस्तान की सभी वर्तमान समस्यायें लीग के पाकिस्तान में भी ज्यों की त्यों बनी रहेंगी, यह बात स्पष्ट समझ में आ सकती है। केवल सीमा की एक रेखा खींच कर हिन्दू-मुस्लिम समस्या हल करने की बात करना उन्माद पूर्ण है। जिस मनोवृत्ति और असुविधाओं के कारण मुस्लिम लीग समझती है कि १० करोड़ मुसलमान हिन्दुस्तान की इकाई

में सम्मान और समानता के साथ नहीं रह सकते हैं, क्या वही मनोवृत्ति और वे ही असुविधायें मुस्लिमराज्य के अल्पसंख्यकों के लिये नहीं होंगी ? मुस्लिमलीग की योजना की सीमा में अल्पसंख्यक सवल और सम्पन्न हैं इसलिये लीग के पाकिस्तान की सीमा में हिन्दू-मुस्लिम अन्तर के उग्र रूप धारण करने के पर्याप्त कारण दीख पड़ते हैं। मुस्लिम लीग जनतंत्र शासन के विरुद्ध है, कोई भी स्वेच्छाचारी शासन अल्पसंख्यकों को प्रतिक्षण उत्तेजित करते रहने का साधन होगा और इस प्रकार वहाँ हिन्दू-मुस्लिम प्रश्न एक कल्पनातीत भीषण और रोमांचकारी प्रश्न होगा। हिन्दुस्तान में जनतंत्र शासन और अल्पसंख्यकों को समान सुविधा और पर्याप्त संरक्षण प्राप्त होने की परिस्थिति में भी मुस्लिमलीग वहुसंख्यक हिन्दुओं से सशंक है और परिणाम स्वरूप अलग राज्य के लिये हठ कर रही है, तो फिर वह कैसे आशा करती है कि पाकिस्तान में अल्पसंख्यकों पर एक स्वेच्छाचारी शासन लाद कर साम्प्रदायिक अन्तर का हल किया जा सकता है ? इस परिस्थिति में पाकिस्तान में एक दूसरे पाकिस्तान की माँग की संभावना कैसे टाली जा सकती है। इस प्रश्न को हल करने का एक दूसरा ढंग जन संख्या का परिवर्तन वताया जाता है। यद्यपि मुस्लिम लीग के अध्यक्ष ने पाकिस्तान और हिन्दुस्तान के अल्पसंख्यकों के परिवर्तन की वात अभी तक नहीं कही है, लेकिन संभव है, भविष्य में पाकिस्तान की साम्प्रदायिक समस्या को हल करने के लिये अल्पसंख्यक सम्प्रदायों के परिवर्तन की माँग उपस्थित की

जाय। साम्प्रदायिक समस्या हल करने की यह सूझ भी उन्माद-पूर्ण ही प्रतीत होती है। सब से पहले तो २०वीं सदी के प्रगति-शील व्यक्ति को यह सूझ ही अत्यन्त अप्रिय अशिष्ट और विचित्र-सी लगती है कि मनुष्य भिन्न-भिन्न मजहब, सम्प्रदाय या राष्ट्र के कारण साथ-साथ नहीं रह सकते हैं और इस लिये उन्हें सम्पर्क विच्छेद कर एक दूसरे से अलग दूर-दूर देशों में रहने के लिये विवश होना पड़ेगा। फिर भी दूर-दूर बसे हुये लोगों का सम्बन्ध एक दूसरे से एक दम टूट कर दो असम्बन्धित संसार बन जायगा, यह कल्पना आज के संसार में संभव नहीं है। स्वार्थों के संघर्ष जब तक होते रहेंगे तब तक दूर-दूर बसे हुये लोग भी लड़ते ही रहेंगे। अमेरिका और जापान इँगलैंड और जर्मनी, इँगलैंड और जापान आपस में लड़ रहे हैं। इसके अतिरिक्त जनसंख्या के परिवर्तन के सम्बन्ध में वास्तविक दिक्कतें हैं। हमने अभी देखा है कि लीग की योजना में पूर्व पंजाब पश्चिम बंगाल और सिलहट के अतिरिक्त सम्पूर्ण आसाम हिन्दू क्षेत्र है। इस क्षेत्र में मुसलमान नाम मात्र हैं। इस क्षेत्र के बहुसंख्यक हिन्दुओं को दूसरे क्षेत्र में जाने के लिये विवश करना परिवर्तन के किसी भी सिद्धांत के प्रतिकूल होगा। परि-वर्तन अल्पसंख्यकों का होता है; एक क्षेत्र के बहुसंख्यकों का परिवर्तन कल्पना के परे है। पूर्वीय पंजाब, पश्चिमीय बंगाल और आसाम इन तीन सम्पन्न हिन्दू प्रान्तों को उजाड़ कर मुस्लिम प्रांत बना देने का प्रयत्न न तो संभव प्रतीत होता है, न लाभ प्रद और न उचित। फिर इन तीन प्रांतों के हिन्दुओं

को हिन्दुस्तान के किस भाग में उसी प्रकार के सम्पन्न और विस्मित प्रांत मिलेंगे ? एक सम्प्रदाय की परिस्थिति का परिवर्तन दूसरे सम्प्रदाय की समान परिस्थिति से ही हो सकता है; इस दशा में इन तीन प्रान्तों के हिन्दुओं की स्थिति के मुस्लिम प्रान्त हिन्दुस्तान के किसी भाग में नहीं हैं। बिखरी हुई जन संख्या को तो दूसरे प्रान्तों में भी बिखरे रूप में अनेक स्थानों पर बसने के लिये कहा जा सकता है, लेकिन पूर्व पंजाब, पश्चिम बंगाल और आसाम के हिन्दुओं को जिनका इतिहास के आरंभ से परस्पर अविच्छिन्न सम्बन्ध है, जो युगों से अनेक प्रकार से एक दूसरे से सम्बन्धित हैं, जो भाषा, कला, काव्य, जीवन शैली और एकसी मनोवृत्ति की शृंखला में गुँथे हैं, उन्हें छिट-फुट बसने के लिये कहना असम्भव कल्पना करना है। जन संख्या के परिवर्तन का प्रश्न जनता की इच्छा और मत पर आश्रित है। एक देश या उस देश के एक भाग ने निष्पक्ष मत लिये जाने पर यदि स्पष्ट रूप से यह व्यक्त कर दिया है कि वह एक विशेष व्यवस्था के अन्तर्गत विशेष ढंग से रहना चाहता है और उस देश या भाग का अल्पमत उस ढंग से रहने के लिये सहमत नहीं है। और न उस ढंग से रहने में वह अपने को समर्थ समझता है, तो सुविधा की दृष्टि से उसका स्थान परिवर्तन हो सकता है। लेकिन लीग के पाकिस्तान की समस्या इसके विपरीत है। उस पाकिस्तान की व्यवस्था उसके भीतर बसने वाली जनता की इच्छा और मत के परिणाम स्वरूप नहीं उत्पन्न होगी, बल्कि एक दल-मुस्लिम लीग ने जो निर्णय कर दिया है, उसके परि-

णाम स्वरूप जनता पर बलपूर्वक लादी जायगी। ऐसी दशा में परिवर्तन का प्रश्न भी जनता की इच्छा और सुविधा का नहीं, बल्कि लीग के ही स्वेच्छाचार का प्रश्न होगा। और जैसा कि स्वाभाविक है स्वेच्छाचार का प्रतिरोध संघर्ष का रूप धारण करेगा। इसके साथ ही एक दिक्कत और विचारणीय है: जन-संख्या का परिवर्तन दो राज्यों के समझौते के परिणाम स्वरूप ही हो सकता है। हिन्दुस्तान के जनतंत्र शासन में रहने वाली मुस्लिम जन संख्या यदि लीग के 'पाकिस्तान' में जाना नहीं पसन्द करेगी तो हिन्दुस्तानी राज्य उन पर तनिक भी दबाव नहीं डालेगा, निश्चय ही वह उन्हें स्थान परिवर्तन के लिये प्रोत्साहित भी नहीं करेगा। हमने पिछले परिच्छेद में देखा है कि मुसलिम लीग के अतिरिक्त शेष मुसलमान लीग के 'पाकिस्तान' के सर्वथा विरुद्ध हैं और इस प्रश्न पर लीग को पूरी आँख देखना भी पसन्द नहीं करते। यह तो निश्चय है कि कोई जन संख्या बड़ी असुविधाओं के कारण ही तंग होकर अपने परिचित घर द्वार और साथियों को छोड़ कर नये स्थान और अज्ञात परि-स्थितियों में जाने के लिये विवश होगी; और यदि जनतंत्र हिन्दुस्तानी राज्य से कोई स्वेच्छा से स्थान परिवर्तन करना नहीं चाहेगा तो हिन्दुस्तानी राज्य किसी परिवर्तन के लिये सहमत नहीं हो सकेगा और उस हालत में परिवर्तन का प्रश्न नहीं उठेगा। ऐतिहासिक घटनाओं से जो अनुभव हुये हैं उनके अनुसार तो प्रत्येक परिस्थिति में स्थान परिवर्तन सर्वदा सङ्कट पूर्ण सिद्ध हुआ है। मुस्लिम काल में मुहम्मद तुगलक बादशाह

ने दिल्ली को छोड़ कर दक्षिण में दौलताबाद को राजधानी बनाने के लिये दिल्ली की जनता को स्थान परिवर्तन कर दौलताबाद जाकर बसने का आदेश दिया। मुहम्मद तुगलक एक समझदार शासक था और यह योजना उसकी नेकनीयती का परिणाम थी, लेकिन यद्यपि यह कार्य राज्य प्रबन्ध में हुआ, फिर भी धन-जन की भीषण हानि उठाकर इस प्रयत्न को छोड़ देना पड़ा। इस कार्य की असफलता इतिहास में एक रोमांचकारी दुर्घटना है, प्रसिद्ध है और इसके कारण योग्य मुहम्मद तुगलक को इतिहासकारों ने पागल तक कह डाला। यूनान, बलगेरिया और तुर्की के अनुभव भी अत्यन्त कटु हैं। जन संख्या का परिवर्तन वर्तमान संसार की भावना और राजनीतिक सिद्धान्त के सर्वथा प्रतिकूल है। भविष्य में यदि जनसंख्या के स्थान परिवर्तन का प्रश्न अनिवार्य होगा, तो वह केवल आर्थिक और भौगोलिक कारणों से ही संभव होगा।

मुस्लिम लीग की प्रादेशिक विभाजन योजना के सम्बन्ध में लीग अध्यक्ष ने यह बात स्पष्ट रूप से कही है कि रक्षा, वैदेशिक सम्बन्ध, आन्तरिक यातायात, चुंगी और व्यापार और इस प्रकार के दूसरे विषयों के सम्बन्ध में वे शेष हिन्दुस्तान के साथ कोई सन्धि नहीं करेंगे और न इन विषयों को वे दोनों राज्यों के सम्मिलित प्रबन्ध का विषय रहने देना चाहते हैं। एक ओर विशाल हिन्दू क्षेत्रों को 'पाकिस्तान' में शामिल करने की योजना उपस्थित करना और दूसरी ओर शेष हिन्दुस्तान से सम्बन्ध विच्छेद से उत्पन्न होने वाली परिस्थितियों के विषय में सन्धि

करने से अस्वीकार करना एक विचित्र-सा हठ प्रतीत होता है। सक्रमण की अवस्था बड़ी नाजुक होती है, यह सर्वमान्य है, और हिन्दुस्तान के लिये अत्यन्त भीषण हो सकता है। ब्रिटिश साम्राज्य द्वारा शोषित हिन्दुस्तान परिवर्तन काल की अस्त-व्यस्त परिस्थिति में उत्थान के स्थान में पतन की ओर जा सकता है और प्राप्त की हुई स्वतन्त्रता बड़ी आसानी से खोई जा सकती है। उत्तर पश्चिम और पूर्व हिन्दुस्तान के सीमान्त हैं, इसलिये रक्षा के दृष्टिकोण से अत्यंत महत्वपूर्ण है। मुस्लिम क्षेत्र न तो पूर्ण साधन सम्पन्न हैं और न तो आर्थिक, औद्योगिक और खनिज पदार्थों की दृष्टिकोण से स्वावलम्बन की उसमें अभी शक्ति है। वास्तव में सम्पूर्ण हिन्दुस्तान निर्बल है, कुचला हुआ है, लेकिन मुस्लिम क्षेत्र तो काफी पिछड़े हैं और अविकसित हैं। पाकिस्तान और हिन्दुस्तान का विकास और उत्थान पारस्परिक सहानुभूति, सहयोग और घनिष्ट सम्बन्ध पर निर्भर होगा। और पाकिस्तान की रक्षा और विकास के लिये तो वह सहानुभूति और सम्बन्ध अनिवार्य है। दृढ़ पाकिस्तान राज्य की ईमानदार आकांक्षा को शेष हिन्दुस्तान के साथ रक्षा वैदेशिक सम्बन्ध इत्यादि विषयों में सम्बन्ध रखने के प्रस्ताव का हार्दिक स्वागत करना चाहिये था. लेकिन इस के विपरीत लीग अध्यक्ष ऐसे सम्बन्ध के प्रस्ताव को सुनते ही मुख मोड़ लिये। इस विश्व व्यापी युद्ध ने यह निश्चित रूप से स्पष्ट कर दिया है कि वर्तमान संसार में केवल वही राज्य सुरक्षित रह सकते हैं, जो स्वयं सबल सुसंगठित होने के अतिरिक्त पड़ोसी राज्यों के साथ

सहयोग और मित्रता का सम्बन्ध रखेंगे। इस युद्ध ने इस बात में भी कोई सन्देह शेष नहीं रहने दिया है कि छोटे राज्यों का अस्तित्व सर्वदा खतरे में है।

श्री राजगोपालाचारी और महात्मा गाँधी ने लाहौर प्रस्ताव के सिद्धान्तों और उद्देश्यों की न केवल एक विशद, स्पष्ट और ठोस रूप-रेखा उपस्थित कर 'पाकिस्तान' की माँग ही स्वीकृत की, बल्कि उसे प्राप्त करने के लिये लीग अध्यक्ष को एक कार्यक्रम तैयार करने के लिये आमंत्रित किया। उन्होंने कांग्रेस, सम्पूर्ण देश और अपनी शक्ति के साथ उस कार्यक्रम को पूरा करने के लिये सहयोग देने का वचन दिया और 'पाकिस्तान' प्राप्त कर लेने के बाद उसकी रक्षा और दृढ़ता का संयुक्त उत्तरदायित्व स्वीकृत किया। ये बातें कोरी नहीं थीं, बल्कि जिस योजना के द्वारा पाकिस्तान की माँग स्वीकृत की गई थी, उसी में ये शर्तें निहित थीं। यदि मुस्लिम लीग और उसके अध्यक्ष का वास्तविक उद्देश्य 'पाकिस्तान' जैसी कोई वस्तु प्राप्त करना होता, तो वे राजा जी और गाँधी जी की योजना की केवल आलोचना-प्रत्यालोचना करने, वक्तव्यों द्वारा मुस्लिम जनता में भ्रम फैलाने, राजा जी और गांधी जी पर छींटे उछालने, उसे लाहौर प्रस्ताव का विरोधी और रद्दी बता कर टाल देने में उत्सुकता और शीघ्रता न दिखा कर, उस पर अत्यन्त गम्भीरता के साथ विचार करते और उसे मुस्लिम जनता के सामने उपस्थित करते। पाकिस्तान प्राप्त करने में सहयोग का वचन देना और प्राप्त हो जाने पर उसकी रक्षा और दृढ़ता का संयुक्त उत्तरदायित्व स्वीकार करना

एक असाधारण बात है। शीघ्रता पूर्वक रद्दी के टोकरी में फेंके जाने के पूर्व वह योजना गम्भीर चिंतन और भीषण उत्तरदायित्व आकर्षित करने के योग्य थी। लेकिन जैसा कि हमने एक पिछले परिच्छेद में मुस्लिम लीग पर विचार करते हुये देखा है कि न तो वह पाकिस्तान जैसी किसी वस्तु के लिये परेशान है और न मुसलमान जाति के दुःखों से पीड़ित और बेचैन हैं। मुस्लिमलीग और उसके अध्यक्ष हिन्दुस्तान की स्वतन्त्रता के पहले ही, इसी समय 'पाकिस्तान' प्राप्त करना चाहते हैं, ऐसी परिस्थिति में यह समझना असंभव है कि यह माँगा काँग्रेस से किस आधार पर की जाती है, जब तक हिन्दुस्तान परतंत्र है, कांग्रेस किसी को कुछ देने की क्या क्षमता रखती है? इस समय 'पाकिस्तान' केवल वृटिश साम्राज्य से ही संघर्ष करके प्राप्त किया जा सकता है, और यदि वृटिश प्रभुत्व और शक्ति का अन्त कर मुस्लिम लीग साम्राज्य से पाकिस्तान छीन सके तो कांग्रेस उसे वंचित रखने की क्षमता नहीं रख सकेगी। किन्तु संघर्ष करना तो दूर रहा, इसके विपरीत लीग बृटिश सरकार के साथ सन्धि करना पसन्द करती है। और ऐसा प्रतीत होता है कि लीग की पाकिस्तान योजना उसी सन्धि का अंगमात्र है। डा० अब्दुल लतीफ का वक्तव्य इस सिलसिले में दुहरा देना अनुपयुक्त न होगा:—

"श्री जिन्ना का असल मतलब यह था कि अंग्रेज पाकिस्तान और हिन्दुस्तान दोनों में अपने सम्पूर्ण सैन्यबल के साथ आराम से ठहरें और अपने परराष्ट्र सम्बन्ध को भी देखते रहें।" डा० लतीफ की इस व्याख्या का अर्थ है कि मुस्लिमलीग

उस परिस्थिति को आमंत्रित करती है, जिसमें बृटिश साम्राज्य हिन्दुस्तान को दो भागों में बाँट कर दोनों का एक दूसरे के विरुद्ध प्रयोग कर जन शक्ति और जन आन्दोलन की तीव्रता को सरलता के साथ रोक सकने में सफलता प्राप्त कर सके। बृटिश साम्राज्य के अन्तर्गत हैदराबाद या दूसरी देशी रियासत की स्थिति का पद प्राप्त कर लीग अपने को संतुष्ट समझेगी। स्थिर स्वार्थों और सत्ताधारियों की प्रतिनिधि संस्था मुस्लिम लीग जन शक्ति से भयभीत है और किसी शर्त पर भी अपने स्वार्थ की रक्षा करना उसका एकमात्र उद्देश्य है। लीग का 'पाकिस्तान' भी इसी उद्देश्य के पूरा करने का एक साधन है। मुस्लिम जनता और मुस्लिम संसार में से किसी की मुक्ति और उत्थान का इसमें कोई तत्व नहीं है। मध्य एशिया के मुस्लिम देश बृटिश साम्राज्य के भार से दबे हैं, उनके भार को भी हिन्दुस्तान में बृटिश साम्राज्य का अन्त करके ही किया जा सकता है। मुस्लिम लीग और उसके अध्यक्ष मध्य एसिया के मुस्लिम देशों के प्रति प्रायः अपनी चिन्ता प्रकट करती है, लेकिन जिस साम्राज्य के बोझ से वे कराह रहे हैं, उससे संघर्ष न कर साम्राज्य विरोधी संस्था कांग्रेस के मार्ग में भीषण चट्टान उपस्थित कर मुस्लिम संसार की वर्तमान परिस्थिति को अनिश्चित काल तक के लिये निश्चित कर रही है। स्वतंत्र मुसलिम राज्य का उत्तरदायित्व और भार ग्रहण करना सरल नहीं है, लेकिन पाकिस्तान का नारा और लम्बी-लम्बी बातों द्वारा प्रगति के मार्ग में उलझन उत्पन्न कर स्वतन्त्रता

की माँग को झमेले में डाल देना और वाद-विवाद द्वारा साधारण जनता को भ्रम में रखने का प्रयत्न कर अपना उद्देश्य पूरा करना सरल है। परिवर्तन के प्रत्येक प्रयत्न का विरोध कर वर्तमान परिस्थिति को बनाये रख कर स्थिर स्वार्थों के अस्तित्व की रक्षा निश्चित कर लेना लीग का एक मात्र उद्देश्य है। केवल इसी दृष्टिकोण से पाकिस्तान का रूप अस्पष्ट और अज्ञात रखा गया है। डा० अम्बेदकर ने भी अपना मस्तिष्क खोल कर देश के सामने रखा है और एक सूझ उपस्थित की है, लेकिन जबरदस्त और लगातार तकाजा करने पर भी मुसलीम लीग ने पाकिस्तान का विवरण बताने से क्यों अस्वीकार किया है, यह छिपा हुआ रहस्य नहीं रह गया है। सप्रू कमेटी ने विधान की योजना बनाने का प्रयत्न किया है।

किंतु पाकिस्तान पर विचार करने का एक-दूसरा भी दृष्टि कोण है। इस परिच्छेद की पिछली पक्तियों में पाकिस्तान के वास्तविक अर्थ की व्याख्या करते हुये हमने देखा है कि वह देश की उस समाज व्यवस्था की कल्पना है, जो पूर्ण जनतंत्र हो और जो राजनीतिक आर्थिक और सामाजिक शोषणों से मुक्त हो। मुसलिम लीग की कल्पना का पाकिस्तान नहीं, समाज की इस पूर्ण जनतन्त्र व्यवस्था की कल्पना के पाकिस्तान ने हिन्दु-स्तान की राजनीति में एक ऐसा वातावरण उत्पन्न किया है, जो आज तक की प्रचलित राजनीतिक परम्परा से भिन्न है और जो भूत और भविष्य के मध्य में एक निर्णायक अवस्था है। यह वर्तमान में परिवर्तन करने के पहले भविष्य की एक विशद और

स्पष्ट रूप रेखा निश्चित करने का एक तकाजा है। पश्चिमीय नाम धारी जनतन्त्र व्यवस्था की बहुसंख्यक और अल्पसंख्यक फितरतों और अनेक धोखे की टट्टियों के विरुद्ध यह एक प्रबल ललकार है। लाहौर प्रस्ताव निश्चित रूप से उस परिस्थिति की कल्पना करता है जिसमें हिंदुस्तान स्वतंत्र है; लेकिन हिंदुस्तान की स्वतन्त्रता के साथ ही वह मुसलमानों की पूर्ण स्वतन्त्रता, अल्पसंख्यक कहे जाने वाले सम्प्रदाय की रक्षा की परिस्थिति उत्पन्न करना चाहता है। इस दृष्टि कोण से यह स्पष्टतः देखा जा सकता है कि लाहौर प्रस्ताव बृटिश प्रभुत्व और हिंदू प्रभुत्व दोनों से हिंदुस्तान की मुसलिम जाति की मुक्ति और स्वतंत्रता की घोषणा मात्र है।

पाकिस्तान के साथ ही द्रविणस्तान की चर्चा भी हम सुनते हैं और ऐंग्लोइंडियन तथा हिंदुस्तान में बसे हुये योरोपियन भी अपने लिये अलग ऐंग्लोइंडियन उपनिवेश चाहते हैं। ऐंग्लोडियन और योरोपियन संघ की दिल्ली प्रांतीय शाखा की बैठक में श्री वी० डी० लीडन ने अध्यक्षपद से भाषण देते हुये फरवरी सन् १९४४ ई० में कहा था कि यद्यपि संख्या में नगण्य होने के कारण उनके सम्प्रदाय को राजनीति में कोई अधिकार पाने का हक नहीं है, लेकिन उन्हें अपने स्कूल, अस्पताल और दूसरी संस्था इत्यादि अलग बनाने का अधिकार अवश्य मिलना चाहिये और इसलिने उनका अपना अलग एक उपनिवेश होना चाहिये। पृथक मुसलिम राज्य कायम होने की परिस्थिति में सिख खालिस्तान की माँग अभी से उपस्थित कर रहे हैं। अछूत कहे

जाने वाले लोग अपने अधिकार के लिये पूर्ण सचेष्ट हैं और अछूतिस्तान की माँग करते हैं। यदि हम पाकिस्तान, द्रविणस्तान, अछूतिस्तान इत्यादि आन्दोलनों की व्याख्या और विवेचना शान्त मस्तिष्क से ईमानदारी के साथ करें तो यह स्पष्ट होगा कि साम्प्रदायिक और जातीय प्रभुत्व के विरुद्ध ये भीषण आन्दोलन हैं। स्वतन्त्रता और जनतन्त्र की लहरों ने प्रत्येक समुदाय, वर्ग और व्यक्ति में जागरण और चैतन्य उत्पन्न कर दिया है। आत्म सम्मान की ईर्षालु भावना ने व्यक्ति-व्यक्ति को प्रत्येक वर्ग, सम्प्रदाय और जाति को इस प्रकार प्रभावित कर दिया है कि प्रत्येक समान अधिकार और समान सामाजिक सम्मान प्राप्त करने के लिये उत्सुक और सजग है। वह अब अधीन नहीं रहना चाहता है, वह अधिकार में समान साझीदार का स्थान प्राप्त करना चाहता है। अपने विकास पर किसी प्रकार का दमन और प्रतिबन्ध उसे असह्य है, और वह अपने व्यक्तित्व को दूसरे के अधीन रहने देने के लिये तैयार नहीं है दूसरे का अधिकार और शासन आज प्रत्येक व्यक्ति की भावना को ठेस पहुँचाता है और प्रत्येक व्यक्ति में वेदना, विवशता और क्रोध उत्पन्न करता है। अवसर मिलते ही इस परिस्थिति का सर्वदा अन्त कर देने के लिये सब की प्रबल चेष्टा है। प्रत्येक जाति और सम्प्रदाय अपने पूर्ण आत्म-विकास के लिये प्रयत्नशील है और वह अपने व्यक्तित्व की पूर्णता प्राप्त करने के लिये इच्छुक है। पाकिस्तान, द्रविणस्तान इत्यादि आन्दोलन केवल इन्हीं भावनाओं को व्यक्त करते हैं। द्रविण अपनी वर्तमान अवस्था

में नहीं रहना चाहता है, वह भविष्य में ब्राह्मणोंका प्रभुत्व स्वीकार नहीं करना चाहता है और वह अपने व्यक्तित्व को किसी के द्वारा शासित होने नहीं देना चाहता है। श्री अम्बेडकर, ने यद्यपि अछूतों के लिये कोई त्याग, तपस्या, बलिदान कभी नहीं किये, उनके लिये कोई प्रयत्न भी उन्होंने कभी नहीं किया, फिर भी वे आज उनके नेता हो रहे। छोटे-छोटे शहरों में वे अछूत जो अम्बेडकर को ठीक से जानते भी नहीं, उनके चित्र का जुलूस निकालते हैं और उनके नाम का नारा लगाते हैं। यह केवल उस घृणा, क्रोध वेदना और विद्रोह का व्यक्त रूप है जो हिन्दुओं के दुर्व्यवहार के प्रति युगों और सदियों से उनके मन में जमा हुआ है, और यह इस बात का प्रमाण है कि वे अब इस परिस्थिति को बरदास्त करने के लिये तैयार नहीं हैं। ऐसे सभी आन्दोलन आत्म विकास की एक ही भावना से प्रभावित हैं। समानता और स्वतन्त्रता की एक ही लहर में बह रहे हैं। यदि किसी की आवाज़ अभी क्षीण है और गतिमन्द है तो इसलिये कि वह अभी पूर्णतया संगठित नहीं है और इसमें अभी कुछ समय शेष है। मुसलमान हिंदुस्तान में एक शक्तिशाली सम्प्रदाय हैं, इसलिये उनका आन्दोलन सबसे अधिक शक्तिशाली और प्रभावशाली है और सबसे अधिक हमारे ध्यान को आकर्षित करता है। मुसलमान इस स्थिति में है कि भविष्य में किसी दूसरे सम्प्रदाय द्वारा दमन की आशंका को ललकार सके। लाहौर प्रस्ताव में पृथक मुसलिम राज्य की स्थापना की माँग केवल इस आकांक्षा की चरमावस्था का द्योतक है।

१९ वीं सदी की संकीर्ण राष्ट्रीयता, जो अभी तक अपना अस्तित्व और प्रभुत्व बनाये रखने के प्रयत्न में तनिक भी निश्चेष्ट नहीं है, और जिससे अल्पसंख्यक सम्प्रदायों के व्यक्तित्व का हनन होता रहता है और उनके आत्मविकास का प्रत्येक अवसर अस्वीकृत किया जाता है, स्वतन्त्रता प्राप्त करने के प्रयत्न में लगी हुई देश जाति और सम्प्रदाय के लिये स्पष्ट और विशाल रूप में दीख पड़ने वाला दोषपूर्ण उदाहरण है। यदि हम विदेशी साम्राज्य वादी व्यवस्था का अन्त कर उसके स्थान पर देशी बहुसंख्यक, साम्प्रदायिक साम्राज्यवादी व्यवस्था कायम करने का प्रयत्न करेंगे तो निश्चय ही उसे अल्पसंख्यक सम्प्रदायों की सहानुभूति प्राप्त नहीं होगी। अमेरिका में यही हुआ और विदेशी साम्राज्य का अन्त करने के बाद वहाँ देशी उच्चवर्ण और वर्ग के अमेरिकनों का साम्राज्य कायम हुआ, जो अभी तक अपना प्रभुत्व ज्यों का त्यों बनाये रखने में सफल है। लेकिन अमेरिका में यह घटना १८ वीं सदी के अन्त में घटी, जब स्वतन्त्रता और समानता की भावना के विकास का आरम्भ हो रहा था। १९ वीं सदी के राष्ट्रीय राज्यों में भी यह परिस्थिति इसलिये सहनीय थी। कि अभी तक वह भावना उस अवस्था तक विकसित नहीं हुई थी, जब राष्ट्रीय स्वतन्त्रता के नाम से होने वाले साम्प्रदायिक प्रभुत्व और दमन असंभव कर दिये जाते। २० वीं सदी का आज का समय एक भिन्न युग है और आज की स्वतन्त्रता का अर्थ उस संकीर्ण राष्ट्रीय स्वतंत्रता से भिन्न है। आज विदेशी साम्राज्य के स्थान पर देशी बहु-

संख्यक साम्प्रदायिक साम्राज्य स्थापित करना असंम्भव है। वहुसंख्यक और अल्पसंख्यक धारणायें बीते हुये युग की बातें हैं। केवल अल्पसंख्यक होने के कारण आज किसी सम्प्रदाय को अपने व्यक्तित्व के पूर्ण विकास की स्वतंत्रता पर कोई प्रतिबंध स्वीकृत नहीं हो सकता है। पाकिस्तन, द्रविणस्तान आनदोलन वर्ण, जाति और सम्प्रदाय की प्रधानता और प्रभुत्व के विरुद्ध जवरदस्त प्रति क्रियायें हैं जो इस बात को स्पष्ट कर देना चाहती हैं कि विदेशी साम्राज्य के हटने के बाद इस देश की सीमा के भीतर वह संकीर्ण राष्ट्रीय राज्य, जिससे वहुसंख्या सिद्धान्त के आधार पर किसी एक वर्ण और सम्प्रदाय का साम्राज्य होना संभव हो, कायम नहीं किया जा सकता है।

मुस्लिम सम्प्रदाय, जो अब मातहत स्थान न स्वीकार कर अधिकार और सामाजिक व्यवस्था में समान साझीदार का स्थान प्राप्त करना चाहता है, जातीय दमन और शासन के विरुद्ध स्वतंत्रता की प्रखरतमज्योति के रूप में पाकिस्तान से प्रभावित-सा है। मुस्लिम लीग मुस्लिम जनता के व्यक्तित्व के विकास की इस निर्दोष आकांक्षा, स्वतंत्रता की इस उच्चतम कल्पना का अनुचित लाभ उठा कर अपना मतलब पूरा करने के प्रयत्न में है। वह एक स्वतंत्र मुस्लिम राज्य कायम कर इस आकांक्षा और कल्पना को ठोस रूप देने के प्रयत्न का वादा करती है और उसके इस प्रयत्न का विरोध करने वाली और उसकी स्वतंत्रता की माँग को अस्वीकृत करने वालों को

इस देश की सीमा के भीतर साम्प्रदायिक साम्राज्यवादी नीति का पोषक होने की घोषणा करती है। जैसा कि हमने देखा है मुस्लिम लीग देश के वास्तकि प्रश्नों और समस्याओं को उलझन में डालकर जनशक्ति को छिन्न-भिन्न रखना चाहती है। इस देश की स्वतंत्रता कीं प्रगति के मार्ग में एक जिचकी परिस्थिति उत्पन्न हो गई है और स्वतंत्रता के लक्ष्य और उद्देश्य और स्वतंत्र हिंदुस्तान के शासन विधान की रूप-रेखा के सम्बन्ध में संशय, भ्रम और अविश्वास का वातावरण उत्पन्न हो गया है। मुस्लिम लीग के 'पाकिस्तान' की अलोचना और निन्दा कर और उसके साथ रस्सा कसी कर, न तो इस जिच को दूर किया जा सकता है और न इस प्रकार धूमिल वातावरण को स्पष्ट किया जा सकता है। लम्बे और उच्च उद्देश्यों से ओत प्रोत वक्तव्य और घोषणायें भी चाहे वे कितने ही बड़े जिम्मेदार और महान व्यक्तियों द्वारा की गई हों संशय, भ्रम और अविश्वास के वातावरण में परिवर्तन लाने की क्षमता नहीं रखती हैं। संसार की राजनीति इतनी गन्दी हो गई है और अविश्वास लोगों के अन्तस्तल में इस प्रकार स्थान बना चुका है कि उच्च और पवित्र घोषणायें केवल संशय और भ्रम को ही उत्तेजित करती हैं। अमेरिका के प्रेसिडेंट रूजवेल्ट और बृटेन के प्रधान मंत्री चर्चिल ने जिस अत्यन्त प्रसिद्ध 'अटलांटिक चार्टर' की घोषणा युद्ध के मध्यकाल में की, जिसके उच्च उद्देश्यों ने मित्रपक्ष को सबल बनाने में सफलता प्राप्त की और जो मित्रपक्ष समर्थक सभी देशों में

बड़ी-बड़ी डींगो के साथ प्रकाशित भी हुई, आवश्यकता के समय प्रेसिडेंट रूजवेल्ट ने उसके अस्तित्व को ही एक दम अस्वीकृत कर दिया और उसे रद्दी कागज का एक टुकड़ामात्र बताया। इस युद्ध के आरंभ होने के साथ जब हिंदुस्तान भी बृटेन द्वारा उसमें शामिल कर लिया गया तो काँग्रेस ने बृटिश सरकार से युद्धोद्देश्य की स्पष्ट घोषणा करने की माँग की और केवल घोषणा को व्यर्थ समझ कर हिन्दुस्तान को स्वतंत्र कर उस घोषणा को तुरंत व्यवहारिक रूप देने की शर्त उपस्थित की। केवल घोषणाओं में कोई विश्वास नहीं करता है; राजनीति में उनका कोई मूल्य शेष नहीं रह गया है। वे लोग जो पूरी ईमानदारी से घोषणा करने का वादा करते हैं, उन पर भी विश्वास करने का कोई मापदण्ड नहीं रह गया है। इसलिये केवल स्पष्ट योजनायें, जो तुरंत कार्यान्वित किये जाने की क्षमता रखती हैं, परिस्थिति को सुलझाने में सफल हो सकती हैं। संसार के शक्तिशाली और संगठित दल षड़यंत्रों के अड्डे बने हैं। हिन्दुस्तान में ऊँच और नीच, प्रधान और मातहत, बहुसंख्यक और अल्पसंख्यक, सवर्ण और शूद्र, छूत और अछूत की अनेक सामाजिक विषमतायें जनतंत्र के प्रशस्त मार्ग को खंडित करती हैं। पिछड़े हुये और अल्पसंख्यक कहे जाने वाले लोग भविष्य के सम्बन्ध में क्षुब्ध और चिन्तित हैं। इसलिये वह विशद योजना जो इन परिस्थितियों को स्वीकार कर भूत और भविष्य में ऐसा अन्तर उपस्थित करती है कि एक को दूसरे से पहचाना जा सके और जो ऐसे भविष्य के निर्माण

की तुरंत नीव डालती है जिसमें भूत और वर्तमान के दोष और फितरतें अनुपस्थित हैं, आवश्यक वातावरण उत्पन्न कर सकती है और वर्तमान जिच को दूर कर सकती है। यह जिच जनतंत्र का वास्तविक रूप निश्चित करने का परीक्षक यंत्र-सा है और इस अर्थ में पाकिस्तान, द्रविणस्तान इत्यादि आन्दोलन स्वागत के योग्य हैं। यह जिच स्वतंत्रता और जनतंत्र का मार्ग-प्रदर्शक के रूप में बदली जा सकती है और इसका सूत्र पकड़ कर वे शक्तियाँ उन्मुक्त की जा सकती हैं जो आजतक निश्चेष्ट और निरुपाय हैं सुप्त और अज्ञात हैं, स्तब्ध और उदासीन हैं या दूर से तमाशा देख रही हैं और जो न केवल हिन्दुस्तान की स्वतंत्रता की गति को बहुत तीव्र और सरल बनाने की क्षमता रखती हैं, वल्कि अपने प्रवाह में संसार के दूसरे शासित और उत्पीड़ित देशों की मुक्ति का मार्ग प्रशस्त कर सकती हैं। जो शक्तियाँ प्रतिक्रियावादी और स्वतंत्रता विरोधी दलों के लाभ का साधन बनी हैं, उसे अपनाकर उनके विरुद्ध खड़ा किया जा सकता है।

श्री राजगोपालचारी ने अपनी योजना के द्वारा इसी मार्ग का नेतृत्व किया है और महात्मा गाँधी ने उसे अपनाकर इसी क्षेत्र का द्वार खोला है। राजा जी और गाँधी जी की योजनायें ऊपर दी गई हैं; वे उन सिद्धांतों का केवल मूलतत्व व्यक्त करती हैं, जिनके आधार पर पूर्ण जनतंत्र व्यवस्था का निर्माण होता है। योजनायें सिद्धान्त की ४ मुख्य बातें स्थिर करती हैं: (१) सीमानिर्देश, (२) आत्मनिर्णय का अधिकार, जिसमें अलग होने और पूर्ण प्रभुराज्य कायम करने का अधिकार भी

सम्मिलित है, (३) साम्राज्य वाद के विरुद्ध संघर्ष में शामिल हो स्वतंत्रता प्राप्त करने का संकल्प और (४) सन्धि द्वारा राज्यों के संघ की भावी व्यवस्था। श्री राजा जी की योजना और गाँधी जी की योजना में एक अन्तर है, जिसे समझ लेना आवश्यक है। राजा जी की योजना की छठीं धारा अप्रिय शर्तं और प्रतिबन्ध लगाती है। जनतंत्र की जिस प्रखरतम भावना को राजा जी ने वास्तविक रूप देने का प्रयत्न किया है, उसे इस अंश तक उन्होंने सीमित कर दिया है। गाँधी जी ने इस दोष को दूर कर दिया है। उन्होंने सब प्रकार के प्रतिबन्ध को दूर कर दिया है और इतना ही नहीं उनकी योजना के अन्त में काँग्रेस के प्रत्यक्षकार्य से मुसलिम लीग को अलग रहने के अधिकार को सुरक्षित रखना स्वतंत्रता की उच्चतम रूप-रेखा का परिचायक है।.........यह सरलता पूर्वक देखा जा सकता है कि बन्धन की गाठों को खोलने का यह सराहनीय साहस पूर्ण प्रयत्न है। नागपुर विश्व विद्यालय में दीक्षांत भाषण देते हुये २५ नवम्बर १९४४ ई० को श्री राजगोपालचारी ने कहा था,:—

"यदि मुसलमान संयुक्त हिंदुस्तानी संघ से संतुष्ट हों तो यह उन्हें प्राप्त हो सकता है और उसमें उन्हें सम्मान बल्कि विशेष सुविधा का स्थान प्राप्त हो सकता है। यदि मुसलमान इस प्रकार के गृह विभाजन की व्यवस्था चाहते हैं, जिसमें स्वतंत्र इकाइयाँ अपनी प्रभुशक्ति को बिना अधिक क्षीण किये स्वेच्छापूर्वक राज्यों का संघ चाहती हैं तो यह प्रबन्ध भी वे प्राप्त कर सकते हैं। यदि वे राज्यों के संघ में या किसी संघ

में इकाई नहीं रहना चाहते लेकिन जैसा कि १९४० ई० में लाहौर प्रस्ताव में कहा गया था, वे प्रथक पूर्ण प्रभुराज्य चाहते हैं, तो वह भी प्राप्त कर सकते हैं। लेकिन हम लोगों ने न्यायपूर्ण, उचित और संभव शर्तें व्यक्त कर दी हैं, जिनके अनुसार वे इसे प्राप्त कर सकते हैं।"

राजा जी के भाषण के इस अंश में एक जाति या सम्प्रदाय के आत्मनिर्णय और अपनी परिस्थिति के प्रबन्ध का अधिकार व्यक्त किया गया है। सीमा निर्देश और आत्म निर्णय, जिसमें अलग प्रभुराज्य कायम करने का अधिकार शामिल है, हिंदुस्तान के गम्भीर चिंतन के विषय बन गये हैं और निश्चय ही स्वतंत्र हिंदुस्तान के प्रकरण में ये दोनों ही विचारणीय विषय हैं।

वर्तमान हिंदुस्तान ११ प्रान्तों और अनेक रियासतों में विभाजित है। देशी रियासतों की सीमायें मध्य युग और वृटिश शासन के आरंभिक काल के युद्धों की उपज हैं, जो वृटिश नीति और आवश्यकता के अनुसार साधारण हेर-फेर करने के बाद बनी रहने दी गई हैं। वृटिश हिंदुस्तान के ११ प्रांत भी अनिश्चित और अव्यवस्थित परिस्थितियों की उपज हैं। बंगाल से लेकर सीमाप्रांत तक जैसे-जैसे अंग्रेज जीतते गये, प्रांतों की सीमा घटती-बढ़ती गई। एक समय तक बंगाल की सीमा युक्त प्रांत तक फैली थी, फिर इसी में से आसाम, बिहार और युक्त प्रांत के नये प्रांत बने। सिंध और उड़ीसा के प्रांत अभी हाल में बंबई और बिहार प्रांतों के क्षेत्रफल में से अलग कर

नये बनाये गये हैं। वर्तमान प्रांतों में परिवर्तन की माँग काफी जोरदार है। वैज्ञानिक आधार पर हिंदुस्तान प्रांतों के निर्माण की कोई योजना कभी व्यवहार में आने की बात सोची नहीं गई। यदि कोई वर्ग शासन और शोषण की मनोवृत्ति नहीं रखता है, तो जनतंत्र हिंदुस्तान के निर्माण के लिये वैज्ञानिक आधार पर हिंदुस्तान को प्रांतों में विभाजित करने के लिये एक उपयुक्त कमीशन बैठाना आवश्यक होगा। वैज्ञानिक योजना के अनुसार प्रांतों का निर्माण ३ मुख्य आधारों पर किया जा सकता है; (१) भौगोलिक, (२) आर्थिक, (३) जातीय, भाषा, रहन-सहन। अनमेल भौगोलिक या आर्थिक क्षेत्रों को या अनमेल भाषा-भाषी लोगों को एकत्र करने से उत्थान और प्रगति का मार्ग प्रशस्त नहीं बनाया जा सकता है और न तो प्रांतों में कोई वैज्ञानिक व्यवस्था लाई जा सकती है। प्रांतों का निर्माण इस ढंग से अवश्य होना चाहिये कि हिंदुस्तानी संघ की सीमा पर की इकाइयाँ उदाहरणतः मुसलिम इकाइयाँ यदि संघ से अलग होना चाहें तो उसके लिये वैसा करना संभव हो सके और छोटी तथा अल्प संख्यक जातियों-उदाहरणतः संथाल—को अपना अलग प्रांत बना कर अपने विशेष ढंग से विकास करने की सुविधा प्राप्त हो सके। संघ शासन में प्रांतों का विभाजन अत्यन्त महत्वपूर्ण है और एक जनतंत्र शासन व्यवस्था में तो यह प्रश्न गौण हो ही नहीं सकता है। इसलिये हम दूसरे देशों की व्यवस्था से भी सहायता ले सकते हैं। १७ फरवरी सन् १९४४ ई० के भाषण में लार्ड वावेल

ने कहा था कि 'रूस में सोवियट संघ ने एक नया मार्ग ढूँढ़ निकाला है, जो निसन्देह ध्यान पूर्वक अध्ययन के योग्य है।'

रूस के ढंग की विवेचना उपयोगी हो सकती है। सन् १९१७ ई० के क्रान्ति के बाद रूस ने देश का पुन प्रांतीय करण किया। रूस में ३ प्रकार के विभाजन हैं। (१) प्रथम वे हैं जो रूसी संघ के सदस्य कहे जाते हैं और रिपब्लिकन नाम से सम्बोधित होते हैं। इनके निर्माण में ३ शर्तें आवश्यक हैं: (अ) इस प्रदेश में एक जाति के लोगों का निश्चित बाहुल्य होना चाहिये। वे इस प्रकार सिलसिलेवार बसे हों कि इनकी एक इकाई का प्रांत बन सके, (ब) इस प्रदेश की जनसंख्या इतनी हो और आर्थिक स्थिति ऐसी हो कि स्वावलम्बन की क्षमता उसमें हो, (स) इसे रूस के सीमान्त पर ऐसी स्थिति में होना चाहिये कि वह यदि रूसी संघ से अलग होना चाहे तो भौगोलिक दृष्टि से उसके लिये ऐसा करना संभव हो सके। यह ध्यान में रखने योग्य है कि केवल सीमान्त के ही रिपब्लिकन प्रदेशों को रूसी संघ से सम्बन्ध विच्छेद का अधिकार प्राप्त है। इस प्रकार के १६ रिपब्लिक इस समय रूस में है। २ दूसरे प्रकार के वे प्रदेश हैं, जो स्वयं रिपब्लिक होने की क्षमता तो नहीं रखते, लेकिन किसी रिपब्लिक के अन्तर्गत एक प्रकार की जाति के लोगों के बड़े क्षेत्र हैं। ऐसे प्रदेशों को रिपब्लिक के मातहत स्वशासन की सुविधा और अधिकार प्राप्त है। इन्हें (Autonomous) स्वशासित प्रदेश कहते हैं और ये रिपब्लिक

के मातहत हैं । नियम पूर्वक इनका सीमा निर्देश हुआ है । तीसरे वे छोटे-छोटे क्षेत्र हैं, जो पहले और दूसरे प्रकार के प्रदेशों के अन्तर्गत हैं । उन जातियों का दल जो किसी सिलसिलेवार क्षेत्र को बड़ी संख्या में आबाद न कर बिखरे बसे हैं, गाँव या तहसील रूप में सीमावद्ध कर दिये गये हैं और वहाँ उनका अपना संघ स्थापित है । उन्हें अपने ढंग और रहन-सहन के अनुसार अस्पताल, स्कूल इत्यादि की व्यवस्था करने की पूर्ण सुविधा है । यहूदी ऐसे हैं जो किसी निश्चित क्षेत्र में नहीं बसे हैं, उनकी एक टुकड़ी एक स्थान पर है और दूसरी टुकड़ी किसी दूसरे स्थान पर है । जेक, बलगेरिया और ग्रीक लोगों की संख्या प्रायः कुछ हजार ही तक है लेकिन इन लोगों का क्षेत्र भी सीमावद्ध हो गया है और वहाँ उनका अपना संघ स्थापित है ।

इस विभाजन में प्रत्येक को आत्मनिर्णय की पूर्ण सुविधा और अधिकार है; अपने व्यक्तित्व के विकास का स्वच्छन्द अवसर है । यदि इस विभाजन शैली को ध्यान में रख कर हिंदुस्तान के प्रांतों का निर्माण किया जाय तो पाकिस्तान, द्रविणस्तान, खालिस्तान और ऐंग्लोइंडियन उपनिवेश की समस्यायें सरलता से हल की जा सकती हैं और शिकायत का कोई अवसर नहीं हो सकता है । कोल-भिल्ल, सन्थाल इत्यादि पिछड़ी हुई जातियों के उत्थान और विकास का प्रश्न जनतंत्र हिंदुस्तान के लिये अत्यन्त महत्वपूर्ण है । इनमें अनेक का कोई निश्चित स्थान नहीं है और यद्यपि आज इनकी कोई समस्या नहीं

है, लेकिन जागरण की लहर इन्हें प्रभावित किये विना नहीं रह सकती है। इनकी व्यवस्था भी अनिवार्य है, अन्यथा इनकी माँगें भी बाद को परेशानी का कारण सिद्ध होंगी।

सीमा निर्देश के साथ आत्मनिर्णय का प्रश्न अविच्छिन्न रूप से साथ लगा है। वास्तव में इस अधिकार का प्रश्न हिंदुस्तान की राजनीति का केन्द्र विंदु वना है। हमारे मन में यदि कोई दूषित आकांक्षा नहीं है, यदि हम मन में चोर रखकर जनतन्त्र की वातें नहीं करते हैं, और यदि हमारे मन के अन्तस्तल में प्रभुत्व और शासन की लालसा नहीं छिपी है, तो आत्मनिर्णय का अधिकार जो प्रत्येक सम्प्रदाय और जाति का स्वाभाविक अधिकार है, विना किसी प्रतिवन्ध के और प्रतिवाद के सभी को अवश्य मिलना चाहिये। स्वतन्त्रता के इस युग में किसी दूसरे वर्ग या सम्प्रदाय के लोगों पर वलपूर्वक कोई निर्णय लादने का प्रयत्न कोरी अनधिकार पूर्ण चेष्टा है। कोई भी दूसरों की इच्छा के अनुसार रहने और जीवन की व्यवस्था वनाने के लिये विवश नहीं किया जा सकता है। पूर्ण स्वतन्त्र और स्वच्छन्द वातावरण में ही हम घनिष्ट और विश्वास पूर्ण सम्पर्क और सम्वन्ध स्थापित कर सकते हैं। जिस अंश तक आत्मनिर्णय के अधिकार पर प्रतिवन्ध और भार होगा, उसी अंश तक पारस्परिक सम्वन्ध में अविश्वास और अन्तर होगा और उसी अंश तक साथ रहने के संयोग कम होंगे। किसी भी वर्ग, सम्प्रदाय या समूह को साथ उसी समय तक रखा जा सकता है, जव तक वह परिस्थितियों से विवश है। अवसर

मिलते ही वह उस प्रतिबन्ध की कड़ी को अवश्य छिन्न-भिन्न कर डालेगा और पूर्ण स्वतन्त्र होने की परिस्थिति में वह यह निर्णय करेगा कि उसके लिये साथ रहना श्रेयस्कर होगा या अलग रह कर वह अपने व्यक्तित्व का पूर्ण विकास कर सकेगा। साथ रहने की स्थिति पैदा करके ही साथ रखने की आशा की जा सकती है।

आत्मनिर्णय के अधिकार का अर्थ तुरन्त सम्बन्ध विच्छेद नहीं होता है, वल्कि इसके विपरीत स्वेच्छा पूर्वक साथ रहने के अधिक शक्तिशाली और दृढ़ आधार की सृष्टि करना होता है। आत्मनिर्णय का अधिकार इस परिस्थिति को निश्चित करता है कि साथ रहने वाले अलग होकर रह नहीं सकते हैं और उद्देश्य तथा परिस्थितियों की समानता और एकता के कारण अनिवार्य वन्धन में स्वेच्छा से बँधे हैं। आत्मनिर्णय का अधिकार इस वात को निश्चित करता है कि लोगों की एकता और साथ किसी ऊपरी दबाव या परवशता के कारण नहीं है, वल्कि वह अन्तरप्रेरणा का परिणाम है। यह सरलता पूर्वक देखा जा सकता है कि ऐसे स्वतन्त्र और उच्च सम्बन्ध में जो निर्दोष घनिष्टता होगी, और इसमें जो अभूतपूर्व शक्ति होगी उसकी केवल कल्पना की जा सकती है। इस अत्यन्त स्वाभाविक अधिकार को अस्वीकृत करने का अर्थ है स्वतन्त्रता के वास्तविक अधिकार को अस्वीकृत करना और जनतन्त्र व्यवस्था को सीमित और दूषित बनाना। इस अधिकार को हठपूर्वक अस्वीकार कर केवल भीषण अविश्वास उत्पन्न किया जा सकता है, जो साथ रहने के इच्छुक हैं उन्हें अलग हो जाने के लिये

उत्तेजित किया जा सकता है और जहाँ आत्मनिर्णय का अधिकार प्रदान कर सबमें जीवन की वास्तविक समस्यायों के प्रति प्रबल चेष्टा जागृत की जा सकती है, वहाँ इसके विपरीत लोगों में अधिकार प्राप्त करने की भावुक चेष्टा उत्पन्न की जा सकती है। आत्मनिर्णय के अधिकार से वंचित करने का अर्थ है, एक बाहरी निर्णय लादने का अधिकार सुरक्षित रखना, लेकिन जब लोगों की चेतना जागृत हो चुकी है और स्वतन्त्रता की प्रखरतम ज्योति ने लोगों को प्रभावित कर दिया है, तो न केवल यह प्रयत्न व्यर्थ है, बल्कि इस प्रकार का प्रयत्न विनाश का कारण हो सकता है।

सम्बन्ध-विच्छेद की शंका क्यों उत्पन्न होती है? आत्म-निर्णय के अधिकार के कारण नहीं, असमान सम्बन्ध के कारण सम्बन्ध विच्छेद की परिस्थिति उत्पन्न होती है। यदि सामाजिक और शासन सम्बन्धी व्यवस्था में असमानता प्रभुत्व और शोषण की गुंजायश नहीं है, और प्रत्येक सम्प्रदाय के मध्य समान सम्बन्ध और व्यवहार की एक-सी व्यवस्था है, तो एक व्यर्थ की शंका और भय से परेशान होने की कोई गुंजाइश नहीं है। इस युग में लोग साथ रहने के लिये उसी परिस्थिति में सहमत हो सकते हैं जब प्रत्येक को एक-दूसरे के प्रत्येक कार्य का प्रत्येक अवसर पर तौलते रहने का अधिकार प्राप्त हो और प्रत्येक को यह सुविधा प्राप्त हो कि उनमें यदि कोई चालबाजियों और फितरतों द्वारा दूसरे का शासन और शोषण करना चाहता है तो दूसरे इस खतरे से बचने के लिये सम्बन्ध विच्छेद कर सकें। परीक्षण और निर्वाचन के आधार पर ही संघ स्थापित हो सकता

है। आत्मनिर्णय का अधिकार वास्तविक जनतन्त्र व्यवस्था का प्रामाणिक मापदण्ड है। हिन्दुस्तान की वास्तविक स्वतन्त्रता के लिये भी इसी मापदण्ड का आश्रय ग्रहण करना पड़ेगा। मुसलमान यदि आत्मनिर्णय का अधिकार चाहते हैं तो किसी को उनके निर्णय की स्वतन्त्रा पर प्रतिबन्ध लगाने का क्या अधिकार है? यदि उनसे भय और शंका है, तो उसी अंश में उन्हें भी अपने अन्तस्थल में भय और शंका बनाये रखने का अधिकार है, और इसका स्पष्ट अर्थ यह है कि मुसलिम सम्प्रदाय को आत्मनिर्णय का अधिकार देने के खतरे की अपेक्षा बृटिश शासन श्रेयस्कर समझा जाता है। स्वभावतः मुसलिम सम्प्रदाय भी आत्मनिर्णय के अधिकार से बंचित रह कर हिंदुस्तान की स्वतन्त्रता की अपेक्षा बृटिश शासन को श्रेयस्कर समझेगी। फलस्वरूप पारस्परिक भय, शंका और अविश्वास में हिंदुस्तान की स्वतन्त्रता की अपेक्षा परतन्त्रता निश्चित रहेगी।

प्रत्येक इकाई की स्वतंत्र स्थिति से ही सब की स्वतंत्रता निश्चित हो सकती है। केवल उस परिस्थिति के निर्माण का उद्देश्य आवश्यक है। सभी को यह मान्य है कि हिन्दुस्तान का भावी विधान संघ शासन होना चाहिये। यह जान लेना चाहिये कि संघ का आधार ही इकाइयों के पृथक व्यक्तित्व पर आश्रित है। अमेरिका, कनैडा, आस्ट्रेलिया और सबसे बढ़कर रूस के उदाहरण उल्लेखनीय हैं। इनमें से प्रत्येक ने पृथकत्व से आरंभ कर एकता प्राप्त की है। सन् १७७६ ई० का अमेरिकन घोषणापत्र और सन् १७८७ ई० का अमेरिकन विधान इस के प्रमाण हैं।

अमेरिका की एकता आज निश्चित और दृढ़ है, क्यों कि उस की प्रत्येक इकाई का व्यक्तित्व सुरक्षित है। रूस का उदाहरण विशेष रूप से सराहनीय है। रूस ने भी पृथकत्व से आरंभ कर वर्तमान रूसी संघ की एकता कायम की और फिर रूसी शासन विधान द्वारा इकाइयों को (रिपब्लिकों को) आत्मनिर्णय का अधिकार प्रदान कर अपनी एकता को दृढ़ और स्थायी बनाया। सन् १९१७ ई० से रूस के जिन प्रदेशों में क्रांति आरंभ हुई, वे बाद को रूसी संघ (आर० एफ० एस० आर०) से प्रसिद्ध हुये। सन् १९२२ ई० तक रूसी संघ की इकाई न तो कायम हुई थी और न उसकी कोई घोषणा हुई थी। क्रान्ति के परिणाम स्वरूप वर्तमान रूस के जो भाग मुक्त होते गये उनका रूसीसंघ के नमूने पर राज्य कायम हुआ। आरंभ में रूसीसंघ के साथ इनका साधारण सम्बन्ध था। इनके वैदेशिक विभाग अलग थे और इनके सिक्के भी भिन्न थे। सन् १९२२ ई० में रूसीसंघ इकाई का पहला विधान तैयार हुआ। आरंभ में रूसीसंघ इकाई के केवल ४ रिपब्लिकन थे। सन् १९२९ ई० में संख्या बढ़ कर ग्यारह हो गई और सन् १९४० में यह संख्या बढ़कर १६ तक पहुँच गई। रिपब्लिकनों के अलग होने के अधिकार से रूसी संघ अधिक व्यापक और विस्तृत हो गया है। स्वतंत्रता की इच्छुक प्रत्येक उत्पीड़ित और सशंक जाति इस व्यवस्था की ओर देखती है। संसार अब इससे पीछे की ओर नहीं देखता है, वह अब इससे भी आगे बढ़कर सोचता है। रूसके रिपब्लिकनों को पृथक होने का अधिकार है, किन्तु

प्रत्येक आज रूसी संघ से चिपके रहने के लिये लालायित है। यदि व्यवस्था श्रेष्ठ और उत्तम है, उद्देश्य निर्मल और विशद है तो निश्चय है कि लोग अलग न होकर साथ रहने के लिये लालायित रहेंगे। हिन्दुस्तान के सम्बन्ध में बहुत अधिक उलझनें नहीं हैं। यहाँ की समस्या बहुत आसान है। आत्मनिर्णय का अधिकार स्वीकृत कर भय आशंका, परस्पर अविश्वास और भविष्य की चिन्ता के वातावरण को नष्ट कर एक स्पष्ट वातावरण की सृष्टि करनी है।

आत्मनिर्णय तथा सम्बन्ध विच्छेद की स्वतंत्रता पर प्रतिबंध लगाने का हठ जहाँ आत्मसम्मान के विरुद्ध और अनधिकार चेष्टा है, वहाँ सम्बन्ध विच्छेद की सन्धि का तकाज़ा करना अनिवार्य है। हिन्दुस्तानी संघ और उससे पृथक होने वाली इकाई दोनों के लिये रक्षा का प्रश्न महत्वपूर्ण होगा, उतना ही महत्वपूर्ण वैदेशिक विषयों का प्रश्न और व्यापारिक सम्बन्ध भी होगा। साम्राज्यवादी शिकारी की गृद्ध दृष्टि से अत्यन्त सतर्क रहने और उससे रक्षा की व्यवस्था इतनी अनिवार्य होगी कि उसका एक संयुक्त प्रबन्ध रखना ही पड़ेगा। अल्पसंख्यक सम्प्रदायों का प्रश्न भी शासन की कृपा और उदारता पर नहीं छोड़ा जा सकता है। उनके व्यक्तित्व के पूर्ण विकास की व्यवस्था अवश्य करनी पड़ेगी इनके अतिरिक्त उत्थान और विकास के लिये दोनों के पारस्परिक सहयोग न केवल अनिवार्य होंगे, वल्कि अविच्छन्न रहेंगे। संसार अब पृथक और असम्बद्ध राज्यों का अलग-अलग टुकड़ा न रहकर संघ व्यवस्था

की ओर तीव्रता से अग्रसर हो रहा है और भविष्य का संसार राज्यों के संघ में परिवर्तित होने जा रहा है। यह प्रवृत्ति इतनी स्पष्ट है कि इससे अस्वीकार किया जाना असम्भव है। भविष्य के किसी राज्य को पूर्ण प्रभुराज्य बनाये रखने का प्रयत्न कोरी-कल्पना है। उसका युग भी बीत गया। भविष्य के राज्य परस्पर निर्भर होकर ही जीवित रह सकेंगे। हिन्दुस्तानी संघ और उससे अलग होने वाली इकाई को आर्थिक ढाँचे की एक समान रूपरेखा भी निश्चित कर लेना होगी और इसमें यह बात तै कर लेनी पड़ेगी कि किसी प्रकार के शोषण और उत्पीड़न की कोई गुंजाइश उस ढाँचे में नहीं है। इन दृष्टि कोणों से सम्बन्ध विच्छेद से उत्पन्न होने वाले विषयों के सम्बंध में सम्मानपूर्ण सन्धि न केवल अनिवार्य है, बल्कि अत्यन्त श्रेय-स्कर है। इन सिद्धांतों के अनुसार स्वतंत्र हिन्दुस्तान के भावी विधान के लिये नीचे के आधार स्वीकृत किये जा सकते हैं :—

(१) हिन्दुस्तान की जनता समानता और प्रभुशक्ति की अधिकारिणी होगी। किसी प्रकार के शोषण की कोई गुंजाइश न होगी। (२) एक योग्य और अधिकार पूर्ण कमीशन द्वारा हिन्दुस्तान का पुनः प्रांतीय करण ३ मुख्य आधारों पर होगा— (१) भौगोलिक, (२) आर्थिक और (३) जातीय, भाषा, रहन-सहन।

(३) इस प्रकार जो नये प्रांत बनेंगे, उन्हें आत्मनिर्णय का अधिकार प्राप्त होगा, जिसमें सीमापर के प्रांतों को सम्बन्ध विच्छेद का भी और पूर्ण प्रभुराष्ट्र कायम करने का अधिकार

शामिल होगा। सम्बन्ध विच्छेद करने और प्रभुराष्ट्र कायम करने की इच्छा का निर्णय उस प्रांत के बालिग मताधिकार से होगा।

(४) सम्बन्ध विच्छेद की अवस्था में सम्बन्ध विच्छेद की एक सन्धि होगी। इस सन्धि में वैदेशिक विषय रक्षा आन्तरिक यातायात, चुंगी, व्यापार और उद्योग और इसी प्रकार के दूसरे सम्मिलित प्रबंध के विषय अनिवार्य रूपसे होंगे। अल्पसंख्यकों के अधिकार की रक्षा के सम्बन्ध में भी सन्धि होगी।

(५) अल्पसंख्यकों के स्वच्छन्द विकास के लिये स्पष्ट और विशद व्यवस्था होगी।

एक और महत्वपूर्ण प्रश्न उलझन पूर्ण है। स्वतंत्रता के युद्ध के दौरान में अस्थायी केन्द्रीय सरकार न केवल अनिवार्य बल्कि नीतिपूर्ण हो सकती है और उस परिस्थिति में बर्तमान सम्प्रदायों के अधिकार के अनुपात का प्रश्न उठना स्वाभाविक है। यह प्रश्न वर्तमान का है और इसके हल के लिये यह आवश्यक है कि अस्थायी केन्द्रीय सरकार में वर्तमान सम्प्रदायों के अधिकार का अनुपात इस प्रकार निश्चित किया जाय कि कोई एक सम्प्रदाय दूसरे पर हावी होने की स्थिति में न रह सके। सप्रू कमेटी ने इस दिशा की ओर पथ प्रदर्शन किया है। यह श्रेयस्कर मार्ग है। इससे यदि हिन्दुस्तानी नाक भौं सिकोड़ते हैं तो वे देशी राज्य की अपेक्षा विदेशी राज्य अधिक पसन्द करने का परिचय देते हैं।

पाकिस्तान के साथ खींच-तान और रस्साकसी करके नहीं, बल्कि केवल गम्भीर चितंन से ही उलझननों को सुलझाया जा सकता है और स्वतंत्रता के मार्ग की जिच दूर कर उसे तीव्र गति प्रदान की जा सकती है।

समस्या का भविष्य

वर्तमान एक समय का भविष्य था और शीघ्र ही वह भूतकाल हो जायगा। इतिहास की गाथायें, समाज की समस्यायें भूत, वर्तमान और भविष्य के गतिक्रम में गुँथीं हुई हैं। भूत के सम्पूर्ण उत्तराधिकार के साथ वर्तमान उत्पन्न हुआ है और भविष्य वर्तमान का प्रत्यक्ष परिणाम होगा। किसी एक समस्या और प्रश्न का कोई पृथक और स्वतंत्र अस्तित्व नहीं है। इतिहास की एक घटना का दूसरी से अविच्छिन्न सम्बन्ध है। हमारी प्रत्येक क्रिया की एक अनिवार्य प्रति क्रिया होती है, और इस क्रिया प्रति क्रिया के संघर्ष का समन्वय ही जीवन शैली का एक ढाँचा बन जाता है, लेकिन यह ढाँचा भी स्थायी नहीं रहता, क्रिया-प्रति-क्रिया का क्रम जारी रहता है, और इनके संघर्ष के परिणाम स्वरूप पुराना ढाँचा टूट जाता है और उसके स्थान पर जीवन शैली के दूसरे नये ढाँचे का निर्माण होता है। यह क्रम कभी मन्द गति से और कभी तीव्र गति से, कभी प्रत्यक्ष रूप से और कभी अप्रत्यपक्ष रूप से, कभी विकास के रूप में और कभी क्रान्ति के द्वारा होता रहता है। संसार की हलचलें, युद्ध, आन्दोलन और क्रान्तियाँ इस अनिवार्य क्रम के विशद और स्पष्ट प्रमाण हैं। इस क्रिया-प्रति-क्रिया के संघर्ष में, क्रम की इस अनिवार्य गति में मनुष्य की क्रिया शीलता का महत्वपूर्ण स्थान है। और एक नये ढाँचे का रूप स्थिर करने में

मनुष्य के कारगर हाथ की बड़ी आवश्यकता होती है। विगत इतिहास, वर्तमान परिस्थिति, हमारी मनोवृत्तियों को मोड़ने वाली शक्तियों का समूह और मनुष्य की जागृत-चेतना इस बात का निर्देश करने की क्षमता रखती है कि संसार की वर्तमान समस्याओं का भविष्य में क्या रूप होगा।

प्रथम महा युद्ध (१९१४-१९१८) के बाद प्रगति शील शक्तियाँ इस प्रकार संसार के रंगमंच पर प्रकट हुईं कि न केवल उनके अस्तित्व, वल्कि उनकी नवीनता और विशेषता की ललकार से प्रभावित हुये बिना विश्व का कोई भाग शेष न रह सका। युद्ध के मध्य में ही रूस समाजवादी हो गया था और उसके क्रान्ति के सन्देह ने सभी पीड़ित और शासित देशों की जनता को अपने बन्धन की गाँठ को तोड़ फेंकने के लिये चंचल और बेचैन कर दिया था। सम्पूर्ण योरप समाजवादी-सा होता प्रतीत हुआ, संसार के दूसरे देशों के प्रगति शील दल शक्ति और अधिकार प्राप्त करते हुये दीख पड़े। युद्ध समाप्त होने के बाद १० वर्षों तक तो प्रतिगामी शक्तियाँ दबी हुई और कुचली हुई-सी मालूम पड़ती थीं और ऐसा जान पड़ता था कि संसार की प्रगति शील शक्तियाँ अपने को इस प्रकार सङ्गठित करने में समर्थ और सफल हो सकेंगी कि शक्ति-सन्तुलन में इनका पलड़ा भारी पड़ेगा। लेकिन सन्धि के मेज पर बैठने वाले विजयी राष्ट्र नायकों ने वसाई सन्धि और राष्ट्र-सन्ध के द्वारा इस स्थिति का सामना करने और प्रगति के मार्ग में लगातार बाधायें उपस्थित कर उसे छिन्न-भिन्न करने की व्यवस्था कर

ली थी। वृटिश-साम्राज्य, जो विश्व की प्रतिगामी शक्तियों का संचित कोष है, और जो प्रगति का सबसे बड़ा विरोधी अड्डा है, अमेरिका की सहायता और गुटबंदी से भारी पड़ते हुये पलड़े को हल्का और निर्बल करने के प्रयत्न में लग गया। साम्राज्य के षड़यंत्र भिन्न-भिन्न देशों में भिन्न-भिन्न रूप से आरम्भ हुये। वसाई-सन्धि में जर्मन की सैनिक और औद्योगिक शक्तियों को पूर्णरूप से कुचल डालने की व्यवस्था की गई थी, लेकिन जब प्रगति शील शक्तियों का केन्द्रविन्दु और जन आन्दोलन के उत्साह और आदर्श का मूल स्रोत रूस होने लगा तो जर्मनी के वजाय रूस की बढ़ती हुई शक्तियाँ साम्राज्य के लिये भय का कारण होने लगीं। इसी भय से मुक्ति पाने के लिये वसाई-सन्धि की कड़ी शर्तों को एकदम ढीली कर जर्मनी को सैनिक और औद्योगिक शक्तियों को बढ़ाने का पूरा अवसर दिया गया। अनेक ढंग से संसार की प्रतिगामी शक्तियों को न केवल प्रोत्साहित किया गया, बल्कि अबाध रूप से उनके शक्ति संचित करने में सक्रिय योग दिया गया। घटना-चक्र तेज़ी से घूम रहा था, एक के ऊपर दूसरी प्रतिक्रिया की ढेर एकत्र होती गई, परिस्थितियाँ इस सीमा तक पहुँची कि सन् १९३४ ई० के बाद प्रतिगामी और प्रतिक्रिया बादी शक्तियों का समूह पुञ्ज ही विश्व के रंगमंच पर विशाल रूप धारण कर प्रकट हुआ। नाजीवाद, फासिष्टवाद, सैनिकवाद और प्रतिक्रिया की दूसरी परिस्थितियों ने संसार को घेर-सा लिया। इन परिस्थितियों के प्रतीक हिटलर, मुसोलिनी, फ्रैंकों, जापानी सैनिकवाद एमरी और जिन्ना सन्सार

की भाग्य रेखा के स्वामी-से प्रतीत होने लगे। प्रतिक्रिया इनमें फूट पड़ी थी और युद्धकाल इसकी पराकाष्ठा की चरमावस्था था।

लेकिन क्या यह स्थिति स्थायी थी ? क्या यह स्थायी हो भी सकती थी ? असमान और अव्यवस्थित स्वार्थों के होड़ में शक्तियाँ बेकाबू होकर आपस में ही एक दूसरे से टकरा गईं; जिनका निर्माण साम्राज्य ने प्रगति से युद्ध करने के लिये किया था, वे उसी के विनाश की चुनौती दे बैठीं। नाजीवाद और फासिस्टवाद और उनके प्रतीक हिटलर और मुसोलिनी के विनाश की दशा का वर्णन अत्यन्त दयनीय होगा। जापान का सैनिकवाद धराशायी और परास्त हो गया। फ्रैंको एक निर्जीव शक्ति और कुछ समय के मेहमान हैं। लेकिन इन सैनिक पराजयों से बड़ी और महत्वपूर्ण पराजय साम्राज्य के प्रबल समर्थक चर्चिल और एमरी की है। अत्यन्त नाजुक समय और परिस्थिति में बृटिश साम्राज्य को बचा लेने वाले चर्चिल और एमरी को बृटिश जनता ने बेतरह ठुकरा देने में तनिक भी शील या सङ्कोच का परिचय नहीं दिया है। प्रतिक्रिया के प्रतीक साम्राज्य के रक्षक चर्चिल और एमरी के लिये बदली हुई परिस्थिति में स्थान नहीं रहा। गाँधी और जिन आदर्शों के गाँधी प्रतीक हैं, उन्हें सर्वदा के लिये कुचल डालने की चर्चिल ने चुनौती दी थी, लेकिन आज वे स्वयं कुचल दिये गये हैं और गाँधी युगों की सीमा पार करता हुआ उज्ज्वल और नवीन शक्ति सम्पन्न होता हुआ बढ़ा चला जा रहा है। रूस और रूस के आदर्शों के सब से बड़े विरोधी चर्चिल को अनेक बार रूस की

परिक्रमा करनी पड़ी और रूस के प्रधान सैनिक की कृपा की भीख माँगनी पड़ी। चर्चिल और एमरी को हटा कर ब्रिटेन ने जिस दल को अपना समर्थन प्रदान किया है, और जिसके हाथ में उसने शासन-सूत्र सौंपा, वह एक प्रगति शील दल— इंगलैंड का समाजवादी दल—के नाम से प्रसिद्ध है। जिस रूस के विरुद्ध विश्व व्यापी मोरचा तैयार किया गया था, आज वही रूस संसार की सब से बड़ी शक्तियों में है।

लेकिन हिंदुस्तान की परिस्थिति कुछ भिन्न है। हिंदुस्तान साम्राज्य का सब से दृढ़ स्तम्भ है। इस देश की परिस्थितियाँ इस प्रकार जकड़ कर बाँध रखी गई हैं कि प्रगति शील शक्तियों को सरलता पूर्वक सर उठाने का अवसर मिलना कठिन है। फिर भी युद्ध समाप्त होने के बाद जकड़े हुये बन्धन ढीले पड़ रहे हैं। देश के कोने-कोने में चंचलता और बेचैनी है। ऊपर से बातें चाहे जैसी दीख पड़ती हों, भीतर-भीतर सम्पूर्ण नक़शा बदल गया है। जमे हुये पुराने विचारों और विश्वासों का कोई मूल्य शेष नहीं रह गया है, प्रत्येक व्यक्ति हृदय टटोलने के लिये बाध्य है। युद्ध आरम्भ होने के पूर्व जो हिंदुस्तान था, वह निश्चय रूप से युद्ध समाप्त होने के बाद नहीं है। युद्ध ने भीषण झटका देकर सोये हुये वर्ग को जगा दिया है और परम्परा की गाँठों को हिला दिया है।

राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक अव्यवस्थायें जब घनी भूत होकर फूट पड़ती हैं तो उस विस्फोट को हम युद्ध कहते हैं। स्वभावतः युद्ध अनेक परिणामों को साथ लेकर आता

है। दबी हुई शक्तियाँ उन्मुक्त होती हैं। लोगों की प्रवृत्तियाँ एक दम बदल जाती हैं और दृष्टिकोण नये हो जाते हैं। युद्ध के परिणाम स्वरूप नयी-नयी समस्यायें और प्रश्न प्रत्येक देश के सामने उपस्थित हो जाते हैं और युद्ध के ऊहापोह में समाज का एक नया ढाँचा बनने लगता है। इन परिस्थितियों में पुरानी बातें न केवल व्यर्थ हो जाती हैं, बल्कि वे प्रहसनीय और कौतूहल की बातें बन जाती हैं।

युद्ध के परिणामों से हिंदुस्तान अछूता नहीं बन सकता है, बल्कि गुलाम और पिछड़े हुये होने के नाते युद्ध का बड़ा ही तीव्र झटका इस देश को लगा है। इस लड़ाई के बाद हिंदुस्तान के स्वाभिमान का स्तर बहुत ही ऊँचा उठ गया है, अपमान की एक साधारण-सी ठेस भी उसे बेचैन करने के लिये काफ़ी है। इस देश में आजादी का ऐसा जबरदस्त तकाजा है कि किसी भी प्रकार का बलिदान अधिक नहीं मालूम हो रहा है। अगस्त सन् १९४५ की क्रान्ति और आजाद-हिंद फौज ने एक नया आदर्श उपस्थित किया है। लोगों में स्वतंत्रता के लिये भीषण लगन है और समस्त देश उसके लिये पागल हो उठा है। लाठियों का तो कोई प्रश्न ही नहीं, स्थिति उस सीमा पर पहुँच गई है, जहाँ पुलिस और बृटिश सैनिकों द्वारा गोलियों और मशीन गनों के प्रयोग के नित्य ही समाचार आते हैं। हिन्दुस्तानी सेना में भी बेचैनी है और उसमें भी चञ्चलता के लक्षण स्पष्ट हैं। बंबई में हिन्दुस्तानी नौसेना के आन्दोलन से स्पष्ट है कि "हिन्दुस्तान-छोड़ो" का नारा देश के जीवन में इस प्रकार प्रवेश

कर चुका है कि उससे पीछे जाने की गुञ्जाइश अब शेष नहीं रह गई है। "हिन्दुस्तान छोड़ो" के साथ-साथ मिश्र छोड़ो का नारा भी बुलन्द है। मध्यएशिया और इन्डोनेशिया के प्रश्न भी विकट हैं। साम्राज्य के विरुद्ध प्रत्येक परतंत्र देश में खुले विद्रोह की स्थिति है। जैसा कि पिछले परिच्छेद में हमने देखा है सभी पूर्व के देशों के लिये बृटिश नीति का केन्द्र-विन्दु हिन्दुस्तान है। इन सभी देशों के स्वातंत्र्य आन्दोलन का केन्द्र-विन्दु भी हिन्दुस्तान ही हो सकता है और इसीलिये हिन्दुस्तान की स्वतंत्रता का युद्ध साम्राज्यवाद के विरुद्ध शक्ति का केन्द्र बनता जा रहा है। कहा नहीं जा सकता है कि किस समय फूट का यह भीषण रूप धारण कर लेगा।

स्वतंत्रता की तीव्रतर भावना के अतिरिक्त हिन्दुस्तान की समस्यायें इतनी जटिल हैं, उसके सामने ऐसे गूढ़तर प्रश्न हैं, लोगों का प्रतिदिन का जीवन इतना कठिन है कि ऐसी स्थिति इसके पूर्व कभी नहीं थी। अन्न और वस्त्र का संकट भयानक है और पूर्ण रूप से अकाल की स्थायी स्थिति हो गई है। प्रत्येक व्यक्ति और साधारण जनता के सामने प्रति दिन रोटी और वस्त्र का प्रश्न है। वह किसी प्रकार इस प्रश्न को सुलझाने के लिये बेचैन है। लेकिन भविष्य इस वर्तमान से भी भयानक है। ब्रिटिश सरकार ने स्पष्ट घोषित कर दिया है कि भीषण खाद्य-सङ्कट उपस्थित होने वाला है और ऐसा निश्चित प्रतीत होता है कि बंगाल के अकाल की स्थिति दूसरे प्रान्तों की भी अवश्य होगी। इसमें तो अब सन्देह ही नहीं है कि बंगाल का अकाल

भी शासकों की कृपा का परिणाम था और इसमें भी सन्देह नहीं कि आने वाला अकाल भी उन्हीं की कृपा का परिणाम होगा। प्रत्येक हिन्दुस्तानी के लिये यह असीम विवशता की परिस्थिति असहनीय हो रही है और इस दशा को समूल परिवर्तन कर देने के लिये उसके भीतर उथल-पुथल मचा हुआ है। अभी तक तो युद्ध के पूर्ण आर्थिक परिणाम प्रकट नहीं हुये हैं लेकिन उनका प्रकट होना अनिवार्य और निश्चित है। युद्धकाल का अत्यधिक व्यय साधारण समय पर पूरा प्रभाव डालेगा। उस समय कैसा भीषण हाहाकार मचेगा, इसका कोई अनुमान नहीं किया जा सकता है। हिंदुस्तान और संसार को इस आर्थिक सङ्कट से गुजरना पड़ेगा ही यह निश्चित है। युद्ध समाप्त हो जाने पर भी युद्ध की स्थिति समाप्त नहीं हो गई है। अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति की स्थिति ऐसी नाजुक है कि युद्ध के बाद भी युद्ध के दाव घात और पैतरेबाजियाँ जारी हैं और तीसरे महायुद्ध के लक्षण बहुत ही स्पष्ट दीख पड़ते हैं। न केवल एक अरक्षा की दशा है, बल्कि स्थिति इतनी उलझन पूर्ण है कि किसी भी आर्थिक व्यवस्था का सुचारु रूप से चल सकना असम्भव है।

इस निश्चित सङ्कट पूर्ण परिस्थिति के अतिरिक्त हिंदुस्तान के सामने कई दूसरी समस्यायें उपस्थित हैं जो उचित निपटारे का तुरंत तकाज़ा कर रही हैं। युद्ध में कई लाख हिंदुस्तानी, सेना में, दफ़्तरों में, कारखानों में और दूसरे अनेक स्थानों में काम कर रहे थे। युद्ध का मोर्चा सैनिक क्षेत्र और नागरिक कारबारों में कायम हो गया था और इस प्रकार हिन्दुस्तान की बहुत बड़ी संख्या

इसमें लगी हुई थी। लेकिन युद्ध समाप्त होते ही यह व्यवस्था टूटने लगी है और कुछ ही दिनों में पूर्ण रूप से तोड़ दी जायगी। लाखों की संख्या में सैनिक और कर्मचारी बेकार हो जाँयगे। कल कारखानों में और युद्ध के लिये दूसरे क्षेत्रों में काम करने वाले भी बहुत बड़ी संख्या में बिना किसी काम के हो जाँयगे। वास्तव में काफ़ी बड़ी संख्या अभी बेकार हो गई है और शेष भी बहुत ही शीघ्र अपने स्थानों से हटा दिये जाने वाले हैं। हिन्दुस्तान के बाहर बर्मा, मलाया, श्याम, जावा, सुमात्रा इत्यादि देशों में कई लाख हिन्दुस्तानी बसते थे। इन देशों में ये स्थायी रूप से बस गये थे लेकिन युद्ध के कारण उन्हें उन देशों से हिन्दुस्तान लौट आने के लिये विवश होना पड़ा है और बसा हुआ स्थायी घर छोड़ देने के बाद वे अब बिना किसी आश्रय के हो गये हैं। कई लाख की संख्या में बेकार होने वाले लोग अच्छी रहन-सहन और सम्मान के साथ जीवन बिता चुके हैं। कई मत, मजहब और सम्प्रदाय के लोग साथ-साथ काम किये हैं। मृत्यु का सामना करने में और जीवन रक्षा का उपाय निकालने में साथ-साथ रहे हैं। भीषण कठिनाइयाँ इन्होंने साथ-साथ झेली हैं और जीवन का एक नया नक्शा भी साथ-साथ बनाया है। युद्ध क्षेत्रों में इन्हें देश-विदेश के अनेक स्थानों पर जाने का अवसर मिला है और अनेक प्रकार के लोगों के साथ अपनी तुलना करने का संयोग प्राप्त हुआ है। गावों के अन्धकार पूर्ण वातावरण से सेना में या सेना सम्बन्धी दूसरे क्षेत्रों में जाने वाले लोग एक दम परिवर्तित होकर वापस लौटेंगे। विचारों

में, रहन-सहन में और दृष्टि कोण में क्रान्तिकारी परिवर्तन के साथ ये बेकार किये जाने वाले लोग सामाजिक जीवन में प्रवेश करेंगे। इनके सामने संसार का एक दूसरा नक्शा है, इनके अरमान और उद्देश्य पहले से भिन्न हैं। इनकी भावनायें और भावुकतायें संकीर्णता की परिधि से बाहर निकल कर उससे घृणा करने लगी हैं। इन लोगों को स्थान देने, बसाने और काम देने की समस्या देश के सामने है। इन्हें न केवल काम देने वल्कि समाज में सम्मान पूर्ण स्थान, जिसके वे आदी हो चुके हैं, देने का प्रश्न है। यह प्रश्न टाला नहीं जा सकता।

हिन्दुस्तान का वर्तमान शासन सड़-सा गया है। शासकों और इनके कर्मचारियों का नैतिक आचरण इतना गिर गया है कि समस्त देश में घृणा, क्षोभ और विद्रोह का भयंकर वातावरण पैदा हो गया है। घूसखोरी और चोर बाजार का ऐसा दूषित व्यवसाय देश में फैल गया है जिसकी कल्पना नहीं की जा सकती है। साधारण जनता इस दूषित व्यवसाय की व्यापकता से हैरान और परेशान है। शासकों और उनके कर्मचारियों ने इस व्यवसाय को खूब प्रोत्साहित किया है। लूट-खसोट का अन्धाधुन्ध कारबार हो गया है। देश पीड़ित और तबाह है। एक विशद, व्यापक और साहस पूर्ण कार्यक्रम ही इस परिस्थिति को बदल सकता है। प्रत्येक हिन्दुस्तानी इस दूषित व्यवसाय का शीघ्र अन्त कर देने के लिये चिन्तित है।

ये अनेक जटिल समस्यायें और प्रश्न देश के सामने हैं जो उच्च भावनायें और बलिदान का तकाजा करती हैं और जो

राष्ट्रीय तथा अन्तराष्ट्रीय परिस्थितियों के प्रकरण में ही सोची और समझी जा सकती हैं। युवक और जागृत हिन्दुस्तान के सामने यह प्रश्न है कि क्या साम्प्रदायिक भावना स्वतंत्रता के लिये तड़पते हुये देश में ठहर सकेगी? साम्प्रदायिक मनोवृत्ति क्या इतनी बलवती है कि वह देश की तात्कालिक अनिवार्य आवश्यकताओं की अवहेलना कर अपना अस्तित्व बनाये रख सकेगी? क्या मनुष्य प्रति क्षण के शोषण और उत्पीड़न को सहन कर साम्प्रदायिक मोह और भावुकता की रक्षा कर सकेगा? और फिर ऐसा किस उद्देश्य के लिये होगा? साम्प्रदायिक भावुकता किसी अंश तक लुभावनी होती हुई भी एक सीमा से आगे नहीं जा सकती है। परिस्थितियों से विवश होकर एक विशेष राजनीतिक वातावरण में मनुष्य साम्प्रदायिकता का शिकार हो सकता है, लेकिन जब राजनीति का उन्मुक्त वातावरण बुद्धि और विवेक का तकाज़ा करने लगता है तो साम्प्रदायिक संकीर्णता का वहीं अन्त हो जाता है। मनुष्य में अनेक प्रवृत्तियाँ और भावुकतायें हुआ करती हैं, इनमें से एक निम्नतर प्रवृत्ति और भावुकता को सन्तुष्ट करने में साम्प्रदायिकता सफल हो सकती है। लेकिन जब बड़ी और जटिल समस्यायें किसी देश के सर पर आ धमकती हैं, विकट परिस्थितियाँ मानव जीवन के सम्मुख विशाल चट्टान के समान उपस्थित हो जाती हैं और लोगों का ध्यान अपनी ओर अनिवार्य रूप से आकर्षित करने लगती हैं तो मनुष्य उनके सुलझाने के प्रयत्न में लगता है और निरुद्देश्य भावुकता को छोड़ कर उद्देश्य पूर्ण साधनों का अनुसरण

करने के लिये विवश होता है। हिन्दुस्तान के द्वार पर प्रति क्षण ठोकर लगाती रहने वाली समस्याओं के प्रकाश में साम्प्रदायिक भावना और उससे सधने वाले उद्देश्य की पूरी छानबीन होने लगी है। हिन्दू और मुसलिम दोनों की साम्प्रदायिक भावनायें कड़ी परीक्षा के युग में से गुज़र रही हैं। हिन्दू साम्प्रदायिकता पर्याप्त होते हुये भी उसकी संगठित शक्ति का विनाश हो चुका है और अब तो वह इस योग्य भी नहीं है कि उसकी विवेचना की जाय। हिन्दू महासभा और धर्म संघ दोनों ही अपना अस्तित्व खो चुके हैं इनके लाख प्रयत्न करने पर भी हिन्दुत्व और धर्म की पुकार साधारण हिन्दू जनता को आकर्षित करने में सफल नहीं है। गत निर्वाचनों ने इसे निर्विवाद रूप से सिद्ध कर दिया है। लेकिन मुसलिम लीग की शक्ति घटी नहीं है, बल्कि प्रकाश्य रूप में वह बढ़ी हुई दीख पड़ती है। ऐसा क्यों है इसे समझ लेना आवश्यक है। आज जो परिस्थिति है वह भूतकाल के कार्यों का परिणाम है। अब तक मुसलिम लीग को बढ़ने और शक्ति संचित करने का पूर्ण अवसर दिया गया है। बृटिश सरकार ने उचित और अनुचित उपायों से लीग को जो प्रश्रय और प्रोत्साहन दिया, उसकी विवेचना हम पिछले परिच्छेद में कर चुके हैं। काँग्रेस भी लीग के इरादों के सम्बन्ध में बराबर भ्रम में रहती चली आई। उसने लीग से किसी प्रकार का समझौता कर लेने तक अपना प्रयत्न सीमित रखा और इस उद्देश्य से वह लीग की बराबर सिफारसें करती रही। इतना ही नहीं काँग्रेस ने लीग की सहायता और समर्थन

भी किया। सन् १९३७ के प्रान्तीय निर्वाचनों में काँग्रेस अध्यक्ष पंडित जवाहर लाल नेहरू ने जहाँ काँग्रेस के उम्मीदवार नहीं खड़े थे वहाँ लीगी उम्मीदवारों को वोट देने का आदेश दिया था। लीग मुट्ठी भर लोगों की एक जमात थी और केवल बड़े बड़े शहरों के कुछ लोग इसमें दिलचस्पी रखते थे। मुसलमानों की दूसरी प्रतिनिधि संस्थायें जमैयतुल उलेमा, मोमिन-कान्फ्रेन्स और अहरार इत्यादि थीं जो प्रगतिशील थीं, जिनके अनुयायियों की संख्या भी अधिक थी और जो स्वातंत्र्य-संग्राम में साथ-साथ बलिदान भी करती आईं। काँग्रेस ने इनकी बराबर अवहेलना कर लीग को राजी करने का प्रयत्न किया। परिणाम यह हुआ कि प्रगतिशील-मुसलिम संस्थाओं का दमन होता गया और शक्ति तथा संख्या में नगण्य होते हुये भी मुसलिम लीग मुसलमानों की प्रतिनिधि संस्था मान ली गई। मुसलिम लीग के बड़े-बड़े नेताओं से बात करने के अतिरिक्त काँग्रेस ने मुसलिम जनता में प्रवेश करने का विशेष प्रयत्न नहीं किया। मुसलिम जनसम्पर्क आन्दोलन का श्री गणेश एक बार हुआ, लेकिन उसे आरम्भ कर के ही छोड़ दिया गया और इसकी प्रतिक्रिया लीग के अनुकूल हुई। महात्मा गाँधी, पंडित जवाहर लाल नेहरू, श्री सुभासचन्द्र बोस, श्री राज गोपालाचारी और पं० गोविन्द वल्लभपंत इत्यादि ने मुसलिम लीग और उसके अध्यक्ष को राजी कर लेने के लिये समझौते के बड़े-बड़े प्रयत्न और लम्बे-लम्बे अनुरोध किये। समझौता तो हुआ नहीं, लीग का प्रचार खूब हुआ और सम्पूर्ण

संसार को, हिन्दुस्तान को और हिन्दुस्तान के मुसलमानों को यह मान और समझ लेने के लिये पृष्ठ भूमि तैयार हो गई कि लीग के कुछ बड़े-बड़े लोग मुसलमानों के प्रतिनिधि हैं। इस प्रकार हिन्दू-मुसलिम प्रश्न को हल करने का सम्पूर्ण आन्दोलन दोष-पूर्ण रहा है। मुसलिम जनता और उनकी प्रगतिशील संस्थाओं की अवहेलना कर शहर के कुछ नामधारी मुसलमानों से समझौता करने का प्रयत्न करते रहना न तो साहस का काम था और न इस प्रश्न को सुलझाने का सही मार्ग। काँग्रेस देश के सभी सम्प्रदायों की प्रगतिशील प्रतिनिधि संस्था है। १९३७ के निर्वाचनों में मुसलिम सीटों के प्रति उदासीनता दिखलाना और उसे जिस किसी के लिये छोड़ देना और लीग का समर्थन करना अत्यन्त दोषपूर्ण और कायरता पूर्ण था। युद्ध आरम्भ होने के बाद से वृटिश सरकार ने लीग को संगठित करने की पूर्ण सुविधायें और अवसर दिया है। लीग की शक्ति इन परिस्थितियों में बढ़ती गई है और केवल निर्विरोध ही नहीं बल्कि काँग्रेस और ब्रिटिश सरकार के आश्रय से इस समय वह शक्तिशाली-सी हो गई है।

लेकिन यह बढ़ी हुई शक्ति अस्थायी और क्षणिक है। जो संस्था हिन्दुस्तान की जटिल समस्याओं और कठिन प्रश्नों को सुलझानें की क्षमता नहीं रखती है, वह इस विद्रोह के युग में केवल साम्प्रदायिक भावना के आधार पर ठहर नहीं सकती है। आज देश में विद्रोह की आग जल रही है। जनता प्रत्येक संस्था को, उसके उद्देश्य को, उसकी योजनाओं को तौल रही है। प्रत्येक

साधारण व्यक्ति के मन में प्रश्न है। उसके सामने अपनी दिक्कतें हैं और उन्हें हल करने वाली योजनायें हैं। काँग्रेस और दूसरी प्रगति शील मुसलिम संस्थाओं ने पुरानी नीति छोड़ कर मुसलिम जनता के पास सीधे पहुँचने और उनके विवेक से अनुरोध करने के मार्ग का अनुसरण करना आरम्भ कर दिया है। गत् निर्वाचनों में लीग का विरोध किया गया है। जनता पाकिस्तान का सही अर्थ और उद्देश्य समझने का प्रयत्न करने लगी है। मुसलिम लीग ने एक अज्ञात और अस्पष्ट 'पाकिस्तान' क नारा लगा कर साधारण मुसलिम जनता को भ्रम में रखने का उपाय किया था। लेकिन अब पाकिस्तान की पूर्ण विवेचना में जनता दिलचस्पी लेने लगी है और उसका स्पष्ट रूप जानने के लिये उत्सुक है। केवल हिन्दुस्तान के बटवारे में किसी मुसलमान को दिलचस्पी नहीं हो सकती है वह उसके लाभ और हानि को समझना चाहता है। यदि बँटवारे से समस्यायें हल होती रहतीं तो संसार का नक़शा कई बार बटवारे के द्वारा बन बिगड़ चुका है। श्री राजगोपालाचारी और महात्मा गाँधी की 'पाकिस्तान' की स्पष्ट योजनायें लीग को मान्य नहीं हैं। शासन-व्यवस्था में हिन्दू और मुसलमानों के लिये ५०,५० प्रतिशत् स्थान भी लीग को मान्य नहीं है। कोई भी उचित योजना लीग को स्वीकार नहीं है। अपनी ओर से वह कोई कार्यक्रम भी उपस्थित नहीं करती है, उसकी सभी क्रियायें उस साम्राज्य के लिये सहायक हैं जो इस देश का शोषण कर रहा है और इस देश की दुर्दशा का कारण है। ये सभी बातें उस जनता के सामने हैं जो आँख खोल कर बात को समझने की

उत्सुकता प्रकट करने लगी है। जिस समय इन विवेचनाओं का पूर्ण परिणाम प्रकट होगा मुसलिम लीग के लिये कोई स्थान शेष नहीं रह जायगा।

मुसलिम लीग की बढ़ी हुई शक्ति जन-सम्पर्क के आधार पर ही ठहर सकती है। जन-सम्पर्क का प्रसार और उसकी घनिष्टता एक निश्चित परिणाम का सूचक है। जब साधारण जनता किसी संस्था में दिलचस्पी लेने लगेगी तो उसके उद्देश्य, संगठन और कार्यक्रम को अपने स्वार्थों के अनुकूल बनाने का प्रयत्न करेगी। नवाबों, उपाधिधारियों और पूँजीपतियों के वर्तमान मुसलिम लीग का ढाँचा जन सम्पर्क के प्रसार में ठहर नहीं सकेगा। या तो विद्रोह वे एक झटके में इसका रूप बदल कर मुसलिम जनता इसे अपने अनुकूल बना लेगी या इसे अपने हितों का विद्रोह समझ कर सर्वदा के लिये छोड़ देगी और उस परिस्थिति में यह संस्था जमीदार असोशियेशन की भाँति निर्जीव होकर रह जायेगी। लेकिन यदि जनता ने इसका नेतृत्व अपने हाथ में लेकर इसे एक प्रगति शील संस्था का रूप दे डाला तो उस परिस्थिति में वह उस विशाल जन आन्दोलन का एक अंग बन जायेगी जो अपनी सभी समस्याओं और कठिनाइयों को हल करने के लिये, हिन्दुस्तान की स्वतंत्रता के लिये प्रयत्न शील हैं और जो इस लिये बृटिश साम्राज्य के विरुद्ध युद्ध के मार्ग पर हैं। जनता की कोई भी संस्था उस विशाल जन आन्दोलन से अलग अपना पृथक अस्तित्व नहीं रख सकती है। जनता की कठिनाइयाँ समान हैं, उसे हल करने के लिये एक कार्यक्रम को अपनाना ही होगा।

मुसलिम जनता आज युद्ध के मार्ग पर है। यह बात यदि आज बहुत स्पष्ट नहीं है तो उसे स्पष्ट होने में बहुत देर भी नहीं है। गत निर्वाचन में किसी सभा में भाषण करते हुये मुसलिम लीग के एक प्रमुख व्यक्ति राजा साहब महमूदाबाद ने कहा है कि यदि कांग्रेस ने जमींदारी प्रथा को तोड़ने का प्रयत्न किया तो मैं खून बहा देने में पीछे नहीं रहूँगा। यदि राजा साहब महमूदाबाद और उनके साथी नवाब और जमींदार जमींदारी प्रथा की रक्षा के लिये खून बहा देने में संकोच नहीं करेंगे तो मुसलमान कास्तकार भी जमींदारी प्रथा को तोड़ देने के लिये खून बहाने में उनसे पीछे नहीं रहेंगे। वर्ग स्वार्थ स्पष्ट होकर ही रहेगा। और आज संघर्ष की जो परिस्थिति है, उसमें तो सभी वर्गों के स्वार्थ को अनिवार्य रूप से स्पष्ट होकर ही रहना पड़ेगा। 'इस्लाम' खतरे में और 'पाकिस्तान' के नारों का भ्रम भी बहुत अधिक दिन चल नहीं सकता है। जिसके पीछे सही आदर्श और कार्यक्रम नहीं है उसका अधिक दिन तक ठहर सकना असम्भव है। इन विवेचनाओं के दृष्टि कोण से मुसलिम लीग का कायापलट निश्चित है। वह जन संस्था के रूप में परिवर्तित हो विशाल जन आन्दोलन में सन्निहित हो जा सकती है या जनता से सम्बन्ध विच्छेद कर एक निर्जीव संस्था मात्र।

लेकिन केवल परिस्थितियाँ पर्याप्त नहीं हैं, उन्हें ठीक रूप देकर अग्रसर करने के लिये मनुष्य के विवेक और क्रियाशीलता की बड़ी आवश्यकता है। जनता वर्तमान व्यवस्था से ऊब गई है और उसे एकदम बदल देने के लिये वह विद्रोह के मार्ग पर है।

जनता की इस मनोवृत्ति को अधिक से अधिक शक्ति पहुँचाने की आवश्यकता है। घनिष्ट जन सम्पर्क और बिखरी हुई शक्तियों का संगठन ही समस्या को सुलझा सकता है। सितम्बर सन् १९४४ की गान्धी-जिन्ना वार्ता असफल हो जाने के बाद गाँधी जी ने कहा था कि अब केवल हिन्दू और मुसलिम जनता उन्हें और श्री जिन्ना को सहमत होने के लिये विवश करने में समर्थ होगी। और इसी उद्देश्य से गाँधी जी ने जनता से इस प्रश्न को समझने के लिये अनुरोध किया था। साम्प्रदायिक एकता की बात कही जाती है और साम्प्रदायिक समझौता के लिये हिन्दुस्तान की कम्यूनिस्ट पार्टी ने इस बात पर बड़ा जोर दिया है कि गाँधी और जिन्ना फिर मिलें। हिन्दुस्तान की कम्यूनिस्ट पार्टी के नेता श्री पी० सी० जोशी ने एक पुस्तक 'गाँधी जिन्ना फिर मिलें' लिखकर इस बात की दलील दी है कि साम्प्रदायिक समझौते के लिये गाँधी और जिन्ना मिलें। साम्प्रदायिक एकता और उसके लिये गाँधी और जिन्ना का फिर मिलते रहना दोनों ही बातें मूलतः गलत हैं। पिछली घटनाओं के इतिहास ने भी यह प्रमाणित कर दिया है कि किसी दो चार व्यक्तियों के मिलते रहने से प्रश्न का निपटारा नहीं किया जा सकता है। साम्प्रदायिक एकता का कोई अर्थ नहीं होता है। केवल स्वार्थों की एकता इस नैतिक जगत में सम्भव है। इस संसार में परस्पर विरोधी स्वार्थों का संघर्ष होता रहता है। इस संघर्ष में दो विरोधी स्वार्थों को एकता के सूत्र में आबद्ध रखना सम्भव नहीं है। वैसे तो साम्राज्य वादी शक्तियाँ गुलाम देशों में से ही सैनिकों, कर्म चारियों और समर्थकों की एक विशाल सेना

भर्ती कर उनका ही शोषण कर रही हैं। लेकिन यह विवशता और अज्ञान के कारण है। विवशता और अज्ञान के ऊपर अन्तिम विश्लेषण में शोषित वर्ग शोषक वर्ग के विरुद्ध एकत्र हो जायगा यह अनिवार्य है। जैसा कि हमने ऊपर कहा है कि साम्प्रदायिक भावुकता में कुछ आकर्षण है लेकिन वह एक शोषण हिन्दू पूँजीपति और एक शोषित हिन्दू की एक इस भावुकता के आधार पर कब तक ठहर सकेगी। अन्तिम विश्लेषण में तो हिन्दू और मुसलमान पूँजीपति अपने स्वार्थ की रक्षा एक साथ होकर करेगा और दूसरी ओर शोषित हिन्दू और शोषित मुसलमान साथ शोषण की व्यवस्था को नष्ट करने का प्रयत्न करेगा।

इस सिद्धान्त के प्रकरण में समझौते की बातें करते रहने का हठ करना दकियानूसी नीति है। यह बीते हुये युग की राजनीति है जब उदार विचारधारा के लोग समझौते तक ही राजनीति का अन्त समझते थे और उसे भी कुछ लोगों तक सीमित रखते थे। आज जन युग है और जनता प्रत्येक महत्व और विवाद के विषय पर निर्णय देना अपना अधिकार समझने लगी है। दो चार व्यक्तियों के मध्य समझौते के लगातार प्रयत्न ने साम्प्रदायिक प्रश्न को बेहद तूल देकर जटिल बना दिया है। समझौते के लिये बात चीत बार बार रखने पर जोर का अर्थ है राजनीति को आगे बढ़ने से रोक कर इस प्रश्न को ज्यों का त्यों बनाये रखने और इस विषय को जन विवेक के विश्लेषण का विषय न बनने देकर अज्ञात और अस्पष्ट ही बनाये रखने का प्रयत्न है। अब तक अनेक समझौते की बातें हुई और सभी न केवल असफल हुई

बल्कि साम्प्रदायिक आवेश बढ़ाती गई। इन समझौतों के कारण राष्ट्रीय और प्रगति शील शक्तियों का दमन हुआ है क्योंकि इस विषय पर उसे खुलने का अवसर नहीं मिला। फिर उस व्यक्ति से समझौता की बात बार बार करने का क्या अर्थ जो समस्या को हल नहीं करना चाहता है बल्कि उस अस्पष्टता और उलझन से अनुचित लाभ उठा कर वर्तमान व्यवस्था और परिस्थिति कायम रखना चाहता है।

जन चैतन्य जागृत कर और जनता को राजनीति में पूर्णतया शिक्षित कर उसे संगठित करना एक मात्र मार्ग है। अन्धकार में पड़ी हुई जनता सर्वदा भ्रमात्मक नारों में फँसी रहेगी, इसलिये उसे प्रकाश में लाकर जीवन के मुख्य और वास्तविक प्रश्नों को पूरी गम्भीरता के साथ उनके सामने उपस्थित करने का प्रयत्न अनिवार्य है। खाद्य संकट, वस्त्रसंकट और बसने की जटिल समस्याओं पर जनता का ध्यान पूर्ण रूप से केन्द्रित करने का कार्यक्रम पेश होना चाहिये।

जब तक जनता आवश्यक और व्यर्थ की बातों से एक दम उदासीन होकर जीवन-मरण के प्रश्नों में दिलचस्पी नहीं लेने लगेगी और परतंत्रता के बन्धन से मुक्त होने के लिये पागल नहीं हो उठेगी तब तक न तो समस्यायें हल हो सकेंगी और न अनुकूल वातावरण उत्पन्न होगा। अविश्वास का वाता वरण हो गया है। इसे दूर कर विश्वास का वातावरण उत्पन्न करना नितान्त आवश्यक है। यह वातावरण उसी समय पैदा किया जा सकता है जब जनता इस देश को, देश के सम्पूर्ण कारोबार और

सम्पत्ति को, शासन और अधिकार को अपना समझने लगेगी। इसके लिये जनता के आत्मनिर्णय का अधिकार सुरक्षित करना होगा।

विश्वास का एक वातावरण उत्पन्न करने के लिये और मुख्य समस्याओं पर ध्यान केन्द्रित रखने के लिये, हमें बहुत सी बातों से परहेज करना अनिवार्य है। लोगों को व्यर्थ की और भावुकता की बातों में फिसलने से बचाने के लिये स्वयं ऐसी बातों में फिसलने से बचना होगा। भाषा के प्रश्न से व्यर्थ की आवेश पूर्ण भावुकता पैदा हो गई है। हिन्दी और उर्दू के प्रश्न ने साम्प्रदायिकता का रूप धारण कर लिया है और इसीलिये देश के उत्थान में भाषा का जो महत्व पूर्ण भाग होता है, वह पूरा नहीं हो रहा है, बल्कि एक अप्रिय और अविश्वास का वातावरण उत्पन्न हो गया। उर्दू और हिन्दी दोनों का एक ही व्याकरण है, लेकिन हिन्दी के समर्थकों का विचार है कि उर्दू शब्दों को बहिष्कृत कर विशुद्ध संस्कृत के शब्द उसमें घुसेड़े जाँय और उर्दू के समर्थक भी इसी प्रकार फारसी और अरबी शब्दों के घुसेड़ने पर जोर देते हैं। एक भाषा को धनी बनाने के लिये यह आवश्यक है कि उसमें अधिक से अधिक शब्द हों और पर्याय वाची शब्दों की भरमार हो। अंग्रेजी भाषा को पूर्ण बनाने के लिये अनेक भाषाओं से शब्द लिये गये हैं और यह कृपा अब भी जारी है। इस दृष्टि कोण से हिन्दी और उर्दू दोनों प्रकार के शब्दों को पूर्ण रूप से अपनाने की आवश्यकता है और दोनों की मिली जुली भाषा को पूर्ण बनाने का प्रयत्न

वाञ्छनीय है। लेकिन कुछ व्यक्तियों ने एक को वहिष्कृत करने पर जोर देकर, इसे कटु बना दिया है। यह व्यर्थ की अवाञ्छनीय बात एक मुख्य विषय बन गई है। ऐसी ही बहुत से प्राचीन नारों और संस्कारों के पीछे परेशान होने की आदतों से हमें परहेज़ करना नितान्त आवश्यक है। 'वन्दे मातरम्' और 'सुजलां सुफलां' से यदि हानि होती दीख पड़ती हो तो इन्हें भी निःसंकोच छोड़ देना उचित होगा। इसमें सन्देह नहीं कि इनमें हिन्दुस्तान का चिरस्मरणीय इतिहास है और वह सर्वदा आदर और श्रद्धा से याद किया जायगा, लेकिन इनकी उपयोगिता अब समाप्त हो गई है। अब तो इनके प्रयोग का अर्थ पुरानी बातों की पुनरावृत्ति का मोह मात्र है। इनसे यदि अब हानि की आशंका है तो इस पुनरावृत्ति से महत्वपूर्ण बात को महत्वहीन और उपहास्य बनाना है।

समस्या नाजुक है। साम्राज्य अपनी नीति और कला में अडिग है, बल्कि जैसे जैसे उसकी शक्तियाँ क्षीण होती जाती हैं और उसके अन्त के दिन निकट आते जाते हैं वह अपने प्रयत्न में अधिक तत्पर है। ऐंग्लो अमेरिकन गुट आज बहुत ही प्रबल और सचेष्ट है और संसार की प्रगति शील शक्तियों के चारों ओर जबर दस्त घेरा डालने के भीषण प्रयत्न में लगे हैं। संसार का नकशा बड़ी तेजी से बदल रहा है उसकी रूप रेखा में प्रति क्षण परिवर्तन हो रहा है, घटना चक्र तीव्र गति से घूम रहा है। पुरानी बातें शीघ्रता से नयी रूप रेखा के लिये स्थान बनाती जाती हैं। अन्तर्राष्ट्रीय और राष्ट्रीय परिस्थितियों के

बदलते हुये ढाँचे में साम्प्रदायिकता अपना रंग तेजी से बदलती जाती है और उसका स्थान राजनीतिक विचार धारायें ले रही हैं। शीघ्र ही संगठित साम्प्रदायिकता इतिहास की बात रह जायेगी और राजनीतिक पार्टियाँ विकसित हो कर देश के रंग मंच पर आ जाँयगी। साम्राज्य की गृद्ध दृष्टि भी इन सभी घटनाओं पर लगी है। वह षड़यन्त्रों में दक्ष है और 'विभाजित कर के शासन करो' की नीति का वह सफल अभिनय कर्त्ता है। वैधानिक मार्गों और उनके प्रत्येक मोड़ से बृटिश साम्राज्यवादी पूर्ण परिचित हैं, वैधानिकता के जाल में फँसाये रखना वे खूब जानते हैं। और यह उन्हें अभीष्ट भी है। वैधानिक उपायों से अग्रसर होना असम्भव है, बल्कि समस्या और भी अधिक उलझन पूर्ण होती जायगी जैसा कि अभी तक होता आया है। हम घूम फिर कर उसी स्थान पर रह जाते हैं।

लेकिन साम्राज्य के दिन टल चुके हैं। बड़ी तेजी से उसका अन्त होता जा रहा है। परिस्थितियां हमारे अनुकूल हैं, प्रगति शील शक्तियाँ साहस और शक्ति के साथ अग्रसर हो रही हैं और हिन्दुस्तान के युवकों के दृढ़ निश्चय और अडिग संकल्प का तकाजा करती हैं। कठिनाइयाँ पार होने पर सुविधा का साधन बन जाती हैं लेकिन इसके लिये अथक परिश्रम और अभूत पूर्व साहस अनिवार्य है। हिन्दुस्तान संसार की समस्याओं की कसौटी हो गया है। क्या हिन्दुस्तान के युवक इस चुनौती को स्वीकार करेंगे ?

❀ समाप्त ❀

नया परिच्छेद

इस पुस्तक के पिछले परिच्छेद आज से बहुत पूर्व लिखे गए थे। उस समय से अब तक संसार और हिन्दुस्तान के इतिहास में अनेक परिच्छेद लिखे गए हैं। पुस्तक की बहुत सी बातें और कल्पनाएँ कोई न कोई रूप धारण कर चुकी हैं और इतिहास-क्रम के एक अनिवार्य मोड़ पर पहुँच चुकी हैं। साम्राज्य वादी व्यवस्था यदि अपनी रक्षा करने में असमर्थ है तो वह संभल-सभल कर जनशक्ति को आत्म समर्पण कर रही है और इसलिए संसार के वर्तमान मान-चित्र में नित्य नये परिवर्तनों की बाढ़ है। अगस्त १९४२ में कांग्रेस ने बम्बई में "हिन्दुस्तान छोड़ो" प्रस्ताव पास किया था। बृटिश पार्लामेन्ट ने काँग्रेस को निर्मूल कर डालने का निश्चय किया, लेकिन विवश होकर उसी पार्लामेन्ट ने १६ मई सन् १९४६ ई० को "हिन्दुस्तान छोड़ो" प्रस्ताव स्वीकृत किया और जून सन् १९४८ तक का समय निश्चय कर दिया जब तक अङ्गरेज हिन्दुस्तान छोड़ कर अवश्य चले जायँगे। केवल दो दिन पूर्व ३ जून १९४७ ई० को "हिन्दुस्तान छोड़ो" प्रस्ताव को कार्यान्वित करने और हिन्दुस्तानियों को शक्ति हस्तान्तरित करने की व्यवस्था की घोषणा की गई है। यह घोषणा हिन्दुस्तान के इतिहास में एक नया परिच्छेद है और सम्भव है कि साम्प्रदायिकता के वर्तमान रूप का यही अन्तिम परिच्छेद हो।

घटना-चक्र हमारी कल्पनाओं से भी तीव्र चल रहा है। किसी योजना, समझौता, व्यवस्था या बात से कभी किसी प्रकार न सहमत होने वाले श्री जिन्ना साहब प्रथम वार ३ जून १९४७ को घोषित की गई व्यवस्था से सहमत हुए हैं। इसे स्वीकार करते हुए मुस्लिम लीग कौंसिल से पास कराने का आश्वासन देते हुए उन्होंने सीमाप्रान्त और आसाम के लीगी आन्दोलनों को बन्द करने का आदेश दिया है। यह नई बृटिश घोषणा इस प्रकार है :—

१—बादशाह की सरकार ने २० फरवरी सन् १९४७ को हिन्दुस्तानियों के हाथों में जून १९४८ तक बृटिश हिन्दुस्तान की राज्य शक्ति हस्तान्तरित करने की घोषणा की थी। बादशाह की सरकार ने यह आशा की थी कि मुख्य दल १६ मई सन् १९४६ की योजना पर सहमत हो जायँगे। लेकिन ऐसा नहीं हो सका।

२—मद्रास, बम्बई, युक्त प्रान्त, बिहार, मध्यप्रदेश, बिहार, आसाम, उड़ीसा और सीमाप्रान्त के अधिकांश प्रतिनिधि और दिल्ली-अजमेर-मेरवाड़ तथा कुर्ग के प्रतिनिधि विधान-सम्मेलन में सम्मिलित हुए हैं। दूसरी ओर मुसलिम लीग के सदस्यों ने जिनमें बंगाल, पंजाब, और सिन्ध के अधिकांश प्रतिनिधि सम्मिलित हैं और बृटिश बिलोचिस्तान के प्रतिनिधि ने विधान सम्मेलन में शामिल न होने का निर्णय किया है।

३—बादशाह की सरकार हिन्दुस्तान की ही जनता की इच्छा के अनुसार शक्ति हस्तान्तरित करने की इच्छुक सर्वदा

से है। यदि हिन्दुस्तान के राजनीतिक दलों में समझौता हो गया होता तो बहुत अधिक सुविधा हो गई होती। समझौता न होने की स्थिति में हिन्दुस्तान के लोगों की इच्छा जानने के ढंग की व्यवस्था का भार सरकार पर आ पड़ा है। हिन्दुस्तान के नेताओं से परामर्श करने के बाद निम्नलिखित योजना तैयार की गई है। बादशाह की सरकार यह स्पष्ट कर देना चाहती है कि वह हिन्दुस्तान के लिए कोई विधान स्वयं नहीं बनाना चाहती है; यह काम हिन्दुस्तानियों का ही है। इस योजना में कोई ऐसी बात नहीं है जो विभिन्न सम्प्रदायों को संयुक्त हिन्दुस्तान के लिए परस्पर समझौता करने से रोके।

दो विधान-सम्मेलन

४—सरकार वर्तमान विधान-सम्मेलन के कार्य में विघ्न नहीं पैदा करना चाहती है। कुछ प्रान्तों के लिए, जिनकी तालिका नीचे दी गई है, व्यवस्था अब कर दी गई है। इसलिए उन प्रान्तों के लीगी सदस्य विधान सम्मेलन में शामिल होंगे जिन प्रान्तों के अधिकांश सदस्य शामिल हो रहे हैं। साथ ही यह भी स्पष्ट है कि इस विधान-सम्मेलन द्वारा तैयार किया गया विधान उस भाग पर लागू नहीं किया जा सकता है जो इसे स्वीकार नहीं करना चाहता है। बादशाह की सरकार सन्तुष्ट है कि नीचे का तरीका ऐसे क्षेत्रों की जनता की राय विधान-सम्मेलन के बारे में जानने के लिए सर्वोत्तम है कि :—

अ—वर्तमान सम्मेलन द्वारा उनके लिए विधान तैयार होगा।

ब—वे क्षेत्र जो वर्तमान या विधान-सम्मेलन में शामिल नहीं होना चाहते हैं और पृथक विधान सम्मेलन में अपने प्रतिनिधियों द्वारा विधान बनायेंगे।

जब इतना हो जायगा तो अधिकारी या अधिकारियों, (जिनको शक्ति सौंपी जायगी,) निश्चित करना सम्भव होगा।

विभाजन का ढंग

५—बंगाल और पंजाब की प्रत्येक प्रान्तीय एसेम्बली के दो भाग हो जाएँगे। एक में बहुसंख्यक मुस्लिम जिलों के प्रतिनिधि शामिल होंगे, दूसरे में शेष प्रान्त के प्रतिनिधि शामिल होंगे। योरोपीय सदस्यों से कोई सम्बन्ध न होगा। जिलों की जनसंख्या निश्चत करने के लिए १९४१ की जनगणना मानी जायेगी। बहुसंख्यक मुस्लिम जिलों का नाम नीचे दिया गया है।

६—इस प्रकार प्रत्येक असेम्बली के सदस्य गण दो भागों में अलग-अलग बैठे हुए इस बात का निर्णय करेंगे कि प्रान्त का विभाजन हो या न हो। यदि किसी एक भाग के बहुमत ने विभाजन के पक्ष में निर्णय किया तो प्रान्त का विभाजन हो जायगा।

७—विभाजन का प्रश्न तै होने के पूर्व यह उचित जान पड़ता है कि प्रत्येक भाग के प्रतिनिधियों को यह जान कारी हो जानी चाहिए कि यदि दोनों भागों ने विभाजन के विरुद्ध

साथ रहना निश्चित किया तो प्रान्त किस विधान-सम्मेलन में भाग लेगा। इसलिए यदि कोई सदस्य यह जानकारी प्राप्त करना चाहता है तो दोनों भागों की सम्मिलित बैठक होगी (जिसमें योरोपीय सदस्य शामिल नहीं होंगे) और इसमें यह तै होगा कि प्रान्त का विभाजन न होने की दशा में किस विधान-सम्मेलन में प्रान्त के प्रतिनिधि शामिल होंगे।

८—यदि विभाजन निश्चित हुआ तो प्रत्येक भाग धारा ४ के दोनों पहलुओं (वर्तमान विधान सम्मेलन या पृथक विधान सम्मेलन) पर विचार करेगा।

सीमा कमीशन

९—विभाजन को तुरन्त कार्यान्वित करने के लिए बंगाल और पंजाब की असेम्बली के सदस्य बहुसंख्यक मुस्लिम ज़िले और ग़ैर मुस्लिम ज़िले के अनुसार दो भागों में बैठेंगे। लेकिन यह बात आरम्भिक काल के लिए है। ज्यों ही विभाजन का प्रश्न निश्चित हो जायगा, सीमा के विवरण-पूर्ण और उचित निर्णय के लिए गवर्नर जनरल द्वारा एक सीमा-कमीशन नियुक्त होगा। कमीशन को आदेश होगा कि लगातार बसे हुए बहुसंख्यक मुस्लिम क्षेत्रों को सीमाबद्ध कर पंजाब के दो भाग किये जायँ। कमीशन को दूसरी बातें भी ध्यान में रखने का आदेश दिया जायगा। बंगाल के विषय में भी ऐसा ही होगा।

१०—सिन्ध की असेम्बली के सदस्य (योरोपीय सदस्य

नहीं) अपनी विशेष बैठक में धारा ४ के पहलुओं पर विचार करेंगे ।

सीमा प्रान्त में जनमत

११—सीमा प्रांत की अवस्था भिन्न है। प्रान्त के तीन प्रति निधियों में दो प्रति निधि वर्तमान विधान-सम्मेलन में भाग ले रहे हैं। लेकिन उसकी भौगोलिक स्थिति और दूसरे कारणों से यह स्पष्ट है कि पंजाब के किसी भाग ने पृथक होने का निश्चय किया तो सीमा प्रान्त को अपनी स्थिति पर पुनर्विचार करने का एक वार अवसर मिलना चाहिये। इस लिये सीमा प्रान्त की वर्तमान असेम्वली के मतदाताओं से यह राय ली जायगी कि धारा ४ के दो पहलुओं (वर्तमान विधान सम्मेलन में शरीक होना या पृथक विधान सम्मेलन में शरीक होना) में वे किसको पसन्द करते हैं। सीमा प्रान्त का यह जनमत गवर्नर जनरल द्वारा प्रान्तीय सरकार के परामर्श से लिया जायगा।

१२—बृटिश बिलोचिस्तान का प्रतिनिधि वर्तमान विधान-सम्मेलन में भाग नहीं ले रहा है। इसकी भौगोलिक परिस्थिति के कारण इस प्रान्त को भी इस बात पर पुनर्विचार करने का अवसर मिलना चाहिये कि वह किस विधान-सम्मेलन में शामिल होगा। गवर्नर जनरल वहाँ की राय जानने के ढंग पर विचार कर रहे हैं।

१३—यद्यपि आसाम ग़ैर मुस्लिम प्रान्त है, लेकिन सिलहट

का जिला जो पूर्वीय बंगाल से मिला हुआ है मुसलिम क्षेत्र है। इस बात की माँग की गई है कि यदि बंगाल का विभाजन हो तो मुसलिम बंगाल के साथ सिलहट मिला दिया जाय। इस लिए यदि बंगाल का विभाजन निश्चित हो गया तो सिलहट जिले का जनमत इस बात को निश्चित करने के लिये लिया जायगा। कि वह आसाम प्रान्त के साथ रहेगा या नये मुसलिम बंगाल प्रान्त में शामिल होगा। गवर्नर जनरल आसाम सरकार के परामर्श से जनमत लेने की व्यवस्था करेंगे। यदि जनमत पूर्वीय बंगाल में शामिल होने के पक्ष में हुआ तो सिलहट जिला और उससे लगे हुए जिलों के मुसलिम क्षेत्रों की सीमा निश्चित होगी। शेष आसाम वर्तमान विधान-सम्मेलन में भाग लेता रहेगा।

१४—यदि पंजाब और बंगाल का विभाजन निश्चित हो गया तो १६ मई १९४६ की कैबिनेट मिशन योजना के अनुसार प्रत्येक १० लाख की जनसंख्या पर एक प्रतिनिधि चुनने के लिए नया चुनाव आवश्यक होगा। सिलहट ने भी यदि पूर्वीय बंगाल में शामिल होना निश्चित किया तो वहां भी इस प्रकार का चुनाव आवश्यक होगा।

प्रत्येक क्षेत्र की प्रतिनिधि संख्या इस प्रकार होगी :—

प्रान्त	साधारण	मुसलिम	सिख	योग
सिलहट	१	२	×	३
पश्चिमीय बंगाल	१५	४	×	१९
पूर्वीय बंगाल	१२	२९	×	४१

पश्चिमीय पंजाब	३	१२	२	१७
पूर्वीय पंजाब	६	४	२	१२

१५—विभिन्न क्षेत्रों के प्रतिनिधि अपने क्षेत्रों के आदेशों के अनुसार या तो वर्तमान विधान-सम्मेलन में शामिल होंगे या नये विधान सम्मेलन का निर्माण करेंगे।

शासन

१६—विभाजन से उत्पन्न होने वाली बातों के सम्बन्ध में यथा-सम्भव शीघ्र ही सन्धि की बात आरंभ करनी होगी—

अ—प्रत्येक क्षेत्र की अधिकारी शक्ति के प्रतिनिधियों के बीच उन सभी विषयों पर सन्धि होगी जो इस समय केन्द्रीय सरकार के शासन में हैं, इसमें रक्षा, आर्थिक विषय और यातायात शामिल हैं।

ब—प्रत्येक क्षेत्र की अधिकारी शक्ति के प्रतिनिधियों और बादशाह की सरकार के बीच शक्ति हस्तान्तरित करने के कारण उठने वाले विषयों के सम्बन्ध में सन्धि।

स—विभाजित होने वाले प्रांतों के सम्बन्ध में प्रान्तीय विषयों जैसे पूंजी और ऋण, पुलीस और दूसरी नौकरियाँ. हाईकोर्ट और दूसरी प्रान्तीय संस्थाओं के सम्बन्ध में सन्धि।

१७—उचित अधिकारी द्वारा सीमान्त की कबीली जातियों के साथ समझौता करना होगा।

१८—बादशाह की सरकार यह स्पष्ट कर देना चाहती है कि ऊपर की बातें केवल बृटिश हिन्दुस्तान से सम्बन्ध रखती

हैं। देशी रियासतों से उनसे कोई सम्बंध नहीं है। देशी रियाशतों के सम्बन्ध में कैबिनेट-मिशन-योजना लागू होगी।

१९—उत्तराधिकारी शक्तियाँ बृटेन से शक्ति लेने की तैयारी के लिये समय पा सकें। इसके लिए आवश्यक है कि ऊपर की सभो बातें पूरी की जायँ। वर्तमान विधान-सम्मेलन और दूसरा विधान-सम्मेलन वनता है तो वह भी अपने अपने क्षेत्रों के लिए विधान बनाना आरम्भ करेंगे।

२०—शीघ्र शक्ति हस्तान्तरित करने के लिये जून सन् ४८ का समय निश्चित किया जाता है। इसके पूर्व भी हो सकता है। बृटिश पार्लमेंट में, इसे पूरा करने के लिये, शीघ्र ही बिल पेश किया जायगा। हिन्दुस्तान की सरकार या सरकारों को बृटेन से सम्बन्ध विच्छेद करने या न करने का निश्चय करने का पूर्ण अधिकार होगा। १९४१ की जन गणना के अनुसार बंगाल और पंजाब के बहुसंख्यक मुसलिम जिले :—

पंजाब

लाहौर डिवीजन—गुजरान वाला, गुरुदासपुर, लाहौर शेखनपुरा, स्यालकोट। रावल पिण्डी डिवीजन—अटक, गुजरात, झेलम, मियांनवाली, रावलपिण्डी, शाहपुर। मुलतान डिवीजन—डेरा गाजी खाँ, झाँग, लायल पुर, मांटगोमरी, मुलतान, मुजफ्फरगढ़।

बंगाल

चिटगांव डिवीजन—चिटगाँव, नोआखाली, टिपरा।

ढाका डिवीजन—बाकर गंज, ढाका फरीदपुर, मैमन सिंह।
प्रेसीडेण्सी डिवीजन—जेस्सोर, मुर्शिदाबाद, नदिया
राजशाही डिवीजन—बोगरा, दींनाजपुर, पबना, माल्दा, राजशाही, रंगपुर।

ऊपर की यह योजना जो ३ जून १९४७ को घोषित की गई है, मुस्लिम लीग के अध्यक्ष श्री मुहम्मद अली जिन्ना द्वारा और हिन्दुस्तान के दूसरे नेताओं द्वारा स्वीकृत कर ली गई है। पिछले परिच्छेद में हम लोगों ने देखा है कि सितम्बर सन् १९४४ ई० में गान्धी जी ने श्री राज गोपालाचारी की योजना पर श्री जिन्ना साहब से बातें की थीं। जो योजना गान्धी जी ने श्री जिन्ना के सामने उपस्थित की थी, वह मूल रूप से ३ जून १९४७ के अनुसार थी। इस योजना में भी एक सीमा-कमीशन नियुक्त करने की बात थी जो हिन्दुस्तान के उत्तर-पश्चिम और पूर्व दिशाओं में लगातार बसे हुए बहुसंख्यक मुस्मिल क्षेत्रों की सीमा-निर्धारित करता और उन मुसलिम क्षेत्रों का जनमत जो आदेश देता उसी के अनुसार वहां की व्यवस्था होती। जनमत जानने के लिये बालिग मताधिकार या दूसरे प्रकार की उपयुक्त ढंग की बात कही गई थी। उसमें भी रक्षा, आर्थिक प्रश्न, यातायात, वैदेशिक विषयों पर सन्धि की बातें कही गई थीं। परिवर्तन काल के लिये उसमें भी व्यवस्था थी। अन्तर केवल इतना ही है कि इस योजना को गान्धी जी ने जिन्ना के सम्मुख उपस्थित किया था और उनसे प्रार्थना किया था कि मुसलिम लीग अंगरेजों से शक्ति प्राप्त करने में काँग्रेस का साथ दे। यह योजना

बृटिश सरकार की ओर से उपस्थित की गई है। उस समय गान्धी जी की योजना को श्री जिन्ना ने यह कह कर ठुकरा दिया कि उन्होंने प्रान्तों को तोड़-मोड़ कर इस प्रकार नष्ट कर दिया कि भूसी मात्र उनके लिए शेष रह गयी और जो शेष रह गया उसमें भी सब के मत लिए जाने की बात कही गई जो लीग को मान्य नहीं थी। लेकिन इन सभी दोषों के साथ उन्हीं बातों को श्री जिन्ना ने स्वीकार किया है।

शिमला-सम्मेलन की असफलता और उसमें श्री जिन्ना के हठ की चर्चा हम पिछले परिच्छेद में कर चुके हैं। लार्ड वेवेल उस सम्मेलन की सफलता के लिये उत्सुक नहीं थे और श्री जिन्ना उनकी उदासीनता और बृटिश नीति के पूरक मात्र थे। लेकिन अस्थाई सरकार के लिये समझौते की बात जो शिमला सम्मेलन में आरंभ हुई उसका क्रम जारी रहा। स० १९४५ के अन्त और १९४६ के आदि का हिन्दुस्तान उस भीषण ज्वालामुखी के समान था जिसके भयंकर विस्फोट की आशंका प्रतिक्षण उपस्थित थी। अँग्रेज युद्धोत्तर काल में इस परिस्थिति के लिए तैयार नहीं थे और समझौता के द्वारा देश की क्रान्तिकारी प्रवृत्ति को साम्प्रदायिकता की ओर मोड़ सकते तो उनके लिए सब से अधिक लाभ की स्थिति उत्पन्न हो सकती थी। समझौते की अवस्था में श्री जिन्ना साहब और उनकी लीग पर निर्भर किया जा सकता था। लीग के दो राष्ट्रों के सिद्धान्त और पृथक मुसलिम राज्य का प्रचार उग्र रूप से किया गया और साथ ही हिंसक हिन्दू-बहुमत का भी। इन घटनाओं के बीच प्रान्तीय असेम्बलियों का

चुनाव मार्च सन् १९४६ में हुआ। इसमें सन्देह नहीं कि मुसलिम लीग को मुसलिम मतदाताओं का बहुत अधिक समर्थन प्राप्त हुआ लेकिन बहु संख्यक मुसलिम प्रान्तों में बंगाल के अतिरिक्त सीमा प्रान्त, पंजाब और सिन्ध में कोई परिवर्तन नहीं हुआ। सीमाप्रान्त में कांग्रेस की विजय हुई और वहाँ काँग्रेस की सरकार स्थापित हुई। पंजाब में यूनियनिस्ट दल की विजय हुई और सिन्ध की हालत पहले ही की भाँति अनिश्चित थी और यद्यपि लीग की सरकार वहाँ स्थापित हुई लेकिन उसकी अवस्था उस रोगी की भाँति थी जो केवल रोगशय्या पर पड़े-पड़े कराह सकता है। केवल बंगाल में लीग की दृढ़ सरकार स्थापित हुई; इससे हिन्दुस्तान की साम्प्रदायिक स्थिति में कोई विशेष अन्तर तो नहीं आया लेकिन हिन्दुस्तान भर में मुसलिम मतदाताओं के अधिक समर्थन से लीग को बल अवश्य प्राप्त हुआ और वह बहुसंख्यक मुसलमानों की प्रतिनिधि संख्या-सी दीख पड़ने लगी।

केन्द्र में अस्थाई सरकार के लिये बृटिश सरकार की ओर से समझौते की बात जारी रही। काँग्रेस भी समझौता करने पर तुली थी। बृटिश-कैबिनेट-मिशन हिन्दुस्तान आया। इसमें बृटेन के तीन महत्वपूर्ण व्यक्ति—श्री पैथिक लोरेन्स, श्री क्रप्स और श्री आलेग्जेण्डर-थे। इस मिशन ने एक योजना तैयार की जो १६ मई सन् १९४६ को घोषित की गई। वह जैसी भी थी काँग्रेस ने उसे स्वीकार कर केन्द्र में अस्थायी सरकार बनाने का प्रयत्न किया। लीग अस्थायी सरकार बनाने में सहमत

नहीं हुई और यदि काँग्रेस कैबिनेट - मिशन - योजना पूर्णतया स्वीकार कर बृटिश सरकार को विवश न कर देती तो अस्थायी सरकार न बनती। पं० नेहरू के नेतृत्व में अस्थायी सरकार स्थापित हुई, लेकिन मुसलिम लीग उसमें शामिल नहीं हुई। कैबिनेट मिशन योजना के अनुसार विधान-सम्मेलन का निर्माण हुआ और काँग्रेस तथा दूसरे दलों ने विधान-सम्मेलन में भाग लिया, लेकिन मुसलिम लीग ने उसमें भी भाग नहीं लिया।

पं० नेहरू के नेतृत्त्व में अस्थायी सरकार के कुछ महीनों तक काम करने के बाद लीग ने भाग लिया और उसके ५ सदस्य अस्थाई सरकार में शामिल हुए। लीग के सदस्यों के लिए अस्थायी सरकार के ५ सदस्यों को इस्तीफा देकर स्थान बनाना पड़ा।

अस्थाई सरकार में मुस्लिमलीग के सम्मिलित होने पर आशा की गई कि विधान-सम्मेलन में लीग शामिल होगी, लेकिन ऐसा हुआ नहीं। कैबिनेट—मिशन–योजना के अनुसार सम्पूर्ण हिन्दुस्तान का एक विधान-सम्मेलन बनता और वह विधान-सम्मेलन कुछ आरम्भिक बातों का निर्णय करने के बाद तीन अ, ब, स भागों में विभक्त होकर अलग-अलग कार्य करता। 'अ' भाग में मद्रास, बम्बई, बिहार, उड़ीसा, मध्यप्रदेश और युक्तप्रांत, थे, 'ब' में सीमाप्रांत, बिलोचिस्तान, पंजाब और सिंध थे और 'स' में बंगाल और आसाम प्रांत थे। कैबिनेट-मिशन-योजना के अनुसार तीनों गुट अलग-अलग अपने-अपने गुट

के लिये विधान बनाते और फिर अन्त में एक बार पूर्ण विधान-सम्मेलन एकत्र होकर आवश्यक बातें स्थिर करता। प्रत्येक दल को सम्पूर्ण से सम्बन्ध विच्छेद करने का अधिकार था। विधान-सम्मेलन का निर्माण हो जाने के बाद यह विवाद-आरंभ हुआ कि 'ब' और 'स' गुट का कोई प्रांत चाहे तो आरंभ ही से अपने गुट में शामिल नहीं हो सकता है। यह दलील कांग्रेस की थी; लीग का कहना था कि प्रत्येक प्रांत को अनिवार्य रूप से अपने-अपने गुट में शामिल होना पड़ेगा। इस विवाद ने उग्ररूप धारण कर लिया और कांग्रेस द्वारा लीग का अर्थ स्वीकार करने पर ही लीग विधान-सम्मेलन में शामिल होने को तैयार थी। इसे निर्णय करने के लिये इंगलैंड में एक छोटा-सा सम्मेलन बुलाया गया, जिसमें पं० नेहरू, श्री जिन्ना और श्री लियाकतअली शामिल हुये थे। इसका निर्णय वृटिश प्रधान मन्त्री एटली के ६ दिसम्बर १९४६ के वक्तव्य द्वारा हुआ। वह वक्तव्य मुस्लिम-लीग को दलील के अनुकूल था। कांग्रेस जिच की अवस्था नहीं रहने देना चाहती थी, वह संकटों और प्रतिकूल परिस्थितियों के मध्य से अपना मार्ग बनाने की आदी हो चुकी है, वह टालमटोल और केवल समझौता की बात-चीत मात्र जारी रखने की वृटिश नीति भी सफल होने देना नहीं चाहती थी, इसलिये उसने ६ दिसम्बर १९४६ के वक्तव्य को स्वीकार कर लीग को विधान-सम्मेलन में शामिल होने का द्वार पूर्णतया मुक्त कर दिया। लेकिन फिर भी लीग शामिल नहीं हुई। बिना लीगी सदस्यों के विधान-सम्मेलन का कार्य जारी रहा। अपने समय से बहुत पूर्व लार्ड

वावेल इंगलैंड वापस बुला लिये गये और लार्ड माउंट बेटन हिन्दुस्तान आये और उनकी ३ जून १९४७ की योजना को श्री जिन्ना की स्वीकृति का प्रथम श्रेय प्राप्त हुआ है।

इन परिस्थितियों की साधारण विवेचना गुत्थियों को समझने में सहायक होगी। साम्राज्य की शासन-कला में दक्ष बृटिश राजनीतिज्ञ वैधानिक समस्यायों को उत्पन्न कर लोगों की मनोवृत्तियों को एक दिशा से दूसरी दिशा की ओर मोड़ देना भली भाँति जानते हैं। शिमला सम्मेलन, प्रान्तीय निर्वाचन समझौते की लगातार चर्चा और कैबिनेट-मिशन-योजना के द्वारा १९४५ के अन्त और १९४६ के आरंभ की क्रान्तिकारी अवस्था को साम्प्रदायिक उत्तेजना में वदल दिया गया। मुसलिम लीग ने साम्राज्य की और साम्राज्य ने मुसलिम लीग की सहायता पूर्ण रूप से की। कोई कारण नहीं था कि मुसलिम लीग अस्थायी सरकार में शामिल न होती, लेकिन उद्देश्य यह था कि कोई बात अपने स्थान पर पूर्ण नहीं और बार-बार समझौते की चर्चा लगातार चलती रहे। अस्थायी सरकार में मुसलमान सदस्य न शामिल हो सकें और इस प्रकार सरकार न स्थापित हो सके, एक मनोनीत सदस्य सफात अहमद खां पर छुरे के आक्रमण किये गए और दूसरे सदस्य अली जहीर साहब को धमकियां दी गईं। फिर भी पं० नेहरू के नेतृत्त्व में अस्थायी सरकार आश्चर्य जनक और कल्पनातीत तीव्रता से जब काम करने लगी तो बृटिश सरकार न केवल स्तब्ध हो गई वल्कि पूर्ण तया भयभीत हो गई। विदेशों में राजदूत भेजकर सीधा सम्बन्ध

स्थापित करना और मौलिक रूप से अनेक दूसरी बातें करना बृटिश स्वार्थ और लीगी सत्ताधारी वर्ग के लिए हितकर नहीं प्रतीत हुआ। इसलिए अस्थायी सरकार को गति में विघ्न उपस्थित करना अनिवार्य प्रतीत हुआ और लार्ड वावेल के एक इशारे पर वही मुसलिम लीग जो अब तक बाहर रही, अस्थाई में शामिल हो गई। मुसलिम लीग के केवल अलग रहने का उद्देश्य था कि अस्थायी सरकार न चल सके, शामिल होने का केवल उद्देश्य था कि अस्थायी सरकार साम्प्रदायिक तू—तू, मैं, मैं का अड्डा बन जाय। पं० नेहरू को विवश होकर कहना पड़ा था कि लीग अस्थायी सरकार में "बादशाह का गुट" है। लेकिन अस्थायी सरकार में जो हुआ वह तो एक साधारण-सी बात थी। जन साधारण को साम्प्रदायिकता से उत्तेजित कर देना आवश्यक था। कलकत्ता में मुसलिम लीग ने 'प्रत्यक्ष कार्य' दिवस मनाया। वह उग्र और हिंसात्मक साम्प्रदायिकता का प्रदर्शन था। यह तो विवादास्पद नहीं रह गया है कि जो हुआ उसे कोई भी शिष्ट, सभ्य और विवेक शील सरकार करती। कलकत्ता के बाद ही नोआखाली, टिपरा आदि बहु संख्यक मुसलिम ज़िलों में जो भीषण साम्प्रदायिक काण्ड हुए, वे इतिहास के लिए नये हैं। बृटिश सरकार और श्री जिन्ना जो चाहते थे वही हुआ। सम्प्रदायिकता की लपट भीषण रूप में चारों आर फैल गई। बृटिश साम्राज्य के प्रति जो क्षोभ और घृणा थी उसका स्थान ले लिया हिन्दू-मुसलिम नरसंहार ने। बंगाल की घटनाएँ साधारण हिन्दुस्तानी के लिए बहुत अधिक

सिद्ध हुई और हिन्दू, हिन्दू के रूप में सोचने लगा और मुसलमान मुसलमान के लिए बेचैन हो उठा। बँगाल का प्रभाव बिहार पर पड़ा और फिर युक्तप्रान्त के गढ़मुक्तेश्वर पर। कांग्रेस इन घटनाओं से बेचैन हो उठी और उन्हें शान्त करने के लिए अपनी ओर से कोई कसर उठा नहीं रक्खी। लेकिन लीग ने इन घटनाओं का दुरुपयोग भरपूर किया। लीग को आवश्यकता थी इन बातों को पंजाब और सीमाप्रान्त में पहुँचाने की जहाँ वह कुछ ही दिन पूर्व निर्वाचनों में ठुकरा दी गई थी। वहाँ साम्प्रदायिकता की निकृष्ट भावुकता को उत्तेजित कर लीग अपने लिए स्थान बनाने के प्रयत्न में लगी और बिहार इत्यादि की घटनाओं का विज्ञापन कर वहाँ दंगे कराये गये। यह ध्यान देने योग्य है कि सीमाप्रान्त और पंजाब में तो भीषण रूप में दंगे हुए हैं, लेकिन सिन्ध सुरक्षित है। इसका कारण स्पष्ट है कि सिन्ध में मुसलिमलीग अब दृढ़ हो गई है और वहां उसका बहुमत है। दंगे लीग की संगठित व्यवस्था के परिणाम हैं। साधारण जनता का स्तर अभी अधिक ऊपर नहीं उठा है, इसलिए दो-चार साम्प्रदायिक दंगे लोगों की प्रवृत्तियों को बदल देने के लिए काफी हो सकते हैं। इन दंगों के परिणाम-स्वरूप कांग्रेस काफी बदनाम हो गई और अधिक हिन्दू, हिन्दू महा-सभा को शक्ति शाली बनाने की बात सोचने लगे थे। मुसलमानों के लिए यह बात और अधिक प्रभाव रखती है।

बृटिश सरकार ने इस साम्प्रदायिक मनोवृत्ति को अग्रसर करने में कोई कमी शेष न छोड़ी। अस्थायी सरकार स्थापित

होने के बाद पं० नेहरू ने सीमान्त के कबीला क्षेत्र का दौरा किया। यह दौरा पं० नेहरू ने उसक्षेत्र को सभ्य और सुसंगठित करने के और उनके साथ वर्ती जा ने वाली बृटिश नीति में मौलिक परिवर्तन करने के उद्देश्य से किया था। पं० नेहरू के वहाँ पहुँचने पर भीषण उपद्रव कराये गए और वे संकट से बचकर आए। यह निर्विवाद है कि ये उपद्रव बृटिश पोलिटिकल ऐजेन्ट द्वारा कराये गए। सिन्ध प्रान्त में सर्वदा से ब्रिटश नीति अपनी करामात दिखलाती आई है। बहुत कुछ पिछले परिच्छेद में हम देख चुके हैं। १९४६ के प्रान्तीय निर्वाचन के बाद सिन्ध में लीग का मन्त्रि मण्डल नाजुक स्थिति में था और उसके समाप्त हो जाने की नौबत पहुँच गई थी। सिन्ध के गवर्नर ने इसकी रक्षा की। सिन्ध असेम्बली तोड़ दी गई और फिर से वहाँ निर्वाचन हुआ। परिस्थितियाँ उत्पन्न की गईं और परिणाम-स्वरूप लीग निश्चित रूप से शासनारूढ़ हुई। इसके बाद वहाँ दंगों की आवश्यकता नहीं समझी गई। पंजाब और सीमाप्रान्त में भी इसी नीति को दुहराने का प्रयत्न किया गया है। पंजाब में दंगे करा कर श्री खिज्रहयात खां से इस्तीफा दिलवाया गया। हमने अभी देखा है कि दंगे के वातावरण में हिन्दू और मुसलिम प्रवृत्तियाँ भीषण रूप से उग्र हो जाती हैं। इस प्रकार वहाँ यूनियनिष्ट मंत्रिमण्डल के स्थान पर लीगी मंत्रि-मंडल स्थापित करने का प्रयत्न किया गया। लेकिन सिखों के देश में सरलता पूर्वक यह सम्भव नहीं हो सका और पंजाब इस समय गवर्नर के शासन में है। वैधानिकता

की साधारण परिस्थिति में सिन्ध या पंजाब में ऐसा नहीं होता यह लीग और ब्रिटिश सरकार की साजिशों का परिणाम है। सीमाप्रान्त में भी साम्प्रदायिक दंगों और उपद्रवों द्वारा लीगी शासन स्थापित करने का प्रयत्न किया गया।

इस बात की माँग की गई कि सीमाप्रान्त में फिर से निर्वाचन हो, यद्यपि अभी एक वर्ष पूर्व पाकिस्तान के प्रश्न पर वहाँ चुनाव लड़ा गया और अत्यधिक बहुमत से वहाँ की जनता ने पाकिस्तान के प्रश्न को ठुकरा दिया था। पुनर्निर्वचन की मांग के लिए लीग को उत्साहित किया गया और इसमें तो सन्देह ही नहीं रह गया है कि लीग द्वारा कराये जाने वाले उपद्रवों के पीछे वहाँ के गवर्नर कैरो का पूरा हांथ है। ३ जून १९४७ की नई योजना में सीमाप्रान्त का जनमत इस बात पर प्राप्त करने के लिए कहा गया है कि वह वर्तमान विधान-सम्मेलन में भाग लेगा या अलग पाकिस्तान विधान-सम्मेलन में शामिल होगा। दलील यह दी गई है कि यद्यपि सीमाप्रान्त के तीन प्रतिनिधियों में दो प्रतिनिधि वर्तमान विधान-सम्मेलन में भाग ले रहे हैं, लेकिन पंजाब के विभाजन के कारण उसकी भौगोलिक परिस्थिति और दूसरे कारणों से सीमाप्रान्त को अपनी स्थिति पर पुनर्विचार करने का अवसर मिलना चाहिए। केवल एक वर्ष पूर्व वहाँ के मतदाताओं ने पाकिस्तान के विरुद्ध अपना मत प्रकट किया था उन्हीं मतदाताओं का मत फिर लिया जायगा। प्रान्त के तीन प्रतिनिधियों में दो वर्तमान विधान-सम्मेलन में भाग ले रहे हैं। पंजाब का पूर्वीय भाग भी वर्तमान

विधान-सम्मेलन में शामिल होगा। दलील यह होनी चाहिए थी कि सम्पूर्ण सीमाप्रान्त वर्तमान विधान-सम्मेलन में शामिल हो रहा है और पूर्वीय पंजाब भी शामिल होगा इसलिए अपनी विशेष भौगोलिक स्थिति के कारण पश्चिमीय पंजाब को इस स्थिति पर विचार करने के लिए कि वह वर्तमान विधान-सम्मेलन में शामिल होगा या नहीं, अबसर मिलना चाहिए और इस लिए वहाँ का जनमत लिया जाना चाहिए था। लेकिन ऐसा नहीं किया गया और स्थिति ऐसी उत्पन्न की गई है कि सीमाप्रान्त लीगियों के चंगुल में आ गया।

स्वार्थों के संसार में बृटिश साम्राज्य और मुस्लिमलीग की एक गुट वन्दी है। सन् १९४४ ई० में जब गाँधी जी ने यही योजना भी जिन्ना के सम्मुख उपस्थित की तो उन्होंने उसे अस्वीकृत कर दिया और जब बृटिश सरकार ने परिस्थितियों को तौल कर इशारा किया तो श्री जिन्ना द्वारा सहर्ष स्वीकार कर लिया गया है और पाकिस्तान प्राप्त कर लेने का शोर मचा-कर बड़ी प्रसन्नता से इसका स्वागत किया जा रहा है। नेहरू सरकार की दृढ़ता कांग्रेस के निश्चय और दूसरी शक्तियों से यह स्पष्ट हो गया कि आसाम बंगाल और पंजाब को पूर्ण रूप से पाकिस्तान में शामिल करना असम्भव था। समझौते की बात भी अनिश्चित काल तक नहीं चलाई जा सकती थी, क्योंकि कांग्रेस और नेहरू सरकार समझौते के बिन्दु को सीमित कर उसके ठोस रूप को निश्चित कर देने के लिए विवश कर रही थी। टालने की स्थिति में अंग्रेज नहीं रह गये और अपनी ओर

से समझौते की बात तोड़ कर राष्ट्रीय शक्तियों से मोर्चा लेने की स्थिति में भी वे नहीं थे। हिन्दुस्तान आज संसार के राष्ट्रों में सम्मान और शक्ति का स्थान रखता है। उसके सैनिक रणक्षेत्रों में अपने रणकौशल के लिये प्रसिद्ध हैं और अब उनमें राष्ट्रीयता और आत्मसम्मान की भावना ओतप्रोत है। एसियाई-सम्मेलन, जो अभी दिल्ली में हुआ, हिन्दुतान की संगठन-शक्ति और नेतृत्व का उदाहरण था। भविष्य के किसी बड़े काम के लिए हिन्दुस्तान की शक्ति संसार के ध्यान को आकर्षित करती है। उस शक्ति का मनमाना उपयोग बृटिश साम्राज्य या कोई भी दूसरी शक्ति नहीं कर सकती है। ऐसे हिन्दुस्तान को निराश और हताश करना सरल नहीं था। अन्तरराष्ट्रीय परिस्थिति में ऐंग्लो-अमेरिकन गुट रूप के विरुद्ध अपनी स्थिति दृढ़ करने के लिये हिन्दुस्तान को शत्रु वनाने का साहस नहीं कर सकता। हिन्दुस्तान की भौगोलिक स्थिति बड़ी ही महत्वपूर्ण है। मध्य एशिया ऐंग्लो-अमेरिकन गुट और रूस दोनों ही के लिए महत्वपूर्ण क्षेत्र हो रहा है। अमेरिकन धन-जन से सहायता कर मध्य एशिया में अपनी शक्ति दृढ़ कर रहा है। अमेरिका और इंगलैंड दोनों ही मध्यएशिया में अपने प्रभुत्व को कायम रखने और रूस के प्रभाव का विस्तार रोकने के लिये दृढ़-संकल्प हैं। इस परिस्थिति में बृटेन हिन्दुस्तान से जिस प्रकार भी समझौता कर उसे बृटिश साम्राज्य के साथ रखने के लिये उत्सुक है। साथ ही वह हिन्दुस्तान पर प्रभुत्व वनाये रखने की लालच का सहसा त्याग भी नहीं कर सकता है, इसलिये पाकिस्तान और

देशी रियासतें कुछ समय तक बृटिश शक्ति का अड्डा हो सकती हैं। सीमाप्रांत पंजाब और सिंध साम्प्रदायिक दंगों द्वारा इस स्थिति में पहुँचा दिये गये हैं कि जनमत पाकिस्तान के पक्ष में प्राप्त किया जा सकता है। हिन्दुस्तान के साथ समझौता कर अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति में ऐंग्लो-अमेरिकन गुट दृढ़ हो सकता है और पाकिस्तान तथा देशी रियासतों में बृटिश शक्ति का अड्डा बना कर हिन्दुस्तान और मध्य एशिया पर प्रभाव बनाये रखा जा सकता है। परिस्थितियों को तौल कर समझौता जितनी दूर तक टाला जा सकता था, टाला गया और जब जितना आवश्यक हो गया उतना पूरा किया गया। मुलिम लीग बृटिश-नीति की पूरक रहकर उसके संकेत पर काम करती आ रही है।

यह स्पष्ट है कि जनतंत्र और पूर्ण स्वतंत्रता के मार्ग में यह विघ्न भीषण चट्टान के रूप में बृटिश-लीग गुट बन्दी द्वारा उपस्थित किया गया है। इसके पूर्व स्वातंत्र्य संग्राम में जैसे लगातार कठिन समस्यायें और वाधायें उपस्थित की गई हैं, वैसे ही उजड़ते हुये बृटिश साम्राज्य द्वारा यह जाल तैयार किया गया है। राजनीतिक लड़ाइयाँ शतरंज की चालों की भाँति प्रायः गूढ़ हो जाया करती हैं। कांग्रेस ने बृटिश शासन के विरुद्ध लड़ाइयाँ भी लड़ी हैं और अवसर आने पर उससे समझौता भी किया है। अगस्त सन् ४२ की जनक्रांति में यदि हम हारे नहीं थे तो जीते भी नहीं थे। या तो लगातार लड़ाई से बृटिश शासन निर्मूल कर दिया जाता या एक लड़ाई के बाद उसके साथ समझौता होता। जेल से निकलने के बाद गाँधी

जी ने समझौते की बात आरंभ की, श्री जिन्ना से भी और वृटिश सरकार से भी। लगाकर लड़ाई संभव नहीं है। १९४५ के अन्त और १९४६ के आरंभ में हिन्दुस्तान का उग्र रूप था, लेकिन उग्र दीख पड़ने वाला रूप भी अन्तिम निर्णय में भीषण संघर्ष के पश्चात् समझौते में समाप्त होता। समझौता सर्वथा त्याज्य नहीं है और क्रांतिकारी संस्थाओं के लिये भी समझौता की नीति अवसर के अनुसार ग्रहण करना अनिवार्य है। यदि कोई क्रांतिकारी संस्था शासक शक्ति से इसलिये समझौता करती है और वैधानिक कार्यों में लग जाती है कि वह अपने उद्देश्य को अग्रसर करे तो वह समझौता क्रांतिकारी प्रणाली का एक अङ्ग हो जाता है और संघर्ष का बदला हुआ रूपमात्र होता है। अन्दोलनात्मक प्रदर्शन ही संघर्ष नहीं हुआ करते हैं, वे तो संघर्ष के अत्यन्त साधारण रूप होते हैं। बड़े-बड़े नारों और लड़ाई की दुन्दुभी बजाते रहने से भी न तो क्रांति होती है और न संघर्ष होता है। क्रांति अनेक परिस्थितियों से उत्पन्न मनोदशा का एक वृहद् परिणाम होती है। अनेक छोटी-बड़ी खाइयों को पार कर और साधारण या टेढ़ी लड़ाइयों को जीत कर हम अन्तिम मोरचे पर पहुँचते हैं और उस अन्तिम मोरचे पर पहुँचने के लिये कई मार्गों का अनुसरण बुद्धिमत्तापूर्वक करना पड़ता है। यदि कोई समझौता इन उद्देश्यों से किया गया और कार्यान्वित किया गया तो वह अन्तिम संघर्ष के मार्ग को स्पष्ट और सरल बना देता है। हाँ, यदि समझौता करने वाली संस्था वैधानिकता के ही दल-दल में फँस कर शासक के ही विधान

को कार्यान्वित करने में अपने को सीमित रखती है तो यह बात अवश्य अनिष्ट कर है। समझौते की परिस्थिति असाधारण रूप से कठिन हो सकती है, लेकिन वह अनिवार्य होती है और उसका ठीक उपयोग अन्तिम सफलता निश्चित कर सकती है। यह तो स्पष्ट है कि बृटिश सरकार ने चाहे जितना बड़ा जाल बिछाने का प्रयत्न किया हो, उससे समझौता इस शर्त पर हुआ है कि वह सम्पूर्ण हिन्दुस्तान से (पाकिस्तान से भी) जून १९४८ तक चले जायेगी, और हिन्दुस्तान के हाथों में पूर्णरूप से शक्ति सौंप जायेगी। इतिहास ने सिद्ध कर दिया कि यह समझौता होना ही चाहिये था। आत्मनिर्णय का अधिकार कांग्रेस ने १९४२ में ही स्वीकार किया था। जो क्षेत्र साथ नहीं रहना चाहते, उन्हें आत्मनिर्णय का अधिकार मिलना ही चाहिये था। समझौते में आत्मनिर्णय का विकृत रूप आवश्यक है, उसे स्वीकार करके ही आगे बढ़ना परिस्थितियों में अनिवार्य है। यह समझौता अन्तिम व्यवस्था माना भी नहीं गया है। पंजाब के विभाजन में केवल मुस्लिम सम्प्रदाय को एक क्षेत्र में रखने की व्यवस्था की गई है। सिख सम्प्रदाय दो भागों में विभक्त होकर पाकिस्तान और हिन्दुस्तान में बँट जाता है। बहादुर सिख इस स्थितिको अन्तिम रूप में स्वीकार नहीं कर सकते और न सीमाप्रांत के आत्माभिमानी पठान जिन्होंने स्वतंत्रता संग्राम में अपने को बलिदान कर दिया है बृटिश इन्द्रजाल को स्वीकार कर अपने क्षेत्र को बृटिश प्रभुत्व का अड्डा बनने देना पसंद कर सकते हैं। सीमाप्रांत का मत लिये जाने की

वात ढकोसला मात्र है, क्योंकि स्वतंत्र जनमत साम्प्रदायिक उत्तेजना के वातावरण में असंभव है। लेकिन सभी ने इसे इसलिए स्वीकार किया है कि न स्वीकार करना अनिश्चित, अस्पष्ट और विवेकहीन भावुक प्रश्नों के घेरे में चक्कर लगाते रहना था।

साम्प्रदायिकता इस समय से एक मोड़ को पार कर रूप बदलने के लिये वाध्य है। हिन्दू-मुस्लिम दो राष्ट्रों के सिद्धांत का अन्त हो चुका, और उन प्रांतों के मुसलमानों को तो जहाँ वे अल्प संख्यक हैं, लीग ने असहाय अवस्था में छोड़ दिया है हो सकता है कि आरंभ में पाकिस्तान क्षेत्र हिन्दुस्तान से अलग बनता हुआ दीख पड़े, लेकिन यह स्थिति अधिक दिनों तक नहीं ठहर सकेगी। यह न तो बृटिश प्रभुत्व सहन कर सकेगा और न लीग के नवाबों और सामंतो की व्यवस्था स्वीकार कर सकेगा। हिन्दुस्तान की भौगोलिक एकता समान आर्थिक विकाश रक्षा और वैदेशिक नीति के लिये दोनों भागों को वाध्य करेगी। हिन्दुस्तान में अभी जो एसियाई सम्मेलन हुआ था, वह और दूसरी परिस्थितियाँ इस वात की ओर संकेत करती हैं कि प्राकृतिक विभाजन असंभव है।

जून १९४८ तक हिन्दुस्तान छोड़ देने के वादे को बृटिश सरकार द्वारा पूरा कराने के लिये हमें अधिक शक्ति शाली होने की आवश्यकता है। यह घोषणा और समय का निश्चित हो जाना एक चुनौती है जो प्रत्येक हिन्दुस्तानी से दृढ़ संगठन और पहले से अधिक आत्म वलिदान का तकाजा करती है।

हिन्दू-मुस्लिम दंगों में हमारा मार्ग स्पष्ट होना चाहिए। यदि बंगाल का बदला विहार में लेने की नीति का अनुसरण हम करेंगे तो निश्चय रूप से वृटिश नीति को पूरा करेंगे। यदि हम समझ लें कि साम्प्रदायिक उपद्रव साम्राज्य और देशीय प्रतिक्रियावादी शक्तियों के शाजिशों के परिणाम हैं तो हमारा रोष केवल साम्राज्य के प्रति होना चाहिये। वृद्ध तपस्वी महात्मा गाँधी गाँव-गाँव जहाँ की जलवायु, भाषा और रहन-सहन से वह अपरिचित हैं, घूम कर मार्ग प्रदर्शन कर क्रांति का सन्देश सुनाते और संगठित रूप से क्रांति और जनतंत्र व्यवस्था का सन्देश उस क्षेत्र में दृढ़ निश्चय के साथ पहुँचाते हैं, जहाँ वृटिश-साम्राज्य, लीग और देशी नरेशों के साथ प्रभुत्व बनाये रखने के प्रयत्न में है। पाकिस्तान के वास्तविक अर्थ की व्यवस्था उस क्षेत्र में स्थापित होनी चाहिये, इसके लिये कार्य करने की आवश्यकता है। गांधी जी ने इस आवाज़ को उठाया भी है। राजनीतिक दलों में विभक्त होकर आज की मूल आवश्यकता की अवहेलना करना बड़ा ही घातक होगा। काँग्रेस ने साम्राज्य के विरुद्ध अब तक संघर्ष किया है और जब तक वह वृटिश साम्राज्य—संसार की सबसे बड़ी प्रतिक्रियावादी शक्ति—के विरुद्ध संघर्ष करती रहेगी, क्रांतिकारी संस्था बनी रहेगी। इस समय जब अन्तिम चुनौती है तो उस संगठन को सबसे अधिक दृढ़ करने की आवश्यकता है जो संघर्ष का आधार है। उसे तनिक भी शिथिल करने की बात करना प्रतिक्रियावादी शक्तियों और वृटिश प्रभुत्व को अवसर देना

है। वृटिश शासन के चले जाने और शक्ति पूर्ण रूप से प्राप्त कर लेने तक काँग्रेस को दृढ़ रखना अनिवार्य है। गाँधी हिन्दुस्तान के प्राण हैं और उनका नेतृत्व विशद और स्पष्ट है। गाँधी जी ने कहा है कि भविष्य उस बात पर निर्भर करता है जो हम आज करेंगे।